पण्डित श्रीरामदवे : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(वर्ष 2010 तक की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच. डी (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबंध

(कला–संकाय)

अनुसंधानकर्ता

रवीन्द्र कुमार शर्मा

शोध निर्देशिका

डॉ. साधना कंसल

व्याख्याता, संस्कृत

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2017

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री **रवीन्द्र कुमार शर्मा** आत्मज श्री मोतीलाल शर्मा द्वारा प्रस्तुत शोध-प्रबंध **"पण्डित श्रीरामदवे : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (वर्ष 2010 तक की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन)"** मेरे निर्देशन में तैयार किया गया है। शोधार्थी ने प्रति वर्ष 200 दिन मेरे पास नियमित रह कर कार्य किया है। इनका यह शोध प्रबन्ध मौलिक एवं सारगर्भित है। अतः शोध-प्रबंध को मूल्यांकन हेतु अग्रसारित किया जाता है।

डॉ. साधना कंसल
व्याख्याता, संस्कृत,
राजकीय महाविद्यालय,
कोटा (राज.)

प्रथम अध्याय :

राजस्थान का संस्कृत साहित्य

द्वितीय अध्याय :

पं. श्रीरामदवे जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

तृतीय अध्यायः

पं. श्रीरामदवे जी की रचनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन

चतुर्थ अध्यायः

पं. श्रीरामदवे जी की सारस्वत साधना का समग्र मूल्यांकन

पंचम अध्यायः

पण्डित श्रीरामदवे का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान

उपसंहार

समर्पणम्

।।श्री गणेशाय नमः।। ।।श्री कुलदेवभ्यो नमः।।

परम श्रृद्धेय

पितृ स्व. श्री मोतीलाल शर्मा

तथा

मातृ श्रीमती मुथरी देवी

एवं

प्राध्यापिका डॉ. श्रीमती साधना कंसल जी

के चरणोत्पलों में सादर समर्पित

जिनके आशीर्वाद व प्रेरणा से

मुझे निरन्तर सफलता मिली।

पण्डित श्रीरामदवे : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(वर्ष 2010 तक की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच. डी (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–सारांश

(कला–संकाय)

अनुसंधानकर्त्ता

रवीन्द्र कुमार शर्मा

शोध निर्देशिका

डॉ. साधना कंसल

व्याख्याता, संस्कृत

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2017

विषयानुक्रमणिका

		पृ.सं.
प्रथम अध्याय :	राजस्थान का संस्कृत साहित्य	1-39
द्वितीय अध्यायः	पं. श्रीरामदवे जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	40-96
अध्याय तृतीय :	पं. श्रीरामदवे जी की रचनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन	97-231
चतुर्थ अध्याय :	पं. श्रीरामदवे जी की सारस्वत साधना का समग्र मूल्यांकन	232-315
पंचम अध्याय :	पण्डित श्रीरामदवे का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान	316-335
	• उपसंहार	336-339

प्रथम-अध्याय
राजस्थान का संस्कृत साहित्य

1. राजस्थानी संस्कृत-साहित्य का परिचय-

राजस्थान भारत का ऐसा प्रान्त है जिसकी अनुपम महिमा है। स्वतन्त्रता से पूर्व राजस्थान में पृथक-पृथक रियासतें थी और यह प्रान्त 'राजपूतानें के नाम से जाना जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तत्कालीन गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल के अथक प्रयासों से, देशी रियासतों का एकीकरण होने पर यह प्रान्त राजस्थान के नाम से सुविख्यात हुआ। वीर वीरांगनाओं की जन्मस्थली तथा कर्मस्थली इस राजस्थानीय वसुन्धरा से पूरा भारतवर्ष केवल परिचित ही नहीं अपितु पूर्ण प्रभावित भी है। इसका इतिहास लिखने वाले जेम्स टॉड ने एक जगह पर लिखा है कि "राजस्थान में कोई छोटी से छोटी रियासत भी ऐसी नहीं जिसमें धर्मापत्नी (जैसी रणभूमि) न हो तथा कोई नगर ऐसा नहीं, जिसमें लियोनिडास जैसा योद्धा उत्पन्न न किया हो।"[1] इसी वीरभूमि पर जन्म लेकर पृथ्वीराज की प्राण रक्षा के लिए अपनी देह का माँस गिद्धों को देने वाला संजमराय, सतीत्व की रक्षा के लिए बहुत-सी वीर स्त्रियों के साथ जौहर व्रत का पालन करने वाली महारानी पद्मिनी, कृष्ण के अनुराग में पागल बनी हुई मीरा, स्वामिभक्ता पन्नाधाय, देशाभिमानी महाराणा प्रताप इसकी सामरिक सहायता के लिए अपार धनकोष न्यौछावर कर देने वाला सेठ भामाशाह, महान् आत्मोत्सर्ग करने वाले गोरा-बादल, जयमल, राजा हमीर, राणा कुम्भा, राणा सांगा और वीर दुर्गादास आदि महावीरों ने इसका मस्तिष्क ऊँचा किया है। तेजाजी, रामदेवजी आदि जनता के सन्तवीर, उपदेशमयी वाणी के प्रसारक दादूजी एवं उनके शिष्य सुन्दरदास जी भी राजस्थान के ही सन्त रत्न हुए हैं। चन्दरबरदायी चारण की ओजस्विनी लेखनी से महाराज पृथ्वीराज की यशोगाथा हिन्दी की प्रथम एवं प्राचीनतम काव्य रचना ने 'रासो' के रूप में यहीं पर जन्म लिया था।

बीसलदेव रासो की भी यही जन्मस्थली रही है। सबके जाने-माने शृंगार के महाकवि बिहारी को प्रत्येक दोहे की रचना पर महाराज जयसिंह से एक सुवर्ण मुद्रा लेकर "बिहारी सतसई" लिखने का सुअवसर राजस्थान में ही प्राप्त हुआ।

भक्ति में विलुप्त हुई मीरा की वाणी से कृष्ण-भक्ति की विशिष्ट धारा ने इसी राजस्थानीय धरा से प्रवाहित होकर भारत के कोने-कोने का सिंचन किया। शिशुपालवधम् महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ की जन्मस्थली का विशेष गौरव भी इसी राजस्थानी वसुन्धरा को प्राप्त हुआ। संस्कृति के महान् पुजारी जयानक ने 'पृथ्वीराज विजयम्' ग्रन्थ लिखकर राजस्थान की ऐतिहासिक, राजनैतिक व आर्थिक स्थितियों का वर्णन किया।

राजस्थान के जयपुर के लिए संस्कृत विद्वानों के विषय में यह प्रसिद्ध है कि - "वाराणसी वा जयपत्तनं वा।"

इस सम्बन्ध में महाकवि सीताराम भट्ट पर्वणीकर ने जयपुर का उल्लेख इस प्रकार किया है-

यस्म भाति सततं जयपूर्वं पत्तनं पुरमतीव मनोज्ञम्।
उच्चशालमधिशालिविशालं सत्यभाषणरताखिल लोकम्।।[2]

महाकवि कांकर ने अपने काव्य में जयपुर का वर्णन इस प्रकार किया है-

प्रान्तेऽस्मिन् रघुराज वंशज-महावीरैर्वरैः क्षत्रियैः
श्रीमन्वादि-महर्षि-दिष्ट नयतः सम्पालितं पोषितम्।
स्व-स्वाचार मधिस्थितैरविरतं वर्णैश्चतुर्भिर्भृतं
राजस्थानविभूषणं 'जयपुर' राराज्यते पत्तनम्।।[3]

प्रागैतिहासिक दृष्टि से भी राजस्थान अपना सर्वत्र विशिष्ट स्थान रखता है। यह प्रान्त विभिन्न कालों में विभिन्न नामों से विख्यात था। महाभारत में बीकानेर तथा जोधपुर का उत्तरी भाग "बांगलादेश" कहलाता था, जिसकी राजधानी आहछत्रपुर (नागौर) थी। गुजरों के समय में जोधपुर राज्य गूर्जर देश (गुजरात) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिरोही राज्य तथा जोधपुर का दक्षिण पूर्वी हिस्सा व दांता तथा पालनपुर राज्य कभी अर्बु देश कहलाता था और यह प्राचीनकालीन मरूदेश का एक अंश था। इसकी राजधानी चन्द्रावती आबू पहाड़ की तलहटी में थी। महाभारत काल में अलवर राज्य का उत्तरी भाग, चूरू के दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग मत्स्य में और पूर्वी भाग शूरसेन के अन्तर्गत थे जिसकी राजधानी मथुरा थी। जयपुर राज्य भूमि का उत्तरी भाग मत्स्य देश में मिला था। जिसकी राजधानी विराट थी जो अब जयपुर राज्य में बैराठ कस्बा है। उदयपुर राज्य शिवि नाम से कहलाता था। यहाँ ईस्वी सन् से पूर्व तृतीय शताब्दी के आस-पास के ताँबे के सिक्के मिले हैं। उदयपुर राज्य में मेरों का राज्य होने पर यह मेवाड़

कहलान लगा। डूँगरपुर और बाँसवाड़ा का प्राचीन नाम बागड़ था। प्रतापगढ़, कोटा, झालावाड़, टोंक आदि मालव देशान्तर्गत थे।

वर्तमान राजस्थान रामायण काल में समुद्र से ढका हुआ था। भूगर्भ वेत्ता भी इस कथन से सहमत हैं। अब तक यहाँ पर सीप, शंख, कौड़ो आदि सामुद्रिक वस्तुएँ मिलती हैं। उनके विचार से किसी आकस्मिक भूकम्प के कारण यहाँ इतना परिवर्तन आया कि समुद्र पीछे हट गया और चारों और रेत के टीले निकल आये। उसी समय से यह भाग रेगिस्तान (मरूप्रदेश) कहलाने लगा।

मेवाड़ के प्रतापी शासक महाराणा प्रताप मुगलों से निरन्तर लड़ाई और स्वतन्त्रता प्रेमी के रूप में जाने जाते हैं। राणा कुम्भा मेवाड़ का वीर योद्धा, कला व संस्कृति का प्रेमी, राणा सांगा मेवाड़ का वीर शासक था। यह वही राजस्थानी वीरभूमि है, जिसके स्वतन्त्रता सेनानियों ने 1857 ई. में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बजाकर अंग्रेजों की नींद हराम कर दी थी। इसी भूमि पर कर्मवीर विजयसिंह पथिक ने शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाकर 1918 ई. में बिजौलिया किसान आन्दोलन का सूत्रपात कर एकता का परिचय दिया। राजस्थान के स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने वाले उच्च कोटि के विद्वान् एवं इतिहासकार ठाकुर केसरी सिंह बारहट, धर्म एवं देश प्रेम की शिक्षा देने वाले अर्जुनलाल सेठी, गाँधीजी के पाँचवे पुत्र के रूप में विख्यात जमनालाल बजाज, दलितों के रक्षक व संचालक हरिभाऊ उपाध्याय, पीड़ितों एवं शोषितों के मसीहा माणिक्यलाल वर्मा, 1951 से 1954 ई. के बीच राजस्थान के मुख्यमंत्री जयनारायण व्यास, विदेशी वस्त्रों की होली जलाने वाले गोकुलभाई भट्ट तथा अंग्रेजीशासन द्वारा पीड़ित एवं भारतमाता की जय जयकार करने वाले सागरमल गोपा आदि स्वतन्त्रता सेनानियों की जन्मभूमि यही राजस्थान प्रान्त है।

ऐतिहासिक दर्शनीय स्थलों की दृष्टि से भी राजस्थान का अपना विशेष महत्त्व है। महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा निर्मित हवामहल, जन्तर-मन्तर, नाहरगढ़ का किला, सिटी पैलेस, रामबाग पैलेस, जलमहल, सिसोदिया रानी का बाग एवं गलता जी पवित्र धार्मिक स्थलों ने जयपुर को भारत का पेरिस कहलाने में अपना योगदान दिया है।[4] इस सम्बन्ध में कवि शिरोमीण भट्टमथुरानाथ शास्त्री ने कहा है-

प्राकृषि प्रसारित - जलवेणी-मञ्जुलोपवनी
नन्दनवनीव दिव्यनेत्रैः परिपेयाऽसौ।
कारकार्य-स्वचित-सुरम्य-सौधमालाऽयुना
वैभवविशाला नूनमल कोपमेयाऽसौ।।
मञ्जुनाथ मोदान्नित्यमुत्सव-समाजैर्भृता
निकटगताऽपिपूर्वपुण्यैः परिचेयाऽसौ।
भारतीय 'पेरिस' पुरीव परिलोक्या भृशं
जयपुर-पुरी मे भूरिभाग्यैरभिधेयाऽसौ।।[5]

इसके अलावा राजस्थान में शिलादेवी का मन्दिर, शीशमहल, दीवाने आम, दीवाने खास, जैन मन्दिर, रणथम्भौर दुर्ग, जूनागढ़ आदि ऐतिहासिक दर्शनीय स्थल भारत में राजस्थान की अनुपम छटा को सुशोभित करते हैं। महाभारत में उल्लेखित पाँचों पाण्डवों ने वनवास के दिन राजा विराट द्वारा स्थापित विराट नगर में बिताकर राजस्थान को विश्व में स्थापित किया।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी राजस्थान का भारतवर्ष में अनुपम स्थान है। राजस्थान में विभिन्न त्यौहार, मेले व लोकनृत्य राजस्थानी सांस्कृतिक एकता का परिचय देते हैं। दशहरा, दीपावली, होली, शीतलाअष्टमी, तीज, रक्षाबन्धन, रामनवमी, जन्माष्टमी, गणगौर, 15 अगस्त (स्वतन्त्रता दिवस), 26 जनवरी (गणतन्त्र दिवस), इत्यादि त्यौहार मनाये जाते हैं। इसी प्रकार कैलादेवी, गणेश चतुर्थी, महावीरजी, रामदेव जी, राणी सती, ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती आदि राजस्थान के विश्व प्रसिद्ध मेले हैं जो राजस्थानी संस्कृति की कहानी कहते हैं। लोक नृत्यों की दृष्टि से भी राजस्थान अछूता नहीं है। यहाँ गैर, गीदड़, डाँडिया, घूमर, भवाई, डाँग आदि नृत्य राजस्थान की सांस्कृतिक एकता की कहानी कहते हैं।

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की बोलियाँ बोली जाती हैं परन्तु राजभाषा तो हिन्दो ही है। राजस्थान में जोधपुर, जैसलमेर बीकानेर में 'मारवाड़ी' अजमेर में 'मारवाड़ी', किशनगढ़ व जयपुर में 'ढूंढाडी' एवं डूँगरपुर, बाँसवाड़ा आदि क्षेत्रों में 'बागड़ी' तथा सम्पूर्ण मेवाड़ क्षेत्र में 'मेवाती' का प्रचलन है।[6]

अतः सम्पूर्ण धर्मों को समभाव का आदर्श देने वाले राजस्थान प्रान्त में अनेक सम्प्रदायों का भक्ति रस स्फुटित होता है। भारत में राजस्थान प्रान्त ही ऐसा है जो ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं सम्पूर्ण दृष्टियों से अपने आप में एक विशाल है। राजस्थानी

संस्कृति एक ऐसी समभाव संस्कृति है जो राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता को प्रदर्शित करती है।[7]

इस प्रकार शिक्षा, दीक्षा, शौर्य, त्याग, कला, उद्योग, धर्म आदि अनेक विशिष्ट कारणों से भारतवर्ष के विभिन्न सब प्रदेशों में राजस्थान का विशेष स्थान है-

प्रधानां प्रान्तानां विपुलमभिमानं बलवतां
वितानं विज्ञानां, किमपि परिपानं रसवताम्।
निदानं वीराणां सुभगमुपमानं जयवतां
महद् राजस्थानं जयतितिलकं भारतभुवः।।[8]

देववाणी पवित्र भारतभूमि की दिव्यतम निधि है। इसकी गौरव-गरिमा को विश्व के समस्त विद्वान् मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर चुके हैं। इसकी समृद्धि निरूपम तथा शब्द भण्डार अक्षय है। यही वह भाषा है जिसमें संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद है। विश्व की प्रमुख भाषाओं के विविध गुणों का पूँजीभूत रूप यदि हम देखना चाहें तो इसी संस्कृत भाषा में प्राप्त हो सकेगा। यूनानी भाषा का सा लौच, लेटिन सी सुन्दरता, रोमन की सी शक्ति, हिब्रू का दिव्य स्वरूप सबका - एकत्रीकरण कहाँ सुलभ है। जैसा कि सर विलियम जान्स ने कहा था - ''संस्कृत विश्व की अद्‌भुत भाषा है, यूनानी से अधिक पूर्ण, लेटिन से अधिक अनुवचनीय तथा अन्य किसी भी भाषा से अधिक सुसंस्कृत। इसकी धातु रूपावली से प्रत्येक शब्द का सम्यक रूप समझा जा सकता है। इसलिए यह भाषा घूर्ण मस्तिष्क की पूणता की चरम सीमा है। इसके अतिरिक्त इसकी सरलता भी इसकी अपनी विशेषता है। वाल्मीकि के आदिकाव्य रामायण से सरल और कौनसा ग्रन्थ होगा?''

संस्कृत भाषा विश्व परिवार एवं सार्वजनीन भ्रातृभाव की जननी है। ऋग्वेद उच्चकोटि का काव्य व साहित्य होने के अतिरिक्त मानवता का सर्वश्रेष्ठ पोषक है। इसका ध्येय ही है मानव मात्र के लिए 'समानो मन्त्रः समिति समानी' (ऋग्वेद 10/161/3) यही कारण है इस भाषा और इसके साहित्य के अध्ययन के लिए संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक लोगों में आकर्षण रहा है। श्री रामानुजाचार्य ने मद्रास के समीपवर्ती स्थान से कश्मीर की 2000 मील की यात्रा बोधायन के ब्रह्मसूत्र की टीका प्राप्त करने के लिए की। शंकराचार्य नंगे सिर, पैर संस्कृत साहित्य के प्रचारार्थ सम्पर्णू भारत में घूमे। चीन की बड़ी दवार पर धर्मसूत्र अंकित है।

मध्य एशिया में अनेक स्थलों पर संस्कृत ग्रन्थों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। संसार के प्रमुख विश्वविद्यालयों में प्राचीन भाषाओं के अनिवार्य अध्ययन विषय में से एक संस्कृत भाषा भी है। भाषा विज्ञान ने संस्कृत को मानवजाति की प्राचीनतम भाषा माना है। इसके साथ ही इसका सांस्कृतिक महत्त्व ओर भी बढ़ चढ़कर है। अन्य देश अपने राजदूतों को भारत में नियुक्त करते समय उनके संस्कृत भाषा के ज्ञान को विशेष महत्त्व देते हैं। क्योंकि इस भाषा के माध्यम से भारत की मान्यताओं को समझाना सरल है। मैक्समूलर ने आन्तरिक शान्ति के उद्देश्य से रचित साहित्य संस्कृत भाषा का साहित्य ही माना है। स्वामी विवेकानंद द्वारा निमन्त्रित किए जाने पर उन्होंने अपनी मृत्यु के अनन्तर भारत में दफनाए जाने की इच्छा व्यक्त की थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत भाषा एवं साहित्य का महत्त्व तथा इसकी मान्यता केवल भारत में ही नहीं, सार्वत्रिक है-

स मां पिता यथा शास्ति सत्यधर्म सदास्थितः।
तथा वर्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः।।

(वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड)

युगों से संस्कृत साहित्य भारतीय आत्मा का प्रतीक रहा है। इसका एकता का सन्देश मानव जाति के समग्र सुख की कल्पना तथा विचारों की पवित्रता का प्रयत्न निराला है। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की उदात्त भावना यत्र-तत्र अभिव्यंजित है। आप महाकवि वाल्मीकि के साथ लंका की यात्रा कर सकते हैं तो महाकवि व्यास के साथ बीहड़ वनों एवं भ्रमण योग्य स्थानों का अनुभव। कालिदास के सहचर बनकर उज्जयिनी, हिमालय के तटवर्ती प्रदेश तथा रामगिरि से कैलाश तक के दर्शन करने में सफल हो सकते हैं। सोमदेव के साथ आप धन धान्य पूर्ण द्वीपां की सैर करेंगें तो कल्हण के साथ कश्मीर नरेशों के वैभव का अविस्मरणीय दर्शन। भवभूति के साथ गोदावरी तट पर क्रीड़ा करने में समर्थ हो सकते हैं तो नारायण भट्ट के साथ केरल की देवभूमि के दर्शन करने में। महाकवि कालिदास आज भी भारतीय जीवन की अनुभूतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं-

1. संगच्छध्वं संवदध्वं सर्वोमनांसि जानताम्।।[9]

कन्या की विदाई के अवसर पर पितृ हृदय की अनुभूति दृष्टव्य-

कन्या के विषय में भारतीय समाज की मान्यता आज भी वही है जो कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित है-

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।[10]

वास्तव में संस्कृत साहित्य प्राचीनतम होते हुए भी नया है। हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने सुन्दर शब्दों में कहा था - 'यदि मुझसे पूछा जाए कि भारत की अमूल्यतम निधि कौनसी है तो मैं निःसंकोच कहूँगा कि यह संस्कृत भाषा और साहित्य है जो आजीवन हम भारतीयों को प्रभावित करता रहेगा।'

वास्तव में संस्कृत हमारी संस्कृति का मूलाधार है। इसके साहित्य में देश की आत्मा बसी है। हमारे जीवन तत्त्व की व्याख्या प्रस्तुत करने वाले वेद, दर्शन, धर्मसूत्र, चिकित्सा गन्थ, ज्योतिष ग्रन्थ आदि तो हैं ही साथ ही उच्चकोटि का लौकिक साहित्य भी है। संस्कृत साहित्य बहुविध है। कोई ऐसा विषय क्षेत्र नहीं जो इससे अछूता रहा हो।

आगे रामायण महाभारत का रचनाकाल भी समृद्धिकाल कहा जाता है। भारत के इतिहास की अद्यतनीन परम्परा संस्कृत साहित्य से ही चली आ रही है। विविध युगों के बीच की खाइयाँ भरने, विभिन्न श्रृखंलाएँ जोड़ने में इसने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। शास्त्रीय वाङमय के साथ ही लौकिक साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। साहित्य के गद्य, पद्य, नाटक, कथा, चम्पू, प्रहसन, आख्यायिका इत्यादि सभी अंगों का विकास इसकी पूर्णता का प्रतीक है।

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' इस साहित्य का ध्येय रहा है। संस्कृत साहित्य की बृहत्त्रयी (माघ, भारवि, कालिदास) के ग्रन्थ इसी सिद्धान्त के परिपोषक है। दृश्य काव्यकार भास, कालिदास, भवभूति, विशाखदत्त ने भी जीवन के नैसर्गिक तथ्यों पर अपनी रचनाओं द्वारा प्रकाश डाला। शास्त्रीय लक्षणों की दृष्टि से तो ये ग्रन्थ अपने में पूर्ण हैं ही, इसके अतिरिक्त जीवन में रसानुभूति का आनन्द जिसे ब्रह्मानन्द सहोदर कहा जाता है। इनमें भरपूर है। इसमें प्रतिपादित तथ्यों की नवीनता युगों के बीतने पर भी तद्वत मनोहारिणी है। यही उत्तमता गद्य साहित्य तथा पंचतन्त्र जैसे कथा साहित्य में भी उपलब्ध है। यहाँ सरल शब्दों में शिक्षाप्रदत्ता

का मणिकांचन संयोग उपलब्ध है। इसमें प्रयुक्त एक-एक श्लोक, एक-एक सूक्ति जीवन पथ से भटके मानवों के पथ प्रदर्शन के लिए पर्याप्त है। इसी प्रकार समीक्षा विषयक ग्रन्थ भी संस्कृत साहित्य की मूल्यवान् निधि है। सच तो यह है कि साहित्य की कोई भी विधा इसमें छूटने नहीं पाई। यही सर्वांगीणता इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है।

इसके विविधता के साथ-साथ प्रकृति के प्रांजल एवं आलंकारिक चित्रण में भी संस्कृत साहित्य निरूपम है। निःसन्देह संस्कृत साहित्य का विकास प्रकृति की कमनीय क्रोड़ में हुआ। आदिकवि से लेकर प्रायः सभी कवियां ने अपने काव्यों तथा नाटकों में प्रकृति का सजीव चित्रण कर काव्य सुषमा की वृद्धि की है। रामायण में सर्वप्रथम बसन्त शोभा का वर्णन दर्शनीय है। लक्ष्मण सहित राम जब पम्पासर पर पहुँचे तब उन्होंने देखा झील के चारों और सघन वृक्ष और लताएं छायी हुई हैं, इसमें लाल कमल एवं श्वेत कुमुद खिल रहे हैं, जो नीलकमल भी शोभा बढ़ा रहे हैं, इस रंग बिरंगी छटा से मानो कालीन-सा बिछ गया हो है।

महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश में प्रकृति का आलंकारिक चित्रण किया है। भारवि, माघ, अश्वघोष तथा भट्टि आदि सभी कवि अलंकार प्रयोग एवं प्रकृति वर्णन में सिद्धहस्त हैं-

1. **पृक्तस्तुषारै र्गिरिनिर्झराणां मनोकहा कम्पितपुष्पगन्धी।**
   तमातपक्लान्तमनात पत्रमाचारपूतं पवनः सिषैवे।।[11]
2. **स्वेनैव रूपेण विभूषिता विभूषणानामपि भूषणं सा।**[12]

भावपक्ष तथा कलापक्ष की क्रमशः सारवत्ता एवं मनोहारिता का सुन्दर संगम यहाँ सहज ही देखा जा सकता है। नाट्यकला का विकास संस्कृत में मौलिक रूप से हुआ। इसे पश्चिमी साहित्य का अनुकरण मात्र बताना हमारी भूल तथा संकीर्ण हृदयता ही कही जाएगी। साहित्य के सभी प्रकार (गद्य पद्यादि के भेदों सहित) संस्कृत साहित्य की गौरवपूर्ण निधि है। 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' इस शास्त्रोक्त कथन के अनुसार गद्य लेखन का कार्य कठिनतर है। हर्ष का विषय है कि हमारे बाण, सुबन्धु व दण्डी जैसे गद्य काव्यकार इस कसौटी पर न केवल खरे उतरे हैं, अपितु, उनके गद्य में भी काव्य की सी रसानुभूति का उद्रेक अलंकारिकों का चमत्कारिक प्रयोग तथा दीर्घ परन्तु सरस समासों का सुष्ठु संकलन दृष्टव्य है।

और तो और, संस्कृत में आलोचना जैसा नीरस कार्य भी सरस शैली का आश्रय लेकर चला। हर क्षेत्र में यहाँ जैसे रस की पतित पावनी भागीरथी प्रवाहित हो रही है। साहित्य का रसमयता से अविच्छिन्न गठबन्धन खूब देखने को मिलता है। इस प्रवाह की निरन्तरता भी इसकी एक विशेषता कही जाएगी। संस्कृत साहित्य की स्त्रातस्विनी अजस्र रूपेण प्रवाहमान रही है। चाहे इसे राजाश्रय मिला या नहीं। तपोवनों में अथवा भवनों में, वस्त्राभरणों में किंवा जीर्णशीर्ण चीथड़ों में हीरक मणियों की अक्षुण्ण द्युतियों में अथवा कुटीर दीपों की धूमिल प्रकाश रेखा में इसकी गति रुकने नहीं पाई। कवियों के अन्तःस्थल से प्रस्फुटित यह संगीत-लहरी वायुमण्डल को गुँजाती ही रही।

तदनु मणिमयमण्डनमण्डलमण्डिता सकल लोकललनाकुलललाम भूतकन्यका काचन विनितानेक सखीजनानुगम्यमाना कलहंसगत्या शनैरागत्यावनि सुरोत्त्माय मणिमेकमुज्ज्वलाकारमुपायनी कृत्य तेन कात्वमिति पुष्टा सौत्कण्ठा कलक कण्ठस्वनेन मन्दमन्दमुदंजलिरभाषत।

-(दण्डी-दशकुमाररचितम्)

मनोभवविकास वेदनाविलक्षं वैलक्ष्यमेव न पुरस्तिष्ठति।
अप्रतिपत्तिसाध्वसजडा जडतैव नौपसर्पति।
स्वयंमुपसर्पण लघुलाघवमेवतत्प्रतिपत्तिस्थैर्य नावलमगते।

-(बाणभट्ट-कादम्बरी)

2. 20 वीं व 21 वीं शताब्दी में संस्कृत की विकास यात्रा

महाकाव्य, नाटक एवं कथा की जिस परम्परा का आरम्भ एवं पोषण महाकवि कालिदास, भवभूति और बाणभट्ट जैसे अमर लेखकों की अमर लेखनी से हुआ, वह परम्परा आज भी किसी न किसी रूप में जीवित है। अन्य भाषाविद् तो इस तथ्य को निश्चित ही नहीं जानते हैं, अपितु संस्कृत के नवीन पाठक भी सम्भवतः इस तथ्य से अपरिचित ही है। परम्परा से प्राप्त हुई प्राचीन शैली एवं मूल्यों में यद्यपि आज परिवर्तन अवश्यम्भावी है, किन्तु इससे रचनाधर्मिता की प्रमाणिकता पर कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है। काल धर्म के बदलते हुए इन सन्दर्भों में ये परिवर्तन आवश्यक भी है एवं व्यावहारिक भी। विश्व समाज के बदलते

वातावरण के साथ-साथ आज साहित्य की विभिन्न विधाओं का भी असीमित विस्तार हुआ है। संस्कृत की इस पीढ़ी के उदीयमान लेखकों ने भी सभी विधाओं पर नूतन साहित्य सृजन कर अमूल्य योगदान किया है।

20 वीं व 21 वीं शताब्दी में संस्कृत की विकास-यात्रा को निरन्तर एवं प्रवाहमय की गतिशीलता में गुरूओं का विशेष योगदान रहा है। यह योगदान दिवस या महीनों का नहीं है बल्कि पूर्व वैदिक युग से अद्यतन का साक्षात् मूर्तिरूप परिणाम है। जैसा कि श्रीगीता में स्पष्टतः अंकित है-

गूढविद्या जगन्माया देहे चाज्ञानसम्भवा।
उदयः सत्यप्रकाशेन गुरू शब्देन कथ्यते।।[13]

गुरू प्राचीन परम्परा का स्वर्णिम अस्तित्व एवं वर्तमान की साहित्यिक परिवेदन, श्रृंखला में परिष्कृत स्वरूप करने निमित्त हर क्षण व्यावहारिक पहल आवश्यक है जो कि सांसारिक मायाजाल एवं दिग्भ्रमता को दूर तक खींचकर ले जाती है तथा स्वच्छ स्थान, मन, व्यवहार पर एक चिन्तन ज्योति का स्वरूप प्रकट करती है। यथोक्तम्-

शोषणं पापपंकस्य दीपनं ज्ञानतेजसाम्।
गुरूपादोदकं सम्यक् संसारावर्णतारकम्।।[14]

प्रस्तुत विश्लेषण से सामान्य जन मानस में व्याप्त यह भ्रान्ति भी निर्मूल सिद्ध होगी कि संस्कृत में गत अनेक शताब्दियों से कुछ भी नहीं लिखा जा रहा है।

तथ्य तो यह है कि महाकाव्य, नाटक एवं कथा के क्षेत्र में प्रत्येक शताब्दी ने मूर्धन्य कृतिकारों की रचनाओं को उजागर किया है। इससे रचनाधर्मी लेखकों का स्वकीय भाषा के प्रति दायित्व एवं विभिन्न काव्य विधाओं में अभिव्यक्ति बाध्यता का अनुमान किया जा सकता है। फिर भी यह कहना सर्वथा कठिन है कि इन रचनाकारों ने किस विधा को अधिक उपकृत किया है। सामान्यतः यही कहा जा सकता है कि इनकी लेखनी प्रायः सभी प्रमुख विधाओं में समान रूप से चलती रही है। संस्कृत की आधुनिक विकास यात्रा को सतत एवं निरन्तर गतिशीलता प्रदान करने वाले प्रमुख साहित्यकार निम्न है-

आधुनिक संस्कृत काव्य साहित्य -

(1) कविरत्न अखिलानन्द- कविरत्न अखिलानन्द का जन्म चन्द्र नगर जिला बदायूँ मं तृतीया सं. 1937 में हुआ। इनके माता-पिता का नाम सुबुद्धि तथा टीकाराम शास्त्री था। इनकी माता संस्कृत की प्रकाण्ड विदुषी थी और पिता भी संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् थे। अखिलानन्द ने अनूप शहर में रहकर पण्डित विष्णुदत्त शास्त्री के सान्निध्य में विद्याध्ययन किया।

कविकर अखिलानन्द ने करीब 25 ग्रन्थों का प्रणयन किया और इनके द्वारा रचित श्लोकों की संख्या लक्षाधिक है। इनकी रचनाओं में ''दयानन्द महाकाव्यम्'' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इस महाकाव्य में स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन-वृत्त को आधार बनाकर वैदिक धर्म के पालन एवं संरक्षण, वैदिक-विरोधियों का खण्डन तथा समाज सुधार आदि की दशा में स्वामी दयानन्द के अथक प्रयासों को चित्रित किया गया है।[15]

कवि के लक्ष्य का दिग्दर्शन इस पद्य से होता है-

जयतु जयतु लोके वेदसूर्यप्रकाशो
भवतु भवतु पश्चादार्य-धर्मप्रभावः।
नयतु नयतु दूरं न्यायकारी दयालु
रनवरत बहुरोगं नूनमार्याधिवसात्।।[16]

(2) कविरत्न मेधाव्रताचार्य- श्री मेधाव्रताचार्य ने प्रसिद्ध ''दयानन्द-दिग्विजयम्'' महाकाव्य की रचना कर स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन-वृत्त को विनम्र शैली में एवं मानव समाज के हित को सर्वोपरि मानकर भवसागर को पार करने के लिए स्वामीजी द्वारा लोगों के हाथ में धर्मरूप नौका देने का यह वर्णन अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है-

प्रवाह्य वाग्मी निगमोक्तिगंगा
तत्पुण्यनीर्जनचित्तपङ्कान्।
प्रक्षाल्य नृभ्यो भवसिन्धुपारं
गन्तु ददौ वेदतरि सुभक्तिम्।।[17]

स्वामी जी की जन्मस्थली ''टंकारा'' को अयोध्यादि विभिन्न पवित्र नगरियों की तुलना में उपस्थित करके महाकवि ने वहाँ की सात्विकता को उभारने का सफल प्रयास किया है-

अयोध्या रामचन्द्रेण मथुरा श्रीमुरारिणा।
विश्ववन्धा यथा पूता टंकारापूर्महर्षिणा[18]

(3) डॉ. सत्यव्रत शास्त्री- श्री शास्त्री जी का जन्म 29 सितम्बर, 1930 में लाहौर में हुआ। इनके पिता अभिनव पाणिनि पण्डित चारूदेव शास्त्री थे, जो स्वकीय विद्वता से सुविख्यात रहे हैं। शास्त्री जी दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यक्ष पद पर तथा संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी के कुलपति पद को सुशोभित कर चुके हैं। इनके तीन महाकाव्य, तीन खण्डकाव्य एवं अन्य क्षेत्रों में भी विशेष योगदान रहा है। शास्त्रीजी ने ''श्री बोधिसत्त्वचरितम्'' महाकाव्य की रचना की। बोधिसत्त्व के अवदानों को डॉ. सत्यव्रतशास्त्री ने इस महाकाव्य में प्रस्तुत किया है।

इनका ''श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्'' 1994 में के.के. बिड़ला फाउण्डेशन के वाचस्पति पुरस्कार (पचास हजार) से पुरस्कृत हुआ है। 25 सर्गों के इस महाकाव्य की रचना थाई देश की ''रामकियन'' नामक रामायण के कथा सूत्रों के आधार पर की गई है। डॉ. सत्यव्रत जी ने विविध भाषाओं में लिखित रामायणों का अध्ययन कर इस विषय पर 100 से अधिक अनुसन्धानात्मक लेख भी लिखे हैं।[19]

(4) डॉ. श्रीधर भास्कर वणेकर- ''विवेकानन्दविजयम्'' नामक प्रसिद्ध नाटक के रचयिता डॉ. वर्णेकर संस्कृत के उद्‌भट विद्वान तथा अध्यापक रहे हैं। नागपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं और आजीवन संस्कृत भाषा एवं साहित्य की समाराधना में तत्पर रहे।

आपके शिवराज्योदय महाकाव्य में 68 सर्ग हैं। शिवाजी के हाथों स्वराज्य स्थापना का पुनीत कृत्य किस प्रकार सम्पन्न हुआ, यही इस महाकाव्य का कथ्य है। क्षात्र-धर्म, परनारी में मातृत्व की भावना, सर्वधर्म समभाव, माता द्वारा शिशु शिवाजी को शिक्षा, ज्ञानेश्वर तुकाराम तथा गुरू रामदास का वर्णन, परतन्त्रता के प्रति घृणा, शत्रुदमन, शातिरवान का मर्दन, सिंहगढ़ की विजय और राज्याभिषेक आदि इसके प्रमुख वर्ण्य प्रसंग हैं।[20]

गो, देव, वेद, स्त्री, ब्राह्मण तथा साधुओं की रक्षा करना ही शिवाजी का एक मात्र ध्येय था। यथा-

किं जीवितेन विभवेन सुखेन तेन
किं भारभूत - करवालधनुकृपाणैः।
किं पौरूषेण यदि न प्रभवामिपातुं
गो-देव-वेद-वनिता-द्विज-साधुसङ्घान्[21]

स्वदेश धर्म रक्षा के लिए युद्ध करने की प्रेरणा देते हुए कवि कहता है-

''स्वदेशधर्म-मुक्त्यर्थं युध्यताम् संप्रयुध्यताम्।''

(5) डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी 'सनातन'- द्विवेदी का जन्म भोपाल के निकट नर्मदा के पवित्र तट पर स्थित नादनेरा गाँव में सन् 1935 में हुआ। इनके पिता का नाम नर्मदा प्रसाद और माता का नाम लक्ष्मी देवी था। जब डां. द्विवेदी आठ वर्ष के थे, तभी इनके माता-पिता का देहवसान हो गया। पं. महादेव प्रसाद जैसे गुरु के सान्निध्य में रहकर इन्होंने अलंकार शास्त्र का अध्ययन किया। इनके गुरू की विद्वता का अनुमान इसी से होता है कि सेवानिवृत्त होने पर वे जगद्गरू शंकराचार्य विद्यापीठ के रूप में जाने गये। आप राष्ट्रपति (1978), मित्र पुरस्कार, भोज पुरस्कार, मालवीय पुरस्कार तथा उत्तर प्रदेश के विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

''सीताचरितम्'' महाकाव्य के प्रणेता डॉ. द्विवेदी ने संस्कृत के अनेक काव्य तथा काव्य-शास्त्र ग्रन्थ लिखे हैं। ये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में साहित्य विभागाध्यक्ष और संस्कृत संकाय के डीन भी रह चुके हैं।[22]

''सीताचरितम्'' महाकाव्य में 10 सर्ग हैं और पद्यों की संख्या 694 हैं। इसमें प्रसाद गुण तथा करूण रस प्रधान हैं। सीता निर्वासन से लेकर समाधि भंग तक का कथानक इसमें संगृहीत हैं। वन जाते समय जानकी अपने आराध्य के सम्मुख विनती करती है कि उसे आसन्न-परिचारिका (पास में रहने वाली नौकरानी) बने रहने दिया जाए। यथा-

हन्त! सर्वमर्पितावदस्यतां नाथ! ते प्रणयभिक्षुकीमिमाम्।
क्षरसिन्धुविशदस्य चेतस पार्श्वदूतिपदतो न हास्यसि।।[23]

(6) स्व. विद्याधर शास्त्री- शास्त्री जी का जन्म 4 अगस्त सन् 1901 को चूरू (राज.) में हुआ था। इनके पिता पं. देवी प्रसाद शास्त्री संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनके पितामह

पं. हरनामदत्त शास्त्री तो भारतीय स्तर पर ख्याति प्राप्त दिग्गज विद्वान् थे। विद्याधर शास्त्री ने रामगढ़ में पं. श्रीदत्त शास्त्री के पास और भिवानी में पण्डित सीताराम शास्त्री से विधाध्ययन किया। पितामह से भी इन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई।

इन्होंने 15 वर्ष की अवस्था में ''शिवपुष्पांजलि'' नामक स्त्रोत लिख डाला था। इनकी विविध कृतियों का संग्रह ''विद्याधर ग्रन्थावली'' के नाम से प्रकाशित हुआ। ये बीकानेर नगर में नोबल्स स्कूल में अध्यापक रहने के बाद वहीं पर डूँगरपुर कॉलेज में संस्कृत विभाग में प्रवक्ता व अध्यक्ष पद पर आसीन रहे। इन्होंने बीकानेर में हिन्दी ''विश्वभारती'' संस्था की स्थापना की। इन्होंने संस्कृत-हिन्दी-राजस्थानी भाषा और साहित्य की समृद्धि के लिए शेष जीवन अर्पित कर दिया। इनकी सेवाओं को ध्यान में रखकर राजस्थान साहित्य अकादमी ने ''मनीषी'' की उपाधि से विभूषित किया। ये राष्ट्रपति पुरस्कार से भी सम्मानित हुए हैं।[24]

''हरनामामृतम् महाकाव्यम्'' में प्रमुख स्थलों में मरूदेश का वर्णन, बाल्यावस्था तथा छात्रावास का वर्णन विशेषत: उल्लेखनीय है। इसमें वैराग्य भावना का यह चित्रण द्रष्टव्य है-

शान्तोडप्य शाताज्जगतो मनस्वी कौवेरकाशीः बहुधा जगाम।
गुहागत कश्चन् यत्र सिद्धः प्रबोधयामास बुधं तमित्थम्।।[25]

(7) श्रीपद्मदत्त शास्त्री- इनका जन्म अल्मोड़ा (उत्तर प्रदेश) में 17 दिसम्बर 1935 को हुआ। इन्होंने अम्बाला, जगाधरी, हरिद्वार, वाराणसी तथा ब्यावर आदि विभिन्न स्थानों पर विद्याध्यन किया। ये साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य, साहित्यरत्न एवं रूसी भाषा में डिप्लोमा आदि की उपाधियों से विभूषित हैं। इन्होंने सन् 1975 में ''लेनिनामृतम् महाकाव्यम्'' की रचना की।

यह महाकाव्य वस्तुत: ऐतिहासिक काव्य है, क्योंकि इसमें युगप्रधान लेनिन की जीवनी को आधार बनाया गया है। इसमें वर्ण्य-विषयों में कार्लमार्क्स के वर्ग-संघर्ष सम्बन्धी सिद्धान्त, रूस की प्राकृतिक छटा, लेनिन का जन्म, छात्र-जीवन, साइबरिया कारावास, नवीन समाजवादी दल की स्थापना, जारतन्त्र का पतन, स्वतन्त्रता, लेनिन की गिरफ्तारी, प्राणदण्ड की घोषणा, क्रेमलिन में लेनिन का स्वागत, देहावसान तथा भारत-रूस मैत्री आदि उल्लेखनीय प्रसंग हैं।

महाकाव्य के विभिन्न सर्गों में करीब सात छन्दों का प्रयोग किया है। वीर रस के साथ विभिन्न रसों का भी समावेश इसमें से खिन्न मारिया को हिंस्र पशु के मुख से छूटी भयभीत हरिणी की उपमा देते हुए कवि कहता है-

सूर्यातपे गर्भभरेण खिन्ना, लतागृहं प्राप्त समाश्वसन्ती।
विलक्ष्यते हिंस्रमुखाद् विमुक्ता, विमुक्तयूथा हरिणीव भीता।।[26]

आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य-

सर्वविदित है कि काव्यास्वादन से प्राप्त आनन्द को ''ब्रह्मानन्द सहोदर'' कहा गया है। उसे काव्य का निकष माना गया है। गद्यविद्या को - 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' साहित्य दर्पणकार ने 'वृत्तबन्धोज्झितं गद्यम्' गद्य की परिभाषा की है। काव्यादर्शकार गद्य के प्राणभूत तत्त्व के रूप में कहते हैं ''ओज: समास भूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्।'' बीसवीं शती का गद्य पुरातन गद्य से भिन्न है। आज निबन्ध, उपन्यास, चरित्र, यात्रावृत्त, शोधपत्र, रिपोर्ताज तथा दीर्घ और लघुकथा आदि से गद्य साहित्य व्याप्त है और आज की संकल्पना भी पुरानी कथा से भिन्न है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य का अध्ययन करते समय विदित होता है कि ललित रचनाकर्मियों का स्वाभाविक रूझान कथा लेखन की अपेक्षा नाटक या कविता की ओर अधिक है। अकेले हरियाणा प्रान्त में 27 गुरूकुल हैं, अनेक संस्कृत पाठशालाएँ हैं, मध्यप्रदेश में, जहाँ संस्कृत विद्वानों - रचयिताओं की कोई कमी नहीं है लेकिन वहाँ कथा लेखन का विकास कम ही हुआ है। देश में संस्कृत विद्वानों की कमी नहीं है परन्तु कथा की अपेक्षा उनकी रचनाएँ नाटक या काव्य के रूप में ही हैं।

कथा लेखन के सन्दर्भ में राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा महाराष्ट्र में स्थिति बहुत उत्साहवर्धक एवं सन्तोषजनक है।

(1) डॉ. रामजी उपाध्याय- वाराणसी में निवास कर रहे डॉ. उपाध्याय सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। इनके द्वारा रचित कृतियों की संख्या 25 से अधिक है, जिनमें 'भारतीय संस्कृत-निधि:', 'दशरूपक' की नान्दी टीका', 'संस्कृत का आलोचनात्मक इतिहास' और 'आधुनिक संस्कृत नाटक' उल्लेनीय हैं। साहित्य के आधुनिक पक्ष पर शोध कार्य करने व कराने में इनका योगदान प्रशंसनीय है।

डॉ. रामजी उपाध्याय द्वारा रचित गद्यकाव्य 'द्वा सुपर्णा' में कृष्ण सुदामा की कथा है। सुदामा की दरिद्रता का अंकन आर साथ ही उनके मानस में व्याप्त हीनभावना का चित्रण भी सफलता के साथ किया है। सुदामा के विवाह के समय का एक उदाहरण है-

> **'आकीर्ण पुष्पराशिषु नगरवीथिषु नववधूभिः समर्पितैः लाजैः सह तासां कमलनयन विक्षेपैः समुद्राचारः पप्रथे।' कृष्णसतीर्थ्यस्योद्धाहोऽयमति नगरीणां सम्मदोऽपूर्व एवाऽभवत्। सुदाम्नः स्नातक - प्रतिभासम्पन्नं ज्ञानगरिम्णा प्रतिभातं स्वरूपं दर्शं दर्शं कौमुधाश्च तदनुरूपत्वं समालक्ष्य अनयोः संगमनं विधि-नानपुमकौशलेन विहितमिति नगर वधूनां मिथः संलापोऽभवत्।**[27]

(2) पं. अम्बिकादत्त व्यास- पं. अम्बिकादत्त व्यास जयपुर के निवासी थे। इनका जन्म चैत्र शुक्ला अष्टमी, संवत् 1815 में हुआ था। इन्होंने कुल मिलाकर 78 पुस्तकों की रचना की थी। इन्हें अभिनव बाण की उपाधि से विभूषित किया जाता है। इनका रचना काल 1858-1900 ई. रहा है। व्यास जी ने यज्ञ के यथार्थ स्वरूप को समझकर लोक कल्याण के निमित्त अपने काव्य में जन-सामान्य की स्थिति, पीड़ा, आशा, निराशा, उत्साह, आकांक्षा, विदेशी राज्य के प्रति विद्रोह का स्थित्यानुसार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में चित्रण किया है।

व्यास जी ने ''शिवराजविजयम्'' उपन्यास में छत्रपति शिवाजी के जीवन वृत्त को कथानक का आधार बनाया है। (1) परतन्त्रता के प्रति घृणा की भावना एवं स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रबल कामना से राष्ट्रीय एकता की भावना को उद्भुत करना (2) सनातन धर्म की रक्षा करना तथा (3) देश प्रेम का जागरण शिवराजविजयम् का मुख्य उद्देश्य रहा है। व्यास जी की शैली पुरातन एवं अर्वाचीन दोनों प्रकार की शैली दिखाई देती है।

प्रस्तुत उपन्यास में सनातन धर्म की दुर्दशा देखकर कवि का हृदय हाहाकार कर उठता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

''हा! भारत! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे? हा वसुन्धरे ! किं दीनप्रजानां रक्तैरेव स्नास्यसि? हा ! सनातन धर्म ! विलयमेव यास्यसि? हा चातुर्वर्ण्य ! किं कथावशेषमेव भविष्यसि? हा मन्दिरवृन्द ! किं धूलिसादेव सम्पत्यस्ये? हा ! सांगवेद किं भस्मतामेष प्राप्स्यसि ? अहह !! धिग् ! रे ! कलिकाल ! यस्त्वं रक्षकानेव भक्षकान् विद्धासि!![28]

(3) श्री ए.आर. अनन्त रत्न पारखी- श्री पारखी ने ''कुसुमलक्ष्मी'' नाम उपन्यास की रचना की। इसका नायक एक दरिद्र मराठा युवक है, जो भ्रमण के समय एकाधिक युवतियों के सम्पर्क में आता है। इससे आधुनिक स्वच्छन्द प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति मिली है।

वस्तुत: आधुनिक उपन्यास कला की दृष्टि से यह उपन्यास अत्यन्त सफल कहा जा सकता है, क्योंकि कथा-वस्तु का चयन वर्तमान युग के जीवन्त पात्रों को ध्यान मं रखकर किया गया है। नैतिक मूल्यों में हो रहे ह्रास का अंकन तो इसमें अधिकतम मात्रा में हुआ है। यथा-

नाहं तां रूदतीं न्यवारयं रोदन व्यापारात्। जागर्ति खलु ममांय भाव: कोऽपि प्रतिपीडितो रूदन् प्राणी नैव निषारयितव्यो रोदन व्यापाराद्, हृदयान्तर्गतान् सर्वविधानुद्वारान् बहि: निर्गमयिंतु सर्वाव्यापि द्वाराणि सर्वकालमपावृत्तानि कर्त्तव्यानि।[29]

अन्य कथाकार-

20 वीं शताब्दी में संस्कृत कथाकारों में राजस्थानीय कथाकारों का विशेष महत्त्व है। क्योंकि कथा साहित्य का जितना विकास राजस्थान में हुआ, उतना अन्य किसी प्रान्त में नहीं। आज देश के प्रत्येक प्रान्त से कई संस्कृत पत्रिकाएँ निकल रही हैं। उनमें यथावकास कथाएँ, वैचारिक लेख, कविताएँ आदि छप रही हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, देववाणी-परिषद् (दिल्ली), राजस्थान संस्कृत अकादमी (जयपुर), भारतीय विद्याभवन (मुम्बई) आदि संस्थाएँ भी निरन्तर नव नवीन संस्कृत पुस्तकों का प्रकाशन करती जा रही है। कथा लेखन के सन्दर्भ में राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा महाराष्ट्र में स्थिति बहुत उत्साहवर्धक एवं सन्तोषजनक है।

पं. सर्यनारायण शास्त्री जयपुर - कई लघु कथाएँ, गिरधर शर्मा चतुर्वेदी (विद्वत् शिरोमणि, तिपुरूपदेश:, कवीश्वर, कश्चितकवि:), श्री हरिनारायण शास्त्री (आम्नाय-धुरन्धर, सं. रत्नाकर, आगमरत्न), भट्टमथुरानाथशास्त्री - (कथानिकुंज), गणेशराम शर्मा - (कथाकुंज), हरिकृष्ण गोस्वामी - (ललितकथाकल्पलता), श्री दीनानाथ त्रिवेदी (मधु), श्रीनिवासशास्त्री कांकर, डॉ. पुष्करदत्त शर्मा, डॉ. शिवसागर त्रिपाठी - (कथा कल्प), पद्मशास्त्री - (विश्वकथाशतकम्), श्री शिवदत्त शर्मा - (अभिनव - कथानिकुंज), कानपुर की डॉ. श्रीमती

नलिनी शुक्ला - (कथासप्तकम्), प्रयोग के अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र - (इक्षुगन्धा), डॉ. रामकिशोर मिश्र - (किशोरकथावली:), तथा डॉ. प्रशस्य मित्र शास्त्री आदि कथा लेखकों ने गद्य साहित्य को अमूल्य योगदान प्रदान किया है।[30]

20वीं शताब्दी का नाटक साहित्य-

काव्यकला, कला की चरम परिणति है और काव्य की अत्यन्त रमणीय विधा है नाटक। ''काव्येषु नाटकं रम्यम्।'' नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत मुनि ने इस रमणीयता को ध्यान में रखते हुए ही ऋग्वेद से पाठ्य सामग्री, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रसों को ग्रहण करके ब्रह्मा की सृष्टि में 'नाट्यवेद' नामक पंचम वेद की उत्पत्ति का वर्णन किया है। अत: दृश्य श्रव्य होना तथा वस्तु की साकारता को प्रदर्शित करना ही नाटक की गरिमा है।[31] 20 वीं शताब्दी में रचित नाटकों का परिचय निम्न है-

(1) **श्री शंकरलाल महेश्वर-** श्री महेश्वर ने सुप्रसिद्ध ''पार्वतीपरिणयम्'' नामक नाटक की रचना सन् 1902 ई. में की थी। इस नाटक में पाँच अंक हैं। यह पौराणिक नाटक है। इसमें पार्वती और शिव के विवाह की झाँकी प्रस्तुत की गई है।

(2) **महामहोपाध्याय शीघ्र कवि शंकरलाल शास्त्री-** श्री शास्त्री ने ''कृष्णचन्द्राभ्युदयम्'' नामक नाटक की रचना सन् 1904 ई. में की तथा इसका प्रकाशन 1973 ई. में हुआ। प्रस्तुत नाटक में एक योग्य सारथी, उचित परामर्श दाता, मित्र, राजदूत, महान् योद्धा, भक्त वत्सल तथा संसार के सबसे बड़े दार्शनिक श्री कृष्ण के चरित्र को नव्यरीति से प्रस्तुत किया गया है।

(3) **श्री मूलशंकर माणिकलाल ''याज्ञिक''-** श्री याज्ञिक ने ''प्रतापविजयम्'' नाटक में मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप के अदम्य साहस व शौर्य को उद्भाषित किया है। श्री याज्ञिक ने 10 अंकों से युक्त शिवाजी के चरित्र को प्रस्तुत करने वाले ''छत्रपतिसाम्राज्य'' नाटक की रचना की है।

(4) **पं. मथुराप्रसाद दीक्षित-** पं. दीक्षित ने सात अंकों से युक्त ''भारतविजयम्'' नामक नाटक की रचना सन् 1937 में की थी। इस नाटक में भारत भूमि की रक्षा हेतु मर

मिटने वाले अमर वीर शहीदों की शौर्य गाथा को चित्रित किया गया है। इसके अलावा पण्डित जी ने वीर पृथ्वीराजविजयनाटकम्, शंकरविजयम्, भक्तसुदर्शनम् तथा भूभारोद्धरणम् सुप्रसिद्ध नाटकों की रचना की है।

(5) **श्री यतीन्द्र विमल चौधरी-** श्री चौधरी ने ''सुभाषसुभाषम्'' तथा ''भारतविवेकम्'' सुप्रसिद्ध नाटकों की रचना की। सुभाषसुभाषम् नाटक में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के वीर भावों तथा शौर्यपूर्ण कार्यों को प्रस्तुत किया गया है और भारतविवेकम् नामक नाटक में स्वामी विवेकानन्द के साहसिक कार्यों को प्रस्तुत किया गया है।

(6) **श्री कालीपादाचार्य-** दस अंकों वाले ''नलदमयन्तम्'' नाटक का प्रकाशन सन् 1960 ई. में मैसूर में हुआ है। महाभारत के वनपर्व के 50-78 में अध्यायों तक की कथा ''नलोपाख्यान'' पर आधारित राजा नल तथा भीम सुता दमयन्ती के प्रणय प्रसंग को इस नाटक में चित्रित किया गया है।

(7) **श्री विश्वेश्वर विद्याभूषण काव्यतीर्थ-** श्री काव्यतीर्थ ने ''चाणक्यविजयम्'' नामक नाटक का प्रकाशन 1966 ई. में कराया। इस नाटक में आचार्य चाणक्य के साहसिक कार्यों को प्रस्तुत किया गया है।

20 वीं शताब्दी में संस्कृत नाटकों की अनेक नयी विधाएँ भी प्रकाशित हुई। इस युग में लम्बे नाटकों की अपेक्षा लघु-नाटिकाएँ अधिक लोकप्रिय हुई। डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, डॉ. बी.आर. शास्त्री, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, डॉ. रमाकान्त शुक्ल, डॉ. हरिदत्त शर्मा, श्री मथुरादत्त पाण्डेय, डॉ. भवानीशंकर त्रिवेदी तथा अनन्य लेखकों के अनेक संस्कृत नाटक उल्लेखनीय है।[32]

संस्कृत रचनाएँ केवल गद्य-पद्य नाटकादि में ही रचित नहीं हुई अपितु अनेक ऐसी संस्थाओं व साहित्यकारों द्वारा संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जा रहा है जो सम्पूर्ण संस्कृत जगत् को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में अपना योगदान देती है।[33] आज देश के प्रत्येक प्रान्त में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया जा रहा है, कतिपय विवरण निम्न है-

क्र.सं	पत्रिका का नाम	प्रकाशन समय	प्रकाशित संस्था का नाम
1.	संस्कृत भवितव्यम्	साप्ताहिकी पत्रिका	संस्कृत भवनम्, नागपुरम्
2.	गाण्डीवम्	साप्ताहिकी पत्रिका	सं.सं.वि.वि., वाराणसी
3.	शारदा	पाक्षिक पत्रिका	झेलम पत्रकार नगरी, पुणे
4.	संस्कृतसाकेतः	पाक्षिक पत्रिका	अरिवल भारती विद्वत्समिति, अयोध्या
5.	गीर्वाणी	मासिकी पत्रिका	संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभा, आन्ध्रप्रदेश
6.	भारती	मासिकी पत्रिका	भारती-भवनम्, जयपुरम्
7.	संस्कृतामृतम्	मासिकी पत्रिका	बाजार गुलियान, दिल्ली-6
8.	पारिजातम्	मासिकी पत्रिका	प्रेम-नगरम्, कर्णपुरम्
9.	दिव्यज्योति	मासिकी पत्रिका	जाखू, शिमला
10.	बालसंस्कृतम्	मासिकी पत्रिका	घाटकोपरः, मुम्बई-86
11.	सर्वगन्धाः	मासिकी पत्रिका	लक्ष्मणपुरम्, लखनऊ
12.	संस्कृतप्रचारकम्	मासिकी पत्रिका	आनन्द विहारः, दिल्ली-23
13.	भारत श्रीः	मासिकी पत्रिका	भारतीपरिषद्, प्रयागः
14.	सागरिका	त्रैमासिक पत्रिका	सागरिका समिति, गौरवनगरम्, सागर
15.	विश्वभाषा	त्रैमासिक पत्रिका	विश्वसंस्कृतप्रतिष्ठानम्, वाराणसी
16.	स्वरमंगला	त्रैमासिक पत्रिका	राजस्थानसंस्कृत अकादमी, जयपुरम्
17.	कामधेनुः	त्रैमासिक पत्रिका	भारतविद्यापीठम् त्रिचूर (केरल)
18.	शोधप्रभा	षाण्मासिकी पत्रिका	श्री ला.व.शा.रा.सं. विद्यापीठम्, नई दिल्ली-16 लालबहादुर शास्त्री रा.सं.
19.	प्राच्यज्योतिः	षाण्मासिकी पत्रिका	कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्रम्
20.	संस्कृत-वीणा	षाण्मासिकी पत्रिका	शारदोद्यानम् हरियाणाप्रदेशः
21.	कुम्हेरिया ज्योति	त्रैमासिक पत्रिका	सौभरी आश्रम, वृन्दावन, (उ.प्र.)

3. राजस्थान के साहित्यकार एवं पण्डित श्रीरामदवे-

संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में महाकवि माघ की जन्मभूमि और वीरप्रसू राजस्थान का योगदान इस दृष्टि से अभिनन्दनीय कहा जा सकता है कि यहाँ शताधिक कृतिकारों, महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, उपन्यास, कथा, चम्पू, स्तोत्र एवं अन्य विविध विधाओं में न केवल संख्या की दृष्टि से, अपितु गुणवत्ता की दृष्टि से भी सहस्त्रों कृतियों का प्रणयन किया है। अन्य प्रदेशों से आकर राजस्थान की वास्तव्यता स्वीकार करने वाले पण्डितों तथा रचनाकारों ने भी अनेकविध स्तुत्य रचनाओं के द्वारा अमूल्य योगदान किया है।

राजस्थान के शोधकर्त्ताओं ने संस्कृत साहित्य का सर्वेक्षण करके प्रसिद्ध अप्रसिद्ध लेखकों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी दी है।

राजस्थान के संस्कृत साहित्य की प्राप्त जानकारी को देखते हुए जयपुर मण्डल का योगदान सर्वाधिक प्रतीत होता है। जयपुर के शासकों द्वारा संस्कृत के दिग्गज विद्वानों को प्रदेशान्तर से आमन्त्रित करके जयपुर में निवासार्थ उन्हें संरक्षण प्रदान किया। यही कारण है कि राजस्थान के संस्कृत साहित्यकारों ने संस्कृत को विश्व में प्रतिस्थापित करने में महत्त्पूर्ण योगदान दिया।

राजस्थान के संस्कृत साहित्यकार-

(1) महाकवि श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर- जयपुर मण्डल में संस्कृत साहित्य के उन्मेष एवं विद्वद्-वदुष्य का समारम्भ एक महाराष्ट्रीय पण्डित परिवार से माना जाता है। सवाई जयसिंह के पिता विष्ण सिंह (17 वीं शताब्दी) ने अपने दो पुत्रों जयसिंह तथा विजयसिंह के अध्यापनार्थ इन्हें बुलाया, जो माधवभट्ट के नासिक क्षेत्र के समीपवर्ती ''पर्वणी'' ग्राम के निवासी थे। जयपुर में ''पर्वणीकर'' कुल के प्रवर्तक माधव भट्ट ही थे। इनके वंशजों में सखाराम भट्ट थे जो सवाई जयसिंह तृतीय (1818-1834) के अध्यापक हुए। उनके कनिष्ठ भ्राता श्री सीताराम भट्ट ने ''कुमारसम्भवम्'' के शापित अष्टमादि सप्तदशसर्गपर्यन्त महाकाव्य पर टीका लिखी जिससे इन्हें प्रसिद्धि मिली। इन्होने ''जयवंशम्'' महाकाव्य का प्रणयन किया, जिसका प्रकाशन राजस्थान विश्वविद्यालयद्वारा 1952 में हुआ। इस महाकाव्य में रस, अलंकार, वर्णन-

वैविध्य एवं भाषा आदि सभी दृष्टियों से महाकवि की अद्‌भुत काव्य प्रतिभा का परिचय मिलता है।

इनके अन्य महाकाव्यों में राघवचरित, नरविलास, नृपविलास, लघुरघुकाव्य, साहित्यसुधा, काव्यप्रकाश टीका, छन्द प्रकाश, शिव-सूर्य-भैरव-हेरंग-गंगा-विष्णु-हनुमद्, विषयक स्तोत्र आदि चालीस ग्रन्थ उल्लेनीय है।

(2) पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'- पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का जन्म जयपुर में 7 जुलाई, 1883 ई. को हुआ। इनके पिता महामहोपाध्याय पं. शिवराम शर्मा महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर के प्राचार्य थे। चन्द्रधर बाल्यकाल में ही संस्कृत में भाषण करते थे। नौ वर्ष की आयु में उन्होंने ''अमरकोष'' कण्ठस्थ कर लिया था। दस वर्ष की आयु में धर्ममण्डल सभा में उन्होंने संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हुए जो वैदुष्यपूर्ण भाषण दिया। उससे उपस्थित विद्वज्जन अत्यन्त प्रभावित हुए। वे वेद, व्याकरण, दर्शन, साहित्य, सिद्धान्त, ज्योतिष, भाषा शास्त्र, इतिहास, भूगोल तथा पुराणादि विषयों पर आधिपत्य रखते हुए अनेकविध भाषाओं के भी ज्ञाता थे।

ये गणित ज्योतिषशास्त्र में पूर्णतः पारंगत थे। इन्होंने जयपुर की वेधशाला में यन्त्रों का जीर्णोद्वार तथा मानवकरणादि कार्य करवाया जिसके साक्ष्य में वहाँ शिला पट्टिकाओं पर इनका नाम अंकित है।

शारदा-मठ के शंकराचार्य द्वारा इन्हें ''संस्कृत-मार्तण्ड'' तथा ''इतिहास दिवाकर'' जैसी उपाधियाँ प्रदान की गई। ग्रीष्मऋतु के वर्णन में मानव के चौर-तुल्य दु:स्थिति देखिए-

कोणे निलीय निभृतं दिवसं समाप्य, वीथीषु शंकितपदं रजनौ भ्रमामः।
संमर्दतो भयजुषो विजने शयामः, कालेन चित्रमिह चौरसमाः कृताः स्म।।

तीस वर्ष की अत्यन्त अल्पायु में पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का निधन 12 सितम्बर 1922 को हुआ जिससे संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य को अपूरणीय क्षति पहुँची।

(3) भट्ट मथुरानाथ शास्त्री- कवि शिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री का जन्म आषाढ़ कृष्णा सप्तमी, सं. 1946 को जयपुर में हुआ था। अपने जयपुर के दिग्गज विद्वानों के सान्निध्य में रहकर शिक्षा ग्रहण की। इन विद्वानों में श्री लक्ष्मीनाथ द्रविड़, श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच, श्री

हरदत्त ओझा तथा विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा के नाम उल्लेखनीय हैं। आपके मित्रों में म.म. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, स्वामी लक्ष्मीराम वैद्य, राजगुरू पं. चन्द्र दत्त ओझा, श्री कन्हैयालालन्यायाचार्य तथा श्री सूर्य नारायण व्याकरणाचार्य आदि के नाम परिगणनीय है।

आपके दो सुपुत्रों में से श्री कलानाथ शास्त्री हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी के ज्ञाता एवं प्रसिद्ध लेखक हैं।

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ''संस्कृत रत्नाकर'' का सम्पादन सन् 1933 ई. से सन् 1944 ई. तक करते रहे। उन्होंने ''भारती'' पत्रिका का सम्पादन सं. 2010 से 2021 तक सफलतापूर्वक किया।

भट्ट जी आशुकवि थे। ये संस्कृत के विभिन्न भाषात्मक छन्दों का सरलता एवं निपुणता से प्रयोग करने में निष्णात् थे। उर्दू की गज़ल-पद्धति, ब्रज के सवैया और पंजाबी छन्दों का संस्कृत में धारा प्रवाह प्रयोग करके इन्होंने संस्कृत भाषा की गतिशीलता में अथक वृद्धि की।

भट्ट जी का रचना-जगत् विशाल एवं विस्तृत है। काव्य, कथा, गद्य, निबन्ध, हास्य व एकांकी आदि सभी काव्य-विधाओं में उन्होंने जमकर लिखा। भट्ट जी की कतिपय प्रसिद्ध रचनाएँ निम्न हैं-

(1) साहित्यवैभवम्-1930 (2) जयपुरवैभवम्-1947

(3) गोविन्दवैभवम्-1957 (4) आदर्शरमणी (उपन्यास)-1906

(5) भारतवैभवम्-(ऐतिहासिक गद्यकाव्य) (6) रसगंगाधर टीका-1939

(7) कादम्बरी (8) गाथारत्न समुच्चय-1935

इसके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत में करीब 107 निबन्ध और 35 कहानियाँ लिखी जो अधिकांशतः 'संस्कृत रत्नाकर' में प्रकाशित हुई हैं। सन् 1964 की जून को इनका देहावसान हुआ।

''आदर्शरमणी'' उपन्यास में भट्ट जी ने बंगाल प्रदेश का कथानक लिया है। इसमें नारी के आदर्श जीवन एवं त्यागमयी वृत्ति को दर्शाया है। स्पष्टत: इस कृति पर तत्कालीन प्रसिद्ध लेखक शरतचन्द्र चटर्जी आकद का प्रभाव रहा है। नारी की शालीनता एवं गरिमा इस कृति में अधिक मात्रा में व्यक्त हुई है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल है। वस्तुत: इस कृति का महत्त्व इस तथ्य में है कि जिस समय यह कृति प्रकाशित हुई थी, उस समय हिन्दी के कथाकार भी शैशवावस्था में थे। अत: इतनी प्रसादमयो शैली में संस्कृत उपन्यास का लेखन एवं प्रकाशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

(4) श्री हरिनारायण शास्त्री ''आशुकवि''- आपका जन्म पं. श्री दामोदर जी शर्मा दाधीच के यहाँ बैशाख कृष्ण 4 संवत्, 1940 को जयपुर में हुआ था। आपने अपना अध्ययन महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर में प्रारम्भ किया था। सर्वप्रथम आपने वेद व कर्मकाण्ड का अध्ययन किया तथा उपाध्याय व शास्त्री परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आपने साहित्यशास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया तथा आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। ''भारतधर्ममहामण्डल'' ने आपको ''आगमरत्न'' की उपाधि तथा शास्त्र-साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने ''आम्नाथ - धुरन्धर'' की उपाधि से सम्मानित किया। आपने संस्कृत साहित्य सम्मेलन तथा जयपुरीय विद्वान् मण्डल में ''आशुकवि'' तथा ''कविभूषण'' उपाधियों के साथ ही पदक भी प्राप्त किये।

पं. श्री मगनीराम जी शास्त्री के साथ वेद व कर्मकाण्ड का ज्ञान प्राप्त किया। पं. श्री लक्ष्मी नारायण शास्त्री द्रविड़ से आचार्य परीक्षा तक साहित्य विषय का अध्ययन किया। साहित्य वेदान्ताचार्य पं. बिहारीलाल जी शास्त्री दाधीच भी आपके गुरू रहे।

बाल्यकाल से ही आपकी कृतित्व-शक्ति जागृत हुई। अपने विद्यार्थी जीवन में ही आपने सन्तुलित पद्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी। आपकी सर्वप्रथम उपलब्ध रचना 'रामचन्द्रस्तव' है जो संस्कृत रत्नाकर 7 आकर, रत्न 7 आश्विन् संवत् 1969 (1912 ई.) में प्रकाशित है।

आपके रचनात्मक कार्य में अलंकार-कौतुकम्, अलंकारलीला, ललितासहस, नामकाव्यम्, संजीवनीसाम्राज्यम्, वर्णबीजप्रकाश, अन्योक्तिमुक्तावली, अन्योक्तिशतकम्, वाणीलहरी आदि अनेक स्तोत्र काव्य हैं।

(5) विद्यावाचस्पति राजगुरू पड़ित मधुसूदन ओझा- वेद-विद्या के विलक्षण भाष्यकार पण्ड़ित मधुसूदन ओझा का जन्म भाद्रपद कृष्ण अष्टमी, सम्वत् 1923 को मुज़फ्फरपुर (बिहार) के अन्तर्गत ''गाढ़ा'' नामक गाँव में हुआ था। नौ वर्ष की अवस्था में ही ये अपने नि:संतान ज्येष्ठ पितृव्य राजीवलोचन झा द्वारा जयपुर बुला लिये गये। पितृव्य के निधन के बाद मुधसूदन ओझा ने काशी में रहकर दरभंगा-नरेश द्वारा संचालित संस्कृत पाठशाला में महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री जैसे धुरन्धर आचार्य के सान्निध्य में व्याकरण-दर्शन साहित्य के साथ-साथ वेद-वेदांगों का पूर्ण रूप में अध्ययन किया।

विविध विधाओं में पारंगत होने के बाद ये जयपुर लौट आए। इनका विवाह चंचल झा की सुपुत्री से हुआ। जयपुर के शासकों ने इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर इन्हें जयप्रस्थ महाराजा कॉलेज और महाराजा संस्कृत कॉलेज में दर्शनादि विषयों के अध्यापनार्थ प्राध्यापक के रूप में नियुक्त किया। तत्पश्चात जयपुर नरेश माधवसिंह ने इन्हें विश्वप्रसिद्ध ''पोथीखाना'' का प्रबन्ध भार सौंप दिया। इसके बाद जयपुर शासक ने इन्हें ''धर्मसभा'' के अध्यक्ष पद पर नियुक्त कर दिया।

सन् 1902 ई. में ये जयपुराधीश माधवसिंह के साथ लन्दन भी गए, जहाँ सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक में उपस्थित रहने के बाद मधुसूदन ओझा ने वैदिक विज्ञान और भारतीय दर्शन तथा धर्म से सम्बन्धित अनेक व्याख्यान दिए। इन भाषणों का प्रकाशन ''वेदधर्मव्याख्यान'' के नाम से जयपुर में हो चुका है।

इन्होंने इन्द्रविजय, कादम्बिनी, अहोरात्रवाद:, महर्षिकुलवैभवम्, आशाचपंजिका, पथ्यास्वस्ति एवं वस्तुसमीक्षा नामक ग्रन्थों का प्रणयन करने के साथ-साथ श्रीमद्भगवद्गीता पर विज्ञानवाद की दृष्टि से ''विज्ञानभाष्यम्'' भी लिखा। ''संस्कृत-रत्नाकर'' नामक जयपुर से प्रकाशित एवं भारत प्रसिद्ध पत्रिका में इनके विविध विद्वतापूर्ण लेखों का प्रकाशन भी हुआ।

इनके व्याख्यानों से प्रभावित होकर विद्वन्मण्डलों ने इन्हें ''समीक्षाचक्रवर्ती'' तथा ''व्याख्यान-वाचस्पति'' की उपाधि से विभूषित किया। सन् 1937 ई. में इनका 70 वें वर्ष में प्रवेश करने के उपलक्ष्य में संस्कृत-रत्नाकर का ''वेदांग'' नामक विशिष्टाङ्क प्रकाशित करके इनका अभिनन्दन किया गया।

(6) पण्डित गिरधर शर्मा 'नवरत्न'- इनका जन्म राजस्थान प्रान्त के झालावाड़ मण्डलान्तर्गत झालरापाटन नगर में ज्येष्ठ शुक्ला 8, संवत् 1938 को हुआ। इन्होंने प्रारम्भिक अध्ययन जो अपने पिता राजगुरू ब्रजेश्वर शर्मा से स्वकीय नगर में ही किया, किन्तु उच्चतर अध्ययन के लिए जयपुर गए और वहाँ पं. वीरेश्वर शास्त्री प्रभृति विद्वानों से भिन्न-भिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। वहाँ संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी साहित्य का भी अध्ययन किया। तदन्तर ये काशी में जाकर पं. शिवकुमार शास्त्री तथा म.म. गंगाधर शास्त्री के शिष्य बने। वहाँ संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, बंगला, उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी पढ़ने लगे। तत्कालीन अन्य लेखकों की देश-भक्तिपूर्ण रचनाओं को देखकर इन्होंने भी ''नवरत्न'' उपनाम से राष्ट्रोत्थान विषयक कृतियों की रचना प्रारम्भ की। अ.भा. हिन्दी सा. सम्मेलन की ''विधान-वाचस्पति'' उपाधि भी इन्होंने प्राप्त की। इनकी विद्वता को देखकर झालावाड़ नरेश श्री भवानी सिंह ने इन्हें ''राजगुरू'' बना लिया। इन्होंने हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए इन्दौर नगर में मध्य भारत ''हिन्दी साहित्य समिति'' और कोटा नगर में ''भारतेन्दुसमिति'' की स्थापना करवाई। इन्होंने झालावाड़ से ''विद्या-भास्कर'' नामक हिन्दी पत्र का सम्पादन भी किया। पं. गिरधर शर्मा ने ''गीतांजलि'' का हिन्दी अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा में नन्ददास रचित 'भ्रमरगीत' का उसी छन्द में संस्कृत रूपान्तर भी किया।

इनकी रचनाओं में ''श्रीकृष्णस्तव'', श्रीबालकृष्णस्तवः और श्रीगंगास्तवः जैसे स्तोत्र-काव्य, ''जापानविजयः'', अभेदरसः, सौरमण्डल, स्मृति-वेदना, स्वदेशाष्टकम्, समृहपुष्पगुच्छा तथा कारकरत्नम् आदि उल्लेनीय है। इनकी समग्र 700 रचनाओं का संकलन ''गिरधरसप्तशती'' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

इनकी राष्ट्रीय भावना का परिचायक यह पद्य देखिए-

देहो दृढ़ो मे प्रबलं च चेतः दिव्यानि कर्माणि विचारितानि
विज्ञान निष्ठा श्रुतजातमेतत् स्मादर्पिते भारतभूमिभूत्यै।।

अन्य साहित्यकार-

अन्य साहित्यकारों ने भी राजस्थानी पद्य साहित्य में अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया है। जो निम्न हैं- पं. मोतीलाल शास्त्री, डॉ. गंगाधर भट्ट, श्री मोहनलाल पाण्डेय, पं.

जगदीश जी महाराज, श्री गंगाधर द्विवेदी, श्री रामचन्द्र द्विवेदी, डॉ. हरिराम आचार्य एवं आचार्य मधुकर शास्त्री आदि।

राजस्थान के गद्यकार-

(1) देवर्षि कलानाथ शास्त्री- अपरा काशी के नाम से प्रसिद्ध जयपुर के देश विख्यात विद्वान् नवीन विधाओं के प्रवर्तक संस्कृत के युग पुरूष कवि शिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री के ज्येष्ठ पुत्र देवर्षि कलानाथ शास्त्री संस्कृत के सुधीसर्जक, संपादक, कथालेखक तथा प्रौढ़ विद्वान् होने के साथ-साथ अंग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के पारंगत मनीषी तथा लेखक भी हैं। जयपुर में 15 जुलाई, 1936 को जन्मे देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने अपने पिता से तथा जयपुर के शिखर विद्वान् म.म.पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, पं.पट्टाभिराम शास्त्री, आचार्य जगदीश शर्मा, आशुकवि पं. हरिशास्त्री आदि विद्वानों से संस्कृत की आचार्यन्त शिक्षा प्राप्त कर जयपुर के सुप्रतिष्ठित महाराजा संस्कृत कॉलेज से सर्वप्रथम रहते हुए साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की।

तदन्तर महाराजा कॉलेज में पाश्चात्य पद्धति से विश्वविद्यालय शिक्षा प्राप्त कर प्राच्य और प्रतीच्य भाषाओं और साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इन्होंने अनुपयुक्त तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञान में शोध कार्य किया।

भारतीय लिपियों पर अनुसन्धान किया तथा छात्रावस्था से ही काव्य लेखन, भाषण तथा प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. उपाधि लेकर ये वहीं अंग्रेजी के प्राध्यापक हो गए। ये बाल्याकाल में संस्कृत में ही वार्तालाप करते थे। 9 वर्ष की आयु में अ.भा.सं.सा. सम्मेलन के अधिवेशन में संस्कृत व्याख्यान देकर इन्होंने श्रोताओं को चकित कर दिया था। 1957 से 1965 तक प्राध्यापक रहने के बाद इन्होंने राज्य सरकार के भाषा विभाग में सहायक निदेशक, उपनिदेशक तथा निरीक्षक आदि पदों को सुशोभित किया। राजकीय महाविद्यालय, कालाडेरा तथा डीडवाना में प्रधानाचार्य रहे। 1976 से 1994 तक 18 वर्षों तक भाषा निदेशक रहकर ये 1994 में सेवानिवृत्त हुए। इस बीच 1991 से 1993 के बीच में संस्कृत शिक्षा निदेशक भी रहे।

1995 से 1998 तक राजस्थान संस्कृत अकादमी के अध्यक्ष तथा अन्य अनेक साहित्य सेवी संस्थाओं के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सदस्य आदि के रूप में इन्होंने संस्कृत, हिन्दी, ब्रजभाषा आदि को भरपूर योगदान दिया। आकाशवाणी केन्द्र जयपुर की स्थापना (1955) से लेकर आज तक आकाशवाणी केन्द्र से संस्कृत नाटकों और वार्ताओं के प्रसारण द्वारा संस्कृत के प्रसार में इनके प्रयत्न सुविदित हैं। दूरदर्शन केन्द्र जयपुर से अक्षरा नाम से संस्कृत कार्यक्रम के संयोजन द्वारा ''गीतगोविन्द'' धारावाहिक के आलेख के राष्ट्रीय प्रसारण तथा अन्य विविध मीडिया कार्यक्रमों द्वारा संस्कृत को छोटे पर्दे पर लाने में इनका योगदान स्मरणीय रहेगा।

श्री शास्त्री ने संस्कृत में संस्कृत नाट्यवल्लरी (नाटक संकलन) सुधीजनवृत्तम् (विद्वानों की जीवनियाँ), कथानकवल्ली (संस्कृत उपन्यास तथा लघु कथाएँ), अर्वाचीनम् संस्कृत साहित्यम्, विद्वज्जन चरितामृतम् आदि ग्रन्थ तथा हिन्दी में संस्कृत साहित्य का इतिहास, आधुनिक काल का संस्कृत गद्यसाहित्य, भारतीय संस्कृति के वातायन आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। सम्प्रति भारती संस्कृत मासिक पत्रिका के प्रधान संपादक हैं। इनके 500 से अधिक लेख हिन्दी में, 300 से अधिक लेख, कविताएँ, नाटक आदि संस्कृत में तथा 60 से अधिक लेख अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुके हैं। राज्य सरकार द्वारा 1988 में उत्कृष्ट लेखन के लिए, 1997 में संस्कृत वैदुष्य के लिए और 1995 में भारत सरकार द्वारा संस्कृत ग्रन्थ लेखन के लिए तथा 1999 में इन्हें राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया गया।

(2) पं. नवलकिशोर कांकर- इनका जन्म आषाढ़ कृष्ण 13 सं. 1967 को जयपुर में हुआ था। इनके पिता का नाम प्रोफेसर गणेश नारायण शर्मा था, इनका अधिकांश समय अध्ययन स्वंयपाठी छात्र के रूप में हुआ। संस्कृत में साहित्य काव्यतीर्थ, व्याकरण शास्त्री एवं साहित्याचार्य और हिन्दी में साहित्य रत्न तथा साहित्य रत्नाकर की परीक्षायें उत्तीर्ण करने के बाद अंग्रेजी की इंटर मीडियट परीक्षा भो उत्तीर्ण की। इन्होंने पं. मधुसूदन ओझा के सान्निध्य में व्याकरण, शतपथ ब्राह्मण तथा वैदिक विज्ञान का विशेष अध्ययन किया।

राजकीय संस्कृत कॉलेज राजगढ़ (अलवर) में कुछ वर्ष प्रधानाध्यापक का कार्य करने के बाद य पारीक हाई स्कूल जयपुर में और फिर पारीक कॉलेज जयपुर में हिन्दी तथा संस्कृत

के अध्यापक बने। दिसम्बर 1974 ई. में ये यहाँ से संस्कृत विभागाध्यक्ष के रूप में सेवानिवृत्त हुये। श्रौत-मुनि निवास वृन्दावन में रहकर इन्होंने वेदों का समन्वय भाष्य लिखा।

इन्हं विद्या वाचस्पति कवि चक्रवर्ती, गद्य सम्राट तथा महामहोपाध्याय जैसी उपाधियों से सम्मानित किया गया है। इन्होंने अनेक प्रतियोगिता पुरस्कार भी जीते हैं। ये राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित विद्वान हैं। आप संस्कृत में अनेक ग्रन्थों के रचयिता है।

यात्राविलास शास्त्रर्सस्म प्रवंधामृत प्रबन्धमकरन्द पत्त साहित्य, नवल सतसई, धर्म कर्म सर्वस्व, लाखीणा बोल आदि। आपको सामवेद राष्ट्रवेद पर राष्टवादी पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

(3) श्री निवासाचार्य- इनका जन्म राजस्थान के राजगढ़ (चूरू) में हुआ। इनके पिता पं. नौरंगराय शास्त्री संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। और सुदीर्घ काल तक संस्कृत विद्यालय में प्रधानाध्यापक रहे। इन्होंने प्रसिद्ध ''चन्द्रमहिपति'' उपन्यास सन् 1933 के आस-पास लिखा। इसमें राजकुमार तथा राजकुमारी के प्रणय प्रसंग और उसमें खलनायक के समावेश से बाधा और मिलन का कथानक है।

कृति के अन्त में राजमण्डल का आयोजन और उसमें अध्यक्षीय भाषण विशेषत: उल्लेनीय है। क्योंकि इस भाषण से विभिन्न वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु ध्यान आकर्षित किया गया है। इसमें गद्यकार का व्याकरण पर पाण्डित्यपूर्ण अधिकार प्रदर्शित हुआ है। इनके द्वारा दूसरा उपन्यास ''सूर्यप्रभा'' लिखा गया जो कवि के वैदुष्य को प्रकट करता है।

राजस्थान के कहानीकार-

(1) डॉ. पुष्कर दत्त शर्मा- संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, रूसी तथा फ्रंच आदि अनक भाषाओं के ज्ञाता डॉ. पुष्कर दत्त शर्मा का जन्म तारा नगर (चूरू) में 21 अप्रेल 1927 को हुआ। इनके पिता का नाम पं. जयनारायण शास्त्री एवं माता का नाम श्रीमति गोपी देवी है। इनकी शिक्षा-दीक्षा तारानगर (चूरू) राजगढ़ तथा बीकानेर में हुई। इन्होंने डूँगर कॉलेज बीकानेर से सन् 1955 में एम.ए. परीक्षा (संस्कृत) प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की और राजस्थान विश्वविद्यालय के कला संकाय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। ''आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य'' विषय पर इन्हं राजस्थान विश्वविद्यालय से सन् 1967 में पो.एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई। ये डूँगर

कॉलेज बीकानेर में 10 दिसम्बर 1958 को संस्कृत प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हुये। सन् 1962-63 में ये जोधपुर विश्वविद्यालय में प्रति नियुक्त हुये। 1 जुलाई 1982 को डूँगर कॉलेज बीकानेर से संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुये। तत्पश्चात् अगस्त 1982 से फरवरी 1983 तक जन विश्व भारती लाडनूँ में संस्कृत के प्रोफेसर रहे।

वदु भाषा विज्ञ होने के साथ-साथ ये लेखक भी है। ये संस्कृत तथा हिन्दी के शोध कार्य के अतिरिक्त रचनाधार्मिता से भी जुड़े रहे हैं। उपन्यास, कविता, महाकाव्य एवं कहानी आदि अनेक विधाओं में इन्होंने निरन्तर लिखा है।

संस्कृत काव्य मंजरी, संस्कृत पिय्षम, लघु सिद्धान्त कौमुदी (नवीन भाष्य) संस्कृत साहित्य का इतिहास, राजस्थानस्याधुनिका संस्कृत कथा लेखकाः आदि इनकी प्रमुख रचनायें हैं।

(2) डॉ. प्रभाकर शास्त्री- सन् 1939 में जन्में प्रोफेसर प्रभाकर शास्त्रो राजस्थान में ही नहीं अपितु अखिल भारतीय संस्कृत जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

प्राच्य-प्रतीच्य उपाधियों से अलंकृत धर्मशास्त्राचार्य, साहित्य आचार्य एम.ए. (संस्कृत एवं हिन्दी) पी.एच.डी. एवं डी. लिट उपाधिधारी डॉ. शास्त्री ने संस्कृत शिक्षा जगत में कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

यह उल्लेखनीय है कि डॉ. शास्त्री राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रथम डी. लिट उपाधिधारी है। आपने ''जयपुर का संस्कृत साहित्य को अवदान'' विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि हेतु शोध किया तथा इसी विषय पर डी.लिट हेतु उच्चतर अनुसंधान करते हुये जयपुर के संस्कृत इतिहास विषयक अनेक अभिनव तथ्यों का उद्घाटन किया। 17 वर्ष तक राजस्थान के विभिन्न महाविद्यालयों में संस्कृत व्याख्याता के रूप में कार्य कर सन् 1978 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रवाचक (रीडर) के पद पर नियुक्त होकर सन् 1989 से प्रोफेसर के पद पर कार्य किया और सम्प्रति सेवा निवृति का लाभ प्राप्त कर रहे हं। भारतीय सांस्कृति के मर्मज्ञ धर्मशास्त्र विशेषज्ञ डॉ. शास्त्री को यह विशिC ज्ञान उनके पूज्य पितृवर्य पं. श्री वृद्धिचन्द शास्त्री साहित्य धर्माशास्त्राचार्य, प्रोफेसर महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर से नियमित छात्र के रूप में अध्ययन करते हुए प्राप्त हुआ है।

हिन्दी, संस्कृत व अंग्रेजी माध्यम से आपके शताधिक लेख सागरिका, विशम्भरा, स्वरमंगला, मधुमति, शोध पत्रिका, भारती, अन्वेषण ज्योतिषमती मरूभारती अध्ययन अनुसंधान पत्रिका, मेघा, एवं अनेक अभिनन्दन ग्रन्थों में प्रकाशित है जो सभी शोधपूर्ण है। सन् 1993 में राजस्थान सरकार ने राजस्थान विश्वविद्यालय से विशेष अनुमति लेकर आपको राजस्थान संस्कृत अकादमी का निदेशक नियुक्त किया था।

(3) विद्या भूषण पं. गणेशराम शर्मा- पं. गणेशराम जी का जन्म 27 मार्च 1908 को डूँगरपुर (राजस्थान) में हुआ है। डूँगरपुर लौटने पर इन्होंने महिषमार्दिनीस्तुतिः, मोहनाम्युदयम्, सुशीलो-ाहमंगलम् तथा आशीः कुसुमांजालि आदि अनेक रचनायें की।

सन् 1950 में इन्होंने महारावल लक्ष्मण सिंह के रजत जयंती समारोह पर अभिनंदन ग्रंथ का संपादन भी किया। सन् 1947 में ये झालावाड़ के राजेन्द्र इण्टर कॉलेज में संस्कृत के प्राध्यापक नियुक्त हुये और सन् 1977 में सेवानिवृत हुये। इनकी विभिन्न रचनायें जैसे कथा, निबंध गीत और नाटकादि विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये। जिनमें सुप्रभातम, सूर्योदय, संस्कृत रत्नाकर, शारदा, भारती, भारतवाणी, दिव्य ज्योति, मंजूषा स्वर मंगला तथा मधुमति आदि पत्रिकायें उल्लेखनीय हैं। इनकी बीस संस्कृत कहानियों का संग्रह राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर में ''संस्कृत कथा कुंजम'' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

वस्तुतः भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के बाद सर्वाधिक संस्कृत कहानियाँ पं. गणेशराम शर्मा ने ही लिखी ह। इनकी कहानियों में प्रेम, हास्य, करूण, वीर एवं एतिहासिकता आदि विभिन्न विषयों का समावेश हुआ है। इनका संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है। कभी-कभी दीर्घ समास पदावली का प्रयोग करते हैं। किन्तु सामान्यतः प्रभावमयी भाषा के कारण रचना अत्यन्त मनोरम बन जाती है।

पं. शर्मा ने प्रचलित आडम्बरों एवं अंधविश्वासों पर कठोर प्रहार किया है। ''घृत तैलकापीसादिदीपिकाः प्रज्वालिताः। धूपाश्च सर्वत्तैव संयोजिताः। जलकुंमाश्च यत्र तत्र संस्थापिताः। पूजाम्बरो महान सर्वतः प्रसारितः।, प्रसादोऽर्पितो देवताभ्यः। स्थण्डलिं प्रकल्प्य काश्चिन्मन्त्रेः होमाऽपि विहितः। कूशमाण्डबलिश्च देवताभ्यः प्रादीयत, दीपदानमक्रियत अन्ते पूजनशेषेण जलेन रमाकान्तस्य मस्तके अभिषेकं कुर्वदभिः कैश्चित तस्य शरीरे पताहानं चाक्रियत''।

(4) महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी- ये भारत विख्यात दिग्गज विद्वान थे। इनका जन्म जयपुर नगर में विक्रम सम्वत 1939 में हुआ था। इनके पिता पं. गोकुल चन्द चतुर्वेदी थे। महाराजा संस्कृत कॉलेज में अध्ययन करके इन्होंने व्याकरणाचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा में तो इन्होंने सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। इनके गुरूजनों में पण्डित मधुसूदन ओझा काशी के म.म.पं. शिव कुमार शर्मा एवं दामोदर शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है।

सन् 1904 ई. में छात्रावास में ही इन्होंने ''संस्कृतरत्नाकर'' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया, जो शीघ्र ही सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध हो गया।

सर्वप्रथम ये सन् 1906 में सहारनपुर स्थित दिगम्बर महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक बने। 1908 में ये हरिद्वार स्थित ब्रह्मचर्य आश्रम के संचालक नियुक्त हुये। सन् 1919 में ये लाहौर स्थित सनातन धर्म कॉलेज के प्राचार्य बने। वहाँ इन्होनं पाँच वर्ष तक काय किया। इसी अवधि में इनके सतत् भाषणों तथा विद्वता से प्रभावित होकर भारत सरकार ने इन्हें **'महामहोपाध्याय'** की पदवी से अलंकृत किया।

सन् 1924 में ये महाराजा संस्कृत कॉलेज के अध्यक्ष नियुक्त हुये। यहाँ 19 वर्षों तक कुशलतापूर्वक कार्य संचालन करके सन् 1944 ई. में ये सेवानिवृत्त हुये। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थों में ''पुराण पारिजात'' ''वेदविज्ञान बिन्दु'' तथा वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति उल्लेखनीय है। इन्हें वाग्मिता एवं साहित्य वाचस्पति आदि उपाधियों से विभूषित किया गया। 10 जून सन् 1966 को करीब 85 वर्ष की आयु में इनका देहावसान हुआ।

(5) पं. रामप्रताप शास्त्री (1887-1952) - कविवर पं. शास्त्री जी का जन्म राजस्थान के दक्षिण में स्थित अजमेर नगर के ''ब्यावर'' ग्राम में भारद्वाज गौत्र एवं सुप्रसिद्ध विद्वान श्री हरकरण जी मिश्र प्रपितामह के ब्राह्मण परिवार में सन् 1987 कार्तिक मास कृष्ण पक्ष की द्वादशी शनिवार को हुआ था।

''श्री रामप्रतापचरितम्'' महाकाव्य में महाकाव्यकार एवं उनके सुपुत्र डॉ. रसिक बिहारी जोशो ने पं. श्री रामप्रताप शास्त्री जी का जीवन चरित्र तथा उनके उपदेशों का चित्रण

किया है। प्रोफेसर श्री रामप्रताप शास्त्री जी बीसवीं सदी के महान पण्डित थे। 169 वर्ष पूर्व राजस्थान में केकड़ी के पास कादेड़ा नामक गाँव में श्री रामप्रताप जी के दादाजी बालानन्दजी बाल्यावस्था में थे। जब पं. शास्त्री की उम्र चार वर्ष की थी तो वे अपने पिताजी पं. जीवन राम जोशी के साथ गाँव में चारभुजा मंदिर में जाया करते थे। पं. राम प्रसाद शास्त्री जी बड़े विलक्षण पुरूष थे। वे अनौखी प्रतिभा के धनी तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। संस्कृत भाषा उनकी रसना के अग्र भाग पर नृत्य करती थी। वे अत्यन्त ही ललित तथा मधुर संस्कृत धारा प्रवाह बोलते थे। उनके जीवन में ज्ञान योग भक्ति तथा वैराग्य का अद्‌भुत समन्वय था। जब पं. शास्त्री जी की अवस्था 16 वर्ष की थी तब 1903-05 में पं. रामप्रसाद शास्त्री जी ने ओरियन्टल कॉलेज लाहौर में दो वर्ष तक संस्कृत के प्राध्यापक के रूप में कार्य किया। इन्होंने राजकीय संस्कृत महाविद्यालय उदयपुर (राजस्थान) में प्राध्यापक के रूप में सात वर्ष तक अध्यापन कार्य किया तत्पश्चात पं. रामप्रताप शास्त्री जी महाराणा संस्कृत विद्यालय उदयपुर में प्रधानाचार्य के रूप में आ गये। फिर पं. शास्त्री जी उदयपुर से मारिसस कॉलेज नागपुर में संस्कृत प्रोफेसर बनकर आ गये। मोरिसस कॉलेज ही कालान्तर में नागपुर विश्वविद्यालय बना।

फिर वे नागपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत, पाली, प्राकृत हिन्दी, मराठी, बंगाली, गुजराती, तमिल तथा तेलगु आदि विभागों के अध्यक्ष रहे। उन्होंने 43 वर्ष की आयु में 1930 ई. में नागपुर में विश्वविद्यालय से विद्यान्ति ग्रहण कर ली। विद्यान्ति लेने का मूल कारण था कि संसार से विरक्ति और भगवान में अनुरक्ति।

विद्यान्ति के पश्चात वे ब्यावर राजस्थान में रहते थे। विद्वान, सन्यासी तथा गृहस्थी युवा तथा वृद्ध हिन्दू सिक्ख, मुसलमान, फारसी, जैन, बौद्ध तथा इसाई उनको हमेशा घेरे रहते थे।

जो जिस इच्छा से शास्त्री के पास आता उसकी इच्छा अवश्य ही पूर्ण हो जाती थी। वे मेरे पूज्य पिताजी थे और मुझे उनसे ''श्री रामप्रतापचरितम्'' महाकाव्य तथा वर्णमाला के स्रोतों की धारा प्रवाह उच्चारण एवं व्याख्या सुनने का सैंकड़ो बार अवसर मिला था। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित तथा संस्कृतेतर विषयों के श्री राम प्रताप शास्त्री जी बाल्यावस्था से ही असाधारण प्रतिभा सम्पन्न थे। पहले इन्होंने अपने पिताजी जीवन राम जी जोशी से संस्कृत का अध्ययन किया था।

फिर वाराणसी तथा लाहौर के प्रकाण्ड पण्डित विद्वान महामहोपाध्याय शिव कुमार शास्त्री तथा महामहोपाध्याय शिवदत्त जी शर्मा के चरणों में संस्कृत विद्या ग्रहण की थी। पाणिनी, व्याकरण, मीमाँसा तथा वेदान्तशास्त्र, वैशेषिक तथा न्यायशास्त्र, सांख्य तथा योगशास्त्र, भागवत तथा वैष्णव दर्शन में प. शास्त्री जी का विशिष्ट पाण्डित्य था।

अन्ततः पण्डित रामप्रसाद शास्त्री जी का देहावासन 1952 में हुआ था। तथा वे 65 वर्ष तक जीवित रहे थे।

पं. रामप्रताप शास्त्रीजी के रचनात्मक कार्यों की रूपरेखा-

कविवर पं. रामप्रताप शास्त्री जी के रचनात्मक कार्यों की रूपरेखा इस प्रकार है-

1. श्री रामप्रताप वचनामृतम् भाग-1 (वेदान्त विमर्श)
2. श्री रामप्रताप वचनामृतम् भाग-2 (भागवत विमर्श)
3. श्री रामप्रताप वचनामृतम् भाग-3 (कल्पलता)
4. सुवर्णमाला-सुभाषित संग्रह

6. पण्डित श्रीराम दवे- इनका जन्म आश्विन् कृष्ण प्रतिपदा संवत् 1979 (22.9.1922) में गांव समदड़ी, जिला-बाड़मेर (राज.) में श्रीमाली ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिताजी का नाम पं. शंकरलाल दवे तथसा माता का नाम श्रीमती मथुरा देवी था। जब ये 6 वर्ष के थे, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया था। अतः इस गहरे आघात ने परिवार को झकझोर कर रख दिया किन्तु इनकी माँ ने हिम्मत न हारी और तात्कालिक परिस्थितियों से स्वंय जूझा। तब इन्होंने 5 वीं कक्षा अपने गांव की पाठशाला से ही उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आगे की शिक्षा ग्रहण करने हेतु इन्हें अपनी बड़ी बहिन के पास 'अमरकोट नगर' जाना पड़ा। किन्तु वहाँ भी बड़ी बहिन का असामयिक निधन हो जाने के कारण अधिक समय तक न रह सके और वहाँ से संस्कृत में प्रथमा परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर पुनः अपने गांव में माँ के पास लौट आये। परिस्थिति के वशीभूत होकर अब इन्हें शिक्षा ग्रहण करने हेतु अपने मामा के पास हैदराबाद सिन्ध (वर्तमान पाकिस्तान) जाना पड़ा। वहाँ इन्होंने प्रातः स्मरणीय एवं ज्ञानवृद्ध गुरू पं. श्री

मणिशंकर आचार्य जी के श्री चरणों में बैठकर गिदुमल संस्कृत पाठशाला में संस्कृत का अध्ययन किया। अध्यापनकाल में इन्हें हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि स्व. नागार्जुन के साथ रहने का भी अवसर मिला। वे संस्कृत के भी प्रकाण्ड पण्डित और सद्प्रेरणा कवि थे। उनकी सद्प्रेरणा से ही ये प्रतिदिन संस्कृत में अपनी दैनन्दिनी लिखा करते थे, जिससे इनकी भाषा में सौष्ठव आता गया और साथ ही कविता करने का आभास भी हो गया। ये हैदराबाद से प्रकाशित त्रैमासिक कौमुदी में लेख लिखते थे, उसमें प्रकाशित इनकी कहानियों का उल्लेख स्व. श्रीधरभास्कर वर्णेकर ने अपन मराठी में लिखे संस्कृत साहित्य ग्रन्थ में भी किया है।

हैदराबाद में अध्ययन करने के पश्चात् किन्तु कराची गमन से पूर्व ही 19 वर्ष की आयु में इनका विवाह सुशिक्षिता एवं परमसौन्दर्यशालिनी 'यशोदा' नाम की कन्या के साथ हुआ। विवाह के पश्चात् ये कराची चले गये वहाँ ये सिन्धी स्कूल में संस्कृत अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए, वहाँ इन्हें सिन्धी माध्यम से संस्कृत पढ़ाने के कारण सिन्धी भाषा के साहित्य का भी अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हो गया। जिस विद्यालय में ये संस्कृत अध्यापक नियुक्त हुए उसी विद्यालय में भारत के भूतपूर्व उपप्रधानमंत्री एवं भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री लालकृष्ण आडवाणी, अध्यापक नियुक्त थे। अत: सौभाग्य से कुछ समय तक उनके साथ रहने का मौका मिला। कराची में रहते हुए ये 'कराची संस्कृत ऐसोसिएशन' के माध्यम से डॉ. डी.आर.मांकड के साथ संस्कृत के प्रचार-पसार का कार्य भी करते रहे। वहाँ इन्होंने धर्मदेव जेटली जी के पास वेदान्त और नव्यन्याय का अध्ययन भी किया। इस प्रकार इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में एम.ए. (दर्शन), साहित्यशास्त्री एवं काव्यतीर्थ आदि परीक्षायें प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की।

भारत विभाजन के पश्चात् पण्डित जी को अपने घर लौटना पड़ा आजीविका के लिये संघर्ष करते हुये 1950 में इन्हें बैंक में नौकरी करनी पड़ी। जो उनके अध्ययन के अनुकूल नहीं थी। परन्तु इन्होंने बैंक सेवा में रहते हुये भी अपना स्वाध्याय नहीं छोड़ा। जहाँ भी जाते संस्कृतज्ञों से सम्पर्क करते रहते तथा साथ ही साथ लेखन कार्य भी अनवरत् चलता रहा।

इस प्रकार बैंक में अपनी विशिष्ट सेवायें देने के उपरान्त पं. जी दिनांक 22.9.1980 को स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर की शाखा ''जोधपुर'' से प्रबन्धक के पद से सेवानिवृत्त हुये किन्तु सेवानिवृत्ति के पश्चात् इन्होंने पुनः संस्कृत सेवा एवं लेखन कार्य करना प्रारम्भ कर दिया तथा तीन युगबोधक महाकाव्य लिखे - भृत्याभरणम्, राजलक्ष्मीस्वयंवरम् एवं साकेतसंगरम्। जिसमें से 'भृत्याभरणम्' महाकाव्य पर इन्हें 19-03-1992 को राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर ने 'माघ' पुरस्कार प्रदान किया। इनके अलावा इन्होंने 13 खण्डकाव्यों की रचना करने के साथ-साथ अनेक कृतियों का संस्कृतानुवाद भी किया। पण्डितजी के द्वारा रचित अनेक कहानियाँ, लेख एवं कविताएं समय-समय पर विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये हैं।

पं. श्रीराम दवे जो ने राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर की द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम महासमिति में क्रमशः 1985, 1989, 1992 एवं 1995 में इन वर्षों के दौरान सदस्य चुने जाने पर अपनी महती सेवायें दी। वर्तमान में ये जयपुर से प्रकाशित 'भारती' मासिक संस्कृत पत्रिका के सह-सम्पादक के पद को सुशोभित कर चुके हैं। साथ ही साथ 'विश्वसंस्कृत प्रतिष्ठानम' के प्रदेश संघटनमन्त्री भी रह चुके हैं। इनके अलावा 'भारती' संस्कृत पत्रिका, जोधपुर के परामर्शदाता भी रहे।

संस्कृत भाषा के उन्नयन हेतु की गई महती सेवाओं के उपलक्ष्य में पं. श्रीराम दवे जी को सर्वप्रथम दिनांक 06.07.1990 में राजस्थान सरकार द्वारा विद्वत् सम्मान दिया गया। तदुपरान्त राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर ने भी दिनांक 23.03.1998 को इनकी सेवाओं से अभिभूत होकर इसी पुरस्कार से सम्मानित किया। इसके बाद दिनांक 28.09.1998 का जोधपुर की विविध संस्थाओं द्वारा भी इनका बड़ा भव्य नागरिक अभिनन्दन किया गया। तत्पश्चात् इन्हें अगस्त 2008 को मुंशी प्रेमचन्द की अमरकृति 'निर्मला' पर कोलकाता में साहित्य अकादमी दिल्ली का 'अनुवाद पुरस्कार' प्रदान किया गया।

4. पं. रामदवे जी के रचनात्मक कार्यों की रूपरेखा-

पं. रामदवे जी के रचनात्मक कार्यों की रूपरेखा इस प्रकार हैं-

पं. रामदवे जी का कृतित्व

महाकाव्य

1. भृत्याभरणम्
2. राजलक्ष्मीस्वयंवरम्
3. साकेतसंगरम्

खण्डकाव्य

1. ललितालहरी
2. अपाङ्गलीला
3. परिखायुद्धम्
4. भारतीविलासः
5. कामधेनुशतकम्
6. वियोगशतकम्
7. सौन्दर्यलीलामृतम्
8. कारूण्यकादम्बिनी
9. विनोदकौस्तुभम् (अप्रकाशित)
10. केलिभूकैतवम् (अप्रकाशित)
11. काव्यमंजूषा
12. सांईचरित्रम् (अप्रकाशित)
13. मेघोपालम्भनम् (अप्रकाशित)

अनुवादित काव्य

1. निर्मला
2. ध्रुवस्वामिनी
3. गीताञ्जलि
4. ब्रह्मरसायनम्
5. अकिचंनचैत्यम्
6. अत्रिख्याति
7. बह्मविनय
8. बह्मसमन्वय

संदर्भ सूची

1 जैम्स टॉड लिखित - ऐनल्स एण्ड एन्टि क्विटीज ऑफ राजस्थान

2 जयवंश महाकाव्यम् - सर्ग 19, पद्य 51

3 श्रीस्वामिमाध्वानन्दानां जीवनदर्शनम् - पृष्ठ 9,10

4 श्री जयसिंह नीरज - राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा

5 भट्टमथुरानाथशास्त्री - जयपुरवैभवम्, पृ. 31

6 श्री जयसिंह नीरज - राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा

7 श्री जयसिंह नीरज - राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा

8 श्री स्वामिमाधवानन्दानां जीवनदर्शनम् पृ. 2

9 ऋग्वेद - 10/191/2

10 अभिज्ञानशाकुन्तलम् -4/23

11 रघुवंश - 2/73

12 सौन्दरानन्दम् - 4/12

13 भगवद्गीता - 10

14 भगवद्गीता - 13

15 डॉ. रणजीत शर्मा - संस्कृत साहित्य का सरल इतिहास पृ -126

16 दयानन्द दिग्विजयम् - 1/8

17 दयानन्द दिग्विजयम् - 20/57

18 दयानन्द दिग्विजयम् - 3/8

19 डॉ. रणजीत सिंह शर्मा - संस्कृत साहित्य का सरल इतिहास

20 डॉ. पुष्कर दत्त शर्मा - संस्कृत साहित्य का इतिहास

21 शिवराज्योदयम् - 8/29

22 देववाणी - सुवासः

23 सीताचरितम् महाकाव्य

24 डॉ. पुष्कर दत्त शर्मा - संस्कृत साहित्य का इतिहास

25 हरनामामृतम् महाकाव्यम्

26 लेनिनामृतम् महाकाव्यम् - 3/28

27 देववाणी सुवासः

28 पं. अम्बिका दत्त व्यासः व्यक्तित्व एवं कृतित्व - राज. सं. अकादमी प्रकाशन

29 डॉ. पुष्करदत्त शर्मा - संस्कृत साहित्य का इतिहास

30 देववाणी सुवासः

31 डॉ. गंगाधर भट्ट - राजस्थानीय अभिनव संस्कृत साहित्यम्

32 देववाणी सुवासः

33 देववाणी सुवासः

द्वितीय-अध्याय
पं. श्रीरामदवे जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कवि

कवि ब्राह्मी सृष्टि का परम सौभाग्यशाली प्राणी है क्योंकि ब्राह्मी सृष्टि के सहस्रादिक प्राणियों में उसे ही कवल माँ सरस्वती का दुर्लभ अनुग्रह प्राप्त होता है, जिससे उस शक्ति का आविर्भाव होता है, जिसे 'कवित्व' के नाम से अभिहित किया जाता है। वस्तुतः 'इस संसार' में मनुष्य बनना ही एक दुर्लभ गुण है, जिस पर विद्वान् बनना और विद्वता के साथ कवि होना तथा काव्य करने की शक्ति पाना नितान्त दुर्लभ है-

नरत्वं दुर्लभं लाके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।[1]

ऐसी सुदुर्लभ शक्ति को पाकर ही वह श्रवणेन्द्रिय को आनन्द से आप्लावित करने वाले अमृत की 'अनभ्रवृष्टि' (बिना मेघ की वर्षा) करने में समर्थ होता है। ऐसी शक्ति से लाभान्वित सुकवि के जिह्वा रूपी सूप से सर्वथा तुषरहित किये गये शब्द रूप शालि-चावल पाक से जो तृप्त है, वह अपनी प्रिया के अधर रस का भी आदर नहीं करता तब बेचारी सुधादासी तो वस्तु ही क्या है-

निस्तुषतर शब्द शालिपाकेन तृप्तो दयिताधरमपि नाद्रियते कासुधादासी।[2]

निश्चित ही कवित्व शक्ति से सम्पन्न सुकवि की वाणी अमृत रस को भी तिरस्कृत करने वाली होती है।

कविता रूपी अमृत से न केवल अपने यशः शरीर को अमर करने वाले अपितु सहृदयों के हृदय को भी आप्लावित कर देने वाले श्रेष्ठ कवियों में श्रीराम दवे अन्यतम हैं। जिनका परिचय निम्न प्रकार है-

पं. श्रीराम दवेः वंशवृक्ष

↓

शंकर लाल जी दवे

↓

श्रीराम दवे

↓

डा. जया दवे (पुत्री)

साध्वी प्रीती प्रियंवदा (पुत्री) | **श्रीमति स्वाति (पुत्री)**

↓

संवित् (पुत्र)

पं. श्रीराम दवेः व्यक्तित्व :

जीवनवृत्त, वंशपरम्परा एवं जन्म स्थान- पं. श्रीराम दवे जी का जन्म दिनांक 22-09-1922 को बाड़मेर जिले के समदड़ी गाँव में श्रीमाली ब्राह्मण समाज के एक सामान्य परिवार में हुआ। उनके पिता शंकरलाल साधारण स्थिति के व्यक्ति थे जो समदड़ी में अपनी बुआ के पास रहते थे। उनकी माता श्रीमती मथुरा देवी विद्वत् परिवार में जन्मी बहुत मेधावी एवं सात्विक प्रवृत्ति की थी।[3]

घास की छत से बने हुए ब्रह्मपुरी में स्थित घर में पं. दवे अपने माता-पिता के साथ रहते थे जिसकी भित्ति मिट्टी से बनी हुई थी। घर में मिट्टी के पात्रों का भोजन सामग्री हेतु उपयोग किा जाता था। घर के बगल में गौशाला थी। शंकरलाल का व्यवसाय वस्तु का संग्रह करने वाली एक शिला थी जिसमें मिष्ठान्न एवं विवाह उपयोगी वस्तुएं होती थी।

श्री शंकरलाल बाल्यकाल में ही पिता के वात्सल्य से वंचित हो पातनवाड़ा गाँव से अपनी बुआ के घर आ गये थे। बुआ के कोई संतान न होने के कारण एवं बाल्यकाल में ही विधवा होने से उसने शंकर लाल का अपनी संतान के समान लालन-पालन किया। सामन्त कुल में बुआ की आजीविका थी परन्तु शंकरलाल स्वजीविका से ही अपना जीवन यापन करते थे।

पं. श्रीराम दवे की माता का जन्म स्थान पातनवाड़ा ग्राम, लूणी नदी क तट पर विद्यमान था जो अपने वैशिष्ट्य के लिए प्रसिद्ध था। नाना लक्ष्मीनारायण की इस गाँव में अच्छी प्रतिष्ठा थी। उनके अनुज पं. जयशंकर संस्कृत के विद्वान थे। उनकी भगवती कथा अत्यन्त लोकप्रिय एवं मधुर थी। उनके पुत्र पं. मणिशंकर, पं. दवे के संस्कृत शिक्षक थे।

रचनाकार की माता मथुरा देवी उनके नाना की अकेली ही पुत्री थी। कन्या विनिमय व्यवहार से विवश नाना ने पुत्री का विवाह उससे उम्र में काफी बड़े श्री शंकर लाल से कर दिया। शंकरलाल के भी कोई बहिन न होने से विनिमय के अभाव में विवाह विलम्ब से सम्पन्न हुआ।

शैशवकाल-

शंकर लाल की दुकान (विपणी गृह) ग्राम के मध्य में थी। मिठाई के व्यवसाय में व्यस्त वे घर से प्रात: जाते एवं सांयकाल घर लौटते। मिष्ठान्न प्रिय ब्राह्मण एवं वणिक भी शुद्ध घी में बने पकवानों को खाने के लिए यहाँ आते थे। घर में शंकर लाल की बुआ गाय के घी से निर्मित भोजन बनाती थी परन्तु पुत्रियों को छाछ ही दी जाती थी। यह कन्या पुत्र में भेदभाव उस समय में विद्यमान था। इस प्रकार सुखपूर्वक समय के चलते ही उनके पिता की बुआ वृद्धावस्था में रोग से पीड़ित होकर दिवंगत हो गई।

दुर्भाग्य से उनकी मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् ही पं. दवे के पिता विषम ज्वर से पीड़ित हो गए और माँ एवं उसकी दो बहनों को छोड़कर स्वर्ग को चले गये। उस समय पं. श्रोराम दवे की उम्र मात्र 6 वर्ष थी। पड़ौसियों ने रोते हुए कवि एवं उसकी दो बहनों को आश्वासन दिया। रोती हुई माँ को सजातीय महिलाओं ने ढ़ाँढस बंधाया।

पति के चरणारविन्द से वियुक्त स्वयं को अनाथ मानने वाली मथुरा देवी पुत्र को गोद में लेकर रोती रहती थी। कवि की बहिन भी माता को रोती हुई देखकर हठपूर्वक अपने रुदन को रोककर गृहकार्य को सम्पन्न करती थी। दुर्भाग्य से पिता के देहावसान के दो माह बाद ही ऋणदाता श्री ताराचन्द सात सौ रुपये को शीघ्र देने के लिए बोलने लगे जबकि घर में खर्चे के लिए भी पैसे नहीं थे। उस ऋणदाता ताराचन्द ने ऋण न चुकाने पर न्यायालय में प्रक्रिया प्रारम्भ

कर दी। इस विपत्तिकाल में किए गए व्यवहार से सभी जाति बन्धु असंतुष्ट थे। तब पिता के मित्र श्री भगदत्त शर्मा के सहयोग से गायों के लिए निर्मित घर को न्यास के रूप में रखकर उस ऋणदाता का भुगतान किया।

इस प्रकार विभिन्न संकटों में जीवन व्यतीत करते हुए कवि की बहिनों का विवाह क्रमश: एक का गुर्जर प्रदेश में एवं दूसरी का सिन्ध प्रदेश में किया सम्पन्न हो गया। चाचा श्री भगदत्त शर्मा भी अपने स्वार्थ में लगे रहने से व्यवसाय की चिन्ता पर ध्यान न देकर धनदान में आक्रोश उत्पन्न करता था। अत: उनके परामर्श से सामन्तों के लिए पाक कार्य प्रारम्भ किया जिससे जा धन-धान्य मिलता उससे जीवन यापन होने लगा।

अध्ययन-

कवि ने ग्रामटिका गांव की प्राथमिक शाला में अध्ययन समाप्त कर लिया। इसके पश्चात् वे अपनी माँ को गाँव में अकेले छोड़कर बहिन के पास अमरकोट चले गये। माँ गृहलेपन व धान्य शोधन आदि का कार्य करके उसकी चाची की सहायता करती थी। दुर्भाग्य से दो वर्ष पश्चात् कवि की एक बहन का पैर फिसलकर कुँए में गिरने से तथा दूसरी का प्रसवकाल में देहावसान हो गया। इस वेदनावज्र से मथुरा देवी अत्यन्त दु:खी हो गई और उनका तारूण्य विपत्तियों में ही विगलित हो गया, वैस भी विषम वैधव्य वेदना असहनीय थी ही। इस दुर्घटना का कवि के बालमन एवं अध्ययन पर सीधा प्रभाव पड़ा परन्तु उनका अध्ययन बहिन के पति के साथ रहकर जैसे-तैसे चलता रहा।

इस प्रकार 12 वर्ष की उम्र में प्रथम श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण करके वे अपनी माता के पास आ गये। उसी अवसर पर (मणिशंकर) मामा के गृह में यज्ञोपवीत संस्कार निष्पन्न कर दिया गया। घर का वातावरण एक तो बहिनों की मृत्यु तथा दूसरा धनाभाव से शोकयुक्त रहता था। चाचा भी विवाह के पश्चात् पाक व्यापार को छोड़कर अन्यत्र चले गये।

कवि भी यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् मातुल के साथ हैदराबाद चले गये। उनकी माता कभी समदड़ी गाँव में निवास करती कभी पितामह की सेवा के लिए खाड़ी ग्रामटिका चली जाती।

हैदराबाद नगर का प्राचीन नाम ''नारायण कोट'' था, ऐसा वहाँ के इतिहासविद कहते थे। सिन्धु नदी के तट पर किसी ब्रह्मचारी का आश्रम था। वहीं पर एक कुटी में कवि अपने मामा एवं उनके पुत्र विद्याधर के साथ निवास करते थे। कुटी के एक कोने में पाकशाला, एक में पूजा स्थान तथा एक में जल पात्र था। अत: रात्रि में जैसे-तैसे ही सोया जाता था।

दुर्भाग्य से कवि की मामी की मृत्यु के पश्चात् मामा का स्वभाव भी क्रूर हो गया। अत: कवि ने अवसर पाकर वहाँ से चले जाना ही उचित समझा।

श्री दवे के मधुर व्यवहार के कारण उनका निवास एक शिवालय में कर दिया गया। तब से देव जी ने स्वावलम्बन में रहना स्वीकार किया। वहाँ रहकर स्वंय एवं माता के पोषण की चिन्ता होने लगी किन्तु गुरूजनों के अनुग्रह से विद्यालय से प्राप्त छात्रवृत्ति में से पांच रूपये स्वयं के निर्वाह के लिए तथा पांच रूपये माता के लिए भेजे जाते थे।

गिद्दमल व्यापारी के नाम से संचालित पवित्र संस्कृत पाठशाला के प्रधानाचार्य के पद पर पं. काशीनाथ उपाध्याय को नियुक्त कर रखा था। उसका पुत्र दीवान केवल इस समय उस पाठशाला को चलाता था।

यहाँ पर संस्कृत ग्रन्थों के संग्रह वाला एक पुस्तकालय भी था। यहाँ पर संस्कृत के साथ संगीत, आंग्लभाषा, चित्रकला, कर्मकाण्ड, नृत्यकला की भी शिक्षा दी जाती थी। प्रधानाचार्य आदि सभी शिक्षक सभी विषयों में दक्ष थे। ऋग्वेद को जानने वाले, व्याकरण दर्शन आदि शास्त्रों के विद्वान यहाँ थे। यहाँ एक कर्कशध्वनि सारस्वत नामक व्याकरण का अध्यापक था जिसके दण्ड के भय से कभी छात्र काँपते थे। कवि के गुरू आचार्य मणिशंकर भी यहाँ अध्यापक पद पर थे। मूलचन्द्र शर्मा भी यहाँ पर उनके साथ ही अध्यापक पद को अलंकृत करते थे।

इसके अलावा वहाँ गुर्जर प्रान्तीय वेदज्ञ पं. प्राण शंकर महोदय, संगीत शिक्षक महाराष्ट्र प्रान्तीय जोशी महोदय, बंग प्रान्तीय चित्रकला शिक्षक चौधरी महोदय, अंग्रेजी शिक्षक घोष महोदय तथा सिन्ध प्रान्त की निवासी गंगा देवी वहाँ की प्रधानाध्यापिका थी जो प्रकृति से सरल एवं मधुर थी। अन्य संस्कृत प्राध्यापिका कुमारी पोपट तथा हरि देवी आदि भी थी।

कवि को प्रात: काल में ही पाठशाला आना होता था। कवि के मामा के पुत्र विद्याधर एवं कवि प्रात: उठकर स्नानादि करके वि|ालय जाते थे। मार्ग के मध्य में स्वामी टेडाराम का आश्रम पड़ता था, जिसमें बाल सन्यासी पढ़ने के लिए आते थे। उसके पार्श्व भाग में पाठशाला का प्रवेश द्वार था। मार्ग में व्यायाम शाला थी जहाँ अनेक कौतुक देखे जा सकते थे। विद्याधर को भी व्यायामशाला का स्नेह था। ऊपर के भाग वीथियों में अनेक परिचित लोग निवास करते थे। दुकानें भी मार्ग के मध्य में ही पड़ती थी। दुकानों के पास वाली वीथि में ब्रह्मकुमारी का आश्रम था जिसके अधिष्ठाता गुरू दादा लेखराज थे तथा उनकी प्रधान शिष्या दादी रूक्मणी थी। उस दादा लेखराज के सम्मोहन से वहाँ उनके पीताम्बर कुमार निवास करते थे।

पाठशाला में गीता के ग्यारहवें अध्याय को (विराट स्वरूप के लिए अर्जुन की स्तुति) प्रार्थना के रूप में निर्धारित कर रखा था। प्रार्थना के अवसर पर सभी छात्र नीचे मुख एवं नेत्र बंद किये होते थे। छात्राओं की प्रार्थना पंक्ति भी साथ ही होती थी। प्रार्थना के पश्चात् कक्षानुसार शब्द रूप एवं धातुरूप की पुनरावृत्ति करवाई जाती थी। उसके पश्चात् ही सभी छात्र अपनी-अपनी कक्षा में जाते थे।

हैदराबाद में ही संस्कृत भाषा एवं हिन्दी भाषा के निष्णात विद्वान् नागार्जुन से पं. दवे का संम्पर्क हुआ जिसकी प्रेरणा से ही उन्होंने संस्कृत में गद्य-पद्य लिखना प्रारम्भ किया।[4] हैदराबाद प्रकाशन से प्रकाशित होने वाली कौमुदी पत्रिका में उनके लेख प्रकाशित हुए। उनकी मामी का देहान्त हो जाने पर मामा हैदराबाद छोड़कर ग्राम पातनवाड़ा चले गये। उन्होने भी तब तक साहित्य की प्रथमा परीक्षा उत्तोर्ण करके उसी विद्यालय में अध्यापन कार्य करते हुए मध्यमा परीक्षा काव्यतीर्थ को उत्तोर्ण कर लिया।

सेवा कार्य-

रचनाकारके काव्यतीर्थ परीक्षा में प्रथम श्रेणी आने से प्रसन्न पाठशाला अध्यक्ष श्री केवलदास जी ने कराची नगर के विशाल पुस्तकालय में कार्य करने के लिए उनकी नियक्ति कर दी। पुस्तकालय कार्यालय का सभी कार्य आंग्लभाषा में किया जाता था। अत: उनका आंग्लभाषा ज्ञान भी यहाँ वृद्धि को प्राप्त हुआ।

विवाह-

अध्ययन काल में ही प्रसंगवश कवि गुरू श्रेष्ठ के साथ कराची गये हुए थे वहाँ श्री रघुनन्दन व्यास से मिले जिन्होंने अपनी बहिन यशोदा का विवाह कवि के सम्पन्न करने का विचार किया तथा एक दिन भोजन पर कवि को आमंत्रित कर दिया तब उसके पिता ने भी अपने पुत्र के प्रस्ताव को अनुमति प्रदान कर दी। इस विवाह के लिए कवि की माता ने भी अनुमति दे दी। कवि के साले ने यह विवाह बिना विनिमय के निश्चित कर दिया परन्तु रघुनन्दन के चाचा विवाह विनिमय से करते हुए अपने पुत्र का विवाह करना चाहते थे। अत: वे विवाह समारोह में नहीं आए। इस प्रकार कवि का विवाह रघुनन्दन की बहिन से सम्पन्न हो गया। उस समय कवि की उम्र 21 वर्ष एवं उनकी पत्नी यशोदा की उम्र 11 वर्ष थी।

विवाह के पश्चात् पं. दवे की भृत्यावृत्ति कराची में ही सम्पन्न हो गई। अत: वे वहीं अपने श्वसुर के भवन में रहने लगे। उनके लिए श्वसुर का सहयोग उनके प्रति उपकार ही था। कराची नगर के केन्द्रीय पुस्तकालय में कार्य करते हुए उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तोर्ण की। अत: अब उनके लिए कहीं पर भी जीविका उपार्जन करना कठिन नहीं था।

अध्यापन कार्य-

कवि के संस्कृत और आंग्लभाषा के ज्ञान को जानकर उच्च माध्यमिक विद्यालय कराची के प्रबन्धक ने उन्हें संस्कृत के अध्यापक पद पर नियुक्ति दे दी। पस्तकालय में कार्य करते हुए उनका सम्पर्क विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष श्री डोलरराम मांकड़ से हुआ। इस प्रकार अनेक संस्कृत विद्वानों से सम्पर्क होने से उनका संस्कृत अध्यापन कार्य प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। इसके साथ ही हैदराबाद नगर से पं. कालूराम व्यास के सम्पादन में प्रकाशित कौमुदी में पत्र लेखों ने उनको विद्वानों में प्रशस्ति दिलाई, जिससे वे हाई स्कूल संस्कृत के अध्यापक पद पर नियुक्त कर दिये गये।

संघ प्रवेश-

श्रीराम संघ कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क में आए उनकी गतिविधियों व विचारधारा से प्रभावित होकर दवे जी भी संघ में सम्मिलित हो गए। उस समय श्री लालकृष्ण आडवाणी

(पूर्व उपप्रधानमंत्री भारत) सिंघ क्षेत्र में संघ के मुख्य शिक्षक थे। उस समय संस्कृत भाषा क प्रचार के लिए 'संस्कृत एसोसिएशन' नामक संस्था की स्थापना की गई जिसके अध्यक्ष डॉ. डोलराम ''मांकड़'' थे जिससे विश्वविद्यालय के छात्र भी संस्कृत पढ़ने में प्रवृत्त हो गये।

संघ क्षेत्र में कवि का उपयोग बौद्धिक प्रमुख के रूप में किया गया। कवि को बौद्धिक कार्यक्रमों में गुरूजी आदि के भाषणों का सार संग्रह करना होता था।

भारत देश का विभाजन न हो इसलिए प्रयत्नपूर्वक राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के स्वंय सेवकों ने हिन्दुओं का सिन्ध नगर से पलायन रोकने का प्रयत्न किया। स्वतन्त्रता आन्दोलन के कार्यकर्त्ता कांग्रेसी भी आत्मरक्षा के लिए संघ की शरण में आये परन्तु दुर्भाग्य से केन्द्र में स्थित कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं ने पं. जवाहरलाल के नेतृत्व में देश विभाजन की स्वीकृति दे दी।

कराची नगर में निवास करते हुए कवि का सम्पर्क धर्म देव जेटली नामक व्यक्ति से हुआ जो कि संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनके पास कवि, न्याय मुक्तावली एवं वेदान्त को पढ़ने जाया करते थे।

भारत विभाजन-

विभाजन व्यथा से पीडित व्यक्ति प्राणरक्षा के लिए वहाँ से पलायन करने लगे। कवि के श्वसुर भी आभूषण आदि को राजस्थान में रखकर आ गये। कवि स्वंय सेवक होने के कारण से पलायन नहीं कर सकते थे।

कराची नगर में मुस्लिम लीग का शासन प्रारंभ हो चुका था। विभाजन को कवि ने साक्षात् रूप से देखा परन्तु कराची से पलायन स्वीकार नहीं किया।[5] अचानक उनके गाँव से आये हुए तार को प्राप्त किया जिसमें उनकी ''माता मरणासन्न'' है ऐसा लिखा था। अत: अब गाँव शीघ्र ही जाना था। यह महती दुविधा थी। अन्त में उनके श्वसुर आदि सभी व्यक्तियों ने निश्चय किया कि उन्हें यहाँ से जाना चाहिए। इसलिए कवि को जाने के लिए कहा गया और उन्होंने अवसर पाकर आने की बात की।

कवि ने अपनी आवश्यक वस्तुओं को रेलवे के माध्यम से भेज दिया एवं स्वयं न आवश्यक प्रमाण पत्र लेकर पत्नी के साथ कराची से समदड़ी (बाड़मेर) को प्रस्थान किया। उग्र

भीड़, वस्तु वाहक वाहनों में स्त्री, पुरुष एवं बालकों की पशु समान स्थिति का होना। कवि के गाँव में आने के आगमन को सुनकर अन्य गाँववासी उनसे मिलने आये।

गृहागमन-

तत्पश्चात् मिट्टी से बना हुआ तथा इमली के पत्तों से आच्छादित गोबर से निर्मित हीन दशा वाले अपने घर को कवि ने प्रसन्न चित्त होकर देखा और कुछ दिन आनन्दपूर्वक वहीं व्यतीत किये। तब उन्हें योगक्षेम की चिन्ता प्रारम्भ हुई। परिवार पालन के लिए अपेक्षित का अभाव एवं पिता के ऋण की चिन्ता कवि को प्रतिक्षण व्यथित करने लगी। एक दिन कवि की माता ने कहा मैं सामन्त की माता के लिए पाक कार्य करती हूँ जिससे मुझे कुछ धन प्राप्त हो जाता है और तुम ब्राह्मण वृत्ति के कार्य करो। फिर धन की चिन्ता कहाँ? कवि ने कहा माता मैं संस्कृतज्ञ हं, आंग्लभाषा को भी जानता हूँ, मेरे लिए ऐसी वृत्ति उचित नहीं है। इसके बाद गाँव के समीप जसोल गाँव के प्राथमिक विद्यालय में जिसकी व्यवस्था एक वणिक के द्वारा की गई थी। वहाँ पर कवि ने नियुक्ति ले ली और 40 रूपये प्रतिमाह मिलने लगे ।

बम्बई गमन-

जोधपुर आगमन-

उसके पश्चात् जयपुर के स्वयं सेवक बन्धुओं के सहयोग से कवि ने हिन्दी साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन प्रारम्भ किया। उससमय लालकृष्ण आडवाणी भरतपुर में संघ के प्रचारक थे। उनसे वे मिले एवं अन्य सिन्धु बान्धव भी मिले। किसी प्रकार आजीविका का निर्वाह हो रहा था परन्तु उनके मन में संतोष नहीं था।

कवि की माता एक तो अकेली दूसरा उनकी सन्तानहीन पत्नी का दूर रहना एवं बन्धुओं का वियोग भी उनको व्यथित करता था। उस समय कवि का साला रघुनन्दन व्यास जोधपर में शरणार्थी व्यवस्था विभाग में एक पद पर कार्य कर रहा था। वे भी उनके पास चले गये एवं जोधपुर में ही नौकरी करने की अपनी इच्छा प्रकट की। उस समय उनके एक पड़ौसी शिवनन्दन ने जो कि स्वयं बैंक कर्मचारी थे, बीकानेर राज्य स्तरीय बैंक में एक पद रिक्त

बताया तथा कवि को प्रार्थना-पत्र देने को कहा। उन्होंने उसके परामर्श से वैसा ही किया। वहाँ लेखाकार पद पर कोई सिंध बंधु मूरजानी थे जिन्होंने प्रार्थना पत्र स्वीकृत कर लिया। अंकों के योग एवं परीक्षण से ही उनका बैंक में लिपिक के पद पर नियुक्ति मिल गई परन्तु वे संस्कृतज्ञ थे एवं मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण थे इतने मात्र से बैंक की सेवा कैसे होगी? ऐसा उन्होंने बार-बार विचार किया। परन्तु बैंक सेवा में प्रतिमाह 60 रूपये एवं अध्यापक के 40 रूपये प्रतिमाह वेतन के अनुसार कवि ने बैंक में सेवा करना उचित समझा और सितम्बर 1950 में बैंक की सेवा प्रारम्भ कर दी।

[2] व्यवसाय एवं कार्यक्षेत्र-

कवि उस समय बैंक सेवा से सम्बन्धित एक अक्षर भी नहीं जानते थे। कैसे मुद्राराक्षस के साथ व्यवहार किया जायेगा? कैसे लिपिक का कार्य होगा? यह चिन्ता उनको निरन्तर व्यथित करती रही। अत: जैसे-तैसे तो पहले उनको पत्र-प्रेषण विभाग में नियुक्त कर दिया परन्तु बाद में पहले से लिपिक का काय कर रहे परमानन्द नामक व्यक्ति के सहयोग से वे धीरे-धीरे लिपिक के कार्य में प्रवीण हो गये।

परन्तु 8 बजे से लेकर रात्रि 9-10 बजे तक के कार्यभार से वे साहित्य चचा से पराङ्मुख हो गये परन्तु गुरूजनों की प्रेरणा से ज्ञानवृद्धि की लालसा जागृत होती रही, अर्थ क्षेत्र में कार्य करने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अपेक्षित था। अत: कवि ने स्नातक परीक्षा अंग्रेजी माध्यम से उत्तीर्ण की एवं इससे पूर्व वाराणसी से शास्त्री परीक्षा अंग्रेजी विषय लेकर उत्तीर्ण कर ली थी। इसके पश्चात् जोधपुर विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के प्राचार्य श्री एल.एम. शर्मा की प्रेरणा से दर्शनशास्त्र में एम.ए. (स्नातकोत्तर) परीक्षा उत्तीर्ण की। बैंक सेवा में भी लिपिक कार्य में निष्णात होने से प्रात: 7 बजे से 10 बजे तक विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र की कक्षा में अध्ययन करने के पश्चात् यथा समय नौकरी पर भी पहुँच जाते थे।

प्रारम्भ के दो वर्ष तो बैंक सेवा के अत्यन्त कष्टकारी थे परन्तु व्यवस्थापक के पद पर जब से भट्ट महोदय आये थे सम्पूर्ण वातावरण अनुकूल हो गया। श्री चौहान गुप्ता आदि लेखाकार पद पर नियुक्त सभी व्यक्ति उनके अनुकूल थे और साहित्य रसिक भी। इसलिए

समय-समय पर साहित्य संगोष्ठी भी होती। अतः बैंक सेवा अब कवि के लिए इतनी कष्टकर नहीं थी जितनी प्रारम्भ काल में। अन्य बैंक कर्मियों की अपेक्षा उच्च योग्यता भी पं. दवे की पदोन्नती में सहायक सिद्ध हुई और उन्हें सहायक लेखाकार एवं अन्य शाखाओं में शाखा प्रबन्धक के पद पर नियुक्त किया गया, साथ ही संस्कृतज्ञों से सम्पर्क एवं विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष, शिक्षक व छात्र भो कवि के ज्ञान से प्रभावित होने लगे।[6]

संस्कृत महाविद्यालय में पं. दवे के मित्र (गुरूचरण) मणिशंकर द्विवेदी एवं पं. कालूराम व्यास उन्हें संस्कृत के कार्यक्रमों में स्थान देने लगे जिससे पुनः संस्कृत व्यवहार में पं. दवे की प्रवृत्ति होने लगी। पं. दवे का जोधपुर से प्रथम स्थानान्तरण फलौदी शहर में हुआ उस समय तक उनकी माता भी जीवित थी।

पं. दवे को शाखा प्रबन्धक कार्य का अनुभव होने से यहाँ कार्य करने में अधिक बाधा नहीं आई। यहाँ बहुत व्यक्ति तो उनके परिचित ही थे। यहाँ धार्मिक पण्डितों के साथ ही उनका परिचय हो गया। साधु सन्यासियों का सम्पर्क इन्हें अत्यधिक गौरवान्वित करता था। नमक व्यापार हेतु व्यापारियों का बम्बईगमन भी प्रायः होता था।

कवि की जननी कभी उनके पास एवं कभी कवि के (पितामह की पत्नी) की सेवार्थ खाड़ी ग्राम में रहती थी। अचानक कवि की माता का स्वास्थ्य बिगड़ गया जिससे वे उन्हें फलौदी नगर ही ले आये। इस प्रकार कुछ समय के लिए उनकी माता की सेवा का अवसर भी मिला। शीघ्र ही वे अपने भौतिक शरीर को त्यागकर स्वर्ग चली गई। इस प्रकार उनकी जननी की अंन्त्येष्टि आदि सभी कार्यों को करने के पश्चात् वे पुनः फलौदी नगर आ गये।

तत्पश्चात् फलौदी से उदयपुर स्थानान्तरण हो जाने पर कवि को सौभाग्य से पं. खडगनाथ मिश्र के सान्निध्य में विधिपूर्वक ब्रह्मसूत्र एवं शंकर भाष्य के अध्ययनों का अवसर मिला। फिर कुछ समय पश्चात् आमेर नगर में स्थानान्तरण हो जाने पर संस्कृत अनुरागियों से भेंट हुई वे सब मिलकर शनिवार को साहित्य गोष्ठी का आयोजन करते थे। वहीं होलिका त्योंहार के अवसर पर इन्होंने 'लूपाष्टकम' की रचना की। जिससे सभी का मनोरंजन हुआ। इस प्रकार आमेट नगर में बैंक सेवा के साथ साहित्य गाष्ठी का भी सुखपूर्वक अनुभव होता था। कुछ समय पश्चात् वहाँ से कोटा मण्डल के ''शाहबाद'' नामक स्थान में कवि का स्थानान्तरण हो गया।

तत्पश्चात् कवि की पत्नी भी वहाँ आ गई। वहाँ आवास व्यवस्था की समस्या तो थी ही फिर जैस-तैसे कल्लू नाम के एक वणिज के सहयोग से एकान्त के आवास गृह मिला। जहाँ पर वे रूद्राभिषेक भी किया करते थे।

चार वर्ष पश्चात् शाहबाद से बालोतरा स्थानान्तरण हो गया। वहाँ प्राय: वस्त्र व्यवसाय का अत्यधिक कार्यभार चलता था। रंगे हुए वस्त्रों को भरण पत्र के माध्यम से दूर-दराज देशों तक भेजा जाता था। अत: इस शाखा में कार्यभार को बढ़ाने वाला यह व्यवसाय था जिससे रात्रि के 12 बजे तक शाखा में कार्य करना पड़ता था। वहाँ पंजाब बैंक की शाखा भी थी। कुटिल व्यवसायी दोनों शाखाओं से ऋण ले लेते थे। सहलेखापाल यह सब जानते हुए भी रिश्वत के लोभ से सब कार्य करता था।

वणिक व्यापारी द्वारा कवि को रिश्वत का प्रलोभन दिया गया किन्तु उन्होंने शीघ्र ही मना कर दिया तथा कार्यालय में मिलने को कहा। इसके पश्चात् लेखपाल से समस्त ऋणपत्रों की जानकारी ली। और कवि की प्रार्थना पर वहाँ दो नये अंकपाल आये जिनके द्वारा पूर्ण सहयोग से अव्यवस्थित कार्य को व्यवस्थित कर दिया गया। तथा रिश्वत में लिप्त प्रंगलियाजी का वहाँ से स्थानान्तरण कर दिया गया एवं फिर शाखा के लाभ की प्रधान कार्यालय द्वारा प्रशंसा की गई।

बालोतरा नगर में कवि की कार्य कुशलता बढ़ी एवं प्रतिष्ठा भी वृद्धि को प्राप्त हुई। इस प्रकार बालोतरा रूपी तीर्थयात्रा भी सम्पन्न हो गई। इसके पश्चात् उनका स्थानान्तरण बालोतरा से जोधपुर हो गया। वहाँ जोधपुर की शाखा में भी कार्य की बहुलता थी। परन्तु कवि के नैतिक व्यवहार से बैंक के कर्मचारी सन्तुष्ट रहते थे। यह कवि के लिए सुख की बात थी।

इस समय पुन: उनका सम्बन्ध संस्कृतज्ञों के साथ हुआ। उस समय वहाँ रेलवे विभाग में कार्यरत संस्कृतज्ञ एवं संगीतवेत्ता श्री जगदीशचन्द्र आचार्य कवि के गुरु पण्डित मणिशंकर शर्मा के सखा भी थे। वहीं पर उनका सम्पर्क महाकवि गोपीकृष्ण व्यास, दारुलाल जोशी, श्रेष्ठी काबरा, पं. कालूराम शास्त्री एवं गोस्वामी हरिराम आदि विद्वानों के साथ हुआ।

इस प्रकार विश्वहिन्दु परिषद् के प्रभाव से पाण्डीचेरी से प्रारम्भ सम्मानिया श्रीमाता के जन्म शताब्दी के अवसर पर ''विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान'' इस नाम से परिषद् प्रारम्भ की गई। अत: कवि को राजस्थान प्रदेश का कार्यभार सौंपा गया। इस संस्था के माध्यम से संस्कृत प्रचार कार्य का भी अवसर मिला। 1980 सितम्बर मास में बैंक सेवा से निवृत्त हो गये। तीस वर्ष तक निरन्तर बैंक में सेवा करते हुए नौकरी में विद्यमान सम्पूर्ण अनुभव हो गये। जैसे ही बैंक सेवा से निवृत्त हुए वैसे ही बैंक व्यवस्था के लिए दी गई दूरभाष सेवा भी अपहृत कर ली गई।

वित्त व्यवहार में स्वार्थ सिद्ध धनिक भी अब घर नहीं आते थे। सौभाग्य से कवि की पुत्री का विवाह उनके बैंक सेवा में रहते हुए हुआ जिसमें - अनेकों धनिक विवाह में उपस्थित हुए। विवाह समदड़ी गाँव में ही आयोजित किया गया। वर पक्ष भी वहीं आ गये थे। जामाता शिक्षा में निरत थे। वह पुत्री भी शिक्षा के प्रभाव से राजकीय सेवा में संलग्न हो गई। उसके दो पुत्री थी। एक विकलांग परन्तु अत्यन्त प्रतिभाशाली। अत: अपनी प्रज्ञा के बल से उसने उच्च शिक्षा को प्राप्त किया। अब सुता के सहयोग से ही कवि का घर चलता था। बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था पर्यन्त जीवन में अत्यन्त संकट आये परन्तु भगवती के प्रभाव से संकटों के सागर को तैरते हुए जीवन यापन कर रहे हैं।

3. पुरस्कार एवं उपाधियाँ-

पं. श्री राम दवे जी दिनांक 22-09-1980 को स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर की शाखा ''जोधपुर'' से प्रबन्धक के पद से निवृत्त होने के पश्चात् सामाजिक, धार्मिक कार्यों में संलग्न होते हुए भी उनकी साहित्य साधना अवरूद्ध नहीं हुई। सेवानिवृत्ति के पश्चात् उनके द्वारा सेवाकाल के सुखदु:ख का वर्णन करते हुए एक कवि की रचना की गई जो कि कवि सम्मेलन में पढ़ी गई। सहृदयों ने उसको सुनकर कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसके पश्चात् कवि ने नौकरी काल में जो-जो अनुभूत किया उसको संस्कृत भाषा का ज्ञान होने के कारण संस्कृत में सर्गबद्ध लिखना प्रारम्भ किया। पं. दवे को 6-7-1990 को राजस्थान सरकार द्वारा विद्वत् सम्मान दिया गया।

इस प्रकार से ''भत्याभरणम्'' नामक महाकाव्य की रचना की। जिस पर 29-3-1992 को राजस्थान संस्कत अकादमी ने पं. दवे जी को ''माघ पुरस्कार'' से सम्मानित किया। 23.03.1998 को राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर द्वारा पं. दवेजी को विद्वत सम्मान दिया गया। 28.09.1998 को पं. श्रीराम दवे जी का जोधपुर की विविध संस्थाओं द्वारा नागरिक अभिनन्दन किया गया। तत्पश्चात् इन्हें अगस्त 2008 को मुंशीप्रेमचन्द की अमरकृति 'निर्मला' पर कोलकाता में, साहित्य अकादमी, दिल्ली का 'अनुवाद पुरस्कार' प्रदान किया गया है। पं. श्री राम दवे जी ने शिक्षा के क्षेत्र में एम.ए. (दर्शन), साहित्यशास्त्री एवं काव्यतीर्थ आदि परीक्षायें प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की।

4. दीक्षा- अपनी आराध्या देवी माँ भगवती के प्रभाव से इन्होंने माघ पूर्णिमा को डॉ. रूद्रदेव त्रिपाठी की कृपा से दीक्षा प्राप्त की। जिसमें इन्हें धर्मानन्द नाम दिया गया। इस प्रकार ललिता देवी की उपासना पद्धति जो अत्यन्त दुर्लभ थी, कवि के जीवन में आ गयी।

(क) कृतित्व भाग-

महाकाव्यकार पं. श्रीराम दवे के तीन महाकाव्य हैं-

(1) भृत्याभरणम् (2) राजलक्ष्मीस्वयंवरम् (3) साकेतसंगरम्, जिनका सामान्य विवेचन निम्न प्रकार है-

भृत्याभरणम् महाकाव्यम्-

(क) रचना का समय - सन् 1993 प्रथम संस्करण

(ख) रचना का स्थान - निवास समदड़ी (बाड़मेर) राज.

(ग) रचना का आकार- विषय वस्तु की दृष्टि से इसमें 37 सर्ग है तथा साथ ही अन्त में एक परिशिष्ट कवि परिचय का भी जुड़ा है। कविवर पं. दवे जी ने इन सभी 37 सर्गों का अलग-अलग वर्ण्य विषय के अनुसार नामकरण किया है।

(घ) रचना का प्रकाशन- राजस्थान संस्कृत अकादमी, वीरेश्वर भवन, गणगौरी बाजार, जयपुर (राज.)

(ड.) रचना का वर्ण्य विषय- कविवर पं. दवेजी ने अपने ग्रन्थ "भृत्याभरणम्" महाकाव्य को 37 सर्गों में बांटा है तथा वर्ण्य विषय के अनुसार ही उनका नामकरण किया है। सर्गों के इस महाकाव्य में भृत्याभृत्ति (नौकरी) का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है। भृत्याभरणम् महाकाव्य का संक्षिप्त सामान्य विवेचन निम्न है।

1. भृत्याभरणम् महाकाव्य-

आधुनिकता की चकाचौंध तथा स्वार्थलिप्सा के दृष्टिकोण ने जो देश की स्थिति बना रखी है उससे उपजा कवि का क्षोभकाव्य मं व्यंग्य के माध्यम से पकट हुआ है। कवि ने अभिधाशक्ति द्वारा किसी की भर्त्सना नहीं की है जिसके कारण राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा इसी काव्य पर माघ पुरस्कार प्रदान किया गया है। यह 37 सर्गों का महाकाव्य है।

"भृत्याभरणम्" युग प्रवृत्ति बोधक महाकाव्य है। इसके संक्षिप्त कथानक को कवि ने पौराणिक कल्पना से जोड़ा है। संस्कृत के प्राचीन महाकाव्य प्राय: पौराणिक अथवा ऐतिहासिक महापुरूषों के जीवन पर ही लिखे गये हैं। पं. श्रीराम दवे का यह युग प्रवृत्ति बोधक महाकाव्य अपनी अलग ही पहचान रखता है। कवि ने अपने काव्य की भूमिका में इस महाकाव्य के बीज का निरूपण करते हुए लिखा है कि ज्यों ही वे बैंक सेवा से निवृत्त होकर घर पर आये तो उन्हें सहसा सेवानिवृत्ति का सुख अनुभव हुआ जिस पर उन्होंने एक कविता लिखी जिसमें भृत्याकाल में बाबुओं के, बैंक अधिकारियों के तथा ग्राहकों के लनदेन के झंझट से छुटकारा पाने का वर्णन किया है-

"भृत्याकृत्यामिविष्टं मम हृदयमहो बन्धनादद्य मुक्तम,
भृत्योत्पाताभितापा भृतिपतिकुह-कव्याद्ययोऽपि प्रशान्ताः।
नोलाभभावे न च विषमः कोऽपि शोकोऽस्ति हानौ
नूनं भृत्यानिवृत्त्या धनपद ममता पाशतो मोचितोऽस्मि।।"

इसके साथ ही नौकरी के समय दूरभाष, वाहन, फर्नीचर, सेवक सम्मान आदि सुख के हट जाने की वेदना भी प्रकट हुई-

भद्रपीठार्पिताश्लेषां भोगसौख्य प्रदायिनीम्।
निवृत्तोऽपि स्मरत्येनां प्रेयसीं विधुरो यथा।।

उन सेवानिवृत्ति के सुख-दु:खात्मक बीजों से यह काव्य साहित्य वाटिका का मधुरफलदायी वृक्ष खड़ा हो गया।

यह नाटिका प्रधान काव्य है। भृत्या अर्थात् नौकरी इसकी प्रधान नायिका है। आधुनिक युग में नौकरी प्राप्त करना ही मानव मात्र का लक्ष्य बन गया है जिसे पाकर वह विविध लाभ अर्जित करना चाहता है। इस पर सटीक प्रहार करते हुए यह काव्य रूपकात्मक शैली में व्यंग्य का सहारा लेकर आधुनिक युग की विडम्बना को मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करता है। यह काव्य किसी विशिष्ट कथावस्तु को लेकर नहीं चला है। भारत में नौकरी पेशा लोगों के लिए कवि ने एक सामान्य सा कथासूत्र बुना है।

कथानक-

स्वतन्त्र भारत के दर्शनार्थ नारदमुनि पृथ्वी पर आते हैं और यहाँ पर पड़े पाश्चात्य प्रभाव तथा अन्य दुर्दशाओं को बैकुण्ठ में जाकर विष्णु भगवान को बतलाते हैं-

भुवो दास्य घोरान्धकारेऽपि याते, न तत्रोदितं भाति पुण्यप्रभातम्।
स्वराष्ट्रेऽप्यहो संकरा वैजयन्ती, नवोन्मेषमुग्धाः पुराणं द्विषन्ति।।

विष्णु शायद पाप का घड़ा भरने के लिए किंवा कलियुग के प्रधान कर्म अर्थ-काम की ज्वाला प्रदीप्त करने के लिए अपनी माया भृत्या को फिरंगी कन्या के रूप में भारत में अवतरित कराते हैं-

लक्ष्मीपति प्रेरणया|लोकात् , कलिं धरिण्यामुपकर्तुकामा
गौरांगगेहेऽवतार भृत्या, नटीव नानामिनयोपदिष्टा।।

भृत्यारूपी नायिका का जन्म अंग्रेज के घर में होता है। वह भारतीयों पर अपना जादू चलाती है जिससे ज्ञान के लिए चलाई जाने वाली पाठशालाओं के आचार्य भी मोहित हो जाते हैं-

अज्ञात कौटिल्यधियस्तपस्विनः, तस्या निपेतुर्नवलोभ पाशे।
अलब्ध-गन्धा विपिने मिलिन्दाः, यथा विमुग्धा विषवल्लरीषु।।

भृत्या कुमारी अवस्था में ही उत्कोच नाम पुत्र को जन्म देती है। ये दोनों देश पर अपना प्रभाव जमा लेते हैं जिसमें शिक्षण संस्थाएँ भी समाहित हैं। उसी प्रसंग में नौकरी पाना,

पदोन्नति, स्थानान्तरण, नौकरी पेशा महिलाओं की स्थिति, भृत्याहीन पुरूषों की दशा, भृत्यालयों में संचिका (फाइलें) नायिकाओं की स्थिति, उत्कोच प्रभाव, यूनियन, सेवानिवृत्ति आदि विषयों पर व्यंग्यात्मक प्रहार के लक्ष्य से रोचक वर्णन करते हुए कवि अन्त में व्यास जी की प्रेरणा से शारदा के द्वारा लोगों की आँखें खोलने का उल्लेख करते हैं, जिससे प्रभावित होकर लोग उत्कोच का वध कर डालते हैं। अन्त में भृत्या, पुत्र शोक में विलाप करती हुई हिमालय की ओर चली जाती है।

भृतिरिति तनुजार्ति व्याकुला दीर्घकालम् निजकृतमिहसर्वं संस्मरन्त्येव जालम्।
तदुपशमनसिद्धां शारदां वीक्ष्य भूमौ, हिमगिरिमभिपेदे कतमात्मावसानम्।।

काव्य के 37 सर्गों में संस्कृत के विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। समूचे काव्य में हास्य व्यंग्य की प्रधानता है तथा आधुनिक स्थितियों का संस्कृत पद्यों में रोचक वर्णन काव्य को एक अलग पहचान देता है।

2. राजलक्ष्मी स्वंयवरम् महाकाव्यम्-

(क) रचना का समय - सन् 2001 में प्रथम संस्करण

(ख) रचना का स्थान - निवास समदडी (बाड़मेर) राज.

(ग) रचना का आकार - विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें 18 सर्ग हैं। पं. श्रीराम दवे जी ने इन सभी 18 सर्गों का अलग-अलग वर्ण्य विषय के अनुसार नामकरण किया है।

(घ) रचना का प्रकाशन - हंसा प्रकाशन, 57, नाटाणी भवन, मिश्रराजाजी का का रास्ता,चांदपोल बाजार, जयपुर-302001

(ड.) रचना का वर्ण्य विषय - कविवर पं. दवे जी ने अपने ग्रन्थ ''राजलक्ष्मीस्वयंवरम् महाकाव्यम्'' को 18 सर्गों में बाँटा है तथा वर्ण्य विषय के अनुसार ही उनका नामकरण किया है। इसमें कवि ने लोकतन्त्र को ईश्वर की युग परिवर्तन योजना मानते हुए निर्वाचन के माध्यम से होने वाले शासक के चुनाव को राजलक्ष्मी का स्वयंवर कहा है। इस युग प्रवत्ति बोधक काव्य में पौराणिक कथा के माध्यम से चुनावकालीन

दृश्यों का अत्यधिक रोचक ढंग से वर्णन किया है जो इस काव्य की अन्य काव्यों से विलक्षणता प्रदर्शित करता है।

विष्णु भगवान इस निर्वाचन स्वंयवर में ''राजलक्ष्मी'' नायिका की भूमिका के लिए लक्ष्मी को तैयार करते हैं। राजाओं से राजलक्ष्मी छीनने के लिए इन्द्र को वल्लभ भाई पटेल की भूमिका देते हैं और राजलक्ष्मी को स्वयंवर का दृश्य दिखाने एवं प्रत्याशियों का परिचय कराने के लिए सरस्वती को सखी की भूमिका प्रदान करते हैं। इसमें स्व. राजीव गांधी कालीन चुनावों का वर्णन किया गया है।

पं. श्रीराम दवे जी का यह महाकाव्य युग प्रवृत्ति बोधक महाकाव्य है। इसमें वर्तमान लोकतन्त्र की राजनैतिक प्रवृत्तियों का व्यंग्यपूर्ण वर्णन है। यह काव्य कवि की राष्ट्र भक्ति एवं राष्ट्र के सांस्कृतिक चिन्तन को भी व्यक्त करता है। उन्होंने लोकतन्त्र के उदय को युग परिवर्तन माना है जो कलियुग का ही परिपाक है। इनकी दृष्टि में प्रजातन्त्र में धर्म का अंकुश न होने के कारण कलियुग को अपना प्रभाव जमाने का अच्छा अवसर मिला है जो समाज में बढ़ती हुई अर्थ और काम की प्रवृत्ति के प्रभाव को पुष्ट करती है।

भारत के अनेक राष्ट्रभक्तों के बलिदान से प्राप्त स्वराज में राष्ट्रोन्नति की जो उदात्त कल्पना थी उसके विपरीत निर्वाचन लभ्य शासन में बढ़ती हुई अनैतिकता, सांस्कृतिक ह्रास की व्यथा इस काव्य में प्रकट हुई है।

इसमें विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसका छोटा सा कविकल्पित पौराणिक आख्यान है, जिसक विष्णु नायक है, लक्ष्मी नायिका है, इन्द्र शेष, गरूड़ आदि देवता मनुष्य रूप में अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं।

महाभारत के बाद राजा परीक्षित ने ही कलियुग को घृत पान, प्राणिवध और सुवर्ण में रहने की अनुमति दी थी उसका लाभ उठाने के लिए लोकतन्त्र को ही उपयुक्त माना गया है जिसमें धर्म का कोई अंकुश नहीं रहता।

काव्य के कथानकानुसार भगवान विष्णु अपनी सहधर्मिणी लक्ष्मी को इस नये शासन तन्त्र में राजलक्ष्मी की भूमिका निभाने हेतु मनाने के लिए प्रणय लीला करते हैं। उन्हीं की प्रेरणा से इन्द्र वल्लभभाई पटेल की भूमिका निभाते हुए राजलक्ष्मी को राजतन्त्र से लोकतन्त्र में लाते हैं। निर्वाचन रूपी राजलक्ष्मी के स्वयंवर की व्यवस्था के लिए अपने विश्वसनीय सहस्त्रफणाधर शेष को नियुक्त करते हैं। निर्वाचन में खड़े प्रत्याशियों के एवं उनके दल की नीति-रीति स परिचय कराने हेतु सरस्वती राजलक्ष्मी की सखी की भूमिका निभाती है। समस्त विलास भूमियों पर कलियुग अपना अधिकार जमाता है।

यह काव्य स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के निर्वाचन कालीन घटनाओं को वर्णित करता है। इस काव्य में राजनैतिक विद्रूपताओं का व्यंग्य के माध्यम से बहुत सुन्दर रूप से वर्णन किया गया है जो वर्तमान संस्कृत काव्यों में अपनी अलग पहचान रखता है।

3. साकेतसंगरम् महाकाव्यम्-

(क) रचना का समय - सन् 2003 में प्रथम संस्करण

(ख) रचना का स्थान - निवास समदडी (बाड़मेर) राज.

(ग) रचना का आकार - विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें 15 सर्ग हैं। पं. दवे जी ने इन सभी 15 सर्गों का अलग-अलग वर्ण्य विषय के अनुसार नामकरण किया है।

(घ) रचना का प्रकाशन - राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र 29A माली कॉलोनी, चाँदपोल बाजार, जयपुर

(ड.) रचना का वर्ण्य विषय - कविवर पं. दवे जी ने अपने ग्रन्थ ''साकतसङ्गरम्'' महाकाव्य को 15 सर्गों में बाँटा है। तथा वर्ण्य विषय के अनुसार ही उनका नामकरण किया है। ''साकेत संगरम्'' श्रीराम जन्मभूमि (अयोध्या) मुक्ति संघर्ष के आधार पर विरचित 15 सर्गों का विविध आयोजनों, कारसेवकों के साहस आदि का, विविध छन्दों में निबद्ध आधुनिक महाकाव्य है जिसमें लगभग 600 श्लोक हैं। महाकाव्य वीररस पूर्ण है। इस काव्य का आरम्भ श्री राम जन्मभूमि पर 30 अक्टूबर 1990 को संघर्ष में वीरगति को प्राप्त हुए कवि के अभिन्न मित्र, विश्वहिन्दु परिषद के प्रदेश प्रमुख

कार्यकर्ता प्रो. महेन्द्रनाथ अरोड़ा की पुण्य स्मृति में प्रारम्भ किया जिसकी पूर्णाहुति 6 दिसम्बर 1992 में श्रीराम जन्मभूमि स्थित विवादित बाबरी मस्जिद ढांचे के ध्वस्त होने पर की गई थी, जिसके कवि स्वयं प्रत्यक्षदर्शी थे।

इस काव्य में देश के स्वतन्त्र होने पर भी देश की अस्मिता की अपेक्षा पर प्रबल आक्रोश की अभिव्यक्ति है। देश की स्वतन्त्रा से पूर्व इस देश से फिरंगियों की सत्ता समाप्त होने पर यह देश पुनः अखण्ड रूप से स्वतन्त्र होगा, ऐसा स्वप्न देखने वाले हिन्दु समाज के देखते-देखते इस भूमि के खण्डित होने की तीव्र वेदना है।

दास्यं गलिष्यति फिरंगिजनस्य देशात्, स्वातन्त्रयमाप्स्यति धरेयमखण्डपिण्डा।
इत्येव चिन्तयति हिन्दुजने प्रमुग्धे, हा हन्त ! कोऽपि धरणीं शकलीचकार।।[7]

विदेशी यवन आक्रान्ताओं की नृशंस परम्पराओं पर गर्व करते हुए उन्हें अपने धर्म के साथ जोड़कर देश से भी अपने साम्प्रादायिक आग्रह को ऊपर मानने वाले जिन यवनों के साथ, एकता के लिए अथक प्रयास किये गये। यहाँ तक कि अपने इतिहास को अन्यथा स्वीकार कर लिया गया फिर भी हम उन्हें अपना नहीं बना पाये। अन्ततोगत्वा उनके दुराग्रह और आतंकों के सामने विवश होकर देश का विभाजन स्वीकार किया गया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भी इस कड़वी घटना को भुलाकर अपने सत्ता के तुच्छ स्वार्थ के लिए तुष्टीकरण की नीति अपनाकर देश के विभाजन मनोवृत्ति का ही पोषण करने वाले नेतागण, इस देश की संस्कृति, इतिहास और धर्म की रक्षा के लिए अनेक बलिदान करने वाले बहुसंख्यक हिन्दु समाज में फूट डालते रहे। इस देश की अस्मिता को जगाने वाला इतिहास झुठलाया जाता रहा। सौभाग्य से वल्लभ भाई पटेल के प्रयास से सामनाथ मन्दिर का तो निर्माण हो गया परन्तु वर्ण संकर संस्कृति के पोषक पं. जवाहरलाल नेहरू की पाश्चात्योच्छिष्ट नीति के कारण देश में अस्मिता न जाग पाई। प्रत्युत जो हमारी संस्कृति और धर्म की अस्मिता को जगाने वाली राम जन्मभूमि थी, उसके ऊपर स्थित बाबर की बर्बर क्रूरता के कलंक की भी सुरक्षा का आग्रह किया जाता रहा।

यत्रावतीर्णाः रघुवंशवीरा-स्त्रातुं हि धर्मं विषमऽभिभूतम्।
तत्राद्यते बर्बर बाबरस्य, कलंक रक्षाभिनिवेश-निष्ठाः[8]

जिस राम जन्मभूमि के लिए स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दू समाज को अनेक बार संघर्ष करना पड़ा था इसे दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। कैसी विडम्बना है कि समस्त धर्मों का आदर करने वाले हिन्दू समाज को आज धर्म निरपेक्षता की ओट में एक मिथ्या पाठ पढ़ाया जा रहा है।

दिशन्ति मार्गं खयेऽद्य धूकाः, काकाः पिकं गीतपथं दिशन्ति।
मृगा मृगेन्द्रं भुवि भेषयन्ति, बका मरालानवमानयन्ति।।[9]

हिन्दु के हृदय में अपने ही देश में इस प्रकार अपनी अवमानना से तीव्र आक्रोश है। इस काव्य में हिन्दुओं की अस्मिता को आहत करने वाले तथा पाश्चात्य संस्कारों को पल्लवित करने वाले नेहरूवादियों के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति है।

जातो विप्रकुलेऽपि शास्त्रविमुखो पीठे प्रधानेस्थितः
आश्रित्यांग्लपथं विहाय मुनिभिः सन्दर्शितां पद्धतिम्।
चक्रे शासनमत्र धर्मरहितं येनारयो जृम्भिताः,
जाता भारतपुण्यभूमितनया आस्तास्मिता हिन्दवः।।[10]

हिन्दुत्व का बोध कराने वाले एवं राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत करने वाले राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का उदय तथा उसके द्वारा प्रचारित हिन्दुत्वबोध का इस काव्य में वर्णन किया गया है। इसमें हिन्दु की हीन भावना पर प्रस्फुटित हृदय की वेदना है-

लुप्तास्मिता कथमितो निज विक्रमाढ्या
विस्मारितः कथमनेन च राष्ट्रधर्मः।
शौर्ये मृगेन्दमदमर्दन - सक्षमोऽपि
चित्रं नु सर्वदमनः शशकाद् बिभेति।।[11]
श्रीरामसत्रारणिमन्थनोत्थो, हुताशनो देवमयः प्रचण्डः।
धृत्वा विरेजे लघुदीपरूपं विष्णुर्यथा वामनदेव देहः।।[12]

यह साधारण दीप ज्योति नहीं थी। यह हिन्दुओं के हृदय से उमड़ी हुई अस्मिता ज्वाला थी। यह हिन्दु हृदय में प्रमोद पीयूष भरने वाली, शत्रु हृदय को प्रकम्पित करती हुई, वीरों की विजय-प्रमाण सरणी थी। यह भारत के विक्रम का उदय करने वाली राष्ट्र की वैभवलक्ष्मी थी।

हिन्दूनां हृदयेऽस्मितोदयकरी, मोदामृताप्लाविनी,
शत्रूणां मनसां सुखाश्रययहरी धर्मद्विषां ध्वंसिनी।
वीराणां विजयप्रयाणसरणी राष्ट्रश्रियो वर्धिनी,
भूयाद् भारत-विक्रमोदयकरी श्रीमरादीपद्युतिः[13]

सम्वत् 2048 तदनुसार 30 अक्टूबर 1990 को प्रबोधिनो एकादशी के दिन श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर के जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ करने के लिए देश के कोने-कोने से रामभक्त कारसेवकों की टोलियाँ अयाध्या की ओर चल पड़ी। रामकालीन अयोध्या के वैभव का स्मरण करते हुए कारसेवकों का प्रवाह उमड़ पड़ा था। सारा हिन्दु समाज आज मानो वर्ण, जाति, सम्प्रदाय, प्रान्त, भाषा, वेशभ्षा का भेद भुलाकर अपनी प्रचण्ड एकता का परिचय देता हुआ अयोध्या की ओर बढ़ रहा था। इस राम जन्मभूमि क आह्वान से आज नदियों में उफान आया हुआ सा प्रतीत हो रहा था। शेर भी अपनी गुफाओं से बाहर निकल कर दहाड़ रहे थे। हिमाच्छादित पर्वतों की भी जड़ता अस्त हो गई। आज सारी धरा विचलित सी दिखाई पड़ रही थी।

यया नगापगा-प्रवाह तीव्रतोत्तरङ्गिता
यया मृगेन्द्र मण्डलेऽस्ति गर्जना प्रवर्धिता।
प्रबोधिता यया नगा हिमौघजाड्यतां गताः,
धुनोति सा। भूतलं नु रामजन्मभूकथा।।

चारों ओर से अध्योध्या की ओर बढ़ते हुए जन प्रवाह को रोकने के लिए प्रशासन ने कई अवरोध खड़े कर दिये थे परन्तु सारे अवरोधों को आसानी से पार करते हुए रामभक्तों को मानों महावीर से शक्ति प्राप्त हो रही थी।

भित्वावरोधसन्दोहं व्युत्क्रम्य संकटोदधिम्
हनुमद्वीर्यसम्पन्नाः प्रययुर्निर्भयं जनाः।।[14]

महाकाव्य के अष्टम सर्ग में वीररस की पराकाष्ठा है। इस साकेतसंगरम् महाकाव्य में उन लोगों का मार्मिक वर्णन भी है जिन्होंने इस संगर में अपने प्राणों की आहुति दी। रामजन्मभूमि की विजय के पश्चात् उसके विरोधियों ने अपने व्यक्तियों की भर्त्सना की जिसका अद्भुत वर्णन भी है। मुनियों का वर्णन करते हुए जो कहा गया है वह उपमा में कालिदास की स्मृति को नवीन करता है।

अपनयतु विमूढा भ्रान्तिमेनां हृदन्तात्,
वसति मुनि कृशाङ्गे वज्रदेहो दधीचिः।
भजति किल कृशानुस्तस्य काषाय-चीरम्,
लसति च विषमाक्षो भस्मना लेपितांगे।।[15]

इस प्रकार क्रूर अत्याचार को देखकर कवि व्यथित होकर श्रीराम, लक्ष्मण एवं हनुमान के पौरूष को याद करता है एवं उनसे निवेदन करता है कि एक बार अपना पौरूष यहाँ साकेत में पुनः दिखायें जिससे राम जन्मभूमि की रक्षा हो सके।

महाकाव्य के अन्तिम श्लोक में उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री को प्रशंसा की है। अतः अनुमानतः काव्य के नायक वहीं है जिन्होंने इस युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त की।

धन्यः कल्याणसिंहो रघुपति चरणाम्भोजभक्ति-प्रतिष्ठः,
जित्वा यो वै सपत्नान् नव चितिसमरे प्राप राज्याधिपत्यम्।
हत्वा साकेतनिष्ठं रिपुकुलकलिंत लांछनं साहसेन,
लेभे पुण्यां प्रतिष्ठामगणित-पदवीपीठलोभो वरेण्यः।।

इसके अलावा पं. श्रीराम दवे जी ने 13 खण्डकाव्यों की रचना की है जिनका वर्ण्य विषय विवेचन निम्न प्रकार है-

1. वियोगशतकम् खण्डकाव्य-

(क) रचना का समय - संस्कत वर्ष 1999-2000 चैत्र शुक्लाप्रतिपदा सं. 2056

(ख) रचना का स्थान - निवास समदडी (बाड़मेर) राज.

(ग) रचना का आकार - विषयवस्तु की दृष्टि से यह 1 खण्डकाव्य है। इसमें कुल 11 पद्य है।

(घ) रचना का प्रकाशन - प्रिंटिंग हाउस जालोरी गेट के अन्दर, जोधपुर

(ङ.) रचना का वर्ण्य विषय - 'सर्वभाषाकालिदासीयम्' द्वारा प्रकाशित एक ओर संस्कृत काव्य कविवर श्रीराम दवे द्वारा विरचित् ''वियोगशतकम्'' मेघदूत काव्य के मार्ग का अनुसरण करता सा दिखाई देता है। इसमें कालिदास के मेघदूत की स्पष्ट आभा सुधिजनों को दृष्टिगोचर होती है। इसका छन्द भी मेघदूत के समान सम्पूर्ण काव्य में मन्दाक्रान्ता है और पूर्ण काव्य में श्लोकों की संख्या 111 है। जोकि साहित्य एकेडमी

द्वारा स्वीकृत मेघदूत की है। साथ ही यत्र-तत्र प्रतीक एवं प्रयोग तो मेघदूत क है ही। इसका मूल स्वर भी वही प्रिय वियोग जनित शोक है जिसके कारण मेघदूत विश्वव्यापी हुआ, क्योंकि अंग्रेजी कवि शैले ने ठीक ही कहा है-

Our sweatest songs are those that tell us sadest thought.

वैसे ग्रन्थ के नाम से योगी श्रेष्ठ भर्तृहरि के त्रिशतक का समरण भी आ सकता है जिन्होंने वैराग्य, नीति एवं श्रंगार के भावों को काव्य में ढाला किन्तु वियोग शोक को नहों। आश्चर्य ही है कि एक सामान्य सी घटना को पीड़ा के रूप में अनुभूत कर सशक्त काव्य का रूप दिया। यह काव्य पारम्परिकता का निर्वाह करते हुए भी आधुनिकता से अछूता नहीं है। वर्तमान जीवन शैली की जो झांकियाँ इसमें झलकती है उससे स्पष्ट है कि ''जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि''। इसी सामर्थ्य के फलस्वरूप कवि बाह्य जीवन के साथ-साथ शोकाकुल के मनस्ताप को भी प्रकाशित कर सका। कवि ने शुद्ध, सरल संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है जो कि आज के परिवेश में एक दुरूह कार्य है।

जब कवि ने अपने समवयस्क सहृदय मित्र श्री आँसूलाल संचेती को अपनी पत्नी के स्वर्गवास जनित वियोग से व्यथित देखा तो उन्हें कवि कालिदास के मेघदूत में वर्णित प्रिया विरही यक्ष का स्मरण हो आया। इसलिए इस काव्य का आदि वाक्य भी विश्व विख्यात मेघदूत के आदि वाक्य 'कश्चित् कान्ता विरह गुरुणा' ही लिया है। साथ ही साथ कवि भवभूति विरचित उत्तरामचरित नामक नाटक में सीता के वियोग में विलाप करते हुए श्रीराम की दशा का दृश्य भी सामने आया है जो कि राम प्रजारंजन के लिए कहा करते थे।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा।

वही राम सीता त्याग के पश्चात् उनके वियोग में कितने दु:खी होते हैं जिसका हृदय विदारक दृश्य उत्तररामचरित में दिखाई पड़ता है। वे अपने गृहस्थ जीवन में सीता के साथ अनुभव किये गये प्रसंगों को याद करते हुए एक सामान्य जन की तरह रोते हुए दिखाई पड़ते हैं जिनके नयनों से झरते आँसू देखकर लक्ष्मण भी रो पड़ते हैं-

क्षमन्ते वाष्पौधस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो।
विसर्पन धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।।

पत्नी अपने पति के सुख-दुःख का एक अभिन्न आश्रय होती है। जहाँ पति के हृदय को विश्राम मिलता है। उनका प्रेम वृद्धावस्था में भी कम नहीं होता। पुत्रादि की उत्पत्ति के पश्चात् कामवृत्ति का अभाव होने पर भी प्रणय सम्बन्धों में कोई अन्तर नहीं आता। ऐसे निरवच्छिन्न गृहस्थ सुख के अभाव में पति की क्या दशा होती है इसका वर्णन भवभूति ने निम्न श्लोक में बड़े मार्मिक ढंग से किया है-

अद्वैतं सुखदुखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्।
विश्रामों हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।।

राम के द्वारा उन्होंने कहा है-

प्रियाशोको जीवं कुसुममिव धर्मः क्लमयति।
प्रिया नाशे कृत्सनं किल जगदरण्यं हि भवति।।

श्रीयुत् संचेती की स्थिति भी विभिन्न प्रसंगों पर उनकी पत्नी के स्वर्गवास होने पर कवि को राम जैसी लगी। अतः उन्होंने अपने मित्र की वियोग व्यथा पर वियोगशतकम् लिखा। इसके कुछ श्लोक उनकी वास्तविक स्थिति से सम्बन्धित है। कुछ कवि कल्पना कल्पित है। यथा-

नैवं त्वद्वा सदयहृदयाः लोककल्याण-दक्षाः।
सन्तप्तानां व्यथितमनसां ये प्रसिद्धाः शरण्याः।
श्रुत्वाऽयान्ति श्रवणंसुभगं नाम तेऽत्रालकायाः,
दृष्ट्वा कान्ता-विरह-विकलां साश्रु-पातं व्रजन्ति।।[16]

अर्थात् मैंने विरह वेदना में इन लोककल्याणकारी दयालु हृदय वाले मेघों के विषय में कितना बुरा भला कह दिया। वस्तुतः ये तो विरह वेदना व्यथित मानस वाले व्यक्तियों को शरण देने वालों में गिने जाते हैं। ये तो मेरे कर्णप्रिय 'अलका' निवास का नाम सुनकर यहाँ आ गये। उन्हें तो कुबेर की अलका में जाना था। यहाँ आकर जब मुझे उन्होंने प्रिया वियोग में व्याकुल देखा तो ये भी आंसू बहाने लगे और यहाँ से लौटने को उद्यत हुए। व्याकुल मन की व्यथा निम्न श्लाक में दिखाई देती है-

पश्यैषां ते मृदुकरजुषां का दशा कंV।णानाम्,
सञ्जाता हा! विगलितरुचां धूसराणां रजोभिः।
रागा रम्याः अलकसुषमा-स्नेह-कूपी च खिन्ना,
कारां नीता इव रसविदस्तेऽद्य शृङ्गारहाराः।।[17]

अर्थात् देखो उन बेचारे कंकणों को, जो तुम्हारे कोमल हाथों को सजाया करते थे। वे आज मिट्टी लगने के कारण शोभाहीन हो गये हैं। तुम्हारे उस श्रृंगार कक्ष में रखे हुए ये सन्दर केशों की शोभा बढ़ाने वाला सुगन्धित तेल का पात्र तथा तुम्हारे श्रृंगार की शोभा को बढ़ाने वाले गले के हार, जो जेल में पड़े हुए रसज्ञों की तरह व्याकुल दिखाई पड़ते हैं। शोकाकुल एवं व्यथित होते हुए अपने जीवन की प्रिया के बिना नैराश्य भावना को प्रकट करते हुए कहा है-

तारूण्याढ्ये सुमुखिवदने कुण्ठिता कुन्दचर्चा,
रम्भा-रम्ये, युवतिजघने निम्बभावो नितम्बे।
चेतो-हृद्य ललित-गमने मन्दभाग्याः मरालाः,
जाता दृष्टिस्तव तु विरहे वीतलावण्य भावा।।[18]

अर्थात् हे प्रिय ! मैं क्या कहूँ? तुम्हारे विरह में मेरी दृष्टि में रहने वाला लावण्य भाव ही अस्त हो गया है। अब तो युवती सुन्दरी के मुख को देखकर कुन्द की चर्चा भी अच्छी नहीं लगती, कदली स्तम्भ जैसी जंघाओं पर शोभायमान पीन नितम्ब नीम के वृक्ष जैसे लगते हैं। अब रमणियों की सुन्दर चाल में हंसों की गति का भाव भी नहीं लगता। मदन नाम वाली प्रिया के परलोक चले जाने पर 'अलका' के स्वामी आँसूलाल संचेती के द्वारा जो विरहोच्छ्वास प्रकट हुए उन्हें अपने हृदय में अनुभव करक श्रीराम दवे के द्वारा यह अभिनव वाड्मय शरीर उक्त प्रिया का विरचित हुआ जो वियोशतकम् नामक खण्डकाव्य में है। इसकी विशेषता यह है कि यह अपनी उपस्थिति से विरह के दुःख को हर लेता है। मानो वियुक्त को प्रिया का शरीर साहित्य रूप में ही सही, पुनः मिल गया हो। इस प्रकार विरह का अन्त भी हो गया तथा दिवंगत प्रिया की स्मृति की रक्षा भी हो गई।

अलकापतिना मदने दयिते परलोकगतेकृतमुच्छ्वसितम्।
अनुभूय हृदा रचितं सुहृदा नववाङ्मयकायमशर्महरम्।।[19]

कवि द्वारा चिर विलाप करने वाले मित्र की विधुरता से उत्पन्न शोक का मूर्त रूप यह 'वियोगशतकम्' रचा गया जो अपने महज लालित्य से भावुक जनों को प्रसन्न करता रहेगा। कवि के सहृदय मित्र श्री गोपीलाल दवे एवं श्रीकृष्ण भक्त प्रिय मित्र श्री जगन्नाथ थानवी ने श्लोकों का अंग्रेजी मं अनुवाद किया है।

2. ललिता लहरी खण्डकाव्य-

(क) रचना का समय- प्रथम संस्करण 1999, वि.स. 2056

(ख) रचना का स्थान- निवास स्थान, समदडो (बाड़मेर) राज.

(ग) रचना का आकार- विषयवस्तु की दृष्टि से यह शिखरिणी छन्दोबद्ध 63 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है।

(घ) रचना का प्रकाशन- पं. श्रोराम दवे 559 बी श्रीनिकेतन 8C रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर।

(ड.) रचना का वर्ण्य विषय - यह शिखरिणो छन्दोबद्ध 63 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है। इस काव्य में कवि ने अपनी इष्ट देवी ललिता की स्तुति तथा ललिता देवी के मन्दिर के प्राचीन दृश्य एवं नवीन परिवर्तन का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। भावों की अभिव्यक्ति किसी सीमा में बंध नहीं सकती। कवि के हृदय के भाव कब, कहाँ और कैसे प्रस्फुटित होते हैं यह जानाना आवश्यक नहीं है। कवि की भावाभिव्यंजना सहृदय जनग्राही है या नहीं यही काव्य की कसौटी है।

पं. श्री रामदवे संस्कृत साहित्य के विशाल गगन में चमकता हुआ एक विलक्षण तारा है जिसकी काव्य कला ने समाज के हर पक्ष को अपनी लेखनी से अलंकृत किया है। चाहे वो माघपुरस्कृत भृत्याभरणम् महाकाव्य हो या राजलक्ष्मी स्वंयवर या साकेतसंगरम्। इन सभी महाकाव्यों में काव्य विधा का प्रत्येक पक्ष भलीभांति उजागर होता है। कवि सहृदय होता है और जो भाव उनके अन्त: चेतना में सदैव रहते हैं उन्हें कभी न कभी उद्भाषित होना ही होता है।

ललिता लहरी भी कवि की एक ऐसी ही अनूठी रचना है जो माँ ललिता के चरणों में समर्पित उनकी भक्ति से सिंचित जीवन भर की जमा पूंजी है। विलक्षण है माँ ललिता के प्रति ऐसी उसकी अगाध श्रद्धा। जीवन की प्रत्येक कठिन परीक्षा में माँ की परम कृपा से जो

सफलता मिली उसे कवि ने भगवती की परम कृपा माना और अपने व्यवस्थित जीवन की इस शाम में माँ के गुणगान स्वरूप ललिता लहरी की रचना करने का मानस बनाया। कवि का अपने गाँव, गाम्य बन्धुओं, स्वजनों से इतना मोह है कि वे अपने भक्ति मार्ग में भी उन्हें अपना सहयोगी बनाना चाहते हैं। अपने भावों को अपनो में बांटने में उन्हें अनूठा अनुभव हो रहा था।

भगवती के मन्दिर का कवि द्वारा प्रत्यक्ष देखा वर्णन किया गया। वि.स. 2055 की आश्विन नवरात्रि की समाप्ति पर जब कवि सपरिवार भगवती ललिता के दर्शनार्थ अपने ग्राम समदड़ी गये तो उन्होंने देखा कि अब गाँव से मन्दिर तक पक्की सड़क बन जाने के कारण वाहन मन्दिर तक आसानी से पहुँच जाते हैं। बाहर भी दर्शनार्थियों की सुविधा के लिए धर्मशाला, भोजनशाला, प्याऊ आदि का निर्माण हो गया है। पानी का कुण्ड भी नया बना दिया गया है। भगवती की गुफा के आगे भी बहुत सुन्दर चौक बन गया है। पूर्वकाल में यहाँ जो प्राकृतिक दृश्य था उसमें बहुत परिवर्तन हो गया है परन्तु भगवती के कन्दरागत गर्भगृह में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। नवरात्रि में मन्दिर के बाहर चौक में गरबा नृत्य भी होता था परन्तु भीतर विग्रह पूजा की स्थिति सार्वजनिक हो हाने से विशेष आकर्षक नहीं रही। कवि भगवती ललिता तथा अन्य देव प्रतिमाओं के आगे नैवेद्य चढ़ाकर स्तुति पाठ करने लगा। स्तुति के साथ-साथ इस स्थान से जुड़ी प्राचीन मधुर स्मृतियाँ भी उनके मन में जाग गई। कवि के चाचा भगदत्त भगवती के परमभक्त थे। गृहस्थ में रहते हुए भी उनका अपरिग्रही भक्त जीवन, कवि आदि सभी परिवारजनों के लिए आदर्श था। भगवती ललिता के ललाट पर केसर का तिलक लगाकर उसके आगे दुर्गासप्तशती का पाठ करना उनका नित्य नियम था। उनकी पूजा से भगवती ललिता का विग्रह दिव्य दिखाई देता था।

यहाँ की पुरानी झाडियाँ, पथरीला संकरा मार्ग, वर्षा में बहते झरने, नीचे बना जल कुण्ड, बाजार में बहता जल प्रवाह, मन्दिर से दिखाई पड़ता लूणी नदी का वर्षा में बहता जलपूर तथा यहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का कवि ने ललिता लहरी में आश्चर्यचकित वर्णन कर सजीव सा कर दिया है। यथा-

उदग्रग्रीवैषा विटपवसनावेष्टितकटी,
पयोदैः पीनाङ्.गी विविधलतिकाश्यामलतनुः।

पयस्रावस्निग्धा कलभकुलमुग्धेव करिणी,
सरित्फेनापूरे प्लवन-धृतकामा शिखरिणी।।[20]

वृक्ष वसन वेष्टित कटि प्रदेश, मेघों के आवरण से पीन कलेवरा, विविध लताओं की हरीतिमा से श्यामल शरीरा, यह शिखरिणी अपनी गर्दन ऊपर उठाये हुए हथिनी सी लगती है जो वर्षा में लूणी नदी के प्रवाह में बहते मोटे-मोटे फेंनों को अपने ही शावक समझकर पुत्र स्नेह से द्रवित हृदया स्वयं नदी में तैरने की कामना करती हुई सी लगती है।

कन्दरा के भीतर मध्य में विराजमान महालक्ष्मी स्वरूपा भगवती ललिता एक ओर महाकाली की प्रतिमा, दूसरी ओर महासरस्वती का प्राचीन विग्रह, इन सबके आगे सिन्दूर चर्चित गणपति, अन्त में त्रिशूलधारी बटुक भैरव भगवती के परिवार का दृश्य उपस्थित कर रहे थे। मन्दिर से दूर दिखाई पड़ने वाला लूणी नदी के बीच में बाँटनाथ महादेव का स्थान भी भगवती के परिवार से जुड़ा सा प्रतीत हो रहा था। भगवती के वात्सल्य भाव का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-

सलिलं खेलन्तः समधिगत - वात्सल्य - विभवाः,
चरन्त्याकर्षन्तस्तव ललितकौषेयवसनम्।
हरन्तो नैवेद्यं ह्यभयमिभवक्त्राश्वबटुकाः
गृहिण्यास्ते लीलां चकितमिव पश्यामि ललिते।। ल.ल.[21]

हे ललिते माँ ! तुम्हारा अबोध प्राणियों के प्रति भी कितना मातृतुल्य वात्सल्य भाव है। देखो। ये तुम्हारे पुत्र गणेश के प्रिय वाहन मूषक भी निर्भय होकर तुम्हारी गोद में खेलते हैं। उन्हें भी तुम्हारा वात्सल्य प्राप्त है। ये कभी तुम्हारे सुन्दर कौषेय वस्त्रों को खींचते हैं तो कभी आगे रखे नैवेद्य को निडरता से खाने लगते हैं फिर भी तुम्हें इन पर कभी क्रोध नहीं आता। वस्तुतः तुम्हारी गृहिणी लीला भी बड़ी आश्चर्यजनक है।

भगवती ललिता के विग्रह से मातृवात्सल्य बहता हुआ सा प्रतीत हो रहा था। उसे देखकर कवि हृदय में अनेक भावों की धसारा बहने लगी। इस भावुकता के कारण आँखें भी अश्रुधारा बहा रही थी। वहीं पर लोग पहाड़ी से पत्थर उखाड़कर पहाड़ी को विकृत कर रहे हैं। वृक्ष काटे जा रहे हैं फिर भी द्रवित हृदया करूणामयी माँ के मुख पर तनिक भी रोष की रेखा दिखाई नहीं पड़ती। मानो वह अपनी सम्पत्ति लुटाकर भी गाँव के नवनिर्माण पर प्रसन्न हो रहो

हो। साथ ही नवरात्रि में ब्रह्म मण्डली द्वारा सस्वर स्तुति पाठ एवं 'ललिता विराजे मोती डूंगरी' की लावणी तथा माताओं द्वारा गाये जाने वाले मधुर गीतों की ध्वनि कवि के कानों में गूंजने लगी।

इस प्रकार भगवती ललिता के दिव्य विग्रह को देखकर कवि हृदय में लौकिक, अलौकिक लीला के अनेक भाव उठ रहे थे, जिन्हें कवि ने शिखरिणी छन्द में 'ललिता लहरी' के रूप में प्रकट किया।

शैल निवासिनी माँ ललिता के प्रति कवि की भक्तिसिक्त भावना का पद्यबद्ध प्रयास 'ललिता लहरी' निस्सन्देह एक अनुपम कृति है। माँ की महिमा के गुणगान के साथ निज मन्दिर में विराजी, परिवार के साथ सरस्वती, भैरव, पुत्र गणेश उनके स्वरूप व करतब का वर्णन, उधर लूणी नदी के उस तट पर बाँटनाथ-महादेव, बिल्कुल सम्मुख लेकिन अपना ही अलख जगाये विराजमान है। गुहामुखी मातेश्वरी के डूंगर की पूर्व की छटा, वृक्ष, लताएँ, कुण्ड, घाटी, भौंरे, पुष्प, झरने, पशु-पक्षी गण का सुरम्य चित्रण मनोहारी है। अब मन्दिर के आधुनिकीकरण से व पत्थर खनन से वृक्षों की कटाई से इस तपोभूमि के प्राकृतिक रूप का क्षरण हुआ है लेकिन यह भी भगवती की अपने पुत्रों को समृद्धि हेतु सौगात है।

ललिता लहरी में वर्णित माँ के प्रति समर्मित भाव केवल एक कवि की ही कृति नहीं हो सकती यह तो कवित्व, पण्डित्य और अनन्य भक्ति का सम्मिलित सृजन है। कवि द्वारा रचित यह 'भक्त भेंट' माँ के प्रति दृढ़ और निश्चल भक्ति परिलक्षित करती है। अन्त में-

पठेदिमां या लहरीं हृदब्धेः, भावात्मिकां भक्तियुतस्तवाग्रे।
विन्देत् स नूनं गजवक्त्रमातुः, वात्सल्यदृष्टिं ललिताम्बिकायाः।।[22]

3. भारती विलास खडकाव्य-

(क) रचना का समय - प्रथम संस्करण; जुलाई, 2002

(ख) रचना का स्थान - निवास स्थान 559-B, श्री निकेतन 8C रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर (राज.)

(ग) रचना का आकार - विषयवस्तु की दृष्टि से यह कवि की एक उत्कृष्ट रचना है। इस खण्डकाव्य में 191 श्लोक हैं।

(घ) रचना का प्रकाशन - राजस्थानी ग्रन्थकार सोजती गेट, जोधपुर (राज.)

(ङ.) रचना का वर्ण्य विषय- यह 191 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है। कवि की यह एक उत्कृष्ट रचना है जो इनके इष्ट देव की अनुकम्पा से प्रकटित हुइ सी प्रतीत होती है। यह काव्य विश्व के विविध प्रकार के साहित्य निर्माण में नाद ब्रह्मात्मिका 'अ' से 'क्ष' तक की वर्णमातृका की भूमिका पर लिखा गया हृदयाकर्षक काव्य है। यही वर्णमातृका भारती भी कही गई है। आगम शास्त्र में वर्णों को मातृका नाम से अभिहित किया गया है। वर्णमालात्मक मातृका चार प्रकार की है केवल, बिन्दुयुक्त, विसर्गयुक्त एवं उभयात्मक। लोक में बिन्दु विसर्ग रहित केवल मातृका का उपयोग किया जाता है अन्य तीन भेदों का व्यवहार मन्त्रशास्त्र में ही है। अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त बिन्दुयुक्त मातृका को सर्वज्ञताकरी विद्या भी कहा गया है। तन्त्र के अनुसार ''नविद्यामातृका परा'' मातृका से परे कोई विद्या नहीं है। अकार से क्षकार तक पचास संश्लिष्टात्मक वर्णों को ही भारती नाम से पुकारा जाता है। पचास वर्ण ही उस भारती के अंग और अलंकरण माने गये हैं।

पंचाशद्वर्णभदैर्विहितवदनदोः पादयुक् कुक्षिवक्षो-
देशां भास्वत्कपर्दा-कलितशशिकला मिन्दुकुन्दावदाताम्।
अक्षस्त्रक् कुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्रीक्षणामब्जसंस्थाम्
अच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि।।

वर्ण मातृका को स्थूलमातृका कहते हैं। वही वरवी वाक् है। मध्यमा वाणो सूक्ष्मवाणी मातृका है। परा और पश्यन्ती को सूक्ष्मतर मातृका कहते हैं। यह मातृका विश्वनिर्मात्री, स्वतन्त्र अलुप्त-प्रभावयुक्त क्रिया शक्ति है। घोष, राव, स्वन, शब्द स्फोट, ध्वनि, झंकार और ध्वंकृति इन आठ प्रकार के शब्दों में व्याप्त अ से क्ष तक पचास वर्ण भट्टारक रूप मन्त्रादिमय, समस्त शुद्ध, अशुद्ध संसारों को जननी परमेश्वरी क्रिया शक्ति, अज्ञात भावा होने से अक्रमा मातृका कही गई है। यही सम्पूर्ण वाच्य वाचनात्मक वाङ्मयाभास रूप होने के कारण सक्रमा मातृका बन जाती है।

आगम शास्त्र के अनुसार इस मातृका को अष्ट वर्गों में विभक्त किया गया है। जिनके द्वारा अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं। मातृका के वर्णों से तत्वों की सृष्टि होती है।

मातृकाओं का सूक्ष्म केन्द्र कला माना गया है। प्रत्येक स्तर पर मातृका शक्ति कलात्मक बनकर परवर्ती सृष्टि का कारण बनती है।

वैखरी अवस्था में वर्णों का इच्छाकृत प्रयत्न से उच्चारण किया जाता है। अत: मन, अन्त: और बाह्य संस्कारों से युक्त होने के कारण नाना प्रकार के विकल्पों से आक्रान्त होता है। उनका अन्त:करण पर प्रभाव पड़ता है। इनको हटाकर शुद्ध विकल्प का संस्कार डालने के लिए मातृका उच्चारण की प्रक्रिया पूर्ण समर्थ है। इस उच्चारण के साथ मन, प्राण और बिन्दु का सम्बन्ध है। पल्लवक्रम एवं संपुटक्रमों के द्वारा साधक की अवधान मात्रा में तीव्रता एवं स्पन्दशक्ति पकड में आती है। इस क्रम में मन्त्रसिद्धि भी शीघ्र होती है। प्राण की भूमि से चिदाकाश में प्रवेश करते ही साधक को अपने सहज आन्तरिक अवधान की स्थिति में रहने के कारण अपने भीतर ही मातृकाओं का उच्चारण पुन:-पुन: सहजरूप में सुनाई देन लगता है। यह एक प्रकार की अन्तवैखरी अवस्था है। इससे जब और सूक्ष्म मध्यमा भूमि लब्ध होती है तब वर्ण अर्थात् ज्योतिरूप और धवन्यालकनाद निरन्तर बोध में आा है। इससे नवनाद अैर ज्योति के सप्तवर्णों का साक्षात्कार होता है। पश्यन्ती के स्तर पर प्रत्येक वर्ण, शक्ति स्वरूप है और प्रत्येक वर्णात्मक देवता है। इन शक्तियों के सूक्ष्म मिलन और मिश्रण से मन्त्र बनता है। इस साधना से मन्त्रदृष्टा को वर्णों की रश्मियों का बोध होता है। इस समष्टिस्वरूप मातृकाशक्ति का अतिसूक्ष्म स्वरूप 'विमल कला' कहलाता है। यह समस्त जगत की प्रसवित्री शक्ति है। अत: मन्त्र साधना साधक पूर्व में प्रणव पुटित वर्ण मातृका का जप करता है।

व्यावहारिक जगत में भी विद्यारम्भ वर्णमातृका से ही प्रारम्भ होता है। प्राचीन समय में विद्यारम्भ के समय ''सिद्धो वर्ण: समाम्नात:'' इसका तन्त्र व्याकरण सूत्रों को पढ़ाया जाता था। ये वर्ण ही सारी सृष्टि के ज्ञान के कारण बनते हैं। इनके द्वारा ही पद वाक्य के माध्यम से सम्पूर्ण साहित्य का निर्माण होता है। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान आदि समस्त ज्ञान साहित्य का मूल वर्ण मातृका ही है जिसे आगमों में भारती कहा गया है।

यदक्षरमहासूत्र-प्रोतमेतज्जगत्रयम्।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धमातृकाम्।।

यह वर्णमातृका प्रणव की मायाशक्ति या क्रियाशक्ति है। विश्व की विविध भाषाएँ उनका विविध प्रकार का वाग् विलास साहित्य आदि इसी अलौकिक शब्द ब्रह्म की ही अनन्त कलाएँ हैं। एक ही अकार उच्चारण में एकसा होते हुए भी विश्व की अनेक भाषाओं में विविध लिपियों के माध्यम से भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हुए हैं। उस शब्द ब्रह्म से ही वाक् सृष्टि का निर्माण होता है और लोकव्यवहार प्रारम्भ होता है। इस भौतिक सृष्टि में हम जो विविध परिवर्तन एवं परिवर्धन देखते हैं वह सब इस शब्द ब्रह्म का ही लीला का विलास है। शब्द की अनेक विधाएँ हैं। नाना प्रकार से उन्हें अभिव्यक्त किया जाता है। कभी वह कवि के मुख से कविता रूप में प्रकट होकर रसिकजनों के हृदय को आह्लादित करता है तो कभी प्रबुद्धजन की सधी हुई वाणी के माध्यम से परमतत्त्व का बोध कराता है जिसे हम दर्शनशास्त्र के रूप में देखते हैं। कभी वैज्ञानिक के माध्यम से नवीन आविष्कार के रूप में परिवर्तित हो जाता है। कभी किसी विचारक के ओजस्वी भाषण के माध्यम से सामाजिक क्रान्ति ले आता है। यहो शब्द ब्रह्म अपनी मायाशक्ति से नाना लिपियों का आवरण ओढ़कर भाषाओं के रूप में प्रकट होता हुआ प्रान्त, प्रदेश और राष्ट्र की भाषाओं का अहंकार धारण कर लेता है। यही इस शब्द ब्रह्म की सृष्टि प्रक्रिया है परन्तु इस शब्द के मूल में कवि ने भारती को ही बताया है-

शब्द ब्रह्मविमोहिनी त्वमसि हे! लावण्यलीलावती
धृत्वा त्वं कवितालतामवनितारूपं रसोन्मेषजम्।
नानालंकृतिमण्डिता नवनवान् भावान् श्रियोद् भाविनी,
चित्तं मादयसे रसाप्लुतधियां रूपैरनेकैर्युता।।[23]

अतः तुम अपनी लावण्य लीलाओं से शब्द ब्रह्म को भी मोहित कर देती हो। तुम रसोन्मेषजनक सुन्दर कविता का रूप धारण कर नाना प्रकार के अलंकारों से सजकर अपनी शोभा से नानाविध भाव जागृत करती हुई मन मोह लेती हो।

जब वह संहार प्रक्रिया करता है अथवा अन्तर्मुखी हो जाता है तब मानव की वाणी थम जाती ह। विस्तार रुक जाता है। वह विचारों के प्रवाह से निकलकर अलौकिक मौन के साम्राज्य में पहुँच जाता है। वह अपने वास्तविक स्वरूप नाद रूप में सिमट जाता है। वह अपने चैतन्य स्वरूप ज्योतिर्मय अक्षरब्रह्म के रूप में स्थिर हो जाता है। यही मोक्ष की स्थिति है। इस काव्य में शब्द ब्रह्म की माया मातृका रूप धारिणी भारती का ही लीला विलास वर्णित किया गया है।

4. कारूण्य कादम्बिनी खण्डकाव्य

(क) रचना का समय - संस्करण एवं उसका समय

(ख) रचना का स्थान - निवास स्थान समदड़ी, (बाडमेर) राजस्थान

(ग) रचना का आकार - विषयवस्तु की दृष्टि से 118 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है।

(घ) रचना का प्रकाशन - पं श्री रामदवे 559 बी. श्री निकेतन 8-C रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर (राज.)।

(ड.) रचना का वर्ण्य विषय- यह 118 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है। कवि ने इसमें अपनी माता के कष्ट भरे वैधव्य जीवन को करूण रस में पद्यबद्ध किया है। साथ ही वर्तमान नारी वेदना का भी वर्णन किया है। सम्पूर्ण सृष्टि की सृजनात्मक शक्ति का नाम ही माँ है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

''तुमको नहीं देखा हमने कभी पर इसकी जरूरत क्या होगी, ऐ माँ तेरी सूरत से अधिक भगवान की सूरत क्या होगी।''

हर युग पुरुष की प्रेरक शक्ति उसकी माँ रही है। माँ एक ऐसा उर्वर क्षेत्र है जहाँ से उत्तम बीज अंकुरित होकर पल्लवित, पुष्पित होता है और समाज को विशिष्टता देता हुआ इतिहास प्रमाण बनता है। राम की मर्यादा में कौशल्या की ममता, कृष्ण के योग में यशोदा का वात्सल्य, अर्जुन के शौर्य में कुन्ती का बलिदान, शिवाजी की वीरता में जीजाबाई का स्वाभिमान निहित है।

इस श्रृंखला में विश्व प्रसिद्ध संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् महाकवि पं. श्री राम दवे जी के ज्ञानदीप को उनकी माँ मथुरादेवी के स्नेह ने आलोकित किया। पं. दवे का व्यक्तित्व एवं कृतित्व अपने आप में विलक्षण है। संस्कृत जैसी प्राचीन भाषा में भी उन्होंने समसामयिक विषय पर व्यंग्य काव्य लिखकर। काव्य की नवीन विधा को जन्म दिया है। बैंक प्रशासक के पद पर रहते हुए भी संस्कृत साहित्य में उनका योगदान अपूर्व एवं आश्चर्यचकित करने वाला है। जिस प्रकार मूलाधार में कुण्डलनी शक्ति निहित होती है उसी प्रकार पं. श्रीराम दवे के इस बहुआयामी कवित्व का मूलाधार भी उनकी माँ मथुरा देवी है। माँ की सद्प्रेरणा से ही उन्हें इस

समय की विकट परिस्थितियों में अध्ययन एवं स्वावलम्बी बनने का मार्ग मिला। 6 वर्ष का बालक जिसके सिर पर पिता का वरदहस्त हट चुका हो, अर्थ की कोई व्यवस्था न हो, परिवार की कष्टदायक स्थिति से कवि ने अपनी माँ को जूझते देखा है। माँ के उसी कारूण्यमय संघर्ष के दृश्य से कवि मन में इस कारूण्य कादम्बिनी का बीज उद्भूत हुआ।

यह काव्य उन्होंने अपनी माँ के कारूण्य स्वरूप के लिए न लिखकर विश्व की समस्त माताओं के लिए लिखा है जो अपने निःस्वार्थ स्नेह से अपनी संतान को परिपुष्ट करती है। निम्न श्लोक कवि ने माँ के कारूण्य स्वरूप को दर्शाते हुए समर्पण के रूप में लिखा है-

खनिस्त्वं पुण्यानां गुणगणमणीनामनुपमा,
सृणिस्त्वं पापानां दुरितनिरतानां भयकरी।
मणिस्त्वं वामानां कुलचरितशीलव्रतविधौ,
धृणिस्त्वं ध्वान्तानां विपदि जनितानां जनुषि मे।।

तुम पवित्र गुण मणियों की खान थी, पापीजन का भयदायक अंकुश थी, नारियों के लिए कुल चरित्र, शीलव्रतविधियों में, मणिप्रभावी तथा मेरे लिए विपत्तिजनित अंधकार में सूर्यप्रभावी।

कवि ने अपने काव्य में माँ की महिमा एवं त्याग का सुन्दर वर्णन किया है। यथा-

शीते कन्थावृतकृशतनुः कम्बलैश्च्छादयन्ती
ग्रीष्मे स्विन्ना व्यजनधुनितैर्नो मुदा वोजयन्ती।
शुष्कैभोज्यैरुदरभरिणी चात्मनो नः कवोष्णैः
नो जाने सा कतिकति रुजोऽस्मत्कृते हा प्रसेहे।। [24]

अर्थात् जाड़े के दिनों में आप फटी गुदड़ी ओढ़ती और हमें कम्बलों से ढ़कती, गर्मी में स्वयं पसीने में तर होकर भी हम पंखे से हवा कर सुलाती, स्वंय रूखी सूखी खाकर पेट भर लेती पर हमें गर्म भोजन खिलाती, न जाने उसने हमारे लिए कितने संकट झेले होंगे। माँ के दैनिक कार्यों का मार्मिक चित्रण का अनूठा रूप इस श्लोक में दिखाई देता है।

तस्याः पाणिविलेपनोदितविभाः जानन्ति तद्भित्तयः
सा वा प्रांगण पालिता च सुरभिर्वत्सेन साकं जलैः
दूरस्थात् सलिलाशयातदुपह्रतै यस्यास्तृषा शामिता
ग्राम्याः मुग्ध ह्रदश्च भक्ति-सरसैः गीतैश्च नीता मुदम्।। [25]

अर्थात् उनकी सेवा को गांव के घर की दीवारें ही जानती थी जिन्हें उसने अपने हाथों से लीपकर उजला किया था अथवा आँगन में बंधी हुई गाय ही जानती थी, जिसके लिए दूर तालाब से पानी लाकर उसकी प्यास बुझाती, अथवा गांव की वे सीधी सादी महिलाएँ जानती हैं जो उसके मुख से भक्तिपूर्ण मधुर भजन सुना करती थी। कवि ने अपने काव्य में वर्तमान समय में माँ की दयनीय अवस्था का भी वर्णन किया है। जब माँ युवा पुत्रों के होते हुए भी वृद्धाश्रमों में जाती है।

धिक्तान् पुत्र सुतात्मजादिसुभगे संज्ञापदे संस्थितान्
ये निन्द्यैः कलितैर्निजैः पदमिदं कुर्वन्त्यहो पंकिलम्।
या धृत्वा नवमाससमात्मजठरे यं वै स्थिता संकटे
वार्धक्ये समुपागते हि सहसा तेनैव सोपेक्ष्यते।।[26]

धिक्कार है उन लोगों को जो पुत्र, सुत, आत्मज आदि सुन्दर संज्ञाओं को धारण करते हुए भी, अपने उन नामों को अपने दुष्ट चरित्रों से कलंकित कर रहे हैं। जिस माँ ने नौ मास तक उदर में पाला और संकट भोगे तथा प्रसव पीड़ा सही, उसे वे याद भी नहीं करते।

धिक्कार है उन पुत्रों को जो स्वयं तो सुन्दर भवन में निवास करते हैं आर माता-पिता, दान से बने वृद्धाश्रम में जीवन बिताते हैं तथा पुत्र-पौत्रों के रहते हुए भी अनाथ की तरह अकेले ही अपना समय अनाथालय में व्यतीत करते हैं।

उन्होंने इस काव्य के माध्यम से माँ के करूणा ऋण से कोई भी कभी भी उऋण नहीं हो सकता यही समझाने का प्रयास किया। इस माध्यम से कवि आशान्वित है कि काव्य को पढ़कर लोग माँ शब्द की गरिमा का बोध करेंगें और उसके आँचल की छाया का शीतल स्पर्श पाकर आह्लादित होंगें।

5 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य

(क) रचना का समय- द्वितीय संस्करण, 2013

(ख) रचना का स्थान- जोधपुर

(ग) रचना का आकार- 114 श्लोक

(घ) **रचना का प्रकाशक-** श्री ललिता आश्रम प्रन्यास, श्री निकेतन, 559B, 8 वी.सी. रोड़ सरदारपुरा, जोधपुर

(ङ) **रचना का वर्ण्य विषय -** यह 114 पद्यों में निबद्ध एक खण्डकाव्य है। कवि ने राजस्थान के जालौर जिले में सांचोर नगर के समीप पथमेड़ा क्षेत्र में स्थित गोविन्द गोवर्धन शाला में महाराज श्री दत्तशरणानन्द के कठोर प्रयास से स्थापित गौशाला की व्यवस्था से प्रभावित होकर इस खण्डकाव्य की रचना की है।

गोवर्धन गोशालाया दर्शनाद् हृदयोद्गताः।
भवन्तु स्तुतयो भावाः काव्यबद्धाः गवां पदे।।

इन पंक्तियों के लेखक राजस्थान के वयोवृद्ध संस्कृत मनीषी पं. श्रीराम दवे द्वारा इसी पृथ्वी लोक के सबसे बड़े गोधाम के दर्शन के दौरान जो दिव्यभाव उनके हृदय में प्रस्फुटित हुए, प्रभु प्रेरणा से वे दिव्य भाव ही काव्यबद्ध होकर 'कामधेनु शतकम्' रूप में परिणित हो गये। अतः इस काव्य के प्रणयन में ईश प्रेरणा का ही प्रधान्य है।

कवि ने काव्य के 'दत्तात्रय घोषणा' शीर्षक में इस गोशाला द्वारा सवा लाख से अधिक गोवंश की सेवा में समर्पित प्रातः स्मरणीय परम पूज्य स्वामी दत्तशरणानन्द महाराज का चिन्मय स्वरूप में निरूपण करते हुए श्लोक 99 व 100 वें में लिखा है कि जिसका मस्तिष्क सर्वदा पृथ्वीपालक सागर में उठतीहुई लहरों के समान गोरक्षा में लगा हुआ है ऐसे प्रसन्नमनस्क केवल गौदुग्ध का ही आहार करने वाले भगवा दुपट्टा एवं सफेद कंचुकधारी गोशाला के प्रहरी के समान कोई दत्तात्रेयावतारी महापुरूष इस पृथ्वीलोक के समस्त गोवंश की रक्षा के लिए रात-दिन चिन्तन करता हुआ उनके योगक्षेम की चिन्ता करता रहता है। वह यह कहता हुआ मन में खेद का अनुभव करता है कि अरे! देश के स्वतन्त्र होने पर भी इस ऋषियों की भूमि भारत में गोवध कर्त्ताओं को क्यों रोका नहीं जाता?

कवि ने 'सा नन्दिनी क्रन्दति' तथा 'क्रन्दतीयं कामधुनेः' नामक अध्यायों में जो गोवध वेदना, कामधेनु का विलाप व पुकार से सम्बन्धित हैं जो श्लोक संख्या 71 से 97 तक में निरूपण किया है।

विश्वोपकर्त्ती जनपोषयित्री, स्वाहावषट्कारहविर्विधात्री।
मूलंञ्च लक्ष्म्याः दुरितापहन्त्री सा नन्दिनी क्रन्दति साम्प्रतं हा!।।[27]

संसार का उपकार करने वाली, जनपोषिनी, देवयज्ञों के विमित्त हवि का निर्माण करने वाली लक्ष्मी का आहार समस्त पाप प्रणाशिनी धेनु नन्दिनी दुर्भाग्य से आज इस देश में अपने प्राणों की रक्षा के लिए चिल्ला रही है। वह सूक्ष्म रूप में पूज्यपाद स्वामी दत्तशरणानन्द महाराज के स्वहृदय की हो अन्तर्वेदना है जो हृदय विदारक होने के साथ भारतीय जनमानस के मानस पटल को झकझोर देने वाली है। यह वेदना राष्ट्रमाता भारतमाता की ही वेदना है। कविवर पं. श्रीराम दवे ने पूज्यपाद स्वामी दत्तशरणानन्द महाराज के अथाह हृदय सागर में डुबकी लगाकर उनकी गोरक्षा विषयक अन्तर्वेदना को देववाणी में जीवन्त चित्रण द्वारा राष्ट्रवासियों के सामने प्रस्तुत किया है। वर्तमान काल में गो को विषय वस्तु बनाकर यह प्रथम काव्य किसी संस्कृत कवि द्वारा लिखा गया है।

कवि ने गाहत्या के विरोध में किये गये आन्दोलनों में हुतात्मा महापुरूषों, वीर-क्षत्रियों, मुनियों, गुरूपासक सिक्खों, धर्मरक्षक आचार्यों, ब्रह्मचारियों को श्रृद्धांजलि देते हुए काव्य के 106 वें श्लोक में लिखा है कि इस नृशंस गोहत्या को रोकने के लिए रघुकुलवंशियों का शौर्य भी नहीं जाग रहा है। स्वतन्त्रता संग्राम में अपना जीवन सुख लुटा देने वाले भी शासन पर बैठने के कारण मौन है। धर्म का बहाना बनाकर आँख बन्द कर बैठे धर्मात्मा भी इस पाप कर्म को नहीं देख रहे हैं। यदि देश की यही दशा रही तो इस धरा पर व्याप्त पाप को कौन मिटायेगा?

येषां वै सततायासैः आनन्दवनवासिनी।
गोवर्धनगोशालैषा जाता तीर्थसमाऽधुना।।[28]

कवि ने पथमेड़ा गोधाम के पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व का वर्णन करते हुए काव्य के प्रथम श्लोक में ही लिखा है- "जिस भूमि पर किसी समय वेदोक्त श्रौतयज्ञ यागादिक हुआ करते थे, जहाँ भक्ति, ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी की अमृतधारा बहा करती थी, जिसे भगवान श्रीकृष्ण के पवित्र चरणरज का सौभाग्य प्राप्त था तथा जिस धरती पर गोधन का भरमार था। ऐसी थी ये पथमेड़ा की पुण्यधरा।"

वयोवृद्ध काव्यकार ने जयति कामदुधा सुरनन्दिनी अध्याय में कामधेनु के गौरव का वर्णन करते हुए 29 वें श्लोक में लिखा है कि-

परिक्षिति श्रीमति भूमिनाथे गते प्रविष्टः कलिरेष भूमिम्।
येनाद्य मन्ये विकृतिं प्रयाता कुलोद्भवानामपि बुद्धिरेषा।।[29]

ऐसा माना जाता है कि जब से धर्मराज परिक्षित इस धरा से चले गये, कलियुग ने यहाँ प्रवेश कर दिया जिससे यहाँ के कुलीन लोगों की बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई।

फिर भी कवि ने इस गौशाला में गो प्रेमी देवता, देवांगनाओं, ऋषि मुनियों के गोप तथा गोपिकाओं के चिन्मय स्वरूप में दर्शन किए जो इस 'कामधेनु कानन' में कार्य कर रहे हैं। स्वर्गस्था देवता किस प्रकार कामधेनु कुल की सेवा करने के लिए मनुष्य रूप में विचरण करते हुए अपनी स्फूर्ति से दिव्य ऊर्जा प्रवाहित कर रहे हैं इसका भावपूर्ण वर्णन "मनुष्य रूपेणसुराश्चरन्ति" अध्याय के 41 से 75 में पढ़ते समय देखने को मिलता है।

प्रस्तुत "कामधेनुशतकम्" काव्य में भी कवि ने "राष्ट्रभक्तानाम् प्रति अभ्यर्थनम्" कहकर पंडित मदन मोहन मालवीय, महात्मा गाँधी व बालगंगाधर तिलक को दुर्देव से खंडित इस राष्ट्र के मानदण्डों की गोरक्षा द्वारा अभी तक सम्मान नहीं किये जाने का सजीव चित्रण किया है। कवि ने यही निवेदन सभी बौद्धिक एवं पौराणिक देवी-देवताओं से भी किया है।

इस प्रकार भारतीय ऋषि परम्परा के संवाहक संस्कृत मनीषी कविवर पं. श्रीराम दवे ने "कामधेनुशतकम्" काव्य के 114 श्लोकों को संस्कृत के शिखरिणी, उपजाति, द्रुतविलम्बित, वियोगिनी, शार्दूलविक्रीडितम्, बसन्ततिलका आदि छन्दों में विविध अलंकारों एवं रसों में निबद्ध कर संस्कृत साहित्य के कलापक्षीय मानदण्डों द्वारा पूरित भाव से एक ऐसा काव्यपाक तैयार किया है जो युगों, शताब्दियों तथा पीढ़ियों तक भारतीय जनमानस को नवचेतना प्रदान करता रहेगा। इस काव्य का भारतीय जनमानस एवं संस्कृत जगत में समुचित आदर होगा। जिस प्रकार राजस्थान के शौर्य, उत्सर्ग, समर्पण, वाङ्मय की साधना सांस्कृतिक सेवा आदि के क्षेत्रों में अनेक कीर्तिमान बनाए हैं उसी प्रकार गो सेवा के इतिहास में भी इसके कुछ सत्प्रयासों ने इसका नाम अमर कर दिया है।

यह हर्ष की बात है कि इस गोशाला के अवलोकन से राजस्थान के वयोवृद्ध वरिष्ठ कवि पं. श्रीराम दवे के मानस में ऐसी प्रेरणा उदभूत हुई कि उन्होंने विभिन्न छन्दों में गो जाति के महत्त्व तथा उसके सन्दर्भ में उठने वाले अन्य अनेक विचारों का आधार लेकर संस्कृत में प्रेरक काव्य 'कामधेनु शतकम्' की रचना की।

काव्य में पथमेड़ा ग्राम की जनता, राजवंश और समृद्धजनों द्वारा लिये गये गो सेवा के संकल्प का विवरण है। गाय इस दशे की जीवनाधार है। इस बात का ही तो यह प्रतीक है कि हमारे यहाँ कामधेनु की अवधारणा इस प्रकार की गई है कि वह मानव को सब तरह के मनोवांछित फल प्रदान करती है।

इस प्रकार यह काव्य प्राचीन काव्य परम्परा का भी प्रतीक है और आधुनिक विषयवस्तु का सटीक चित्रण कर आधुनिक भावबोध को भी मूर्त रूप देता है। हमारे यहाँ शतक लिखने की परम्पम्परा सदियों से चल रही हैं। जैसा कि भृर्तहरि का शतकत्रय सुप्रसिद्ध इन शतकों में कम से कम 100 पद्य अवश्य होते हैं। चाहे उनके अतिरिक्त और कुछ पद्य उनके साथ में रहें। इस दृष्टि से यह शतक भी भर्तृहरि का शतकत्रय सुप्रसिद्ध है। इन शतकों में 100 पद्य कम से कम अवश्य होते हैं। चाहे उनके अतिरिक्त और कुछ पद्य उनके साथ में रहें। इस दृष्टि से यह शतक भी भर्तृहरि से प्रारम्भ हुई शतक परम्परा की एक सुन्दर कड़ी सिद्ध होगा, यह नि:सन्देह कहा जा सकता है।

काव्य का प्रथम अध्याय "जयति पथमेड़ावनितलम्" गोधाम की पवित्र तीर्थभूमि का यशोगान है, जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं गोचारन् के लिए उचित समझा। द्वितीय अध्याय कामधेनु गौरव की अपूर्व महिमा एवं गौ-गौरव से ओतप्रोत है। 'जयतिकामदुधा सुर नन्दिनी' नामक तृतीय अध्याय में गामाता के मंगलमय वरदान को सर्व सुखों का मूलभूत कारण बताते हुए कवि ने गोमाता के अनन्त दिव्य पारमार्थिक गुणों का निरूपण किया है। काव्य का चतुर्थ अध्याय 'मनुष्यरूपेण सुराश्चरन्ति' में आनन्दवन पथमेड़ा के गो सेवा का गुणगान हैं। यहाँ सभी देवी-देवता, ऋषि-मुनि, स्वयं मनुष्य के रूप में गोपालक बने हुए हैं। 'नन्दिनी क्रन्दनम्' नामक पंचम अध्याय में आधुनिक युग में गोमाता की दयनीय दशा और उसके क्रन्दन व चीत्कार का बड़ा ही कारुणिक वर्णन है। पण्डित प्रवर ने 'गोवध वेदना' नामक षष्ठम् अध्याय में भारतीय

कृषि एवं अर्थव्यवस्था की आधारभूत गोवंश के निर्मम वध पर गाय की पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया है। 'देवान् प्रति अभ्यर्थना' नामक अन्तिम अध्याय में देवताओं से प्रार्थना की गई है कि इस देव भूमि भारत में गोवध का अभिशाप कब समाप्त होगा? देशवासियों का शौर्य कब जागेगा? गोमाता का करूण क्रन्दन कब रूकेगा? देश का अभ्युदय कब होगा?

संक्षेप में यह काव्य पाप और तापों को नष्ट करने वाली सर्वकल्याण स्वरूपा गो का महिमागान एवं आधुनिक युग में गो की व्यथा का यथार्थ चित्रण है।

6. सौन्दर्यलीलामृतम् खण्डकाव्य-

(क) रचना का समय- संस्करण 2000

(ख) रचना का स्थान- पं. श्री राम दवे 559-बी, श्री निकेतन, 8-सी रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर (राज.)

(ग) रचना का आकार- विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें 143 पद्य हैं जिसकी रचना कवि ने 1949 में बम्बई में रहते हुए की थी।

(घ) रचना का प्रकाशक- राजस्थानी ग्रन्थागार सोजती गेट, जोधपुर

(ङ) रचना का वर्ण्य विषय- यह 143 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है। सौन्दर्य प्राणी एवं प्रकृति का ईश्वर प्रदत्त अनुपम अलंकरण है जिसे देखकर दृष्टा अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है और यही आनन्द सहृदय के हृदय में रस का रूप धारण कर लेता है।

इस अपार काव्य संसार में कवि ही प्रजापति है जो पुरूष और प्रकृति के संयोग से अपनी इच्छा के अनुसार नई-नई सृष्टि करता रहता है। कभी वह नारी के काले केशों को मेघ एवं गोरे मुख को चन्द्र बताता है तो कभी कमल और भौंरे, तो कभी कभी गंगा-जमुना के संगम का रूप दे देता है। कवि को नारी के लावण्य को प्रकृति से जोड़ने में अपूर्व आनन्द की अनुभ्ति होती रही है। वह तो वनिता के सौन्दर्य वैभव में जुड़े श्रृंगार रस में ब्रह्मानन्द का अनुभव करता हुआ उसे रस का आलम्बन बनाता है।

कवि विबुधपुरोहित की भाँति है जो वर-वधु को गृहस्थ सूत्र में बाँधने के समान प्रकृति के साथ योषिताओं के अंगों को धर्म सम्बन्ध स्थापित करता है। उसे तो साधारण धर्म के

माध्यम से कविता कामिनी को अलंकारों से मण्डित करने में आनन्द की अनुभूति होती है जिसे सहृदय ही अनुभव कर सकता है।

कवयो विबुधा विप्राः प्रकृत्या सह योषिताम्।
अङ्गनां धर्मसम्बन्धं कुर्वते साधुचतसा।।

मानव अपने जीवन में विभिन्न भावों का अनुभव करता है। वे मानव हृदय में बसने वाले भाव साहित्य शास्त्र में रति आदि स्थायी भाव कहलाते हैं जो वस्तुत: एक प्रकार की चित्तवृत्तियाँ हैं। जब वे स्थायी भाव ''सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादि वेदवाक्य के अनुसार सत्य तथा विज्ञानरूप होने से स्वत: प्रकाशमान आत्मानन्द के साथ अनुभूत होते हैं तब वे ही स्थायीभाव रस संज्ञा को प्राप्त करते हैं। उसी अवस्था में 'रसोऽहम्' ऐसी प्रतीति होती है।

अत: काव्य निर्माण में भी आनन्द प्राप्त होता है। यह तो भारती का विचित्र विलास है जिसका अनुभव कवि को ही हो सकता है। काव्य निर्माण में जो प्रयोजन बतलाए हैं। वे तो प्ररोचक उपाय मात्र हैं। परमार्थत: काव्य का प्रयोजन रसास्वादमूलक आनन्दातिशय ही हैं।

कवि ने यह काव्य देश विभाजन के पाश्चात् सिन्ध से राजस्थान एवं राजस्थान से मुम्बई जाने पर लिखा। जब कवि बम्बई में संस्कृत अध्यापक के पद एक विद्यालय में कार्यरत थे। वहाँ आवास समस्या के कारण कवि के साथ एक छोटी केबिन में अन्य चार सदस्य रहते थे। वे सब सांयकाल में चौपाटी घूमने चले जाते जिनमें से एक कवि मित्र रसिक प्रवृत्ति के थे जो वहाँ के दृश्यों को रसिक भाव से देखा करते थे। कवि हृदय होने से पं. दवे जी ने वहाँ के मनोरम दृश्यों को अपनी कल्पना के साथ संयुक्त कर काव्यबद्ध कर दिया। इस काव्य में श्रृंगार रस के दोनों पक्षों का चित्रण है। इसमें सौन्दर्य, संयोग, वियोग एवं वैराग्य का मनोहारी समन्वय है यथा-

अस्मिन् मोहमयी विशालनगरीगर्भे कुतो विश्रमः,
लीला प्रस्थविचिन्तने तु कवितासम्भावनाऽप्यात्मनः।
विश्रान्त्यै मनसः पयोधिपुलिने प्राप्तो मनागेकदा,
दृष्टं तत्र रसान्वितं कविहृदा यत्तन्मया वर्णितम्।।

7. **परिखायुद्धम् खण्डकाव्य-**

(क) रचना का समय- प्रथम संस्करण 2006

(ख) रचना का स्थान- निवास स्थान, समदड़ी (बाडमेर) राज.

(ग) रचना का आकार- विषयवस्तु की दृष्टि 126 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है।

(घ) रचना का प्रकाशक- हंसा प्रकाशन 57, नाटाणी भवन, मिश्रराजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार, जयपुर।

(ङ) रचना का वर्ण्य विषय- 'परिखायुद्धम्' यह 126 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है। अनन्तकाल से विश्व के प्रलय और उदय की प्रवृत्तियाँ होती आई है। अनेक शासन आये और चले गये। आज चारों ओर प्रजातन्त्रात्मक शासन आने पर भी युद्ध की प्रवृत्ति समाप्त नहीं हुई। भौतिक उन्नति के नायक अमेरिका देश विश्व विनाशकारी शस्त्रों से सम्पन्न है। इन्हीं लोमहर्षक घटनाओं का इसमें वर्णन है।

ईश्वर अपनीमाया से संसार का सृजन करता है। उसका पालन करता है और विनाश भी करता है। विनाश के भी निमित्त होते हैं, पूर्व में दुर्योधन, दु:शासनादि दुर्भद शासकों के व्यवहार से विनाशकारी महाभारत हुआ था। भगवान विष्णु के भी देखते - देखते अनेक वंश नष्ट हो गये। इसके बाद शासन पर बैठे हुए क्षत्रियों के धर्महीन होने पर यवनों का प्रवेश हुआ। इन्द्रप्रस्थ क्षत्रियों के हाथ से चला गया, मुगलों का शासन चल पड़ा। दूर से आये यवन राज सिंहासन पर बैठ गये, राजा पराजित हो गये। युद्ध के कारण यह धरा रक्त रंजित हो गई। राणाप्रताप, शिवाजी आदि धर्मात्मा राष्ट्र भक्त वीरों ने यवन शासन का विरोध किया। समय बीतने पर प्रशासन में प्रमत्त हुए सुरा सुन्दरी के मोही मुगल अंग्रेजों की सेना से पराजित हो गये। कालचक्र में भारतीयों के स्वतन्त्रता युद्ध में अंग्रेज भी पराजित होकर चले गये।

संसार के चारों ओर प्रजातन्त्रात्मक प्रशासन के व्याप्त होने पर भी युद्ध की प्रवृत्तियाँ नहीं रूकी। अपनी प्रभुता की रक्षा वहाँ भी समाप्त नहीं हुई। इस तन्त्र में भी प्रलयंकारी अणुशस्त्र प्रकट हो गये। प्रजातन्त्र में राष्ट्रों में परमाणु शस्त्रों को बढ़ाने की होड लग गई। भौतिक उन्नति का नायक अमेरिका राष्ट्र विश्वविनाशक शस्त्रों से सम्पन्न हो गया। जापान देश ने

उसके परमाणु शस्त्रों के प्रहार का विनाशकारी फल भी भोगा। इधर इस भौतिक उन्नति के युग में मरूस्थलवासी ईराक के लोग भी भूमि से निकले पेट्रोल से समृद्ध हो गये और अन्य छोटे राष्ट्रों को तुच्छ समझने लगे। ईराक के शासक सद्दाम हुसैन ने भी अपने निकटवर्ती कुवैत राज्य को अपनी शक्ति से अपनी अधीन करने का प्रयत्न किया। अंग्रेजों ने अपने शासन काल में अनेक राष्ट्रों के टुकड़े कर दिये थे। कुवैत भी जो पहले ईराक का ही अंग था उस पुनः प्राप्त करने के लिए सद्दाम ने प्रयास किया। ईराक के युद्ध को रोकने के लिए अमेरिका बीच में पड़ा। अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा समझाने पर भी ईराक के राष्ट्रपति ने अपना हठ नहीं छोड़ा। इसलिए सभी पश्चिमी राष्ट्रों ने मिलकर ईराक पर हमला किया। ईराक के अनेक युद्ध साधन अग्नि गोलों की चारों ओर की गई वृष्टि से भड़की तेल की ज्वाला में जल गये। समुद्र में प्रलयंकर अग्नि के भड़कने से समुद्र में शेष शय्या पर सो रहे विष्णु का क्या होगा? यह मिथ्या चिन्ता ही कवि के हृदय में उत्पन्न हुई और काव्य के रूप में प्रकट हो गई।

युग प्रवृत्ति का निर्वाह करने के लिए भगवान विष्णु की प्रेरणा से इन्द्रादि देवता, बृहस्पति आदि देव गुरू भी इस भौतिक युग में इनकी आज्ञा का पालन करते हुए व्यवहार कर रहे हैं। स्वर्ग में बैठी देवांगनाएँ युद्ध की घटना सुनने के लिए विष्णु पत्नी लक्ष्मी के पास पहुँचती हैं और वे समुद्र में सो रहे विष्णु का कुशलक्षेम पूछने लगती है। स्त्रियाँ जब मिलतो हैं तो स्तुति निन्दा के प्रसंग भी उठते हैं। इन्द्राणी आदि देवांगनाएं इस युद्ध में संकटग्रस्त हुए अपने पतियों के संकट का कारण लक्ष्मी पति विष्णु को मानती हैं। स्त्रियों में परस्पर दोष दर्शन के कारण विवाद खड़ा हो जाता है। इतने में ही संसार के समाचार वाचक नारद मुनि आ जाते हैं और युद्ध का वर्णन करते हुए देवताओं से कुशल निवेदन करते हैं जिससे देवांगनाओं की चिन्ता शांत हो जाती है। यही कल्पना इस खण्ड काव्य का विषय है जो ईराक युद्ध के कारण कवि हृदय में उत्पन्न हुआ जिसको कवि ने अपनी सरल भाषा शैली में विभिन्न प्रकार के छन्दां से निबद्ध किया है।

इस काव्य से यह ध्वनि भी प्रकट होती है कि जब कोई नेता किसी संघर्ष पूर्ण कार्य में प्रवृत्त होता है तो कई मानवों को अपने साथ भी जोड़ता है परन्तु उन पर जब कोई विनाशकारक संकट आ पड़ता है तो साथ में आने वाले सहयोगीजनों की पत्नियां इस संकट का

कारण उस नेता पर ही थोपती है और इसका उपालम्भय उस नेता की पत्नी को देती है जो प्राय लोक में देखा जाता है।

8. केलिभूकैतवम् खण्डकाव्य (अप्रकाशित)-

(क) रचना का वर्ण्य विषय- यह 193 श्लोकों का खण्डकाव्य है। इस युग में विवाह की एक बड़ी समस्या है। इसके कारण कई कुमार पिता बन जाते हैं। अतः इन अवैध बालकों की सुरक्षा के लिए समाज में कई केन्द्र भी खोले हैं परन्तु उनकी दयनीय दशा करूणाजनक है जिसे कवि ने अपनी आँखों से देखा, उसका चित्रण इस खण्डकाव्य में किया है।

जब कई युवक-युवतियों द्वारा अवैध बालकों को जन्म दे दिया जाता है तो लोकलाज के भय से वे बालक को त्याग देते हैं। उस अवैध बालक को, शिशु सुरक्षा गृह में रख तो लिया जाता है परन्तु उसकी दशा दयनीय ही होती है जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-

नग्नाधूसरगात्रचीरवसना लम्बोदराःभिक्षुकाः
चेटीपीतपयोऽवशेषचषका उच्छिष्टभोज्याशनाः।
कीटाकृष्टकलेवराडमययुताभूम्यम्बिका ङ्श्रयाः,
मृत्योः क्रोड़मुपागताअपि हतास्तेनाप्यहो तर्जिताः।।

कुछ भाग्यशाली बालकों को तो धनिकों द्वारा खरीद लिया जाता है और वे उसे पुत्रवत् पालते हैं परन्तु कुछ दुर्भाग्यशाली बालक वहीं बाल गृह में अपना दुःखदायी जीवन व्यतीत करते हैं। कन्याओं की तो यहाँ पर और भी दयनीय स्थिति है। रूपवती कन्याएं तो कुट्टनियों द्वारा खरीद ली जाती हैं जिससे वे आजीविका का साधन बन जाती हैं लेकिन रूपहीन कन्याओं का तो जीवन असहनीय हो जाता है।

यह सत्य है कि कन्याओं की पर्याप्त संख्या होने पर भी विवाह की समस्या का पूर्णतः निदान नहीं है। अंग्रेजी जाने वाले राजकीय सेवा में निरत, कुलीन को तो कोई भी रूपवती कन्या दे देता है परन्तु अंग्रेजी भाषा न जानने वाले, राजकीय सेवा से हीन तथा संस्कृत जानने वाले को तो कोई कन्या नहीं देता।

स्वच्छन्दता प्रधान आज के युग में इस प्रकार की समस्या के होने पर अविवाहित लड़का एवं लड़की का माता-पिता बनान एक सामान्य सी बात है परन्तु जो अवैध सन्तान इस समाज में आती है उसका जीवन तो नारकीय ही होता है उसके साथ कोई विवाह भी नहीं कर सकता। भारत में प्रथा एवं परम्परा की जकड़न से यह समस्या ओर दुरूह हो जाती है। कवि ने इसी समस्या का अपने इस खण्डकाव्य में उल्लेख किया है। उन्होंने एक अवैध बालक एवं अवैध बालिका जो बालक एक मन्दिर में पुजारी हैं एवं बालिका एक कुट्टनी गृह में सफाईकर्मी है। दोनों ही युवावस्था को प्राप्त है जिन्होंने समाज की चिन्ता न करते हुए शिव मन्दिर में विवाह कर लिया। इस घटना का ही मर्मस्पर्शी रोचक एवं सरल भाषा में रचना करते हुए कवि से यह काव्य बन गया।

9. मेघोपालम्भनम् खण्डकाव्य (अप्रकाशित)-

(क) रचना का स्थान- निवास स्थान समदड़ी (बाड़मेर) राज.

(ख) रचना का आकार- विषयवस्तु की दृष्टि से 102 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है।

(ग) रचना का वर्ण्य विषय- 'मेघोपालम्भनम्' खण्डकाव्य में 102 पद्य हैं। अकाल की स्थिति में विरहिणी कृषक नवोढ़ा का मेघों के प्रति उपालम्भ का वर्णन है। कवि की शब्दात्मिका सृष्टि ब्रह्मा की सृष्टि से विलक्षण है। कवि प्रजापति जड़ पदार्थों में भी मानवोचित चैतन्य का सम्पादन करता है। उसके द्वारा पत्ते-फूल से युक्त वृक्षों को पुत्र-पौत्र आदि वाले पुरूष क परिवार के समान कल्पना की जाती है। सुन्दरी के मुख लावण्य को कमल के समान स्वीकारता है तथा नायिका के केशों की उपमा घने वाले मेघों से देता है। नासिका को शुक नासिका के समान मानता है। दन्तपंक्ति को मुक्तावली के समान, कण्ठमाधुर्य को कोकिल के शब्द के समान, भुजा को कमल लता के समान कोमल, रोमावली को धूमलता के समान मनोहर तथा चरण युगल में कमल की कोमलता की कल्पना करता है। बसन्त वर्णन में महाकवि माघ के द्वारा किया गया मनोहारी वर्णन निम्न है-

भृङ्गं पल्लवपानपात्रचयने भृङ्गाङ्गनामासवे,
संगीते कलकूजितांच मदनोद्बोधे प्रियां कोकिलाम्।
सौगन्धे मलयानिलंच विटपान् मार्गश्रमोन्मूलने,
सर्वान् प्रेरयते वसन्तमहसे माघाय तस्मै नमः।।

कवि कुलगुरू कालिदास के द्वारा रचित श्लोक भी कवि की वर्णन शक्ति को पराकाष्ठा को वर्णित करता है।

धूमज्योतिः सलिलमरूतां सन्निपातः प्रकृति प्रवाह वाहको बलाहकोऽपि
विरहातुरस्य यक्षस्य कृते दूतपदे नियोजितः।

इस प्रकार कवि सृष्टि विलक्षण है जिसकी परम्परा का अनुसरण करते हुए पं. श्रीराम दवे ने 'मेघोपालम्भनम्' नामक खण्डकाव्य की रचना कर अपनी वर्णन शक्ति का प्रमाण दिया है जिसका वर्ण्य विषय निम्न है।

मेघों की अनुकम्पा के बिना अकाल पीड़ित जनों की क्या दुर्दशा होती है इसका मार्मिक वर्णन इसमें किया गया है। मरूभूमि में निवास करने वाली एक कृषक नवोढ़ा मेघ की प्रतीक्षा करते हुए वर्षा ऋतु में भी मेघ के द्वारा वर्षा न करने पर उसको उपालम्भ देती हुई कहती है कि हे मेघ! तुम मरूभूमि को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह अधिक वर्षा करते हो तथा जहाँ जल का नितान्त अभाव है वहाँ बूँद भी पानी नहीं देते हो तो तुम्हारा वारिद कहलाना उचित नहीं है परन्तु इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं, क्योंकि तुम तो इन्द्र के अधीन हो। इन्द्र जहाँ तुम्हें जल देने का आदेश देते हैं वहीं तुम जल वर्षा देते हो।

कवि ने इस खण्डकाव्य में न केवल मेघों का उपालम्भ किया है बल्कि आधुनिक मानव भी अपने भौतिक सुख के लिए जो प्रकृति का दुरूपयोग कर रहा है उसके कारण भी रूष्ट होकर ये मेघ कहीं अतिवृष्टि, कहीं अनावृष्टि, कहीं अल्पवृष्टि एवं कहीं अकाल तक भी दिखा देते हैं, इसका भी उल्लेख कवि शक्ति के अनुसार किया है।

10. अपाङ्गलीला खण्डकाव्य-

(क) रचना का समय - प्रथम संस्करण 2004

(ख) रचना का स्थान - निवास स्थान समदड़ी (बाड़मेर) राज.

(ग) **रचना का आकार -** विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें दो अध्याय हैं।

(घ) **रचना का प्रकाशक-** हंसा प्रकाशन 57 नाटाणी भवन, मिश्रराजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार, जयपुर।

(ङ) **रचना का वर्ण्य विषय-** 'अपाङ्गलीला' खण्डकाव्य में दो अध्याय हैं। इस खण्डकाव्य में सृष्टिलीला, युगलीला, रसलीला एवं कृपाङ्गलीला का वर्णन किया गया है।

11. काव्य मंजूषा-

(क) **रचना का समय-** प्रथम संस्करण : 2008

(ख) **रचना का स्थान-** जोधपुर (राज.)

(ग) **रचना का प्रकाशक-** राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर (राज.)

(घ) **रचना का वर्ण्य विषय -** विषयवस्तु की दृष्टि से इस काव्य में पं. दवे जी द्वारा समय-समय पर विविध प्रसंगों पर लिखी गयी 98 कविताओं का संग्रह। इसके अलावा अप्रकाशित ग्रन्थ कैलिभ्कैतवम्, मेघोपालम्भनम्, अकिंचनचैत्यम्, यवनीनवनीतम् का भी वर्णन हुआ है।

12. विनोदकौस्तुभम्-

आधुनिक सामाजिक, राजनैतिक घटनाओं पर लिखा गया। 121 पद्यात्मक व्यंग्यचित्रात्मक काव्य संस्कृत की विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

13. सांई चरित्रम्-

शिरड़ी के सिद्ध संत श्री सांई बाबा के लीला प्रसंगों का विविध छन्दों में निरूपण किया गया है।

पण्डित श्रीरामदवे जी द्वारा अनुवादित कृतियों का विवरण निम्नानुसार है-

1. निर्मला-

(क) **रचना का समय -** प्रथम संस्करण 2004

(ख) **रचना का स्थान -** निवास स्थान समदड़ी (बाड़मेर) राज.

(ग) रचना का आकार - विषयवस्तु की दृष्टि में इसमें दो अध्याय हैं।

(घ) रचना का प्रकाशक- हंसा प्रकाशन 57 नाटाणी भवन, मिश्रराजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार, जयपुर।

(ङ) रचना का वर्ण्य विषय - यह 'निर्मला' हिन्दी उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द विटचित्त तात्कालिक सामाजिक समस्याओं का वास्तविक चित्रण करने वाला 27 विरामों में निबद्ध सुप्रसिद्ध उपन्यास है, जिसका संस्कृत में रूपान्तरण पण्डित दवे जी द्वारा किया गया है।

2. ध्रुवस्वामिनी -

(क) रचना का समय - संस्करण 2007

(ख) रचना का स्थान - निवास स्थान समदड़ी (बाड़मेर) राज.

(ग) रचना का आकार - विषयवस्तु की दृष्टि से तीन दृश्यों में पुरूष तथा स्त्री पात्रों का विवेचन है।

(घ) रचना का प्रकाशक- हंसा प्रकाशन 57 नाटाणी भवन, मिश्रराजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार, जयपुर।

(ङ) रचना का वर्ण्य विषय - यह 'ध्रुवस्वामिनी' सुप्रसिद्ध नाटक हिन्दी क कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित है। इस नाटक के हिन्दी पात्रों का संस्कृत रूपान्तरण 'तीन दृश्यों' के अन्तर्गत पण्डित श्रीराम दवे जी के द्वारा किया गया है।

3. गीतांजलि-

(क) रचना का समय - संस्करण 2007

(ख) रचना का स्थान - निवास स्थान समदड़ी (बाड़मेर) राज.

(ग) रचना का आकार - विषयवस्तु की दृष्टि से 128 विविध भाव-प्रवण कविताओं का संकलन है।

(घ) रचना का प्रकाशक- राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र 222, सरस्वती सदन, बिहारी जी की गली, सौंखियों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर

(ङ) रचना का वर्ण्य विषय - यह 'गीतांतजलि' कृति बंगला भाषा के सुविख्यात एवं प्रथम भारतीय नोबल पुरस्कार विजेता कवि गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा प्रणीत है। इस कृति में गुरुवर टैगोर की 128 विविध भाव प्रवण कविताओं का संकलन है। इस कृति का भी रूपान्तरण पण्डित दवे जी के द्वारा किया गया है।

4. ब्रह्मरसायनम् -

(क) रचना का समय - संस्करण 2006

(ख) रचना का स्थान - निवास स्थान समदड़ी (बाड़मेर) राज.

(ग) रचना का आकार - विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें 578 पद्यों का संस्कृत रूपान्तरण है।

(घ) रचना का प्रकाशक- हंसा प्रकाशन 57 नाटाणी भवन, मिश्रराजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार, जयपुर।

(ङ) रचना का वर्ण्य विषय - यह 'ब्रह्मरसायनम्' कृति भी पण्डित श्रीराम दवे जी के द्वारा सिन्धी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि शाह अब्दुल लतीफ के महाकाव्य शाह जो रिसालों के 578 पद्यों का संस्कृत रूपान्तरण है। इस महाकाव्य में परंब्रह्म की महत्ता पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

5. अकिंचन चैत्यम् (अनुवादित् रचना)

(क) रचना का समय- संस्करण : 1999

(ख) रचना का प्रकाशक- राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर (राज.)

(ग) रचना का वर्ण्य विषय - अंग्रेजी के महाकवि ''टॉमसग्रे'' कृत (एलिजि) शोकगीत का पद्यानुवाद 32 श्लोकों में किया है। सभी श्लोकों की संरचना शार्दूलविक्रीडितम् छन्द में है। अंग्रेजी के अमर कवि टॉमस ग्रे की कालजयी रचना (Elegy written in a country chourchagard) कथ्य और शिल्प दोनों की विलक्षण कसावट के लिए प्रसिद्ध है। ग्रे ने वर्षों की साधना और बार-बार शिल्प के परिमार्जन के बाद इसे अन्तिम रूप दिया था। सत्तर बार इस रचना को उन्होंने पुनरीक्षणों द्वारा चमकाया था। विश्व साहित्य में इसके अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए हैं।

पं. दवे द्वारा किये गये संस्कृत पद्यानुवाद के 32 श्लोक शार्दूलविक्रीडितम् छन्द में निबद्ध है। अनुवाद, विशेषकर काव्यानुवाद के मुख्य रूप में दो तरह के अभिगम प्रसिद्ध हैं। एक तो वह जिसमें अनुवादक मूल कविता के नामों, स्थानों और परिवेश को ज्यों का त्यों रखकर रचना का सीधा और 'यथार्थ' अनुवाद करता है। दूसरा वह जिसमें अनुवादक, अनुवाद की भाषा के अनुरूप परिवेश को ढ़ाल देता है। जैसा कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने शायलॉक को शैलाक्ष, बसानियों को बसन्त, पोर्शियां को पुरश्री आदि का रूप देकर शेक्सपियर के ''मर्चेण्ट ऑफ वेनिस'' का अनुवाद किया था।

ग्रे की एलिजि (शोकगीत) का शिल्प पूर्णत: इंग्लिस्तान के परिवेश का अपना है। अत: इसी परिवेश में उसका अनुवाद संस्कृत जैसी क्लासिकी और परिशुद्धिप्रवण भाषा में करना न तो सम्भव है और न उचित। अत: श्री दवे ने उसका जो काव्यानुवाद संस्कृत की अपनी शैली और मुहावरों में किया है वह संस्कृत के परिवेश के अनुरूप पठनीय बन गया है। जैसे-

Now fades the glimmering landscape on the sight,
And all the air a solemn stillness holds,
Save where the beetle wheels his droning flight,
And drowsy tinklings Lull the distant folds.

संस्कृतानुवाद- **मन्दं भास्वद् भूतलं च सहसा दृष्टेः पथो लीयते,**
विश्रान्तेऽनिलसंवहे च परितो निस्तब्धता लक्ष्यते।
गुंजन वा परिदृश्यतेऽत्र चपलोऽयं भृङ्गकीटोऽधुना,
निद्रालस्यजुषां गलेषु विचलद्घण्टारवो वा गवाम्।।

हिन्दी गद्य- टिमटिमाते हुए मन्द प्रकाश में धरातल का दृश्य अब धीरे धीरे आंखों से ओझल हो रहा है। सम्पूर्ण वातावरण एक प्रगाढ़ नीरवता को थामे हुए हैं। सिवाय इसके कि कोई भृंगकीट अपनी गूंजभरी गाल चक्करदार उड़ान भर रहा है। पालतू पशुओं के गले में बंधी घंटियों की ध्वनि उनके दूरस्थ बाड़ों को तन्द्रिल बना रही है।

इस प्रकार केवल 'फेथफुल' या यथार्थ अनुवाद वाली शैली अपनाई जाती तो वह शब्दानुवाद तो हो जाता, परन्तु पठनीय नहीं बन पाता। अब यह काव्यानुवाद लगता है, भले ही भाषानुवाद ही हो। वही कारण है कि कुछ पद्यों में कवि की भावना को अपने तरीके से सांस्कृतोचित शैली में ढ़ाला है। इस प्रकार विश्व की अधिकांश भाषाओं के काव्यानुवादकों

द्वारा न केवल शिल्प में बल्कि कथ्य में भी कहीं थोड़ी सी स्वतन्त्रता लेनी पड़ती होगी। इस काव्यानुवाद में पं. दवे ने ऐसी स्वतन्त्रता कहीं-कहीं ली है।

अंग्रेजी साहित्य में इस कविता को एवं ग्रे को अत्यन्त आदर का स्थान प्राप्त है। जब 18 वीं सदी के मध्य में इस रचना का प्रकाशन हुआ था तभी प्रसिद्ध प्रखर आलोचक डॉ. सेम्युअल जॉनसन ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। आज 250 वर्ष व्यतीत होने के बाद भी इस कविता की लोकप्रियता एवं प्रासंगिकता में कमी नहीं हुई है। इसका प्रमाण है कि इसके कई भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं एवं हो रहे हैं।

पं. दवे जी द्वारा किया गया पद्यानुवाद एवं कविता का कथासूत्र भी सूक्ष्म है। कवि एक ग्रामीण श्मशान स्थल (कब्रिस्तान) के वर्णन के माध्यम से निर्धन ग्राम्य जनों के कठिन संतुष्ट जीवन की ओर इंगित करता है। साथ ही मानव जीवन की क्षण भंगुरता एवं नश्वरता का भी हृदयस्पर्शी वर्णन करता है। इस प्रकार कविता में सार्वभौमिकता एवं सार्वजनिकता व्याप्त है और साथ में शोक, करूण एवं माधुर्य झलकता है।

रचना प्रसिद्धि सभी भाषाओं और सभी काल में कविवृन्द की प्रेरणा स्रोत रही है। जीवन के अवश्यम्भावी अवसान के सम्मुख मानव की असहायता का उद्‌गार निम्नस्वरूप में है-

(1) **उमर खैयाम -** The wine of life keeps oozing drop by drop. The leaves of life keep falling one by one.

(2) **मिर्जा गालिब -** गर्मियें वज्म है इक रक्से शरर होने तक।

(3) **कवि दिनकर -** सुन्दरता में अमरत्व नहीं।

(4) **कवि नगेन्द्र-** कंचन काया पर चढ़ी मृत्यु की अंधी क्रूर कुटिल छाया।

साथ ही रचनाकार की भाषा एवं शब्द प्रयोग कविता की प्रसिद्धि में सहायक सिद्ध हुए हैं। इसमें स कुछ तो मुहावरे बनकर प्रचलित हुए हैं। जोधपुर के कुछ साहित्यप्रेमियों ने इस कविता के अनुवाद करने का प्रयास किय हैं।

“सर्वभाषा कालिदासीयम् प्रकाशन” जोधपुर राजस्थान से प्रकाशित सम्पूर्ण पद्यानुवाद संस्कृत में है। साथ ही उसी पृष्ठ पर हिन्दी अनुवाद श्री गोपीलाल दवे साहित्याचार्य ने किया

है। उसी पृष्ठ पर राजस्थानी अनुवाद डॉ. शक्तिदान कवियों ने किया है जो राजस्थानी विभागाध्यक्ष से सेवानिवृत्त हैं तथा उसी पृष्ठ में उर्दू का अनुवाद भी है।

6. ब्रह्मरसायनम् (अनुवादित)-

(क) रचना का समय- संस्करण 2006

(ख) रचना का स्थान- निवास स्थान, समदड़ी (बाडमेर) राज.

(ग) रचना का आकार- विषयवस्तु की दृष्टि से 578 पद्यों का खण्डकाव्य है।

(घ) रचना का प्रकाशक- हंसा प्रकाशन 57, नाटाणी भवन,मिश्रराजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार, जयपुर (रज़)

(ङ) रचना का वर्ण्य विषय- सिन्धी भाषा के महाकवि 'शाह अब्दुल लतीफ' के सूफी आश्रित महाकाव्य 'शाहजोरसालो' के पद्यों का श्लोकों में अनुवाद किया ह जो विभिन्न छन्दों में है। सिन्धी काव्य क्षेत्र में शाह अब्दुल लतीफ सिन्ध प्रान्त के सिन्धी भाषा के पहले कवि थे। जिन्होंने सिन्ध के हिन्दुओं और मुसलमानों का उनकी भाषा में प्रतिनिधित्व किया। सिन्ध में फारसी शिक्षा के जमाने में भी वे सिन्ध की लोककथाएं गाते थे। आज भी वे सिन्धी भाषा के सर्वोच्च कवि हैं। शाह बाल्यकाल से ही ईश्वरोन्मुख थे। वे प्रकृति से चिन्तनशील व्यक्ति थे एवं एकान्त में रहते थे। पार्थिव सुखों में उनकी रूचि नगण्य थी।

यह स्वंय सिद्ध है कि भारत के पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के साहित्य में भावात्मक और विचारात्मक एकता है। भाव और भाषा में कितना ही भेद क्यों न हो, फिर भी यह एकता की स्वर लहरी झंकृत हुए बिना नहीं रहती। जो भाव संSकृत साहित्य में है, उन्हीं भावों को शाह लतीफ ने और ढंग से अपने काव्य में प्रकट किया है।

'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।'

पूर्णता में ही आनन्द है, अल्पता में नहीं। इस बात को शाह ने कितने सुन्दर रूप में व्यक्त किया है-

सिन्धी - जा बाहुद में बहु, ताँ तूँ मच्छ ! ना मोटिएं,
काए में कोहु करिएं, पाई मोटण जो पहु ?

संस्कृत- भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

शाह लतीफ के भावों का स्वर प्रायः सभी सन्त और रहस्यवादी कवियों के स्वर से मिलता है। कबीर, तुलसी, सूर, जायसी, बिहारी आदि की कविताओं में जो प्रेम की अभिव्यक्ति की गई है, वह शाह के काव्य में भी मिलती है परन्तु शाह के रिसाले में ऐसे भी अनेक पद्य हैं जिनका भाव गुरूमुख से पढ़े बिना बताया नहीं जा सकता। शाह लतीफ की कविता हिन्दु राग - रागनियों में ढ़ली है। 'शाहजोरसालों' काव्य को कल्याण, यमन कल्याण, श्रीराग आशा, रामकली आदि 30 स्वरों में निबद्ध किया है।

सौन्दर्यलहरी जैसे श्रेष्ठस्तुति काव्य में भगवती के ब्रह्मस्वरूप और लौकिक सुन्दरता का वर्णन मिलता है। उसमें जो आनन्द की अनुभूति होती है वही ब्रह्मानन्द है। 'आनन्द ब्राह्मणों रूपम्' आनन्दानुभूति ही ब्रह्मानुभूति है। इसलिए परमार्थ दृष्टि से एक अद्वितीय ब्रह्म कहने वाले महात्मा भी व्यवहार में भक्ति का आश्रय लेते हैं। इसी तरह उर्दू के कवियों में और आध्यात्मिक दृष्टि वाले कवियों में लौकिक दृष्टिजन्य सौन्दर्य मिलता है। इसलिये, इससे सिद्ध होता है कि किसी भी देवता की उपासना करने वाले सिद्धसन्त क्यों न हो, उन्हें अपना प्रेम और भक्ति व्यावहारिक रूप में प्रकट करनी ही पड़ती है। ऐसे एक परब्रह्मतत्त्व को मानने वाले किसी का विरोध नहीं करते।

'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।'[30]

इस सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए विद्वान धर्मोचार्यों ने सामान्य जन हृदय में ईश्वर के प्रति श्रद्धा जाग्रत करने के लिए भक्ति के माध्यम से शास्त्रों में वर्णित अनक देवी-देवताओं की उपासना का मार्ग प्रकट किया। इस काव्य का हिन्दी अनुवाद कवि के गुरू पं. मणिशंकर जी ने द्विवेदी किया था।

7. यवनीनवनीतम् (अनुवादित काव्य) अप्रकाशित-

(क) रचना का वर्ण्य विषय- उर्दू के कवि मिर्जा गालिब की कविताओं का विविध छन्दों से निबद्ध श्लोकों में अनुवाद है। जिस प्रकार से आदि कवि वाल्मीकि का शोक श्लोक के रूप में उद्भव हुआ था उसी भाँति उर्दू के कवि मिर्जा गालिब का भी शोक 'यवनीनवनीतम्' के रूप में काव्य निबद्ध हुआ है।

यद्यपि काव्य का किसी अन्य भाषा में अनुवाद बहुत जटिल कार्य है परन्तु पं. दवे ने अपनी कौशल शक्ति से उर्दू के भावों एवं शब्दों को संस्कृत जैसी दुरूह भाषा में अनुवादित कर, एक श्रेष्ठ कवि एवं विविध भाषी होने का परिचय दिया है। साहित्य में भाव सभी भाषाओं में समान होते हैं परन्तु उन्हें स्थानान्तरित करना एवं अनुवाद करना दोनों में बहुत अन्तर है। यहाँ पं. दवे ने केवल अनुवाद ही नहीं किया बल्कि मिर्जा गालिब के यवनीनवनीतम् में विद्यमान भावों को संस्कृत के श्लोकों में ज्यों का त्यों समाहित किया है।

8. ब्रह्मविनय, ब्रह्मसमन्वय एवं अत्रिख्याति -

ये तीनों ही पं. मधुसूदन ओझा द्वारा कृत वेद विज्ञान से सम्बद्ध संस्कृत टीकायें हैं, जिनका हिन्दी अनुवाद राजस्थान पत्रिका प्रभारी गुलाबचन्द कोठारी जी के कहने पर पण्डित दवे जी के द्वारा किया गया।

संदर्भ सूची

1 अग्निपुराण, 327.3

2 भारतीय साहित्य शास्त्र, बलदेव उपाध्याय, पृ. 230 से उद्धृत

3 साक्षात्कार : डॉ जयादवे, सन् 2016, श्री ललिताश्रम, वैशाली नगर, जयपुर (राज.)

4 साक्षात्कार : पं. श्री रामदवे, 9.12.2017, श्रीनिकेतन 8C रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर (राज.)

5 साक्षात्कार : पं. श्री रामदवे, 9.12.2017, श्रीनिकेतन 8C रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर (राज.)

6 साक्षात्कार : पं. श्री रामदवे, 9.12.2017, श्रीनिकेतन 8C रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर (राज.)

7 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 1.8

8 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 1.17

9 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 1.28

10 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 1.35

11 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 2.13

12 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 5.7

13 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 5.16

14 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 7.7

15 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 11.12

16 वियोगशतकम् खण्डकाव्य, पद्य सं. 8

17 वियोगशतकम् खण्डकाव्य, पद्य सं. 55

18 वियोगशतकम् खण्डकाव्य, पद्य सं. 91

19 वियोगशतकम् खण्डकाव्य, पद्य सं. 110

20 ललितालहरी खण्डकाव्य, पद्य सं. 3

21 ललितालहरी खण्डकाव्य, पद्य सं. 14

22 ललितालहरी खण्डकाव्य, पद्य सं. 63

23 भारतीविलास खण्डकाव्य, पद्य सं. 41

24 कारूण्यकादम्बिनी खण्डकाव्य, पद्य सं. 96

25 कारूण्यकादम्बिनी खण्डकाव्य, पद्य सं. 48

26 कारूण्यकादम्बिनी खण्डकाव्य, पद्य सं. 96

27 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, पद्य सं. 71

28 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, पद्य सं. 14

29 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, पद्य सं. 29

30 ऋग्वेद, प्रथम मण्डल

अध्याय - तृतीय
पं. श्रीरामदवे जी की रचनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन

काव्य परम्परा के परिपार्श्व में महाकाव्य -

काव्य का स्वरूप-

''कवि हृदयगत उदात्त भावों और संवेगों या संवेदनाओं के प्रस्फुटन और बौद्धिक विकास के प्राबाल्य के कारण जिस विधा की रचना करता है, वही विधा साहित्य में काव्य नाम की संज्ञा से अभिहित की जाती है।'' एवरक्राम्ब्रि में काव्य को ''भाषा के माध्यम से प्रेषणीय अनुभूति'' की संज्ञा दी है। वस्तुत: काव्य एक ऐसी अनुभूति है, जिसमें कवि की अनुभूतियाँ संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्त न होकर उसकी स्वयं की लेखनी से शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। ''काव्य जीवन की व्याख्या, कल्पना और मनोयोग का सम्मिश्रण है''[1] इसलिए काव्य सृजन के लिए कवि में बुद्धि और कल्पना का पूर्ण सामंजस्य अपेक्षित होता है। संक्षेप में काव्य का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है, अत: उसे लेखनीबद्ध करना असम्भव है।

काव्य का विकास एवं परम्परा -

मानव न अव्यक्त भावों का अभिव्यक्त करने के लिए जिस माध्यम का आश्रय लिया उसे कला कहा गया। मूर्त और अमूर्त भेद से कला दो प्रकार की होती है। अमूर्त कला का ही एक भेद ''काव्य-कला'' है। यह काव्य कला समस्त कलाओं में सर्वश्रेष्ठ है। काव्य कला का विकास ''ईश्वरकृत काव्य''[2] वेदों से प्रारम्भ हुआ। इन्हीं वेदों, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों पर आश्रित होकर लौकिक साहित्य में काव्य अनेक विधाओं के रूप में विकसित हुआ है।

ऋग्वेद में अनेक स्थल ऐसे है जो ''मुक्तक काव्य'' के विकास की पूर्णरूपता को ।ोतित करते हैं।[3] ऋग्वेद के संवाद सूक्तों यम यमी (10/11), पुरूरवा-उर्वशी (10/15), अगस्त्य-लोपामुद्रा (1/179), इन्द्र-अदिति (4/18), इन्द्र-इन्द्राणी (10/86), सरमा-पणि (10/51/3), इन्द्र-मरुत (1/165/170) आदि में ''प्रबन्धकाव्य'' के बीज तत्व निहित हैं।

परवर्तीकाल में इन विधाओं ने वृहद रूप धारण किया और प्रत्येक विधा अपनी पृथक परम्परा को लेकर आगे बढ़ी। इस प्रकार महर्षि वाल्मिकी से लौकिक काव्य धारा प्रवाहित होना प्रारम्भ हुई जो भास के 'प्रतिमा', तथा कालिदास के 'रघुवंशम्' तथा 'कुमारसंभवम्' भारवि के 'किरातार्जुनीयम्', माघ के 'शिशुपालवधम्' श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरितम्' अश्वघोष के 'बुद्धचरितम्' तथा 'सौन्दरानन्द' आदि महाकाव्यों के रूप में आगे बढ़ती गई।

काव्य का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। आदिकाल से लेकर आद्यन्त उसका विकासशील रूप प्राप्त होता है। अत: अनेक कवियों ने समसामयिक परिस्थितियों के अनुसार उसे लक्षण की परिधि में नियत करने की कोशिश की है, ''परन्तु अब तक उसकी कोई ऐसी परिभाषा न बन सकी, जिसमें तर्क-वितर्क की संभावना न रहो हो।''

संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने अपने-अपने सिद्धांतों के अनुसार काव्य की परिभाषा की है -

1. शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् - भामह

2. गुणालंकारयुक्तौ शब्दार्थौ काव्यम् - वामन

3. निदाषं गुणवत्काव्यम अलंकारैरलंकृतम् - भोज

4. गुणालंकार रीति-रसोपेत: साधुशब्दार्थ सन्दर्भ: काव्यम् - वाग्भट्ट

5. निदाषं गुणालंकार लक्षणरीति - वृत्तिमवाक्यं काव्यम् - पीयूषवर्ण

6. काव्यं रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुखविशेषवृत - शोद्धोदनि

7. निदाषा लक्षणवती सरीतिर्गुणगुम्फिता सालंकार रसामेकवृत्तिवार्क काव्यनामभाक् - जयदेव

8. शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवि व्यापार शालिनी बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी - कुन्तक

9. रसालंकारयुक्तं सुखविशेष साधनं काव्यम् - केशव मिश्र

10. इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्यम् - दण्डी

11. ध्वन्यात्मकं वाक्यं काव्यम् - आनन्दवर्धन

12 काव्यं विशिष्ट शब्दार्थ साहित्य सदलंकृति - क्षेमेन्द्र

13. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् - विश्वनाथ

14. रमणीयार्थ - प्रतिपादक: शब्द: काव्यम् - पण्डितराजजगन्नाथ

15. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुन: क्वापि - मम्मट।

उपर्युक्त लक्षणों में भामह, दण्डी, वामन, कुन्तक आदि आचार्यों ने काव्य के ब्राह्य स्वरूप को आधार बनाकर काव्य का स्वरूप निर्धारित किया है तो भोज, जयदेव, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने आन्तरिक आत्मिक तत्व (रस) के आधार पर काव्य का लक्षण किया है। वस्तुत: ''काव्य उस विशाल वट-वृक्ष के समान है, जिसकी शाखाएं प्रशाखायें शब्द अर्थ, गुण, दोष, रीति, छन्द और अलंकारादि हैं तथा जिसकी प्राणदायिनी शक्ति रस है।''[4]

दण्डी, भामह, कुन्तक, भोज, वामन आदि आचार्यों ने इसकी शाखा प्रशाखाओं को सींचा है तो भोज, जयदेव एवं विश्वनाथ आदि आचार्यों ने जड़ को। परन्तु जिस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व विश्लेषण में उसकी समस्त शारीरिक प्रक्रियाएं और मानसिक प्रवृत्तियाँ शामिल होती हैं तथा एक भी पक्ष को छोड़ देने पर उसका व्यक्तित्व विश्लेषण अपूर्ण ही रहता है, उसी प्रकार काव्य के बाह्य और आन्तरिक स्वरूपों में से एक पक्ष को ही आधार बनाकर काव्य की परिभाषा करने वाले इन आचार्यों के मत भी अपूर्ण प्रतीत होते हैं।

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य-लक्षण में बाह्य और आभ्यान्तर उभयपक्ष को समन्वित करके काव्य का अधिक सार्थक लक्षण किया है -

''**तद्दौषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि**'' - अर्थात् रसापकर्षक तत्व रूपी दोष से रहित, प्रसाद, ओज तथा माधुर्य इन तीन रसनिष्ठ गुणों से युक्त तथा कदाचित् अलंकारों से रहित भी काव्य सौन्दर्य की अनुभूति कराने वाला शब्दार्थ काव्य है।

यह उल्लेख है कि संस्कृत काव्याचार्यों ने काव्य के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया है उसका केन्द्र सहृदय पाठक और श्रोता ही रहे हैं जबकि पाश्चात्य आचार्यों और आधुनिक हिन्दी कवियों की दृष्टि कवि पर केन्द्रित रही है। पाश्चात्य काव्याचार्यों ने कवि के भावस्मरण[5], विवादमय क्षणों की अभिव्यक्ति[6], जीवन की आलोचना[7] आदि को ही काव्य कहा है।

काव्य के भेद -

विधा के आधार पर काव्य के मुख्य रूप से दृश्य और श्रव्य दो भेद किये गये हैं। ये भेद प्रभेदों के आधार पर पुनः अनेक भागों में विभक्त हो गये। इसका विवरण निम्न तालिका के माध्यम से इस प्रकार किया जा सकता है -

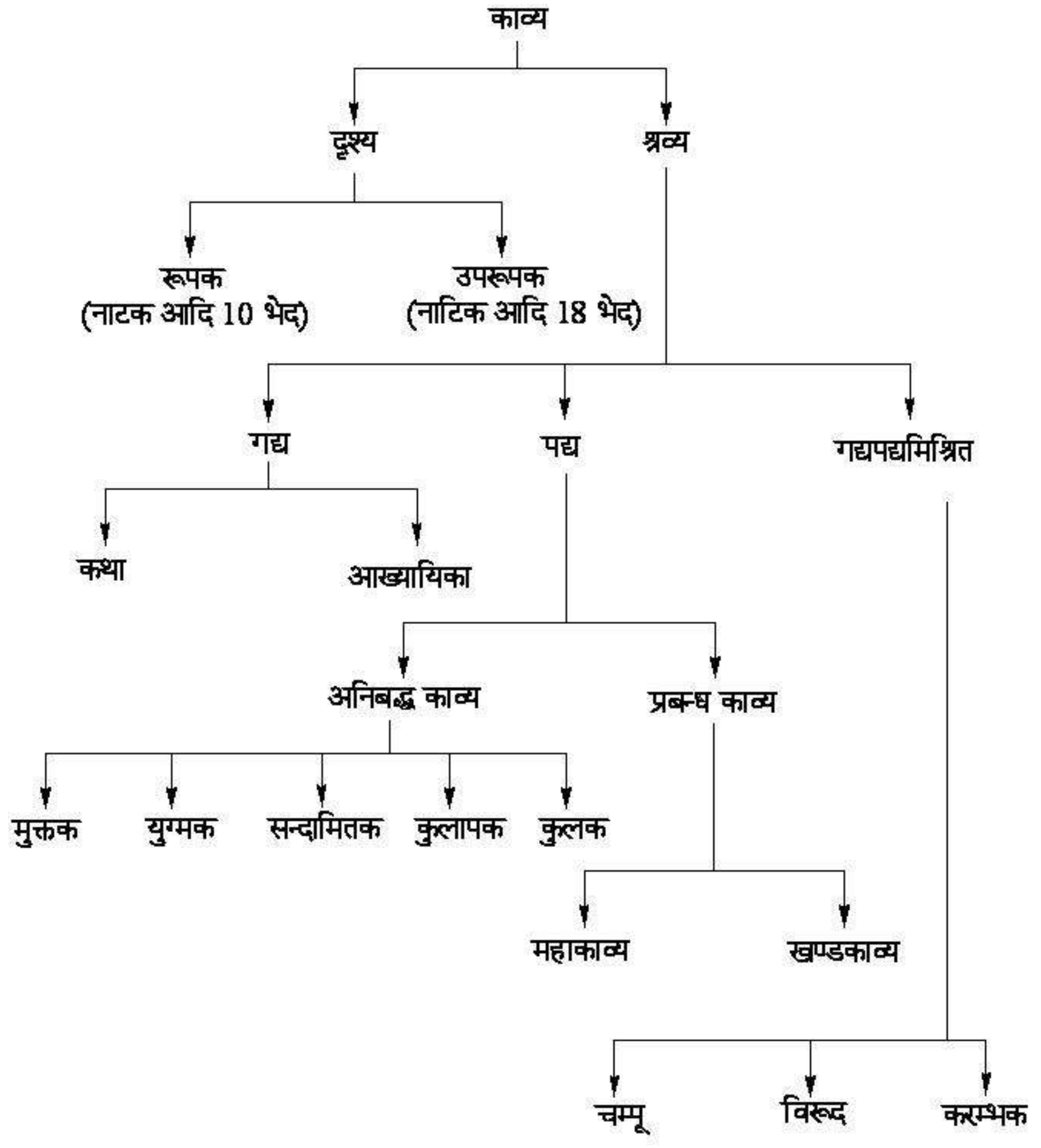

महाकाव्यः उद्भव एवं परम्परा-

भारतीय काव्य शास्त्र के प्राचीनतम काव्य और महाकाव्य रामायण तथा महाभारत का सृजन गौरवशालिनी संस्कृत भाषा में ही हुआ। ये महाकाव्य केवल प्रारम्भिक ही नहीं हैं अपितु परवर्तीकाल में विकसित होकर वृहद रूप धारण करने वाली संस्कृत महाकाव्य परम्परा का आधार एवं उपजीव्य ग्रन्थ भी हैं। वस्तुतः अलंकृत महाकाव्य रामायण से ''रूप शिल्प'' और

विकासशील महाकाव्य महाभारत से ''विषयवस्तु'' को ग्रहण करके महाकाव्यों की परम्परा आगे बढ़ी।[8]

रामायण और महाभारत के पश्चात कालिदास के महाकाव्य उपलब्ध होते हैं। यह निश्चित है कि इन महाकाव्यों के मध्यकाल में भी अनेक महाकाव्य निर्मित हुए, यद्यपि ये कृतियाँ अद्यावधि विलुप्त हैं, किन्तु उनके अस्तित्व को प्रमाणित करने वाले प्रबल साक्ष्य आज भी अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। पाणिनि विरचित ''जाम्बवती-विजय'', व्याडिरचित ''बालचरित'', कात्यायन द्वारा निर्मित ''स्वर्गारोहण'' आदि कतिपय महाकाव्य ऐसे हैं, जिनका अस्तित्व अनेक साक्ष्यों से सिद्ध हो चुका है।[9]

लगभग ई.पू. प्रथम शताब्दी के कवि शिरोमणि कालिदास के 'कुमारसम्भवम्' और ''रघुवंशम्'' महाकाव्यों के पश्चात् अश्वघोष कृत ''बुद्धचरितम्'' और ''सौन्दरानन्द'' महाकाव्य उपलब्ध होते हैं। चतुर्थ शताब्दी में बुद्धघोष ने ''पधचूड़ामणि'' तथा छठी शताब्दी में भी कवि ने ''रावणार्जुनोय'' महाकाव्यों की रचना की। सप्तम शताब्दी के समय के आसपास ही भतृमेण्ठ ने ''हयग्रीववध'', भारवि ने ''किरातार्जुनीयम्'', भट्टि ने ''भट्टिकाव्य'' कुमारदास ने ''जानकीहरण'' तथा माघ ने ''शिशुपालवध'' नामक महाकाव्य का सृजन किया।

नवम शताब्दी में 50 सर्ग एवं 4320 श्लोकों में निबद्ध विशालतम महाकाव्य ''हरविजय'' महाकवि रत्नाकार द्वारा निर्मित हुआ। इसी शताब्दी में शिवस्वामी कृत ''कफिकथाभ्युदय'', अभिनन्दविरचित ''रामचरित'' तथा शंकुक का ''भुवनाभ्युदय'' महाकाव्य रचे गये। 11 वीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र ने ''दशावतारचरितं'' भरवक ने ''श्रीकंठचरितं'' तथा हरिचन्द्र ने ''धर्मशर्माभ्युदय'' महाकाव्यों का निर्माण किया। 12 वीं शताब्दी में हमचन्द्र ने ''श्रीषष्टिशलाकापुरूषचरित'' तथा द्वयाश्रयकाव्य'', माधवभट्ट ने ''राघवपाण्डवीय'', श्रीहर्ष ने उत्कटकाव्य कौशल का प्रदर्शन करने वाले ''नैषध'' आदि महाकाव्यों की रचना की।

13 वीं शताब्दी में कृष्णानन्दकृत ''सहृदयानन्द'' कवि जयरथकृत ''हरचिन्तामणि'', बालचन्द्रसूरिकृत ''पाण्डवचरित'' तथा ''कान्तविलास'' और सवनिन्दकृत ''जादूगरचरित'' उपलब्ध होते हैं।

14 वीं शताब्दी में नयनचन्द्र ने ''हम्मीर महाकाव्य'', वासुदेव कवि ने ''युधिष्ठिरविजय'' और ''नलोदय'', वैंकटनाथ ने ''यादवाभ्युद्य'', मल्लराघव ने ''उदारराघव'' नामक महाकाव्यों की रचना की।

15 वीं शताब्दी के महाकाव्य वामनभट्ट रचित ''रघुनाथचरित''और ''नलाभ्युदय, कल्हण रचित ''राजतरंगिणी'' तथा श्रीधर रचित ''जैनराजतरंगिणी'' हैं।

16 वीं शताब्दी में उत्प्रेक्षावल्लभ ने ''भिक्षाटन काव्य'' महाकवि चन्द्रशेखर ने ''सुर्जनचरित तथा कविरुद्र ने ''राष्ट्रोडवंश'' नामक वृहत काव्य की रचना की।

17 वीं शताब्दी में यक्षनारायण दीक्षित ने ''रघुनाथभूपविजय'', वेंकटेश्वर ने ''शिवलीलावर्णन'', देवविमलगणि ने ''हरिसौभाग्य'' तथा कविचक्र ने ''जानकीपरिणय'' नामक महाकाव्य की रचना की है।

संस्कृत महाकाव्य निर्माण की यह समृद्ध परम्परा 17 वीं शताब्दी के पश्चात् प्राय: विलुप्त सी प्रतीत होती है जबकि वास्तविक रूप में संस्कृत महाकाव्य परम्परा अद्यावधि अपरिच्छिन्न है। इतना ही नहीं अपितु उसकी शैली व रूप सभी में बदलाव आया है। नवीन युगीन संवेदनाओं, प्रगतिशील भावनाओं तथा अभिवन कथ्यों का भी प्रक्षेपण यथावश्यक दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ, एक ओर आधुनिक काव्य के रूप में श्री भट्टाचार्यकृत ''उषानिरूद्धम्'' तथा ''रूक्मणीहरणम्'' जैसे महाकाव्य प्रकाशित हुए हैं वहीं पं. राजभगवदाचार्य रचित युग प्रतिनिधि रचना के रूप में ''पारिजातसौरभम्'' तथा ''भारतपारिजातम्'' भी प्रकाशित हुए हैं। इसी तरह पं. क्षमाराव का ''ज्ञानेश्वरचरितम्'', श्रीतुकारामचरितम्, श्रीरामदासचरितम् शंकरोपाख्यानम्'' प्रो. वर्णेकर का ''रामकृष्णपरमहंस महाकाव्य'' नेपाल से प्रकाशित श्री कृपाप्रसाद घिमिरे का ''श्रीकृष्णचरितामृतम्'' आदि सैकड़ों ऐसे महाकाव्य लिखे गये जो गुणवत्ता एवं शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। यही नहीं बल्कि समग्र भारत में न जाने कितने लिखित महाकाव्य ऐसे हैं जो मुद्रित नहीं हुए हैं और कुछ हुए भी हैं तो वे रसिक मर्मज्ञों की दृष्टि से ओझल हैं तथा उनका समुचित मूल्यांकन नहीं हो सका है। ऐसे ही परवर्ती आधुनिक महाकाव्यों में अन्यतम महाकाव्य हैं- भृत्याभरणम् महाकाव्य, राजलक्ष्मीस्वंयवरम् महाकाव्य तथा साकेतसंगरम् महाकाव्य।

महाकाव्य का स्वरूप -

काव्य से पूर्व ''महा विशेषण काव्य साहित्य के एक अंग के स्वरूप का द्योतक है। ''काव्य के संदर्भ में महत्ता का प्रतिपादन दो प्रकार से हो सकता है - एक तो काव्यात्मक उपकरणों की महत्ता के कारण और दूसरा प्रतिपाद्य की महत्ता के कारण अर्थात् कोई रचना काव्यकला की भूमि पर महत्त होने से महाकाव्य होती है या महत जीवन चेतना को आत्मसात करके अभिव्यक्त करने से। किन्तु महाकाव्य को महार्थता प्रदान करने के लिए कलात्मक सान्दर्य के साथ-साथ जीवन दर्शन की विराट व्यञ्जना भी अपेक्षित है।''[10]

महाकाव्य के निर्माण के लिए सृजनकर्ता का भी महती काव्य प्रतिभा से सम्पन्न होना अपेक्षित है, क्योंकि ''मन में जब महत व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरूष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार अजमाता है, मनुष्य चरित्र का उदार महत्त्व चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर उस परम पुरुष को प्रतिभा प्रतिष्ठित करने के लिए ही कवि भाषा के मन्दिर का निर्माण करते हैं।''[11]

महाकाव्य की पृष्ठभूमि में जीवन-संघर्ष का व्यापक रूप सामाजिक और जातीय जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा, प्रगतिशीलता, जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आकलन का सांस्कृतिक निरूपण आदि तत्व निहित रहते हैं। कथा शिल्प विधान की दृष्टि से कलात्मकता और रसात्मकता महाकाव्य के प्रमुखतम तत्व हैं।

अद्यावधि महाकाव्य की कोई भी सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध नहीं होती है चूंकि महाकाव्य मनुष्य की प्रगतिशीलता के द्योतक होते हैं, इसलिए विभिन्न युगों में सामाजिक चेतना और सामयिक जीवन-मूल्यों की विशद् व्याख्या पर आधृत होकर निर्मित होने वाले इन महाकाव्यों का स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहा है, परन्तु ''जिस प्रकार संस्कृति का मूल रूप अखण्डित रहते हुए भी उसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहते हैं, उसो प्रकार महाकाव्य की काव्य रूपात्मक प्रभूता के अखण्डित रहते हुए भी उसकी प्रवृत्तियों और परम्पराओं के विकास का क्रम निरन्तर गतिमान है।''[12]

संस्कृत काव्याचार्यो ने महाकाव्य का स्वरूप निर्धारण करन के लिए अत्यन्त व्यापक परिभाषाएँ दी हैं, जिन्हें यहाँ उद्धृत करना सम्भव नहीं है। दण्डी[13], रूद्रट,[14] तथा भामह[15] ने

महाकाव्य विषयक परिभाषा में मुख्यतया जिन तत्त्वों का समाहार किया है, वे निम्नांकित अवतरण में उद्धृत हैं-

''सर्गबद्धता, मंगलाचरण, कथानक की ऐतिहासिकता, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्वर्ग प्राप्ति का विधान, धीरोदत्त नायक का होना, संध्या, सूर्य, रजनी, प्रदोष, प्रातः मध्यान्ह, मृगया, पर्वत, ऋतु, सागर, संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, पुर, यात्रा, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि का सांगोपांग वर्णन, निरन्तर रस का प्रवाह, सन्धियों का निर्वाह, सर्गान्त में छन्द परिवर्तन, वर्णन वैविध्य तथा प्रतिनायक का होना आवश्यक अंग माने गये हैं।''

पूर्ववर्ती समस्त आचार्यों की संस्कृत महाकाव्य विषयक समस्त मान्यताओं को समेटे आचार्य विश्वनाथ की महाकाव्य विषयक अतिव्यापक परिभाषा निम्न है-

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वितः।।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृंगारवीर शान्तानामेकोङ्गी रस इष्यते।।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।
एक वृन्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्य वृत्तकैः।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनी - प्रदोषध्वान्तवासराः।।
प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तुवनसागराः।
संभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।।
रणप्रयाणोपयम - मन्त्रपुत्रोदयादयः।
वर्णनीया यथायोग साङ्गोपाङ्गा अमी इह।।
कवेवृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यान संज्ञकाः।।[16]

संस्कृत काव्याचार्यों द्वारा निर्धारित किया गया महाकाव्य का यह स्वरूप केवल संस्कृत महाकाव्यों की कसौटी पर ही खरा उतरता है। आधुनिक प्राकृत, पालि, अपभ्रंश तथा हिन्दी के महाकाव्यों में इन नियमों का पालन नहीं हुआ है।

अंग्रेजी भाषा में महाकाव्य के लिए ''एपिक'' (Epic) शब्द प्रयुक्त होता है। इस शब्द का निर्माण ग्रीक भाषा के ''इपीक्स'' (Epikes) और इपॉस (Epos) शब्दों से हुआ है। पाश्चात्य काव्य तथा महाकाव्य की रचना का प्रारम्भिक काल संघर्षमयी था। अत: सृजन के पीछे ''वीरभावना'' मूल थी। इसलिए विद्वानों ने उदात्त शैली में किये गये वीरतापूर्ण कार्यों के वर्णन को ही महाकाव्य की संज्ञा दे दी।[17] पाश्चात्य लेखक तथा समालोचक बावरा की महाकाव्य विषयक परिभाषा से आधुनिक पाश्चात्य महाकाव्यों का स्वरूप काफी स्पष्ट हो जाता है कि ''वृहद रूप वाला महाकाव्य वह कथात्मक काव्य है जिसमें महत्वपूर्ण और गरिमायुक्त घटनाओं का वर्णन होता है और जिसमें कुछ चरित्रों की क्रियाशील जीवन कथा होती है। उसे पढ़ने के बाद हमें विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है क्योंकि उसकी घटनाएँ और पात्र हमारे भीतर मनुष्य की महानता, गौरव और उपलब्धियों के प्रति युक्त, आस्था उत्पन्न करते हैं।''[18] इस प्रकार महाकाव्य वृहत्कार्य, उदात्त चरित्रों से युक्त, आस्था जगाने वाला, वर्णन बहुल तथा कथाप्रवाह युक्त विशिष्ट आनन्दप्रद रचना होती है।

महाकाव्य का वर्गीकरण -

भारतीय महाकाव्य दो वर्गों में वर्गीकृत हुए हैं - विकसित और अलंकृत महाकाव्य। अलंकृत महाकाव्यों की परम्परा अत्यन्त समृद्ध रही है अत: ये महाकाव्य अनेक भागों में विभक्त हो गये।

अत: हम समग्र संस्कृत महाकाव्य परम्परा को दृष्टि में रखकर अध्ययन के लिए निम्न वर्गीकरण अधिक उपयुक्त समझते हैं -

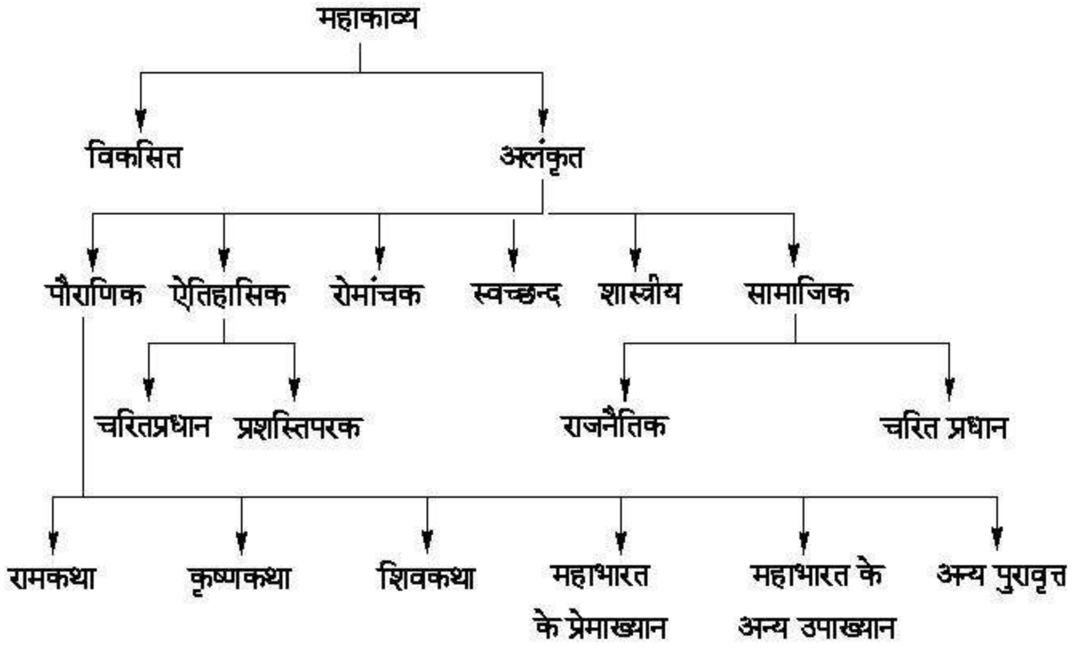

महाकाव्य के लक्षणों एवं वर्गीकरण पर विचार करने के बाद श्री दवे के महाकाव्यों का इनके अनुसार समीक्षण करने का प्रयास करते हैं। सर्वप्रथम विषयवस्तु की बात करें तो तीनों महाकाव्यों की सर्गानुसार विषयवस्तु इस प्रकार है-

भृत्याभरणम् महाकाव्य -

पं. श्रीरामदेव जी ने भृत्याभरणम् महाकाव्य के 37 सर्गों का नामोल्लेख कुछ इस प्रकार किया है -

1. नारदकृतं स्वतन्त्र भारतदर्शनं, 2. नारदस्य वैकुण्ठप्रयाणं विष्णवे भारतस्थिति निवेदनम्, 3. विष्णु कृतं नारदसान्त्वनं, 4. भारते भृत्यावतरणं, भृत्याशैशव कौमारयौवनवर्णनम्, 5. भृत्याविजयोल्लास वर्णनं, 6. नारदमुनिकृतं भृत्यालीला दर्शनं नाम, 7. नारदस्य व्यासाश्रमदर्शनं नाम, 8. युग प्रभाववर्णनं नाम, 9. मनुजरूपधारिभिः देवैः कृता भृत्यास्तुतिः भृत्यानुग्रह-काक्षिणां वर्णनम् नाम, 10. भृत्योपदेशनं नाम, 11. अलब्ध-भृत्यानामाध्रुवभृतपदानाञ्च दशावर्णनं नाम, 12. भृत्याकोपविजृम्भणं नाम, 13. भृत्यादुर्ललिताभिशपनम् नाम, 14. भृत्यावंशवदानुतपनं नाम, 15. भृत्यनायकवर्णनं नाम, 16. स्थानान्तरणस्थितिवर्णनं नाम, 17. भृत्याकृतं ग्राम्यविमोहनं नाम, 18. भृत्याश्रितानां योषितां स्थितिवर्णनं नाम, 19. दम्पतीदास्य-वर्णनं नाम, 20. काकरूकवर्णनं नाम, 21. भृत्याकृतं शारदा-विगर्हणं नाम, 22. विरति-वेतन-

वासरवर्णनं नाम, 23. संचिकाचारवर्णनं नाम, 24. उत्कोच प्रभाववर्णनं नाम, 25. भृत्यनिलम्बन निरूपणं नाम, 26. भृति-समुन्नतिवारणे विषादहर्षवर्णनं नाम, 27. प्रतिभापलायनं नाम, 28. भृत्या राजलक्ष्मीकलहवर्णनं नाम, 29. पौरभृत्यात्मीय- सचिव-व्यवहार-निरूपणं नाम, 30. भृत्यानिवृत्ति-सुखं वर्णनं नाम, 31. भृत्यानिवृत्ति-विषाद-वर्णनं नाम, 32. अनूढाभृत्यानिवृत्ति विषाद् वर्णनं नाम, 33. कार्यनिष्ठभृत्यस्य निवृत्तवृत्ति-वेदनावर्णनम् नाम। 34. भृत्यापुत्र-पराक्रम-वर्णनं नाम, 35. व्यासकृतं नारदाश्वासनम् नाम, 36. सरस्वत्यवतरणं नाम, 37. भृत्यापरिदेवन-निर्वाणवर्णनं नाम।

उपर्युक्त 37 सर्गो में कुल 1154 पद्य है। जिनकी कथावस्तु एवं संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है-

1. 'भृत्याभरणम् महाकाव्य' सर्गानुसार कथावस्तु -

प्रथम सर्गः इस सर्ग में कुल 45 पद्य हैं। मनि नारद विदेशी शासन से मुक्त भारतभूमि को देखने के लिए भूतल पर अवतरित हुए तथा वे उन महापुरूषों की प्रशंसा करते हैं जिन्होंने देश से दासता का अधंकार दूर किया। इसके बाद प्रशासन तंत्र में पाश्चात्य प्रभाव एवं कलियुग के प्रभाव से चारों ओर धर्म की हानि देखकर पुनः बैकुण्ठ की ओर प्रस्थान करते हैं। निम्न उदाहरण दर्शनीय हैं-

नारायणं श्रवणमङ्गल - नामधेयम् सङ्कीर्तयन् सुरमुनिर्जगतो हितैषी।
दृष्टुं चिराद्यवनशासनबन्धमुक्ताम्, पुण्यां भुवं पुलकितोऽवततार प्रीत्या।।[19]

प्रशासनतन्त्र में पाश्चात्य प्रभाव से मुनि बहुत खिन्न हुए-

धर्मानपेक्ष-विधिशासित-लोकतन्त्रम्, पाश्चात्यदिष्ट-सरणीमनुवर्तमानम्।
आलोक्य धर्मधरणीं विपरीतदृश्याम्, खेलाकुलं समभवद्धृदयं सुरर्षेः।।[20]

कलियुग के प्रभाव का वर्णन निम्न पद्य में दृष्टव्य है-

कलिप्रभावात् परितः प्रकामम्, धर्मं धरिण्यां परिहीयमाणम्।
दृष्ट्वा मुनिर्भारत भूमिभागम्, विहाय वैकुण्ठपदं प्रतस्थे।।[21]

द्वितीय सर्गः- 'भृत्याभरणम्' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में कुल 35 पद्य हैं। किस प्रकार कलियुग का प्रभाव हटे और धर्म का उद्धार हो, यह सोचते हुए मुनि वैकुण्ठधाम पहुंचे तथा खिन्न भाव से भगवान विष्णु को भारत की दशा सुनाने लगे। यथा-

हे देव! स्वतन्त्र होकर भी भारतभूमि परकीयों के प्रभाव से परतन्त्र सी लग रही है-

स्वतन्त्राप्यस्वतन्त्रेव लक्ष्यते भरतार्यभूः
परेषां छाययाच्छन्ना देव! भिन्नेव भाति सा।।[22]

यहाँ सतियों की कथा वर्जित है। कुट्टिनियों की कीर्त्ति का प्रसार हो रहा है। तथा कलियुग के नग्न नृत्य से खिन्न भारतभूमि विष्णु के चरणों की प्रतीक्षा कर रही है-

प्रिया कर्मभूमिर्मता भारतारण्या, गता साम्प्रतं दुर्दशां दीनबन्धोः!।
कालेर्नग्न - नृत्येन खिन्ना वराकी, त्वदर्ध्याङ्घ्रियोग - प्रतीक्षां करोति।।[23]

लोकशिक्षा प्रयोगों में उलझी हुई है तथा विद्या और सदाचार वित्तशाठ्य में उलझा हुआ है।[24]।

तृतीय सर्ग- भृत्याभरणम् महाकाव्यम् के तृतीय सर्ग में कुल 30 पद्य हैं। इस सर्ग में भगवान विष्णु का नारद को धर्मोदय का आश्वासन वर्णित है। वे कहते हैं कि कलियुग का समय तो बहुत लंबा है परन्तु बीच में फिर से धर्मोदय होगा तथा धर्मोदय के पूर्व वर्तमान सुख साधनों की बड़ी हानि होगी। भूमि दोहन से प्राप्त सम्पत्ति और आतंक का विनाश होगा तथा भौतिक उन्नति का अहंकार करने वाले राष्ट्र नष्ट होकर धर्म के प्रति लोगों में श्रद्धा का भाव जागृत होगा। इसके बाद नारद की विष्णु माया का भृत्या की लीला के दर्शन के लिए भारत में फिर से आगमन हागा। यथा-

कलेस्तु महती मात्रा परं मध्येऽस्ति विश्रमः।
तदा धर्मोदयो भूयात् क्रम एषः सनातनः।।[25]
संग्रहश्चोग्रशस्त्राणां यत्नेन विहितश्चिरम्।
बहूनां प्रविनाशाय राष्ट्राणां सम्भविष्यति।।[26]

धर्म के प्रति श्रद्धा जागृत होगी-

नष्टे च भौतिके गर्वे धर्मोत्साहो भविष्यति।
तदैतद् भारतं राष्ट्रं नायकत्वं भजिष्यति।।[27]

चतुर्थ सर्ग - भृत्याभरणम् महाकाव्य के इस सर्ग में कुल 34 पद्य हैं। इस सर्ग में भगवान विष्णु प्रेरित माया का भृत्यारूप में गौराङ्गघर में जन्म लेना तथा उस भृत्या की विविध चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। यथा-

गौराङ्गना-स्नेह-सुधाभिषिक्ता, ललामलापा कमनीय-कान्तिः।
स्वर्णालका पाटलचा॒ गण्डा, चतोहरा सद्‌मनि सा रराजे।[28]

वह गौराङ्गपुत्री मेकाल से शिक्षा प्राप्त कर युवतीभाव को प्राप्त हो गई।[29]

वह गौराङ्गपुत्री विचित्र वेषभूषादि प्रतियोगिताओं में भारतीयों का भी अनुकरण करती है-

विचित्रवेष-प्रतियोगिताद्ये, सङ्गतनाट्याभिनयेऽग्रगण्या।
गौरापि देशीयपटं दधाना, व्यडम्बयत् सा खलु भारतीयान्।।[30]

यह भृत्या सुरकामिनी की तरह मुनियों के मन को भी जीतना चाहती थी-

विजेतुकामात्र मनो मुनीनाम्, दिवोऽवतीर्णा सुरकामिनीव।
लावण्यदृप्ता करिणी प्रमत्ता, विचित्रवेषा विचचार भृत्या।।[31]

पञ्चमः सर्गः भृत्याभरणम् महाकाव्य के इस सर्ग में कुल 31 पद्य हैं। जिनमें भृत्याविजयोल्लास का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। अज्ञातगोत्र, कलियुग का सत्यकाम वह उत्कोच पण्डितों का भी प्रिय हो गया। यथा-

स लोकपालांश विनिर्मितात्मा, धात्रीजनाराधित-बाल्यकालः।
अज्ञातगोत्रो युग-सत्यकामो, बभूव हृद्यः कलिपण्डितानाम्।।[32]

वह भृत्या युवक-युवतियों के प्रणव-बन्धन की प्रशंसा करती है-

तारुण्यभावं समुपेत्य वामाः, कथं नु रागं तरुणेषु यान्ति।
निम्बेरमा नेति विदन्ति काकाः, कुहूर्वसन्ते कथमस्ति मुग्धा।।[33]

षष्ठ सर्ग- कुल 32 पद्यों से समन्वित इस सर्ग में भृत्यालीला दर्शन का वर्णन किया गया है। जब विष्णु की प्रेरणा से नारद मुनि ने ब्राह्मण के रूप में पृथ्वी पर अवतरित होकर कलिकाल के कौतुक दिखाने वाली भृत्या की लीला को देखा तो वे आश्चर्यचकित हो गये। भृत्या के द्वारा राजलक्ष्मी भी हतवीर्या सी लग रही थी। भृत्या का आज समस्त प्रकाश, अंधकार, पथसंचार एवं सेना पर आधिपत्य है। इनका निम्न श्लोकों में वर्णन किया गया है-

अहोऽतिभूमिं गतमस्ति भृत्या, वीर्यं स्वयं येन च राजलक्ष्मीः।
दुरन्तवीर्यापि भयोपपन्ना, संलक्ष्यनेऽस्याः पुरतो बलिन्याः।।[34]
नियन्त्रिताशेष-तमः प्रकाशा, निरूद्धसंचार-पथाभिमाना।
तन्त्रे स्थितैषाधिपमन्त्रहन्त्री, श्रियं समस्तामधिकृत्य भृत्या।।[35]

इस प्रकार भृत्या के पुत्र उत्कोच की भी देवता के समान सर्वत्र पूजा हो रही है।

सप्तमः सर्गः- 25 पद्यों से समन्वित इस सर्ग में मुनि नारद के द्वारा हिमालय की पुण्य भूमि पर स्थित व्यास आश्रम का बड़ा भव्य वर्णन किया गया है।

मुनि नारद अपनी योगशक्ति से तिरोहित अवस्था में गुफा में प्रविष्ट हो गये। और तब उन्होंने उस आश्रम को देखा तो वह तपोवन अनेक सुगन्धित पुष्पों की सुगन्ध एवं कोयलादि पक्षियों के समूह से शोभायमान दिखाई दे रहा था-

अनेक रागपुष्पभार-सौरभ-पभावितम्।
मयूर-कोकिलादि-पक्षि-राज-राजि-राजितम्।।[36]

व्यासजी ने नारदमुनि का सत्कार किया और पास बैठी हुई सरस्वती का परिचय कराया। इस प्रकार कलियुग में जनता का हित सोचने वाले नारदमुनि तथा व्यासजी मिलकर बहुत प्रसन्न हुए।

अष्टमः सर्गः कुल 30 पद्यों से युक्त इस सर्ग में व्यास जी द्वारा भारत का समाचार पूछने पर नारद जी द्वारा कलयुग के प्रभाव का वर्णन किया गया है।

दुर्भाग्य से पूर्वकाल में जगद्गुरु रहा भारत आज अर्थ-काम हेतु दूसरों से भीख मांग रहा है-

पुरा नु या-भारत पुण्य-भूमिः भेजे गुरुत्वं जगतीतलस्य।
सैवाद्य कामार्थहिताय विश्वं संयाचमाना लघुतामुपेता।।[37]

क्रूर यवनों ने संस्कृति के मानबिन्दु नष्ट कर उस वीर भूमि को दासी बना दिया था। इस प्रकार आज सारा देश अर्थ और काम के घने अन्धकार में पड़ा हुआ है-

धन-प्रलुब्धो विजहाति धर्मं, कामान्धबुद्धि र्न बिभेति पापात्।
स्वार्थार्थिनो नास्ति च राष्ट्रचिन्ता, घनान्धकारे पतितोऽस्ति देशः।।[38]

नवम सर्गः कुल 38 पद्यों से समन्वित इस सर्ग में भृत्या की कृपा का वर्णन किया गया है। जिसमें सुख, धन, समस्त अर्थ एवं काम की पूर्ति करने वाली भृत्या को देवता व अन्य लोग भी नमस्कार करते हैं। जैसा कि निम्न पद्य में दृष्टव्य है-

वन्दामहे वसुकरां सुखदां शरण्याम् , सर्वोपकार-निरतां वरदां वरेण्याम्।
लोकार्थकाम-परिपूरण-कल्पवल्लीं, वागीश्वरी जड़धियां प्रबल-प्रभावाम्।।[39]

शिक्षा में उत्तम श्रेणी पाने वाले भी तेरी कृपा पाने के लिये प्रतिदिन तेरे घर की परिक्रमा करते हैं। भृत्या की महिमा से समन्वित निम्न पद्य यहाँ दृष्टव्य है-

सौन्दर्यं तरूणीकुलेऽस्ति विदितं शौर्यञ्च यूनां कुले
शीलं बन्धुजने, धनं च धनिनां वर्गे, जनुः सत्कुल।
सम्मानं गुणिनां गणे, मतिमतां मार्गे, यशो निर्मलम्
व्यर्थं में सकलं गुणार्जनमिदं भृत्या-प्रसादं विना।।[40]

दशमः सर्गः- इस सर्ग में कुल 35 पद्य हैं, जिनमें कालिकालदीपिका भृत्या द्वारा भारतवर्ष में युगधर्म के प्रचारार्थ भगवान विष्णु द्वारा प्रेषित देवताओं के लिए सम्बोधन तथा उसके पुत्र उत्कोच के प्रभाव का वर्णन किया गया है। जिसका निम्न पद्य दृष्टव्य है-

हरिणा प्रेषिता यूयं, युगधर्मोपकारकाः।
मदुक्तमनुतिष्ठन्तु साध्येतेष्टं यथा द्रुतम्।।[41]

भृत्या कहती है कि जो लोग मेरी उपासना करेंगे उनकी गरीबी, निर्धनता तथा दरिद्रता को मैं दूर करूंगी तथा युग धर्म-प्रचार करने के लिए मैं इस लोकतन्त्र में सभी को एकाकार कर दूंगी तथा मैं विज्ञान का प्रचार करके शास्त्रों के विश्वास को मिटा दूंगी। इसके पश्चात् अस्पृश्य, कुलहीन, ग्रामीण एवं गणिकापुत्र भी मेरी कृपा से प्रशंसनीय हो जायेगें-

अस्पृश्यो वाऽकुलीनो वा ग्राम्यो वा गणिकात्मजः।
लप्स्यते सर्ववन्द्यत्वं मत्प्रसादोपलालितः।।[42]

इस प्रकार भृत्यामाया, देवताओं को निर्देश देकर अपनी लीला करने लगी।

एकादशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 27 पद्य हैं, जिनमें सर्वत्र भृत्या की माया के द्वारा परिवर्तनशीलता दर्शायी गयी है। जिसके द्वारा चराचर जगत में अनेक परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं, जिनका वर्णन निम्नानुसार है-

राजलक्ष्मी की कृपा से निरक्षर भी विद्याधरों और लक्ष्मीधरों से पूजित हो रहा है-

पश्यन्त्वत्र निरक्षरोऽपि रजको विद्याधरैर्वन्द्यते
श्यामं जर्जर कुञ्जंर कुशबंर लक्ष्मीधरः सेवते।
मूढोऽयं घटखर्परस्य तनुजः क्षौमासने स्थाप्यते
किंमूल्या जननायकस्य पुरतो भृत्या कुभार्योपमा।।[43]

इस कालचक्र में आगे रहने वाले पीछे रह जाते हैं और पीछे वाले आगे बढ़ जाते हैं तथा विज्ञापनों को पढ़कर नौकरी के लिये दौड़ने वाले सिफारिश वालों से मात खा जाते हैं-

पठित्वा पत्राङ्के भृतकपदवीपूरणकथाम् , अवृत्याखिन्नानां विकटकटकं धावति रुचा।
पदं पक्षापीनाः प्रतिभट-पदादान-कुशलाः,लभन्ते तत्रायं विरककुलजः कोऽक्षरचणः।।[44]

द्वादशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 25 पद्य है, जिनमें भृत्या के चराचर जगत पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन किया गया है। जिसमें भृत्या के क्राध से सारा राष्ट्र दुखी हो रहा है और मानव की बुद्धि तथा यंत्र की गति दोनों ही अवरूद्ध हो जाती है। यथा-

कार्यावरोधजनकस्तव भीमनादः, राज्यश्रियोऽपि हृदये भयमातनोति।
उज्जृम्भिते तु सहसाति-करालकोपे, सन्नं भवत्यखिलमेव च राष्ट्रमेतत्।।[45]

कुञ्चन्ति तीव्रगतयो मतयोऽपि पुंसाम् , मौनं भजन्ति करिणामपि बृंहितानि।
उद्दाम-भीम-रव-वेपित-भूतलानि, यन्त्राणि मन्त्र परिकीलन कुण्ठितानि।।[46]

बिना शस्त्र के भी वह भृत्या शस्त्रधारियों को भयभीत कर देती है। तथा उस भृत्या की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर राजलक्ष्मी का सिंहासन भी डोल उठता है-

उज्जृम्भितं ननु विलोक्य बलं धरिण्याम् रोषारुणं भ्रकुटिभीममवेक्ष्य चास्यम्।
राज्यश्रियः सकल-भीतिहरोद्यतायाः सिंहासनं सुदृढमप्यवकम्पमति।।[47]

आज राज्य की सारी शिक्षा-दीक्षा भृत्या की कृपा पर निर्भर है-

शिक्षालये चलति नो समये परीक्षा, रक्षालये कलति नायुध-जातरक्षा।
मन्त्रालये भवति नो नवमन्त्र-दीक्षा, भूयान्न चेद् भृति-कृपा-भरिता समीक्षा।।[48]

त्रयोदशः सर्गः इस सर्ग में कुल 25 पद्य हैं, जिनमें भृत्या की शक्ति से उत्पन्न भयावह स्थिति का वर्णन किया गया है जिसमें वह राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में नये नये मार्गों से अवरोध उत्पन्न कर, कार्य को सुधारने व बिगाडने की कुंजी स्वयं अपने हाथ में रखती है और जब वह उग्र रूप धारण करती है तो आंधी के समान चलती है जिससे कई दृढ़ स्तम्भ हिल जाते हैं।

रोग, भय, चिन्ता को बढ़ाने वाली यह भृत्या नये-नये उपद्रव खड़े करती है। और वह भृत्या अपनी बुरी बुद्धि द्वारा सभी लागों को व्यर्थ में ही दुःखी करती रहती है-

मेधा-मर्दन-पण्डिता प्रतिदिनं प्रज्ञाप्रयोगे रता
कुर्वन्ती परपीडनं न करुणां धत्ते स्वचित्ते मनाक्।
यात्राऽरक्षण-तैल-तण्डुल-सिता-पंक्ति-स्थिते कर्कशा
सक्रोधा वितथा विवाद-निरता पण्यकुलान् कुन्थति।।[49]

चतुर्दशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 25 पद्य हैं, जिनमें भृत्या के प्रभाव का वर्णन किया गया है कि धन के लोभ से भृत्या के वश में होने वाले भद्रजन पश्चाताप करते हैं एवं उनकी योग्यता, कुल, धर्म तथा गुण भी अस्त हो जाते हैं। यह विषकन्या रूपी भृत्या संस्कृति के श्रेष्ठ मूल्यों को नष्ट करती हुई सर्वत्र अपना प्रभाव जमा रही है। यह भृत्या नानाविध भौतिक भोगों के प्रलोभन से संयमी को भी विचलित कर देती है।

मेफाले-मतिकैः फिरंगीकुलजैर्दास्यांकुरारोपकै-
रार्याणामितिहास-संस्कृति कथोत्साहान्तकैः पापकैः।
शिक्षोद्देश्य विनाशकैः रिपुजनैरुत्पादिता छद्मना
भृत्येयं विषकन्यकेव तनुते भीमं विषं भारते।।[50]

पञ्चदशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 35 पद्य हैं, जिनमें भृत्या के संगठन बल के प्रभाव का पं. दवे जी के द्वारा मार्मिक वर्णन किया गया है। जो भृत्या अपने संघटन-बल के अभाव में राजलक्ष्मी से डरती थी वह आज संघटन-बल के कारण प्रमत्त हो रही है-

चिराय याऽभून्नवराजलक्ष्म्या, वंशवदा संहति-वीर्य-शून्या।
निजानुगानामवलोक्य सङ्घं, सैवतिवीर्या प्रममाद भृत्या।।[51]

जो भृत्य किसी समय स्वामी के सामने बोलते घबराते वे आज निर्भय होकर सामने बोलते हैं-

ये शून्यवाचो भृतिकाधिपाना- मग्रेऽतिभीता जगदुर्न वाक्यम्।
त एव सम्प्रत्यभिराजलक्ष्मी- महो ! स्थिता निर्भयवाचिवीर्याः।।[52]

इस प्रकार आज स्वामी की आज्ञा का उल्लघंन करने वाला श्रेष्ठ माना जा रहा है।

षोडशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 25 पद्य हैं, जिनमें स्थानान्तरण से उत्पन्न भृत्यजनों द्वारा दुखःसुखानुभूति का वर्णन किया गया है। जिसमें नौकरी में होने वाले स्थानान्तरण से कई भृत्य प्रसन्न होते हैं तो कई पूर्व स्थान की सुख सुविधाओं की स्मृति में खिन्न रहते हैं-

स्थानान्तरापादन-चित्रलीला, वियोग-योगैः रमतेऽत्र भृत्या।
हृष्यन्ति केचित्समवाप्य योगं, क्लिष्यन्ति केचित्तु वियोगखिन्नाः।।[53]

वह भृत्य अपने पेट के लिये ही पक्षियों की तरह नौकरी में भटकने की वेदना अनुभव करता है किन्तु कुछ लोग दूर-देश में भी अपना जुगाड़ बिठाकर मस्ती में रहते हैं तथा महिलाएं नगर के पास ही स्थानान्तरण करवाकर नगर और गांव का आनन्द लेती रहती है-

एताः पत्तनपारिजातचटका आयान्ति कल्ये सदा
भुक्त्वा ग्रामविहारमोदममितं गच्छन्ति सायं पुनः।
नासां कान्तवियोगतापजनितैः शापैर्निशावल्लभः
शप्तो ग्लानिमुपैति नूनममुना सन्तर्पिता भत्यपाः।।[54]

सप्तदशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 31 पद्य हैं, जिनमें नौकरी के लोभ में भृत्याजनों के द्वारा नगरीय वातावरण से उत्पन्न मनःस्थिति का वर्णन किया गया है। यथा-

दिदृष्या च केचिद् भृतिलब्धतीर्थाः, ग्रामाधिप-प्रेष्यगदाद् विमुक्ताः।
अदृष्ट-पूर्वानुपलभ्य भोगान् , हृष्यन्ति वै पत्तन-पुण्य-पीनाः।।[55]

ग्रामीण लोग नागरिकों के बाह्य ठाट बाट देखकर नगर की ओर भागते हैं किन्तु वहां के वायु-प्रदूषण, खाद्य पदार्थों में मिलावट और शोर-शराबे से दुखी होते हैं-

वायुप्रदूषणकरः खलु यन्त्रधूमः, खाद्य-प्रदूषणकरो विषचूर्ण-सर्गः।
शब्द-प्रदूषणकरो ध्वनियन्त्रघोषः, सर्व-प्रदूषणहतो नगराधिवासः।।[56]

अष्टादशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 33 पद्य हैं, जिनमें भृत्या के आश्रित पत्नियों की स्थिति का मार्मिक वर्णन किया गया है। जिसमें महिलाओं में व्याप्त भृत्या रोग से गृहस्थी की नौका का डगमगा जाना, धन के लाभ में महिलाओं का मातृत्व भूल जाना, दाम्पत्य जीवन का शुष्क हो जाना, नारी कुल में व्याप्त इस भृत्या विष के कारण देवता, पितरों का स्वाहा-स्वधा से वंचित हो जाना आदि वर्णित है। जैसा कि कहा गया है-

भृत्यापसर्गे विवतेऽङ्गनासु, गृहस्थनौका भ्रमिगा विपन्ना।
क्लान्तोऽस्ति कान्तो बटवो विषण्णाः, श्वश्रूजनः सीदति कार्य-पङ्के।।[57]

आजीव्यागरलं नवामृतमिषैः कामार्थ भावोल्बणम्
तृष्णा-सागरसम्भवं ननु तया नारी-कुले विसृतम्।
यत्क्ष्वेडोन्मिषितेन देवपितरः स्वाहास्वधावञ्चिताः
मन्ये धर्म विपाटनाय भुवनं प्राप्ता नवा मोहिनी।।[58]

एकोनविशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 25 पद्य हैं, जिनमें भृत्याश्रित दाम्पत्य के घर की स्थिति का वर्णन किया गया है। वह भृत्या गृहस्थ रूपी आश्रम में प्रवेश कर दाम्पत्य को विकृत कर, स्त्रियाँ बाहर बुद्धि-चातुर्य से एवं घर में अपने रूप से पुरूषों को परास्त करती है, जैसा कि कहा गया है-

वर्णाश्रम-विनाशाय, प्रवृत्ता भृतिका कलौ।
गृहस्थाश्रममाविश्य, दाम्पत्यं विचकार सा।।[59]

भाग्यशाली पुरुष को ही विदुषी गृहलक्ष्मी मिलती है जो घर की शोभा बढ़ाती है-

सदनसुषमा विद्याभ्यासैगुणौधसरस्वती
मधुर-वचना भृत्यावित्तैर्गृहेऽर्हति पद्मजा।
हसति मधुरा श्रान्ताप्येषा प्रियाङ्गणपद्मनि
निवसति विधौ दिष्ट्या पुंसः शुभोदयशालिनः।।[60]

विशःसर्गः-

इस सर्ग में कुल 26 पद्य हैं, जिनमें भृत्यायुग में नौकरी करने वाली पत्नी वृत्तिहीन पति का पोषण करती है तथा पत्नीभक्त पति इस परिवर्तित युग में पत्नी सेवा में अपना अपमान नहीं समझता। जैसा कि निम्न श्लोक में कहा है-

भृत्या-विरहितो भर्ता गेहे भार्या निषेवते।
भृत्यया भाविता भार्या कुरुते भर्तृपोषणम्।।[61]

रतिसुख देने वाली, वंशवर्धिनी पत्नी की इतनी-सी सेवा से कौनसा आसमान टूट पड़ता है-

कुसुमदशना ताम्बूलं चत्करान्मम विन्दति
दलति नु तदा का मे कीर्तिः श्रियै ददतो दलम्।
वितरति सुखं तल्पेऽनल्पं सुतैः कुलवर्धिनी
किमिति लघुना कार्येणाहं भवामि नु किङ्करः।।[62]

जब युग परिवर्तन में मान्यताओं के मूल्य बदलते हैं तो नवीनता की पहले आलोचना होती ही है-

वदति यदनुकूलं चैककाले तदेव, गणयति खलु लोकः कालभेदात्प्रतीपम्।
परिणातिमुपयाते मान्यतामूल्य-जाते, भवति हृदि पुराणे नूतनाचार-शङ्का।।[63]

एकविंशः सर्गः

इस सर्ग में कुल 31 पद्य हैं, जिनमें भृत्या के बढते प्रभाव से शारदा के दुखीः होने का वर्णन किया गया है। जिसके कारण शिक्षा के स्तर में गिरावट हो रही है और शास्त्रज्ञ शिक्षक मंदबुद्धि छात्रों को देखकर बहुत खिन्न हैं। अतः आज ज्ञात को कोई नहीं पूछता अपितु सर्वत्र भृत्या की ही महिमा व्याप्त है-

भृत्यालक्ष्यजडांश्छात्रान् शुल्कदासान् प्रशिक्षकान्।
दास्यगर्भां तथा विद्यां दृष्ट्वा सीदति शारदा।।[64]

प्रियतर-गुरुशिष्यो-दात्त-सम्बन्ध-हीनां, भृतजन-हित-शिक्षा-दीक्षितानेक-शिष्याम्।
पणविनिमयपाठ्यां पण्यशालां विशालां, विलपति हृदि खिन्ना शारदा वीक्ष्य शालाम्।।[65]

द्वाविंशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 27 पद्य हैं, जिनमें भृत्य के लिए अवकाश के दिनों का विर्णन किया गया है जो उसके लिए आनन्दमय होता है जिससे वह अपने परिवार तथा मित्रों के साथ घूमने-फिरने व खाने-पोने का आनन्द उठाता है। इसके अलावा उसके लिए मासांत वेतन का दिन भी होली-दोपावली के दिनों के समान सुखद प्रतीत होता है। जैसा कि कहा गया है-

प्रातरारभ्यसायान्तं क्लिन्नो व्यापार-कर्दमे।
भृतको मुदमाप्नोति प्राप्ते विरति-वासरे।।[66]

कान्तानुराग-कमनीय-शशि-प्रभाढ्या, मोदाभिराम-शिशु-लालन-लाभ-लुब्धा।
नाना-विनोद-हरितैरभिनन्द्य-माना, राकाऽवकाशदिवसादिभवास्तिहृद्या।।[67]

मासान्ते शुल्कदासानां वेतनाप्तिः सुधोपमा।
ऋणमुक्ता भवन्त्येके प्राप्तपर्वोत्सवाः परे।।[68]

त्रयोविंशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 25 पद्य हैं, जिनमें विलासिनी संचिका का आचरण रूपी वर्णन है। जिसमें वह कई बार भृत्यवर्ग का अभीष्ट सिद्ध करने वाली फाइलें हितैषिणी के समान प्रिय

लगती हुई प्रवास आदि सुख सुविधा प्रदान करने वाली एवं सुकामनी के समान कमनीय लगती है। जैसा कि कहा गया है-

सुवेतन-प्रवर्धिनी विपक्षमानमर्दिनी, सदावकाश-हर्षिणी स्वपक्षवर्गतोषिणी।
पदोन्नतिप्रदायिनी ह्यभीष्टदेशवाहिनी, मुदे सदैव जायते सुसञ्चिका हितैषिणी।।[69]

पुवासपुण्यदाऽमृता विदेशसेवनार्थिनी, प्रशासन-प्रसाद-काम्य-राधिका प्रसाधिनी।
निरङ्कुशा निरामया सुखप्रसंग-दायिनी, प्रियंवदा वशंवदास्ति सञ्चिका सुकामिनी।।[70]

ये संचिकाएं यक्षिणियों की तरह अपने अभिचार कार्यों से कई लोगों के प्राण भी ले लेतो हैं-

काश्चिद् यौवन-वारुणी-सुचुलुकैः समोहयन्त्यो जनान्
एकान्ते निजविभ्रमेण हृदयं हृत्वा चाराणां चलाः।
यक्षिण्यो जन-मारणापहरणोच्चाटाभिचारे रताः
लीयन्ते त्वपहृत्य जीवनमिमा भेदोदये सञ्चिकाः।।[71]

चतुर्विंशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 30 पद्य हैं, जिनमें भृत्या के पुत्र उत्कोच के प्रभाव का वर्णन है जिसमें भृत्या की शक्ति प्रबल होने से उसके पुत्र की भी गर्व से युक्त उक्तियाँ सुनाई पड़ने लगी। उसे गुप्तचर भी नहीं देख सकते और वह गर्व से कहने लगा कि मेरी शरण में आओ मैं तुम्हारा राजभय, ग्रहभय एवं समस्त भय दूर कर दूंगा। क्योंकि मेरी दृष्टि के आगे सहस्रनेत्र इन्द्र, युवक-मनोमर्दिनी वामाक्षी एवं चार-लोचन नृप भी तुच्छ है। जैसा की निम्न श्लोक में दृष्टव्य है-

उत्पाद्यामर कोपकण्टकमहं सम्पादये मङ्गलम्
संहृत्योग्ररुजं ग्रहोपजनितां कुर्वे मुदावाहनम्।
हृत्वा राजभयं करोमि पुरुषं पुण्योदयैर्निर्भयम्
उत्कोचोऽहमिहोदितोऽस्मि विपदां हर्तुं भरं भूतले।।[72]

इन्द्रोऽयं विदितः सहस्रनयनोऽस्त्यन्धोऽसुरालोडने
यूनामेव विशन्ति मानसममी वामाक्षिबाणाः क्वचित्।
भूपालाः स्पथलोचना अपि गताः क्रूराततायिग्रहम्
सर्वेषां तु ममैव लोचनमिदं हर्तुं क्षमं गर्वितम्।।[73]

पञ्चाविशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 27 पद्य हैं, जिनमें भृत्या के द्वारा संयोग-वियोग-निलम्बनादि कार्यों से भृत्यों के साथ खिलवाड किये जाने का वर्णन किया गया है। जिसमें कभी-कभी बड़ी रिश्वत लेने वालों का कुछ भी नहीं होता है और छोटा चोर मारा जाता है। जैसा कि कहा गया है-

संयोग-विप्रयोगाभ्यां निलम्बालम्बनैस्तथा।
सुख-दुख-प्रसारेण भृत्या भृत्यै रिरंसते।।[74]

यदि भवति जनानां नो विधिर्वक्रचक्रो, विहितमपि परीतं जायते सानुकूलम्।
स्वयमुपह्यतमीनास्वादने स्वस्मि चौरः, इभनिगरण-शीलाः साधवस्ते तु नक्राः।।[75]

षड्विशंः सर्गः- इस सर्ग में कुल 30 पद्य हैं, जिनमें भृत्यों की उन्नति होने पर उनके द्वारा अनुभूत दुखःसुखः आदि का वर्णन किया गया है। जैसा कि निम्न श्लोक से दृष्टव्य है-

उन्नयोत्कण्ठिता केचिद् यतन्ते बहुशो भृताः।
केचित्कार्य-भराद् भीता नोत्सहन्ते च तत्कृते।।[76]

अधिकारियों की बुरी दशा देखकर कुछ कार्यमन्थर इस संकटग्रस्त पदोन्नति के प्रति उत्सुक नहीं रहते हैं तथा ये कुर्सी के लोभी ऊपर के अधिकारियों को उपहार देकर प्रसन्न करते रहते हैं। यथा-

पृथुल-विष्टर-पीन-नितम्बिनी, कुरसिका-परिरम्भण-लोलुपः।
भृतिपतेश्च सदाशय-लिप्सया, नवनवोपसदैः कुरुते प्रियम्।।[77]

इस प्रकार कुछ पदोन्नति छोड़ने वाले भृत्य अपने ही सामने अपने साथी की पदान्नति देखकर दुःखी होते हैं।

सप्तविंशः सर्गः- इस सर्ग में कुल 30 पद्य हैं, जिनमें अपनी योग्यता का उचित आंकलन न किये जाने पर भत्यागत पक्षपात से दुखीः होकर प्रतिभाशाली जनों का विवशतावश विदेश पलायन एवं वहाँ पर भी भोग विलास, धन, वैभव आदि उनके चरित्र को भ्रष्ट करने लगते हैं यह स्थिति राष्ट्र के प्रभुद्धों को अच्छी नहीं लगती, आदि का वर्णन किया गया है। जैसा कि कहा भी गया है-

आवेष्ट्य वायसकुलं विरसोपयोग, मध्यास्त आस्यपिशितं परितो रसालम्।
दृष्ट्वेत्यपात्र-कलुषं मधु माधवीयं, पुंस्कोकिला खलु सुदूरमितः प्रयान्ति।।[78]

भृत्या-मदिष्ट-मधुराधरपानलुब्धान्, पक्षोपलालितः- विटान् परितो विलोक्य।
नष्टे च काचमणि-मूल्य-विभेदबोधे, दूरं प्रयाति विवशा प्रतिभापि देशात्।।[79]

अष्टाविंशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 30 पद्य हैं, जिनमें भृत्या एवं राजलक्ष्मी के कलह का वर्णन किया गया है। जब शासन के तंत्र-मंत्र से सुपरिचित भृत्या मातहत होकर राजलक्ष्मी को तृणवत समझती है तो राजलक्ष्मी भी भृत्या के लिए अनेक तर्क देती है। जैसा कि कहा है-

अयि दुष्टे ! शासन के अन्न पर पलने वाली ! शिव से वर पाकर शिव को ही भस्म करना चाहती है-

दग्धे ! कथं शासन-पिष्ट-पुष्टे ! विपर्ययोत्पीडित-लोक-तन्त्रे !।
शिवाद् वरं प्राप्य शिवं तुदन्ती भस्मासुरत्वं किमु गन्तुकामा।।[80]

वह दिन भूल गई जब उत्कोचरसोन्मत्ता तुम्हारे होंठ भय के मारे सूख रहे थे-

उत्कोच-पंकज-पराग-रसोन्मदाया, रुद्धं बभूव चपलं भ्रमणं भ्रमर्याः।
शुष्काधरा समभवस्सरघावियोगे, द्रागेव तत्स्मृतिपथात् किमु यातमस्तम्।।[81]

नित्यं नियुक्तिसमये किमु वा विमुक्तौ, मिथ्यैव ते समभवत्कलह-प्रपञ्चः।
प्राप्तेऽनुशासनभये कथमस्तमेता, तेऽहङ्कृतिः स्मरसि तच्चपले ! नु कच्चित्[82]

एकोनत्रिंशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 30 पद्य हैं, जिनमें पौरभृत्यात्मीय-सचिव-व्यवहार निरूपणं का वर्णन किया गया है। जिसमें भारत के गौरधर्म में दीक्षित भृत्यपुङ्गव पिरङ्गी एवं किरीटविहीन भूस्वामी अपनी क्रूर बुद्धि से शासन को वश में किए हुए रहते हैं तथा वृद्ध पुरूष की युवति पत्नी के समान राजलक्ष्मी भी ऐसे कुशल पुरूषों का आलिंगन करती है जो बड़े मान और मद में मस्त रहते हैं। जैसा कि कहा भी गया है-

किरीट-शून्या अपि भूमिनाथाः भरण्युसंज्ञा अपि शासकेड्याः।
प्रच्छन्नमन्त्राः नृप-तन्त्र-सिद्धाः रहोविमर्शा विलसन्ति भृत्या।।[83]

उन वृद्ध सचिवों के हाथ में शासन का सत्र रहता है-

पीठस्थाः सचिवा वृद्धा धृत-शासन-प्रग्रहाः।
लब्धविज्ञान-वैशिष्ट्याः शासते नव-शासकान्।।[84]

ये वक्रोक्तिकुशल, अप्रतिहत शक्ति, गिरिजाशंकरात्मज सदा अपनी मस्ती में रहते हैं-

सिध्यर्धि-समवेतास्ते वक्रतुण्डा गुहेश्वराः।
अरिष्टा अपि मोदन्ते गिरिजाशङ्करात्मजाः।।[85]

त्रिंशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 30 पद्य हैं, जिनमें नौकरी के पश्चात प्राप्त होने वाली सुखानुभूति का वर्णन किया गया है जिसमें सेवानिवृत्ति पश्चात् विविध कार्य - बंधनादि कष्टों से मुक्ति, अपने कार्य, कार्यालय के लाभ-हानि, अधिकारी एवं कर्मचारियों के दुव्यर्वहार की चिन्ता से मुक्ति, विलम्भजन्य क्रोध से गृहिणी के साथ कलह की समाप्ति, नित्य प्रति प्रातः भ्रमण, भृत्याकालिन चर्चाओं से मनोरंजन, वात्सल्य सुख का आश्वादन तथा निर्भयता से राजनैतिक एवं धार्मिक चर्चाओं का आनन्द प्राप्त करने का वर्णन है। जैसा कि कहा है-

ज्येष्ठा पल्लविता पुनर्वसुमती शाखाविशाखा भवेत्
स्तुत्यं वर्षफलं दशा च सुखदा भूयान्न वक्रःशनि।
केन्द्रस्थाः शुभदा भवन्तु सततं हानौ न दृष्टिप्रदाः
नैषा खेचर-गोचरार्ति-जनिता चिन्ताद्य मां बाधते।।[86]

भृत्याशासन-वर्जितस्य न भयं लेखेऽथवा भाषणे
स्वातन्त्र्यं मम राजनैतिक दले सामाजिके धार्मिके।
नो वा प्रग्रहकर्षणं भृतिकुलाल्लोकेरितान्दोलने
यन्नाप्तं ह्यभिनन्दनं भृतिपदे लोकाचने तल्लभे।।[87]

एकत्रिंशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 36 पद्य हैं, जिनमें भृत्यानिवृत्ति पश्चात् भृत्य के द्वारा किये जाने वाले विषाद का वर्णन किया गया है। जैसा कि कहा गया है-

सेवानिवृत्त भी विधुर की तरह सेवाकालीन कुरसी-प्रेयसी के सुखों को याद किया करता है-

भद्रपीठार्पिताश्लेषां भोग-सौख्यप्रदायिनीम्।
निवृत्तोऽपि स्मरत्येनां प्रेयसीं विधुरो यथा।।[88]

जिस कुर्सी पर बैठकर अनेक सम्मान और सुख प्राप्त किये थे, उनका आज स्पर्श भी वर्जित हो गया है-

यस्यां स्थातुमलम्बभूव न पुरा कश्चित्परो मद्विना
या भीत्या भृतकैर्वरैर्धनिजनैः प्रीत्या च वन्द्याभवत्।
स्वीये सौख्यदसंश्रये बहुविधाः कामा यया पूरिताः
सैवैषाद्य निवारयत्यनुपदं स्पर्शं ममासन्दिका।।[89]

अब पदभ्रष्ट नेता की तरह बेकार सेवानिवृत्त को घर में और बाहर कोई नहीं पूछता-

पीठप्रभावधिगत-प्रतिष्ठो, बभूव लोके स्वजने य ईड्यः।
स एव भृत्या-विरतो ह्युपेक्ष्यते, नेता यथा लुप्त-पद-प्रभावः।।[90]

द्वात्रिंशः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 31 पद्य हैं, जिनमें अनूढा भृत्या का सेवानिवृत्ति पश्चात् दुखानुभूति का वर्णन किया गया है। जिसमें उसके द्वारा सेवाकाल में विवाह नहीं करना, अन्य सेवानिवृत्त जनों को सपरिवार देखकर दुखीः होना, मृत्युकाल में बन्धुओं के अभाव में अन्त्येष्टि की चिन्ता, बुढ़ापे में भी यौवनोचित श्रृंगार की भावना व्याप्त होना, माता-पिता के वियोग की पोड़ा एवं मनोरंजन आदि सुख साधनों के प्रति निराशा का भाव वर्णित किया गया है। जैसा कि कहा गया है-

पुंसो विधेयत्वमनीहमाना, विवाहबन्धं न जगाम बाला।
भृत्याश्रयोपार्जित वित्तमत्ता, निनिन्द नार्या नरसंश्रयत्वम्।।[91]

सेवानिवृत्त होने पर वह भृत्या दाम्पत्य जीवन के अभाव में खिन्न हो रही है-

समस्त-शङ्काभयहारिहृद्य, भृत्याश्रयावाप्त-समस्तकामा।
याते क्षयं यौवनरत्नकोषे, त्वनाप्त-दाम्पत्यसुखा चिखेद।।[92]

दिवं यातस्तातोऽप्यनधिगतकन्यार्पणसुखो
न दृष्टा मात्राहं परिणयन-सौभाग्य-सुभगा।
सखीनां नो मेने हितकरवचोऽप्युग्रहठिनी
विपाकः पापानां किमिह फलितः पूर्वजन्षाम्।।[93]

इस प्रकार सेवानिवृत्त वह भृत्या अनूढ़ा वृद्धावस्था में अपने जीवन को मरुप्रदेश का एक सूखा वृक्ष समझती है।

त्रयस्त्रिंशत्तमः सगः-

कुल 31 पद्यों से युक्त इस सर्ग में ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ सेवानिवृत्त भृत्य के द्वारा कार्यालयादि में उत्कोच न देने के अभाव में प्राप्त होने वाले कष्ट आदि का मार्मिक वर्णन किया गया है। जैसा कि निम्न श्लोकों से दृष्टव्य है-

चिरकाल तक ईमानदारी से सेवा करने वालों के प्रति प्रायः पुंश्चली की तरह भृत्या भी सेवानिवृत्ति पर अनुकूल नहीं रहती। जा न देते हैं, न लेते हैं, ऐसे लोग कार्यसिद्धि के लिए चच्कर काटते रहते हैं-

दत्तं नवाप्तं पणमेकमेव सिद्धान्तमूढैः खलु यैस्तु सिद्ध्यै।
त एव लब्धुं निजकार्यसिद्धिं भृत्यालयद्वार-मुखे भ्रमन्ति।।[94]

उत्कोच और उपहार देने वाले आराम से पेंशन पा लेते हं-

उत्कोच-भाग-परिपोषित-पीठकोशाः, रम्योपहार-परिमार्जित-कार्य-दोषाः।
स्वच्छन्दमाप्त-सुखभोग-विलास-वासाः, गच्छन्ति वृत्तिविरतिं ससुखं हि दासाः।।[95]

जिनके मुँह में खून लग जाता है वे बिना उत्कोच किसी को घास नहीं डालते-

नहि दातुमलं क्षुधापहं, भूर्युत्कोचधनं पदे-पदे-
व सिसृप्सति कोऽपि तद्विना रसितासग्वदनो दुराशयः।।[96]

चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 31 पद्य हैं, जिनमें भृत्यापुत्र के पराक्रम का वर्णन किया गया है। उस भृत्या पुत्र की दृष्टि से रूके हुए यंत्र अचानक चलने लगते हैं और स्वस्थ व्यक्ति रूग्ण हो जाते हैं। भृत्या पुत्र की प्रतिभा से शून्य प्रदेश में देव प्रकट हो जाते हैं और बिना मूर्ति के ही चन्दन लेप हो जाता है, देवताओं के मंत्र बल से लोह स्वर्ण बन जाता है तथा सोना धूल, वृद्ध युवक एवं पत्थर शिव बन जाता है। जो निम्न प्रकार से दृष्टव्य है-

यह भीमकाय भृत्या-हिडिम्बापुत्र घटोत्कच अपनी जवानी में प्रमत्त हो रहा है।

घटोत्कचोऽयं धृत-भीमकायो, भृत्याहिडिम्बा-नयनाभिरामः।
उत्कोचनामा श्वयति प्रवीर्यः, तारुण्यभावे प्रबलप्रभावः।।[97]

निर्वाचन यज्ञ में यदि इसे पूजा प्राप्त न हो तो यह वीरभद्र यज्ञ का ही ध्वंस कर देता है-

निर्वाचनाख्ये नवदक्षयज्ञे, न पूज्यते चेद् भृतिनन्दनोऽयम्।
यज्ञाग्निगर्भोदित-वीरभद्रः, क्रतोर्हि विध्वंसकरः प्रजायते।।[98]

जडानि-यन्त्राणि चलन्त्यबाधं, स्थलन्ति तस्योग्रदृशा चलानि।
रुग्णोऽपि च स्वास्थ्यमुपैति कारु, र्दक्षश्च दृष्ट्या जडतां प्रयाति।।[99]

पञ्चत्रिंशत्तमः सर्गः-

इस सर्ग में कुल 31 पद्य हैं, जिनमें भृत्या द्वारा किये गये कुत्सित कार्यों से भारत की दशा से खिन्न नारद के लिए महर्षि व्यास का आश्वासन वर्णित किया गया है। जिसका संक्षिप्त विवेचन निम्न पद्यों में दृष्टव्य है-

देवर्षि नारद से भृत्या का चरित्र सुनकर व्यास ने कहा, यह सब हरि की माया है-

निशम्य भृत्याचरितं सुरर्षे, र्युगोपकाराय भुवि प्रवृत्तम्
मत्वा च सर्वं हरिमायिकं तद् ,व्यासो मुनिं नारदमाबभाषे।।[100]

वैदिक वंशज वेद की निन्दा कर रहे हैं, तो अवैदिक वैदिकतत्त्व के लालायित दिखाई पड़ रहे हैं-

जाता हि वशेष्विह वैदिकानाम्, निदन्ति वेदान् कृतबुद्धिभेदाः।
विधर्मिणो नास्तिक वंशजाताः, श्रद्धालवो वैदिक-तत्त्व-बोधे।।[101]

अर्थप्रधान युग में छलकपट को प्रधानता है। इसमें धर्म के बीज की रक्षा करना ही विचारणीय है-

युगेऽर्थमूले छलपापशूले, कुत्रास्ति धर्माभ्युदयस्य वार्ता।
धर्मस्य बीजं श्रुतिबोधसाध्यं, सुरक्षितं स्यादिति चिन्तनीयम्।।[102]

यह शारदा देवी कलि प्रभाव को दूर कर, धर्म के प्रति बुद्धि प्रेरित करती हुई पुनः भारत को विश्व गुरुपद प्राप्त करवायेगी-

कलिप्रभावं परिहर्तुकामा, धर्मे मतिं भारतभूमि-भागे।
सम्प्रेरयन्ती पुनरेव तस्य, विधास्यते विश्वगुरु-प्रतिष्ठाम्।।[103]

देवर्षि नारद यह जानकर अधिक प्रसन्न हुए कि भारत की वर्तमान स्थिति अब बहुत समय तक नहीं रहेगी। वस्तुतः भगवान् विष्णु योगी, यति एवं भक्तों के माध्यम से विषमकाल में भी धर्म की रक्षा करते हैं-

शास्त्राणां परिपालनं प्रकुरुते व्यासो हिमाद्रिस्थितो
योगाभ्यास-निदर्शनेन मुनयो धुन्वन्ति भोगैषणाम्।
म्लेच्छान् मादयते च भक्तिलहरी पारं पयोधेरपि
नूनं रक्षति धर्ममत्र सततं नानामिषैमधिवः।।[104]

<u>षट्त्रिंशः सर्गः</u>-

इस सर्ग में में कुल 53 पद्य हैं, जिनमें वेदव्यास की प्रार्थना सुनकर सरस्वती का भारत भूमि पर किसी निःसन्तान द्विज के घर में जन्म लेने एवं उसके प्रभाव का वर्णन किया गया है। जो यह निम्न पद्यों द्वारा दृष्टव्य है-

वह ब्राह्मण अपनी कन्या का दिव्यरूप देखकर बहुत प्रसन्न हुआ-

दिव्यं स्वरूपं प्रविलोक्य तस्याः, भेजे मुदं विप्रवरः सभार्यः
दिष्टायाद्य तुष्टाः कुलदेवता मे, येनापयातास्त्यनपत्यतार्तिः।।[105]

लोग भी उस बालिका को, शारदा, किंवा दुर्गा, किंवा लक्ष्मी का अवतार मानने लगे-

भूमावतीर्णा किमु शारदेयम्, धृतावतारा किमुवास्ति गौरी।
पयोधि-कन्यास्त्यथवा नु लक्ष्मीः, व्यतर्कयत्तां प्रसमीक्ष्य लोकः।।[106]

भगवती सरस्वती के चरण-सरोज की सौरभ से राष्ट्र सुशोभित हो गया तथा कर्तव्यबोध का सूर्य उदय हुआ-

सरस्वती पाद-सरोजगन्धम्, अवाप्य राष्ट्रं मुदमाप भूरि।
कर्तव्यबोधारुणचण्ड-भासा, भुवोऽन्धकारो विलयं जगाम।।[107]

जिसने इस दिव्य भूमि का इतना अनिष्ट किया, उस भृत्या-पुत्र को लोग नष्ट करने के लिये चारों ओर घूमने लग-

येनाहितं भारतदिव्यभूमे, श्चिराय कृत्वा विहता प्रतिष्ठा।
तस्याशु नाशाय कृतप्रयत्नाः, अन्वेष्टुमेनं हि जना विचेरुः।।[108]

सप्तत्रिंशः सर्गः-

इस सर्ग में में कुल 39 पद्य हैं, जिनमें शारदा के ओजस्वी उपदेशों से कुपित जनता द्वारा उत्कोच के मारे जाने पर भृत्या के विलाप का वर्णन किया गया है।

भृत्या विलाप करती हुई कहती है कि ओ दुखियों के साथी ! सम्पूर्ण आर्थिक भावों को जगाने वाले पुत्र ! इस कष्ट में माँ को छोड़कर तुम कहां चले गये। मेरे माता-पिता तो बचपन में ही मुझे छोड़ कर चले गये थे, मुझ कुमारी को तुमने ही मातृत्व का सौभाग्य प्रदान किया था भर्तृकुल तो मैंने स्वीकार ही नहीं किया था। जो जातिबन्धु थे वे भी आज नहीं हैं। मैं आज किसके पास जाऊं-

नहिभर्तृकुलं मयादृतं, न च सख्योऽपि च जाति-सम्भवाः।
कमहं शरणं ब्रजाम्यहो ! कष्टेऽस्मिन्नु फिरङ्गिजाधुना।।[109]

इस प्रकार अन्त में भृत्या अपने पुत्र के वियोग में विलाप करती हुई अपने अवसान हेतु हिमालय की ओर अज्ञात मार्ग से जाती हुई, किसी अज्ञात शक्ति से प्रेरित होकर, व्यासमुनि के आश्रम में पहुँच गई-

भूतिरिति तनुजार्ति - व्याकुला दीर्घकालम्, निजकृतमिह सर्वं संस्मरन्त्येव जालम्।
तदुपशमन सिद्धां शारदां वीक्ष्य भूमौ, हिमगिरिमभिपेदे कर्तुमात्मावसानम्।।[110]

वह भृत्या कुछ समय व्यासजी के आश्रम में विनोदवार्ता में बिताकर पुनः विष्णु जी के धाम की ओर चल पड़ी-

चिराय सा व्यासमुनेः कुटीरे, विनोद-वार्ता-गमितात्म-काला।
पुनर्गृहीतुं नवभूमिकां क्वचित् , विष्णोः पदं सा त्वरितं प्रतस्थे।।[111]

समीक्षा-

महाकाव्यकार पं. श्री रामदवे विरचित भृत्याभरणम् महाकाव्य में आधुनिकता की चकाचौंध तथा स्वार्थलिप्सा के दृष्टकोण ने जो भारत देश की स्थिति बना रखी है, उससे उत्पन्न कवि का क्षोभ काव्य में व्यंग्य के माध्यम से प्रकट हुआ है। कवि ने अभिधा शक्ति द्वारा किसी की भर्त्सना नहीं की है जिसके कारण राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा 'भृत्याभरणम्' इसी महाकाव्य पर 'माघ' पुरस्कार प्रदान किया गया है।

''भृत्याभरणम्'' युग प्रवृत्ति बोधक महाकाव्य है। इसके संक्षिप्त कथानक को कवि ने पौराणिक कल्पना से जोड़ा है। संस्कृत के प्राचीन महाकाव्य प्रायः पौराणिक अथवा ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन पर ही लिखे गये हैं। पं. श्री रामदवे का यह महाकाव्य इस दृष्टि से अपनी अलग ही पहचान रखता है।

कवि ने अपने काव्य की भूमिका में इस महाकाव्य के बीज का निरूपण करते हुए लिखा है कि ज्यों ही वे बैंक सेवा से निवृत्त होकर घर पर आये तो उन्हें सहसा सेवानिवृत्ति का सुख अनुभव हुआ जिस पर उन्होंने एक कविता लिखी जिसमें भृत्याकाल के बाबूओं के बैंक अधिकारियों के तथा ग्राहकों के लेनदेन के झंझट से छुटकारा पाने का वर्णन किया गया है साथ ही नौकरी के समय दूरभाष, वाहन, फर्नीचर, सेवक सम्मान आदि सुख के हट जाने की वेदना भी प्रकट हुई है।

इस प्रकार उन सेवानिवृत्ति के सुख-दुःखात्मक बीजों से यह काव्य साहित्य वाटिका का मधुरफलदायी वृक्ष खड़ा हो गया।

भृत्यारूपी नायिका का जन्म अंग्रेज के घर में होता है। वह भारतीयों पर अपना जादू चलाती है जिससे ज्ञान के लिए चलाई जाने वाली पाठशालाओं के आचार्य भी मोहित हो जाते हैं-

अज्ञात कौटिल्यधियस्तपस्विनः, यथा विमुग्धा विषवल्लरीषु।।

भृत्या कुमारी अवस्था में ही उत्कोच नामक पुत्र को जन्म देती है। ये दोनों देश में अपना प्रभाव जमा लेते हैं जिसमें शिक्षण संस्थाएँ भी समाहित हैं। उसी प्रसंग के नौकरी पाना, पदोन्नति, स्थानान्तरण, नौकरी पेशा महिलाओं की स्थिति, भृत्याहीन पुरूषों की दशा, भृत्यालयों में संचिका (फाइलें) नायिकाओं की स्थिति, उत्कोच प्रभाव, यूनियन, सेवानिवृत्ति आदि विषयों पर व्यंग्यात्मक प्रहार के लक्ष्य से रोचक वर्णन करते हुए पं. दवे जी अन्त में व्यास की प्रेरणा से शारदा के द्वारा लोगों की आँखें खोलने का उल्लेख करते हैं, जिससे प्रभावित होकर लोग उत्कोच का वध कर डालते हैं। अन्त में भृत्या, पुत्र शोक में विलाप करती हुई हिमालय की ओर चली जाती है।

यह 'भृत्याभरणम्' नायिका प्रधान काव्य है। भृत्या अर्थात् नौकरी इसकी प्रधान नायिका है। आधुनिक युग में नौकरी प्राप्त करना ही मानव मात्र का लक्ष्य बन गया है जिसे पाकर वह विविध लाभ अर्जित करना चाहता है। इस पर सटीक प्रहार करते हुए यह 'भृत्याभरणम्' काव्य रूपकात्मक शैली में व्यंग्य का सहारा लेकर आधुनिक युग की विडम्बना को मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करता है। यह काव्य किसी विशिष्ट कथावस्तु को लेकर नहीं चला है। इस भारतवर्ष में नौकरीपेशा लोगों के लिए कवि पं. श्री रामदवे ने एक सामान्य सा कथा सूत्र बुना है। यहाँ पर व्यंग का निम्न उदाहरण दृष्टव्य है-

सततं श्रमशालिनं मुधा, भूतार्थ-प्रतिपत्ति पक्षिणम्।
भरटा विहसन्ति मामिमे, स्वाथान्मूलितराष्ट्रसम्पदः।।

राष्ट्र की सम्पत्ति हड़पने वाले ये स्वार्थी लोग, निरन्तर श्रमशील मुझ पर हँसते हैं, उत्कोच और उपहार देने वाले आराम से पेंशन पा लेते हैं। अतः रिश्वत और भ्रष्टाचार पूर्णतया व्याप्त है।

काव्य के 37 सर्गों में संस्कृत के विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। समूचे काव्य में हास्य व्यंग्य की प्रधानता है तथा आधुनिक स्थितियों का संस्कृत पद्यों में रोचक वर्णन काव्य को एक अलग पहचान देता है। तथा इसकी कथावस्तु जनमानस के जीवन को छूती हुई जीवन की बारीकियों को सूक्ष्मता से रेखांकित करती है। इसके अतिरिक्त इसमें समाज की विद्रुपताओं का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है जो रिश्वत, उत्कोच एवं भ्रष्टाचार पर बल देती है।

2. राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य -

विश्वगुरु रहे भारत के प्राचीन क्रान्तदृष्टा मनीषियों ने युग परिवर्तन को ईश्वर की माया माना है। जिससे वह अपनी माया से मनुष्यों की प्रवृत्तियों और परिवेश में ऐसा परिवर्तन ले आता है जिसके क्रम को मानव ठीक तरह से समझ नहीं पाते। महाभारत भी उसकी ही एक लीला थी, जो हमें भगवद्गीता से ज्ञात होती है, जिसके कारण भारत का राजतंत्र दूषित हो गया। शासक अपने प्रजारंजन धर्म को भूलने लगे। परिणामतः भारत में मुगलों का शासन आया। वह भी राजतंत्र का ही रूप था उसमें भी जब विलासिता आई तो अंग्रेजों का शासन आ गया।

अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति और इतिहास को मिटाने के लिए शिक्षा में ही परिवर्तन कर दिया। शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान की जगह आजीविका हो गया। उसके पश्चात् संसार में राजतंत्र की जगह प्रजातंत्र का उदय हुआ जिसक प्रभाव से भारत में भी प्रजातंत्र आया। शिक्षा और शासन के लक्ष्य परिवर्तन के कारण मनुष्यों में अर्थ और काम की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। यही युग परिवर्तन का रूप है जिसे हमारे पूर्वजों ने कलियुग कहा है जिसके सभी लक्षण आज के युग में विद्यमान हैं।

पूर्व में जो राजलक्ष्मी आठ लोकपालों के अंश का वरण करती थी वहो राजलक्ष्मी आज विष्णु की प्रेरणा से निर्वाचन स्वयंवर में वोट विजेता को अपना पति मानती है। यह लोकतंत्र भी विष्णु माया का ही रूप है जिसमें विष्णु की ही विभूतियां विविध रूपों में कलियुग की सहयोगी बनकर अपनी भूमिका निभा रही हैं। यही इस काव्य का बीज है।

कवि ने इस युग प्रवृत्तिबोधक काव्य में दिवंगत श्री राजीव गाँधी के समय में निर्वाचन कालीन घटनाओं का विशेष रूप से वर्णन किया है। राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य में कुल 18 सर्ग हैं और श्लोक संख्या 1484 हैं।

इस महाकाव्य की कथावस्तु सर्गानुसार निम्न प्रकार से हैं-

प्रथम सर्ग: धर्मात्मा राजा परीक्षित के इस भूमि से चले जाने पर कलियुग उनके द्वारा दिये गये पाँच आवास स्थलों के माध्यम से (जुआ, सुरापान, स्त्रियाँ, प्राणी हिंसा तथा सुवर्ण) राजतन्त्र को दूषित करने लगा। जो राजा प्रजापालक के लिए नियुक्त किये गये थे, वे कलियुग के प्रभाव से प्रजा का शोषण करने लगे। कलियुग भी मानों तीनों युगों में अपने ऊपर होते रहे अत्याचार का प्रतिशोध लेने के लिए उग्ररूप धारण कर राजतन्त्र को विकृत करने लगा।

द्वितीय सर्ग: राजलक्ष्मी को राजतन्त्र से मुक्त करवाने के लिए भगवान द्वारा इन्द्र को आदेश प्राप्त होता है। देवराज इन्द्र भारत में वल्लभभाई पटेल के रूप में अवतीर्ण होकर राजाओं से सत्ता छीन लेते हैं। वल्लभभाई पटेल के प्रबल साहस के आगे सभी राजा हतवीर्य होकर अपनी सत्ता उन्हें सौंप देते हैं।

तृतीय सग: राजलक्ष्मी के मनोरंजनार्थ निर्वाचनायुक्त शेष सरस्वती को नियुक्त करता है। सरस्वती लोकतन्त्र में होने वाले संकटों का निर्देश करती हुई, व्यंग्य बाणों से राजलक्ष्मी को उत्तेजित करती है। राजलक्ष्मी सरस्वती के वचनों से प्रभावित न होती हुई इन सारी तन्त्र रचनाओं में विष्णु की माया जानती है, जिसे स्वीकार करने में उसे कोई खेद नहीं होता।

चतुर्थ सर्ग: सरस्वती राजलक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिए उसकी विनोद व्यंग्यपूर्ण स्तुति करती है। मतपत्र रूप धारण करने वाला विष्णुदूत गरूड़ भी प्रकट होकर राजलक्ष्मी की स्तुति करता है। शारदा इस स्वयंवर में मत के वैभव का वर्णन करती है। प्रत्याशी भी मत को प्रसन्न करने में लगते हैं। अन्यत्र भी लोकतन्त्राभिनायक इस मत की प्रशंसा की जाती है।

पंचम सर्ग: निर्वाचन आयुक्त द्वारा चुनावरूपी राजलक्ष्मी स्वयंवर की घोषणा, स्वयंवर के नियम, प्रत्याशियों का मतप्राप्त्यर्थ प्रयास तथा निर्वाचनकालीन विविध दृश्यों का वर्णन है इसके अतिरिक्त प्रत्याशियोग से वंचित लोगों द्वारा गणनायक की प्रार्थना भी वर्णित की गई है।

षष्ठ सर्गः मत याचना कौतुक, मतयाचकों का जनता द्वारा तिरस्कार, भिक्षुकों द्वारा मतभिक्षुओं को कोसना, मतदाताओं को मत न देने के बहानें आदि का वर्णन है।

सप्तम सर्गः शासन पर बैठे कांग्रेस दल के प्रत्याशियों द्वारा अपने दल की प्रशंसा में महात्मा गाँधी, पं. जवाहरलाल नेहरू तथा इन्दिरा गाँधी की प्रशस्ति वर्णित की गई है।

अष्टम सर्गः शासनस्थ कांग्रेस द्वारा इन्दिरा के द्वारा पंजाब की रक्षा व्यवस्था, अपने शासन की उपलब्धि में भौतिक प्रगति, महिलोद्धार, उपेक्षित वर्ग की उन्नति का वर्णन एवं विपक्ष के सत्ता हेतु, परस्पर कलह का व्यंग्यपूर्ण वर्णन है।

नवम सर्गः इन्दिरा के शासन में गरीबी हटाओं की घोषणा को विफल करने के लिए देवताओं के मनुष्य रूप में, भारत में अवतरित होकर विविध माँगों को सामने रख कर, शासन में बाधा पहुँचाने का प्रयास तथा कांग्रेस प्रत्याशी राजीव गाँधी आदि नेताओं के प्रचार का वर्णन है।

दशम सर्गः इस सर्ग में भाजपा दल द्वारा शासक दल के दोषों का वर्णन के साथ-साथ चिरकाल से शासन कर रहे कांग्रेस दल के शासन में चारों और भ्रष्टाचार व्याप्ति का भी वर्णन किया गया है।

एकादश सर्गः प्रशासनस्थ कांग्रेस दल द्वारा प्रदर्शित अपनी उपलब्धियों में भाजपा द्वारा दोष दर्शन का वर्णन है। इसके अलावा बच्चों की शिक्षा में बाधक बने टी.वी. प्रसारण द्वारा भारतीय संस्कृति का नाश, भौतिक साधनों की दुरवस्था के कारण जनता के द्वारा प्रतिदिन मृत्यु का सामना करना, अन्न पर रसायन का छिड़काव, पानी में मिलाकर, गैस की ज्वालाएँ, नवौषधियों का कुप्रभाव, बड-बड़े बांधों से जलप्लावन, विनाशकारी शस्त्रास्त्र के दुष्प्रभाव को जानते हुए भी इनका आँखे मूंदकर प्रयाग किया जाना, आदि वर्णित है।

द्वादश सर्गः इसमें भारतीय जनता पार्टी के लक्ष्य और नेताओं की प्रशस्ति का वर्णन किया गया है। स्वतन्त्रता के प्राप्त हो जाने पर भी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से देश की क्या दशा हो गई है? अब हमारे मान बिन्दुओं की रक्षा करना भी अपराध माना जा रहा है।

त्रयोदश सर्गः विमान में बैठी शारदा राजलक्ष्मी को इस निर्वाचन स्वयंवर का दर्शन कराती हुई एवं साम्यवादियों की झलक दिखाती हुई कहने लगी- हे सखि! इस स्वंयवर के कई प्रत्याशी तुम्हारे हाथ से मधु चषक पीने की लालसा में नये-नये रूप धारण कर तुम्हें पाने का प्रयास कर रहे हैं।

चतुर्दश सर्गः इस सर्ग में मतदान के दृश्यों का वर्णन कर यह बतलाया गया है कि निर्वाचन यज्ञ में ज्योतिषियों के भी भाग्य उदय हो जाते हैं और यदि किसी भी ज्योतिषी की भविष्यवाणी से प्रत्याशी जीत जाता है, तो वह अभीष्ट दक्षिणा से संतुष्ट किया जाता है।

पंचदश सर्गः राजलक्ष्मी नवतन्त्र की निर्वाचन पद्धति देखकर बहुत खिन्न होती है और मन से भगवान विष्णु का स्मरण करती है। इतने में ही भगवान नारद सहित लक्ष्मी के आगे उपस्थित हो जाते हैं। लक्ष्मी, विष्णु भगवान के आगे इस तन्त्र की निर्वाचन पद्धति से खिन्न हुई, कहने लगी, हे स्वामी! आप मुझे इस तन्त्र जाल में कब तक फँसाये रखोगे, जहाँ नित्य नये संकट आने वाले हैं।

षोडश सर्गः युवा नायक राजीव नेत्र के विजय घोषणा सुनते ही विविध राष्ट्रों के प्रतिनिधि उनके अभिनन्दन में उपहार भेंट करने लगे। देवतागण भी विविध रूप धारण कर नवतन्त्र का आनन्द लेने के लिए अभिनन्दन समारोह में सम्मिलित हो गए तथा अप्सराएँ भी अभिनव श्रृंगार सजाकर विजयोत्सव में सम्मिलित हो गई।

सप्तदश सर्गः इस राजलक्ष्मी के स्वंयवर में कैतव कृत्य-परायण कलिप्रेरित दूतों को ढूँढ़ने के लिए निर्वाचनायुक्त शेष के दूतों का भी केलिग्रहों में प्रवेश तथा कालि दूत भी शेष के दूतों को पहचान लेते हैं और उनके आने की सूचना कलिनाथ को देते हैं।

अष्टादश सगः लक्ष्मी स्वामी के द्वारा प्रदत्त आश्वासन से निश्चिन्त होकर मुस्कुराने लगी। भगवान भी लक्ष्मी को प्रसन्नवदना देखकर वहाँ से अन्तर्हित हो जाते हैं। लक्ष्मी ने भी इस नवतन्त्र में अपनी माया दिखाना प्रारम्भ कर दिया।

विवेच्य महाकाव्य की पात्र सूची

पुरुष पात्र-

1. विष्णु	-	लक्ष्मीपति, त्रिलोकेश्वर और महाकाव्य के नायक
2. नारद	-	विष्णुभक्त, विष्णुदूत, विष्णुगुप्तचर
3. कलि	-	कलियुगाधिष्ठाता, प्रतिनायक
4. इन्द्र	-	स्वर्गाधिपति, बी.बी.पी. की भूमिका में
5. शेष	-	टी. एन. शेषन की भूमिका में चुनाव लोकायुक्त
6. राजीवगाँधी	-	इन्दिरा पुत्र, राजलक्ष्मी का नवतंत्र पति
7. ब्राह्मण	-	मतदाता

स्त्री पात्र-

1. राजलक्ष्मी	-	विष्णु पत्नी, नवतंत्र नायक की पत्नी, महाकाव्य की नायिका
2. सरस्वती	-	शारदा, आकाशवाणी की भूमिका में।
3. इन्दिरा	-	पं. जवाहरलाल नेहरू की पुत्री, राजीव गाँधी की माँ।
4. इन्द्राणी	-	इन्द्र की पत्नी

पशु-पक्षी पात्र-

1. गरूड़ - भगवान श्री विष्णु का वाहन, मत पत्र की भूमिका में 2. महिष, 3. वृषभ

राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य पात्रानुशीलन -

पुरुष पात्र-

I. विष्णु -

विष्णु के ऐतिहासिक स्वरूप का वर्णन उपस्थित करना एक ग्रन्थ रचना का विषय है। विष्णु एक ही परम तत्व की तीन मूर्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) द्वितीय मूर्ति हैं। ब्रह्मा का कार्य सृष्टि, विष्णु का स्थिति (पालन) और शिव का कार्य संहार करना है। पुराणों और परवर्ती साहित्य में विष्णु की कल्पना-सृष्टि चिन्तक के रूप में की गई है। उनका निवास स्थान क्षीर सागर है। शेष शय्या पर वे शयन करते हैं। वे अपने चिन्तन से सम्पूर्ण जगत को धारण करते हैं। उनके हाथ में शंख एवं चक्र है। उनकी शय्या के समीप सदैव उनकी धर्मपत्नी लक्ष्मी

विराजमान रहती है। उनका वाहन पक्षीराज गरुड है। मुर नामक राक्षक को मारने से जिसका नाम मुरारी है। समुद्र मन्थन में जिसने अपने शेष को रस्सी के रूप में अर्पित किया था। समुद्र मंथन से निकले अमृत को प्राप्त करने के लिए और प्रबल असुरों को मोहित करने के लिए जिसने मोहिनी का रूप धारण किया था। गीता के अनुसार जो भारत भूमि पर अधर्म के नाश के लिए अवतार लेते हैं जिन्होंनें अब तक राम, कृष्ण, परशुराम, बौद्ध आदि दशावतार ले लिये हैं।

''राजलक्ष्मो स्वयंवर'' महाकाव्य में भगवान विष्णु का वर्णन पूर्वोक्त ऐतिहासिक स्वरूप के अनुसार ही है। विवेच्य महाकाव्य में उनके स्वरूप, गुण, कार्य आदि चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित करते हुए निम्नानुसार विवेचित किया जा सकता है-

जगदीश श्री विष्ण् महाकाव्य के नायक हैं। महाकाव्य के मंगलाचरण में उनके नायकत्व का उद्घोष करते हुए कवि कहते हैं -

सोऽयं नो मतिनोदनाय भवतान्नारायणो माधवः।

वह हमारी मति को प्रसन्न (प्रेरित) करने के लिए लक्ष्मीपति भगवान नारायण है। महाकाव्य के प्रथम सर्ग में विष्णु की चिन्ता एवं नवतंत्र की रचना से तथा अपनी पत्नी लक्ष्मी को राजलक्ष्मी की भूमिका के लिए तैयार करने के प्रयास से यह अभिव्यंजित होता है कि अब वे एक नये तंत्र की रचना करने वाले हैं।

(i) धीरोदात्त-

महाकाव्य के नायक विष्णु नायकोचित गुणों से युक्त है तथा धीरोदात्त नायक की निम्न विशेषताएं हमें विष्णु के चरित्र में प्राप्त होती हैं।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार -

अविकत्थन क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढ़मानो धीरोदात्तो दृढ़व्रत कथितः।।[112]

(ii) आत्मश्लाघा की भावना से रहित -

स्वयं परब्रह्म परमेश्वर पूर्ण पुरूषोत्तम स्वरूप होते हुए भी विष्णु का सम्पूर्ण चरित्र सदैव आत्मश्लाघा की भावना से रहित ही रहा है। उनकी श्रेष्ठता के विषय में लक्ष्मी का यह वचन उल्लेखित है -

इमे समर्था बरदान दक्षाः, सृष्टेर्विधाने विदिता धुरीणाः
तेषां पुरस्तादबलास्मि काहं, विधातुमिष्टं पुरूषोत्तमानाम्।।[113]

भारत-भूमि पर राजलक्ष्मी की भूमिका निभाने के लिए विष्णु भगवान को अपनी पत्नी की प्रशंसा करनी पड़ी, ऐसी स्थिति में नारद भी उनके साथ हैं, परन्तु उनका आत्मश्लाघा का भाव नाम मात्र भी दिखाई नहीं पड़ता और वे परमेश्वर नारद के द्वारा सामान्य उपाधियों को धारण करते हुए भी प्रसन्नचित्त रहते हैं तथा अपनी प्रिया को प्रसन्न करते हैं।

(iii) भक्तवत्सल -

विष्णु भगवान सहज प्रकृति के हैं। स्वयं सर्वसम्पन्न, सर्वज्ञाता होते हुए भी भगवान स्तुति मात्र से प्रसन्न हो जाते हैं एवं स्तुति करने वाले की प्रकृति को भी ध्यान में नहीं रखते और अपनी उदारता से दुष्ट को भी वांछित वर प्रदान कर देते हैं। कलि की भक्ति से प्रसन्न होकर उसके अभीप्सित वर देकर स्वयं ही संकट में फँस गये, जिसके निवारण हेतु लक्ष्मी को राजलक्ष्मी की भूमिका निभाने के लिए आदेशित करते हैं-

श्लक्ष्णा रिपोरपि गिरः स्तुतिलुब्धकर्णाः, स्फीता भवन्ति हि निशम्य वरोपकृत्यै।
दत्वाऽवराय वरदानममी ह्युदाराः, दारान् स्तुवन्ति विषमेत्विति चित्रमेव।।[114]

(iv) सुख-दुःख में प्रकृतिस्थ -

विष्णु भगवान अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होते। हर्ष या विषाद कभी भी उनको अपने आवेग में नहीं ले पाते। कलि के द्वारा वरदान प्राप्त कर स्वयं विष्णु के ही वश में न रहने पर भी वे बिना व्यथित हुए गम्भीरता के साथ अपनी प्रिय पत्नी एवं शेष के सहयोग से उस पर अंकुश लगाने का प्रावधान करते हैं। प्रकृतिस्थ होकर राजलक्ष्मी को राजाओं के बन्धन से मुक्त करने के लिए और भारत भूमि पर नये लोकतंत्र की स्थापना करने के लिए, उन्होंने साहसी इन्द्र को वल्लभभाई पटेल की भूमिका के रूप में कार्य की सिद्धि के लिए पृथ्वी पर जाने का निर्देश देते हैं-

राज्यश्रियं नृपतिबन्धनतो विमोक्तुम्, संस्थापितञ्च भुवि नूतन-लोकतन्त्रम्।
नारायणः सुरपतिं धृतसाहसिक्यम्, गन्तुं दिदेश भुवनं निजकार्य सिद्धयैः।।[115]

(v) त्यागवृत्ति -

'राजलक्ष्मी स्वयंवर' के नायक विष्णु महान् त्यागशील प्रवृत्ति के नायक हैं। वे अपने लक्ष्य-सिद्धि के लिए प्रिया का वियोग भी सहन करते हैं और लक्ष्मी की राजलक्ष्मी की भूमिका में स्वीकृति पाकर प्रसन्न होते हैं। यद्यपि वे यह जानते हैं कि अब लक्ष्मी का उनसे वियोग हो जायेगा तब वे स्वयं श्रेष्ठ त्यागी का स्वरूप प्रदर्शित करते हैं।

इत्थं व्यंग्यविनोद-पूर्णवचनैर्मायाधवं पद्मजा,
किंचित् सैन्धवमिश्रितां प्रियकरां सम्पाययित्वा सुधाम्।
इष्टामौपयिकीं विधातुमवनौ भर्त्रोपदिष्टां तदा,
स्वीकृत्यातिमुदं ततान ह्रदये लक्ष्यार्थ सिद्ध्यै हरेः।।[116]

(vi) पुरूषोच्चता -

एक श्रेष्ठ पति के समान विष्णु लक्ष्मी की चिन्ता करते हुए खिन्न मना उसको विनोदपूर्ण एवं तर्कपूर्ण उक्तियों से प्रसन्नचित्त करते हैं।

कालानुरूपं किल वर्तनीयम्, देवैर्मनुष्यैः प्रभविष्णुभिश्च।
वशंवदेयं सकलापि सृष्टिः, माये! तवैवास्ति युगे नवीने।।[117]

सभी देवता, मनुष्य और समर्थ लोगों को काल के अनुसार ही व्यवहार करना पड़ता है। हे माया देवी! इस नये युग में सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारे ही अधीन है।

उच्चता का अन्य उदाहरण -

जानासि सर्वं खलु भाविनोऽर्थान्, कदा कथं कैः कलनीयमत्र।
वयं विधेयास्तव देवि ! सर्वे, सिद्धाः सदा साधयितुं त्वदिष्टम्।।[118]

(vii) रहस्यमय व्यक्तित्व-

महाकाव्य के नायक का चरित्र रहस्यपूर्ण दिखाई पड़ता है जिसको जान पाना योगियों से भी परे है। उनका परम भक्त नारद भी उनके रहस्यमयपूर्ण चरित्र को नही जान पाता, यह पद्य निम्न है -

मायाविनस्त्वस्य सहस्त्रमूर्तेः जानाति को नाम महेन्द्रजालम्।
नायं स्वकीयानपि कूटचक्रे निपातयन् संकुचते मुरारिः।।[119]

मार्गे चलन्नेव हि कौतुकेष्टः मामेव चक्रे मतवंचितं द्विजम्।
आशापयच्चापि तु विष्णुमेव प्रकल्पयन् कानपिभाविनोऽर्थान्।।[120]

सहस्त्रमूर्ति इस मायावी के महान् इन्द्रजाल को कौन जान सकता है। ये मुरारि अपने लोगों को अपने कूट चक्र में डालते हुए संकोच नहीं करते। मार्ग में चलते-चलते मुझे ही उन्होनें मतवंचित ब्राह्मण बना दिया और जो जीतने वाला है उसको ही शाप दिला दिया, जिसके पीछे कोई भावी प्रयोजन होगा।

इसके अतिरिक्त श्री विष्णु के जगत्पिता स्वरूप का भी महाकाव्य में वर्णन किया गया है जिसके भक्त भी आशुतोष हैं।

मद्‌भक्तापि मुग्धा वै चाशुतोषा दयालवः।
दुष्टेभ्योऽपि प्रयच्छन्ति वरमात्मविधातकम्।।[121]

इस प्रकार महाकाव्य के सत्वगुण सम्पन्न, धीर और उदात्त नायक का शास्त्रीय लक्षण समीक्ष्य महाकाव्य के नाटक पर पूर्णरूप से चित्रित होता है।

II. नारद -

देवर्षि नारद ब्रह्मा के पुत्र तीनों लोकों में गतिमान श्रीविष्णु के परमभक्त और देवासुर सभी के सम्मानास्पद हैं। लोक कल्याण के निमित्त कार्यों का सम्पादन करने हेतु अप्रतिहत गति से यथेष्ट स्थान पर जाने वाले, महान पुण्यवान, धर्मज्ञ, वेदज्ञ, विनीत, भक्त, परोपकारी और मंगलकारी रूप में चित्रित हुए हैं। नारद का स्वरूप वीणा और करताल से युक्त एवं हरिकीर्तन करने वाला है। विवेच्य महाकाव्य में नारद की उपस्थिति नायक विष्णु के साथ-साथ निरन्तर रही। उनका स्वरूप एवं परिचय लक्ष्मी महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही इस प्रकार देती है जो कि व्यंग्य स्वरूप कथन है -

क्वचित्सुराणां दितिजैर्विरोधं, क्वचिन्नराणां भुवि राक्षसैर्वा।
व्याजेन केनापि कलिं स उग्रं प्रदीपयन्मोदमुपैति नित्यम्।।[122]

यह आपका गुप्तचर कभी देवताओं का दैत्यों के साथ, कभी पृथ्वी पर मनुष्यों का राक्षसों के साथ, किसी बहाने झगड़ा भड़का कर प्रसन्न होता है। नारद एवं विष्णु भगवान की अद्‌भुत मैत्री तो जगत् प्रसिद्ध हैं परन्तु आप दोनों के रहस्यो को कोइ नहीं जानता। एक रहस्य पैदा करता है दूसरा उसे फैलाता है। मैं पत्नी होकर भी उसे नहीं जान पाई।

(i) विष्णु से मैत्री भाव -

महाकाव्य के पन्द्रहवें सर्ग में खिन्नमना लक्ष्मी के स्मरण करने पर विष्णु भगवान नारद के साथ ही सहसा प्रकट होते हं।

एतावदेव दृढ़सौहृद सूत्रबद्धो, मायाविलिन इव बन्धु विनोदनाय।
आविर्बभूव सहसा सह नारदेन, विष्णुः प्रियाननसरोज विकास भानुः।।[123]

नये तन्त्र की सिद्धि में नियुक्त लक्ष्मी अपने पति पर जब क्रोध प्रकट करती है तब नारद विष्णु की माया के कौतुक का वर्णन करते हुए एक सहृदय के समान लक्ष्मी को प्रत्युत्तर देते हैं और विष्णु भगवान को लक्ष्मी के क्रोध का पात्र बनने से बचाते हैं तथा स्वयं नारद मुनि भगवान की मित्रतावश विजित राजनेता को क्रोधी ब्राह्मण के रूप में अकाल मृत्यु का शाप भी दे देते हैं।

III. कलि -

सृष्टि पर युग को चार भागों से विभक्त किया गया है। सतयुग, द्वापरयुग, त्रेतायुग और कलियुग। इन चारों युगों में धर्म ही सर्वश्रेष्ठ होता है और यदि धर्म की हानि होती है तो स्वयं सृष्टि पालक भगवान विष्णु अवतार ग्रहण कर सृष्टि पर पुनः धर्म की स्थापना करते हैं। राजा परीक्षित धर्मात्मा के इस धरातल से चले जाने पर कलि जो इस युग का अधिष्ठाता है, भगवान विष्णु से वरदान प्राप्त कर एवं अपने को निग्रह भय से मुक्त कर उद्यत हो गया। उसने परीक्षित द्वारा प्रदत्त पाँच प्रदेशों में अपना प्रसार कर धर्म की हानि करते हुए अर्थ एवं काम के महत्व को अपने युग में प्रतिष्ठित करते हुए सर्वप्रथम राजतंत्र को दूषित करने लगा।

विवेच्य महाकाव्य का आधार कलि, महाकाव्य के कथानक में प्रतिनायक के रूप मं वर्णित है। उसके चरित्र में सत्वगुण के साथ-साथ रजोगुण और उससे भी अधिक तमोगुण का विस्तार दृष्टिगोचर होता है। यहाँ कलि की कतिपय चारित्रिक विशेषताएँ निम्न है-

(i) विष्णुभक्त -

महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही सूचना प्राप्त होती है कि कलि ने विष्णु की तपस्या की एवं भक्त श्रेष्ठता के आधार पर ही इसने विष्णु से श्रेष्ठ वर प्राप्त कर लिया। इसका एक पद्य में उल्लेख इस प्रकार किया गया है -

श्रुत्वा वचः सागरसम्भवायाः कलिप्रपंचाकुलमानसायाः।
उवाच विष्णुर्विवशायमाणः मन्येऽस्य नो निग्रहमाशु साध्यम्।।[124]

विष्णु भक्त होने से उसने लक्ष्मी के भी चरणों में झुककर सादर प्रणाम किया-

दौवारिकस्तस्य दृशैव भीतः, ददौ प्रवेशं शिरसा विनीतः।
अन्तपुरं सोऽपि कलिः प्रविष्य, श्रियोऽङ्घ्रिमूलं प्रणनाम मूर्ध्ना।।[125]

(ii) भयंकर स्वरूप -

कवि दवे जी द्वारा विवेच्य महाकाव्य के 17 वें सर्ग में कलि के भयंकर स्वरूप का वर्णन कुछ इस प्रकार किया गया है-

स्फूर्जच्छ्मश्रुकरालवक्त्रनयनो वक्रालकः श्यामलः,
पीनोदण्डविशालरोमशभुजो भीमाकृतिस्तुन्दिलः।
चीराबद्धविशालभालपटलः क्राम्यत्कठोरक्रमः,
जानुस्पर्शी विशालकंचुकधरः प्राप्तः कलिः मण्डपम्।।[126]

अर्थात् दीर्घ मूँछों से युक्त भयंकर मुख वाला, श्याम रंग टेढे केश, मोटे विशाल दण्ड के समान बालों से भरी भुजाधारी, भीमाकृति, तोंद बढाये, दीर्घ ललाट पर कपड़ा बांधे, कठोर कदम रखता हुआ घुटनों तक लम्बा चोला पहने कलि राजलक्ष्मी के मण्डप में जा पहुंचा।

(iii) अहंकारी, धूर्त एवं मायावी -

महाकाव्य के अन्त में कलि का चरित्र दम्भयुक्त, उद्दाम दर्प से अन्वित अहंकारी, दुस्साहसी और मायावी के रूप में वर्णित हुआ है। महाकाव्य के 17 वें सर्ग में राजलक्ष्मी से शेष एवं उसके गुप्तचरों के विषय में चर्चा करने पर कलि अपना अहंकारी स्वरूप प्रदर्शित करते हुए विष्णु की कृपा दृष्टि पात्र उसी शेष का गर्व क्षण भर में नष्ट कर देने की बात करता है।

कलेस्तदाकर्ण्य वचोऽवलिप्तम्, अज्ञातशेषोर्जित विक्रमस्य।
उवाच तं सस्मितवक्त्रपद्मा, पद्मा कलिं शेषनिदेशरूष्टम्।।[127]

कलि ने राजलक्ष्मी से सन्तोषप्रद उत्तर न पाकर शेष को कैसे फंसाया जावे, जिससे इसका अंकुश कार्य न कर सके, इस प्रकार एक धूर्त व्यक्ति के समान चिन्तन करने लगा। एक अन्य श्लोक यहाँ दृष्टव्य है-

किं वच्मि कान्ते स्थितिमात्मनोऽहम्, कलेर्नियन्ता कलिनास्मि बद्धः।
युगेऽप्रधर्ष्या प्रभुतामवाप्य, जातः खलोऽयं किल कामचारः।।[128]

इस प्रकार कलि का अहंकार, उद्दाम दर्प, अभिमान स्वरूप काम एवं अर्थ का जो प्रपंच विस्तार किया गया है उसका खण्डन एवं धर्म की रक्षा हो इस महाकाव्य का प्रमुख प्रयोजन एवं फल है।

IV. इन्द्र -

इस युग परिवर्तन बोध स्वरूप महाकाव्य में स्वयं विष्णु ने राजलक्ष्मी की सुरक्षा हेतु एवं दुष्टों के भार को कम करने के लिए स्वर्गाधिपति इन्द्र को पृथ्वी पर वल्लभ भाई पटेल की भूमिका निभाने के निर्देश दिये, जिसका उल्लेख कवि ने महाकाव्य के प्रारम्भ में ही कर दिया है।

राज्यश्रियं नृपतिबन्धनतो विमोक्तुम्, संस्थापितुञ्च भुवि नूतन-लोकतन्त्रम्।
नारायणः सुरपतिं धृतसाहसिक्यं, गन्तुं दिदेशभुवनं निजकार्यसिद्धये।।[129]

विष्णु-प्रसाद-समुपार्जित-दिव्यवीर्यः, दैत्यावलेप-परिमर्दन-सिद्धबाहुः।
युद्धेऽतिवीर्य रिपुवञ्चन-दक्षबुद्धिः, देवो विवेश भुवि वल्लभमूर्तिमिन्द्रः।।[130]

अर्थात् राजलक्ष्मी को राजाओं के बन्धन से मुक्त करने के लिए तथा इस भारत भूमि पर नये लोकतंत्र की स्थापना के लिए भगवान विष्णु ने साहसी इन्द्र को अपने कार्य की सिद्धि के लिए पृथ्वी पर जाने का निदेश दिया।

विष्णु की कृपा से दिव्य शक्ति सम्पन्न, दैत्यों के मानमर्दन में सिद्धहस्त, युद्ध में शक्तिशाली शत्रुओं को धोखा देने में कुशल बुद्धि वाले इन्द्रदेव ने पृथ्वी पर वल्लभ भाई पटेल के शरीर में प्रवेश किया। इनकी कतिपय विशेषताएँ निम्नलिखित हं-

(i) बलशाली -

इन्द्र के स्वरूप वाले वल्लभभाई पटेल का चरित्र एक बलवान्, (शक्तिशाली) निडर, साहसी व्यक्ति के रूप में परिलक्षित होता है।

स्वातन्त्र्य - सङ्गरजयोन्नतभालदेशः, कर्तुं श्रियं कुटिल-भूपति-बन्धमुक्ताम्
संलब्धवासव-गुणो भटवल्लभोऽयम्, हर्तुं हि वीर्यमवनौ चकमे नृपाणाम्।।[131]

(ii) कुशल वक्ता -

लोहपुरूष श्री वल्लभ का चरित्र इस महाकाव्य में एक कु शल वक्ता, कूटनीतिज्ञ के रूप में चित्रित होता है जो अपनी वाणी के जाल से राजाओं के सम्पूर्ण अधिकार छीन लेता है। जो निम्न पद्य में दृष्टव्य है-

संवीक्ष्य लोहपुरूषोद्धृतबाहुदण्डम्, भ्रूभङ्गमात्रपरिखण्डित साहसिक्यम्।
क्षत्रान्वया अपि भयोदयLद्धकण्ठाः, प्रोचुर्न किञ्चिदपि वाचमिमे नृपालाः।।[132]

(iii) साहसी और निडर -

बल्लभ भाई पटेल का राजाओं की भर्त्सना करना उनके साहसपूर्ण व्यक्तित्व एवं निडरता को परिलक्षित करता है। राजाओं को राजलक्ष्मी ने त्यागकर जनतन्त्र में जो प्रवेश किया है उसमें राजाओं का ही निर्बल पक्ष है। अंग्रेजों के शासनकाल में आपको विलास लीला के चषक भी बहुत प्रिय लगते हैं। अंग्रेजों के शासन में उनके संकेत से चलने वाले चाबुकों से वक्षस्थल पर बने घाव आपकी वीर्यगाथा गा रहे हैं। आपने तो बचने के कारण क्षत्रिय शब्द को ही कलंकित कर दिया। वस्तुत: यही देखकर राजलक्ष्मी आपको त्यागकर जनतंत्र के पक्ष में चली गई। जैसा कि निम्न श्लोक में दृष्टव्य है-

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रा, क्षत्रस्य संज्ञापि कलंकितेति।
आलोक्य खिन्ना किल राजलक्ष्मीस्त्यक्त्वाद्य याता जनतन्त्रपक्षम्।।[133]

V. शेष -

भगवान विष्णु के सतत साहचर्य से प्रशस्ति प्राप्त शेष नाग, जिसकी शय्या बनाकर स्वयं त्रिलोकेश्वर क्षोरसागर में शयन करते हैं ऐसा प्रख्यात है, और जब-जब विष्णु धर्म की रक्षा के लिए अवतार ग्रहण करते हैं तब-तब साहचर्य के लिए प्रसिद्ध शेष भी अवतार ग्रहण करते हैं। जैसे कृष्णावतार में बलराम के रूप में एवं रामावतार में लक्ष्मण के रूप में इनका अवतार ग्रहण प्रसिद्ध है। विवेच्य महाकाव्य में शेष का चरित्र महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में चित्रित किया गया है।

शेष भी भगवान विष्णु की आज्ञा से पृथ्वी पर टी.एन.शेषन के रूप में अवतार लेकर चुनाव आयुक्त की भूमिका निभाने लग-

विष्णोनिर्देशात् धृतमर्त्यरूपः, शेषोऽपि नारायण-वल्लभां ताम्।
चिरोपभुक्तोत्तमराजभोगाम्, तुष्टाव भक्तया जगदीशमायाम्।।[134]

(i) विष्णु भक्त-

नारद के समान शेष भी विष्णु के परम भक्त है। विष्णु की आज्ञा से मानव रूप धारण करने वाले शेष राजलक्ष्मी की प्रथमतः स्तुति करने लगे।

नमोऽस्तु देव्यै हरिवल्लभायै, विमोहिताशेषसुरासुरायै।
पयोधिमन्थोद्धृतविग्रहायै, विलोकितानेकयुगोदयायै।।[135]

(ii) कुशल राजनीतिज्ञ -

विधि विधान वृद्धजनों के स्वर्ग में चले जाने से कुटिल कलियुग के निरंकुश हो जाने पर शेष ही अपनी कुशलता से इसे नियन्त्रित करते हैं। कलि के बल को नियन्त्रण में रखने के लिए शेष चारों ओर अपने गुप्तचरों को नियुक्त करते हैं। जैसा कि निम्न पद्य में कहा गया है-

स्वयंवरेऽस्मिन् तरूणप्रधाने कलेर्हि दूताः परितश्चरन्ति।
मयापि तेषां बलनिग्रहाय नियोजिता गुप्तचराः समन्तात्।।[136]

इस प्रकार शेष ने स्वयंवर (निर्वाचन) के प्रारम्भ में अपनी कुशलता से अभीष्ट रचना व्यवस्था को व्यवधानहीन रखने के लिए यन्त्र कक्ष का निर्माण करवा दिया, जिससे वह कक्ष में बैठे-बैठे ही यंत्र के द्वारा चारों ओर घटित होने वाले दृश्यों को देखता रहा।

(iii) पराक्रमी -

इस महाकाव्य के तृतीय सर्ग में शारदा-लक्ष्मी के संवाद प्रसंग में लक्ष्मी शेष के पराक्रम के विषय में शारदा को बताती है। निम्न पद्य में शेष के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिचय है-

मत्कान्तेन नियोजितोऽयमनघः शेषो यशोमण्डितः,
निर्देश-प्रतिपालनाय सततं सिद्धोऽस्ति में स्वामिनः।
पश्यैतस्य तु साहसं स्थितवतो दास्येऽपि शीलौजसः
नैनं चालयितुं क्षमा अपि पथो न्यायात् स्थिताः शासने।।[137]

अर्थात् जो अपने सहस्त्र फणों से रत्नाकर सागर की रक्षा करता है, उस अनन्त फणधारी शेष के समक्ष ये भेदक क्या है? शंकर भगवान के सर्प जिसके चरणों की श्रद्धापूर्वक सेवा करते हैं जिसके सिर हिलाने से पृथ्वी कम्पायमान हो जाती है, जिसने निरंकुश मस्त गजों को वश में कर लिया था नीति निपुण सभी को आश्रय देने वाले से कौन नहीं भयभीत होगा अर्थात् जिसके पराक्रम से सभी भयभीत होते हैं।

VI. राजीव गाँधी -

विश्वविख्यात व्यक्तित्व तथा स्वतन्त्र देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू का दोहतृ और श्रीमती इन्दिरा गाँधी का पुत्र है। इस महाकाव्य में 1984 में श्रो राजीव गाँधी के चुनाव में विजयी होकर प्रधानमंत्री बनने की घटना का चित्रण है। अत: राजीव का चरित्र विवेच्य महाकाव्य में प्रमुख स्थान रखता है क्योंकि वे ही राजलक्ष्मी के नवतंत्र पति के रूप में वर्णित हैं। वे धीर के समान कमनीय सौन्दर्य सम्पन्न, कार्य कुशल, वंशाभिमानी, निर्भीक व दयालु रूप में धीरोदात्त स्वरूप में वर्णित किये गए हैं।

विवेच्य महाकाव्य के आधार पर इनकी चारित्रिक विशेषताएँ निम्न हैं -

(i) सौन्दर्य सम्पन्न युवा -

शारदा द्वारा मत प्रत्याशियों के वर्णन में राजीव के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहती है कि प्रियदर्शिनी इन्दिरा के प्रिय पुत्र राजीव को देखो जिसका वैभव तत्काल उदित हुआ है जो अपनी सुन्दरता से कमल वदनाओं का चित्त हरण कर रहा है जो आकाश के समान विस्तृत मानमर्दन करने वाले विमानों का कुशल चालक रहा है और जो माँ का ऋण चुकाने के लिये आकाश से पृथ्वी पर अवतरित हुआ है।

(ii) इन्दिरा द्वारा राजीव के सौन्दर्य का वर्णन -

हे राजीव! तुम्हारे निर्मल और प्रसन्न मुख को देखकर पवित्र हंस बहुत समय तक तुम्हारे साथ रहे।

हे राजीव! तुम्हारा यह गुलाबी मुख जो कमलिनियों के सुन्दर मन को हरा करता था, जिसकी मधुर सुगन्ध सरोवर में चहुं ओर फली हुई थी। इस मत संख्या वाले स्वयंवर में

विजय प्रसाद पाने वाले रूपवान राजीव नेत्र को आकाशवाणी के द्वारा विजयी घोषित किये जाने पर विजयोल्लास के उत्सव में युवतियाँ भी अपने मुख कमल को लावण्य युक्त बनाकर आ पहुंची।

(iii) वंशाभिमानी और पराक्रमी -

राजीव गाँधी इन्दिरा गाँधी के पुत्र के रूप में गाँधी वंश के मान-सम्मान और मर्यादाओं की रक्षा करने वाले हैं। वे मत प्रसादन प्रसंग में स्वयं अपने वंश का बखान इस प्रकार करते हैं -

जातो वंशे भुवनविदिते राष्ट्रभक्तोत्तमानाम्,
जानीते नो जगति कतमः साहसं मेऽम्बिकायाः।
भार्याऽप्येषा भ्रमणनिरता गौरजा कोमलाङ्गी,
पुत्री पुत्रो मम च चरतो देव! तेऽभ्यर्थनार्थम्।।[138]

जिसके पिता पारसी कुलजात फिरोज गाँधी नाम से प्रसिद्ध हैं, जिसने इटली देश की गौरांगी को प्रिय पत्नी के रूप में प्राप्त किया है, जिसका भाई संजय आकाशयान से स्वर्गलोक चला गया।

अतः उक्तानुसार उनमें नायकत्व के गुण भी है। इसलिए उसे सहनायक की उपाधि देने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

VII. ब्राह्मण -

ब्राह्मण एक सामान्य मतदाता है, परन्तु महाकाव्य में उसका स्थान प्रमुख पात्रों में दिया जा सकता है क्योंकि इस काव्य की उत्पत्ति "**वोटेन वंचितो विप्रः**" नामक घटना से हुई है अर्थात् एक ब्राह्मण (तथाकथित नारद मुनि) 1984 के लोकसभा चुनाव में मतदाता सूची में अपना नाम न पाकर अत्यधिक क्रोधित हो जाता है। यथा-

भूयो भूयो विलोक्यापि नाम तस्य न लेभिरे।
मतेन वंचितो विप्रः कोपं चक्रे भृशं तदा।[139]

(i) रौद्र रूप -

"क्रोध से ओष्ठ फड़फड़ाता वह ब्राह्मण, पीठ पर बैठे अधिकारियों को जो उसे वोट देने से रोक रहे थे, उनको अपशब्द कहता हुआ बोला - इतने वर्षों से मैं निरन्तर वोट दे रहा

हूँ। इस समय मेरा वोट देने का अधिकार क्यों छीन लिया। मैं ब्राह्मण हूँ, मैं धर्म विरोधी को मत नहीं दूंगा, यह जानकर इन निकृष्टों ने मेरा नाम सूची से ही काट दिया। उसी समय इस क्रोधी ब्राह्मण ने दुर्वासा के समान क्रुद्ध रूप धारण कर लिया तथा जो चुनाव में विजयी होकर राजलक्ष्मी का वरण करेगा उसकी अकाल मृत्यु हो जावेगी ऐसा अभिशाप दे दिया-

शपाम्यद्य द्विजोऽयं भोः! अस्मिन् केतवचक्रके।
जितो यो वृणुते लक्ष्मीं तस्याऽकाले मृतिर्भवेत्।।[140]

<u>स्त्रीपात्र</u> -

I. राजलक्ष्मी -

भगवान विष्णु की पत्नी लक्ष्मी ने पृथ्वीलोक पर पति के निर्देश से राजलक्ष्मी की भूमिका निभाई। राजलक्ष्मी का स्वयंवर ही महाकाव्य की महत्वपूर्ण घटना है। महाकाव्य के अधिकांश सर्गों में राजलक्ष्मी के चरित्र का वर्णन है। राजलक्ष्मी विवेच्य महाकाव्य की सबसे प्रमुख स्त्रीपात्र है जो कि इस महाकाव्य की नायिका है। महाकाव्य में वणित राजलक्ष्मी के चरित्र को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है।

(i) भक्तवत्सला-

राजलक्ष्मी का चरित्र पूर्ण भक्तवत्सल है। महाकाव्य के प्रथम सर्ग में नारद ऋषि द्वारा उनकी स्तुति किये जाने पर अपने पति से क्रोधित होते हुए भी वे प्रसन्नमना हो जाती है। नारद द्वारा की गई स्तुति का यह पद्य ''विष्णु भगवान की प्रियतमा माता को प्रणाम करता हूँ जिनके चरण कमलों को मुनिवर और देवगण भी पूजा करते हैं जो वात्सल्यमूर्ति है, कृपालु हैं तथा जिसका उदय क्षीर सागर के अमृत से हुआ है। तुम्हारी कृपा से हो ये जगदीश्वर मुझे अपनाते हैं। तुम्हारी प्रेरणा के बिना तो ये अपने भक्तों पर भी सदैव निष्ठुर रहे हैं। माँ विष्णु के भक्तों की स्थिति है कि वे भिक्षान्न को भटकते हैं एवं आपके भक्त वैभवयुक्त सदैव सुखी रहते हैं।

भक्तास्त्वदीयाः सुखिनो धरिण्याम्, भोगान् समग्रान् सततं लभन्ते।
विष्णोर्विधेया विभवेन हीना, भिक्षान्नहेतोः परितश्चरन्ति।।[141]

(ii) मुग्धा एवं शंकालु -

महाकाव्य में राजलक्ष्मी मुग्धभाव को धारण करने वाली और किंचित् भीरूतावश शंकालु दर्शायी गयी है। विष्णु अपने रोग ग्रस्त होने का नाटक करते हैं तब लक्ष्मी की आशंका एवं चिन्ता की कल्पनाएँ इस प्रकार चित्रित होती हैं।

क्या दैत्यों के कारण पुनः संकट आया है या अपने भक्तों को कष्ट देने वालो को नष्ट करने में उन्हें अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा है। एक मुग्धा के समान उनका स्वरूप -

कुतोऽस्त्युपेतो नवविप्लवोऽयं, प्रपञ्चविस्तार वितानकस्य।
इत्याकुला सद्गृहिणीव लक्ष्मीः, व्यचिन्तयत्कान्तविषादखिन्ना।।[142]

(iii) पतिव्रता -

राजलक्ष्मी विवेच्य महाकाव्य में एक पतिव्रता धर्म को निभाने वाली युवती है। विष्णु भगवान के कलि के कुचक्र में फँस जाने पर नवतन्त्र में राजलक्ष्मी की भूमिका के लिए प्रेरित किये जाने पर स्वयं लक्ष्मी का यह पद्य उनके पतिव्रत धर्म का चित्रण करता है-

मन्ये प्रपंचरसिको ग्रथितोऽस्त्यकाण्डे, स्वस्यैव काम कलिते विषमे हि काण्डे।
भार्याकृतेऽपि नहि कापि गतिर्मतान्या, त्यक्तवार्पणं निजतनोर्हि हिताय भर्तुः।।[143]

(iv) मनस्विनी -

शारदा द्वारा राजलक्ष्मी के चरित्र में दोष देखे जाने पर भी राजलक्ष्मी का शारदा को पत्युत्तर उनके मनस्विनी होने को चित्रित करता है। मैं तो तीक्ष्ण तलवार की धार के समान तब तक ही उसका मनोरंजन करती हूँ जब तक वह मेरे धर्म बन्धु के मार्ग का उल्लंघन नहीं करता है। जैसा कि निम्न पद्य में दृष्टव्य है-

सर्वे मिलित्वापि चिरप्रयत्ना, न मां वशीकर्तुमलं बलेन।
एकोऽपि विद्वान् खलु धर्मनिष्ठः, स्वतेजसा लब्धुमलं वरेण्यः।।[144]

इस प्रकार राजलक्ष्मी कथानक के अनुरूप श्रेष्ठ पत्नी, विमलांगी, लज्जाशील, चिन्तनशील एवं मुग्धा युवती के रूप में चित्रित की गई है।

II. शारदा (सरस्वती) -

विवेच्य महाकाव्य के पात्रों में शारदा ऐसा पात्र है जिसने सम्पूर्ण कथानक के फल की कारणता के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी चारित्रिक विशेषताओं को निम्नानुसार देखा जा सकता है-

(i) विदुषी और कुशल वक्त्री -

शारदा-राजलक्ष्मी संवाद इस महाकाव्य के प्रमुख संवादों में से है, जिसमें शारदा लक्ष्मी की वास्तविक प्रकृति का बखान करती है और लोकतन्त्र के सभी सम्भावित दोषों का चित्रण करती है।

इत्थं हि दोषान् परिदर्शयन्तीम्, उत्प्रेक्ष्यभाणान्नवलोकतन्त्रे।
एतावता नामित-वक्त्रपद्मा, प्रोवाच पद्मोन्नमिताननना ताम्।।[145]

इस प्रकार राजलक्ष्मी की गम्भोर वाणी सुनकर बोलने में प्रवीण शारदा, राजलक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिये विनोद एवं नम्रता युक्त वाणी में बोलती है।

(ii) लक्ष्मी की स्तोतृ-

यद्यपि शारदा निर्वाचन स्वयंवर के लिए अलंकारों से अलंकृत राजलक्ष्मी के समीप उसकी छाया के समान रहती है तथा राजलक्ष्मी को समय-समय पर सभी श्रेष्ठ एवं दोषपूर्ण घटनाओं से अवगत कराती हुई निरन्तर राजलक्ष्मी क विषय में चिन्तित भी है। इसी प्रसंग में -

जनार्दनालिङ्गनलोलुपायै, जनस्य शक्तयै जनवन्दितायै।
जनार्थदायै जनरक्षितायै, स्वस्त्यस्तु देव्यै जनतन्त्रलक्ष्म्यै।।[146]

(iii) आकाशवाणी स्वरूपा -

सम्पर्ण निर्वाचन स्वयंवर की सूचना सभी के समीप पहुँचाने के लिये शेष (टी.एन.शेषन, चुनाव आयुक्त) ने (शारदा) आकाशवाणी को इस प्रकार निर्देश दिया -

विधेयान् योजयामास व्यवस्थायै च विश्रुतान्।
निर्देशानां प्रचाराय दिदेशाकाशभारतीम्।।[147]

निर्वाचन वसन्त का वर्णन करते हुए शारदा ने प्रत्याशियों के मत-याचना कौतुक का वर्णन भी किया -

विलोकयैतांस्तु विशालनेत्रे!, त्वद्वक्त्रपङ्केरूह - चंचरीकान्।
रथ्यासु भिक्षां चरतो मतानाम्, प्रत्याशिनोऽस्मिन् नवतन्त्रचक्रे।।[148]

इस प्रकार उक्त महाकाव्य के 7 से 16 सर्गों तक सभी घटित, सम्भावित घटनाओं का चित्रण राजलक्ष्मी के लिए कवि ने शारदा के चरित्र के माध्यम से करवाया है।

III. इन्दिरा गाँधी -

स्वतन्त्र देश के प्रथम प्रधानमंत्री श्री पं. जवाहरलाल नेहरू की पुत्री रत्न एवं राजीव गाँधी की माता। विवेच्य महाकाव्य में इन्दिरा गाँधी का उल्लेख दो सर्गों में वर्णित है। वह स्त्री श्रेष्ठ है और सभी स्त्रियों की आदर्श स्वरूपा तथा भारतदेश की प्रथम महिला प्रधानमंत्री थी। कवि ने उसे भगवती लक्ष्मी का अवतार भी स्वीकृत किया है जिसका अन्य नाम प्रियदर्शिनी था। वह सामान्य बुद्धिवाली स्त्रो न होकर एक विभूति के रूप में अवतीर्ण देवता थी। युगधर्म प्रवृत्ति के लिए देवता अप्सराओं के साथ मनुष्य रूप में अवतीर्ण होकर उस महेश्वरी (इन्दिरा) की सेवा में आ पहुँचे।

(i) साहसी एवं पराक्रमी महिला -

विवेच्य महाकाव्य में इन्दिरा गाँधी का व्यक्तित्व साहसी महिला के रूप में चित्रित है ।

सिंहाः प्रसिद्धा अपि चागतोऽस्याः, भीता बभूवुः शशकाः शगालाः।
केचित् स्थिता मौनमनिष्टभीताः, केचित् प्रयाता विवशा विपक्षम्।।[149]

पाकारिमानमर्दिन्या इन्दिराया यशोऽमलम्।
वीर्यंच विश्वविख्यातं गीयतेऽस्मिन् स्वयंवरे।।[150]

मा मा दर्पं करोत्वेष दिवीन्द्रः पाकशासनः।
भूतलेऽप्यस्ति देवीयमिन्दिरा पाकशासिनी।।[151]

इस प्रकार इन्दिरा ने दुःखी जनों को शरण प्रदान की। मृत्युभय से पंजाब से पलायन करके आने वाले लोगों की रक्षा की। वह महिलाओं व शूद्रों का उद्धार करने वाली थी। इन्द्र ने भी इन्दिरा के पराक्रम का उल्लेख करते हुए कहा है कि सभी देवता तुम्हारे अधीन है।

IV. इन्द्राणी-

इन्द्र की पत्नी देवांगनाओं में सर्वश्रेष्ठ है। जब विष्णु ने युग परिवर्तन की क्रिया से देवताओं को कलियुग की दासता में डाल दिया तब उन्हें देखने के लिए देवांगनाओं का समूह इन्द्राणी के साथ पृथ्वी पर आया। महाकाव्य के 17 वें सर्ग में इन्द्राणी-राजलक्ष्मी संवाद भी वर्णित है। इन्द्र के वियोग से पीड़ित इन्द्राणी ने राजलक्ष्मी को कुछ इस प्रकार उपालम्भ दिया-

शची विनोदं परिणोदयन्ती, प्रोवाच लक्ष्मीं वरणोपपन्नाम्।
स्वयंवरेऽस्मिन् तरूणं वरेण्यं, लब्ध्वा प्रसन्नेति विभाव्यते मे।।[152]

<u>पशु-पक्षी पात्र</u>

I. गरुड़ -

गरुड़ पुराकल्पित पक्षी है। पौराणिक मान्यतानुसार इसका आधा शरीर पक्षी का तथा आधा मनुष्य का है। यह श्रीहरि के वाहन के रूप में वर्णित है। यह दस कन्या विनता और कश्यप का पुत्र है। विनता का अपनी सपत्नी कद्रू से वैर था जो सर्पों की माता है। अतः गरूड़ भी सर्पो का शत्रु है। वह आजन्म तेजस्वी देवताओं के पूजनीय है। इनका सिर, पंख और चक्षु पक्षी के हैं और शेष शरीर मानव का है। इनके पंख लाल वर्ण के और शरीर स्वर्ण वर्ण का है।

महाकाव्य में गरूड़ का चरित्र मतपत्र के रूप में है जो इस नवतन्त्र में नवलोकपाल के समान है तथा विष्णु ने लक्ष्मी के हितार्थ पृथ्वीलोक पर भेजा है। मतपत्र का रूप धारण करने वाले विष्णु वाहन, विष्णु निर्दिष्ट गरूड़ राजलक्ष्मी की स्तुति करते हैं तथा सिद्ध करते हैं कि मैं इस नवलोकतन्त्र में आपके हित में कार्य करूंगा।

मातस्तवार्चनकृते प्रहितोऽस्मि देवैः, अन्वेषणाय जनताम्बुधिगुप्तरत्नम्।
शिल्प रहः प्रकटितं हरिणा ममेदम् प्रोवाच विष्णुदयितामिति चित्रमूर्तिः।।[153]

गरुड़ ने राजलक्ष्मी से कहा - भगवान विष्णु ने मुझे निर्देश दिया है कि समय आने पर मैं ही बुद्धिमान के साथ आपका पाणिबन्धन कराऊँगा। प्रायः मतदान से चुना गया अल्पायु ही होता है।

इत्युक्त्वान्तर्हितः शीघ्रम् मतमूर्तिधरोऽमरः।
शारदा तद् विजानन्ती प्रोवाच कमलां सखीम्।।[154]

पुनः निर्वाचन स्वयंवर के परिणाम के निवेदनार्थ गरूड़ का आगमन होता है ।

II. महिष -

महिष पशु का चित्रण कवि ने सांकेतिक रूप में किया है उनकी भाषा में व्यंग्यात्मकता है जिससे देश में राजनीतिज्ञों की स्थिति का सांकेतिक चित्रण मिलता है। वृषभ ने महिष से कहा कि क्यों व्यर्थ में रम्भा रहे हो, तुम तो इस काजल जैसी मोटी काया पाकर अपने भार से पृथ्वी को पीड़ा पहुँचा रहे हो, अब वे महिषी की कृपा से सुलभ हुए उत्सव भरे दिन चले गए। अब तो विधि के वक्र होने पर कीचड़ में ही डूब जाना अच्छा है।

III. वृषभ -

राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में महिष के समान वृषभ का भी उल्लेख हैं जो परस्पर व्यंग्य चित्र में वार्ता करते हैं एवं समाज की राजनैतिक गतिविधियों का उल्लेख करते है। महिष बोला अरे वृषभ! मैं तुम्हारी कुटिल, अपवित्र बुद्धि को भली भाँति जानता हूँ। तुम केवल बाहर से ही श्वेत हो, मन से काले एवं जाति से हमारे शत्रु हो। मैं विवश होकर प्राण रक्षा के लिए तुम्हारे दल में प्रविष्ट हुआ था, तुमने विश्वास घात करके मुझ वृद्ध को गड्ढे में गिरा दिया। इसमें दलबदलू राजनेताओं का वास्तविक व्यंग्यात्मक चित्रण है।

<u>वस्तुवर्णनम्</u>- 'राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य' में वस्तुगत वर्णनों से समृद्ध कथा में से कतिपय वस्तुचित्रों को देखते हैं।

I. मन्त्रणा -

महाकाव्य के कथानक में मन्त्रणा का उपस्थापन किया गया है। विष्णु-लक्ष्मी संवाद, नारद-लक्ष्मी संवाद, लक्ष्मी-सरस्वती संवाद, ब्राह्मण-प्रत्याशी संवाद, सरस्वती-कलि संवाद, देवाङ्गना-राजलक्ष्मी संवाद में मन्त्रणा के यथोचित अभिरूप दृष्टिगोचर होते हैं। महाकाव्य का तृतीय सर्ग तो सम्पूर्ण संवादात्मक ही है जिसमें राजलक्ष्मी एवं सरस्वती के द्वारा राजनैतिक चरित्रों का परस्पर विचार विमर्श है। शारदा द्वारा लोकतन्त्र के दोषों का वर्णन करते हुए, राजलक्ष्मी को सम्बोधित किया जाता है।

विपक्षिणां व्यंग्यशितेषुविद्धो नानापमानाकुलचित्तवृतिः।
मतात्तकान्तस्तव मन्दवीर्यः कथं नु कुर्यान्निशि मानभङ्गम्।।[155]

राजलक्ष्मी का श्रेष्ठ व्यक्ति के विषय में उल्लेख, जो राजलक्ष्मी का वरण कर सकता है।

सर्वे मिलित्वापि चिरप्रयत्ना न मां वशीकर्तुमलं बलेन।
एकोऽपि विद्वान् खलु धर्मनिष्ठः स्वतेजसा लब्धुमलं वरेण्यः।।[156]

II. दूत -

महाकाव्य के कथानक विस्तार में दूतकार्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है। विस्तृत कलेवर में यह वस्तु संयोजन सम्यक् रूप से किया गया है। शारदा कलि के प्रपंच से पीड़ित है। कलि स्वयं राजलक्ष्मी के समीप, शेष के गुप्तचरों द्वारा पीड़ित किये जाने पर जाता है। परन्तु अन्त:पुर के दूत द्वारा कलि आगमन की सूचना सुनकर शारदा पहले ही उपस्थित हो जाती है जो, कलि के दूतों के कुकृत्य से क्रोधित है।

तपस्विनो धर्मरतान् वराकान् , प्रक्षिप्य दूतास्तव कूटजाले।
कुर्वन्ति किं किं नहि कामसिद्ध्यै, जानामि सर्वंत्विह संस्थितापि।।[157]

उपर्युक्त पद्य में महाकाव्य के प्रतिनायक कलि के दूतों का चरित्र वर्णन है। नायक के दूतरूप में नारदमुनि का वर्णन अनेक प्रसंगों में मिलता है।

III. प्रयाण -

नायक को फल प्राप्ति एवं कथानक को गति प्रदान करने के लिए वस्तु वर्णन में प्रयाण को संयोजित किया जाता है। आलोच्य महाकाव्य में प्रयाण के विभिन्न रूप देखने को प्राप्त होते हैं जो कि लक्ष्य और गन्तव्य के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में वर्णित हैं। लक्ष्मी को राजलक्ष्मी की भूमिका निभाने के लिए विष्णु लक्ष्मी की ओर प्रयाण करते हैं। राजलक्ष्मी को लोकतन्त्र के दोष के लिए शारदा राजलक्ष्मी की ओर प्रयाण करती है। निर्वाचन आयुक्त शेषन निर्वाचन घोषणा के लिए प्रयाण करते हैं। गाँधीवादी मत याचना के लिए गाँधी प्रशस्ति हेतु प्रयाण करते हैं। विष्णु राजलक्ष्मी की भूतल पर खिन्नता देखकर पृथ्वीलोक की ओर प्रयाण करते हैं। कलि के प्रपंच से खिन्न शेष के गुप्तचर कलि के केलिभू की ओर प्रयाण करते हैं। शेष के गुप्तचरों से पीड़ित स्वयं कलि राजलक्ष्मी के भवन की ओर प्रयाण करते हैं। निर्वाचन के दृश्यों एवं प्रकार्यों से खिन्न राजलक्ष्मी को सान्त्वना देने के लिए नारद एवं विष्णु प्रयाण करते हैं। विष्णु के द्वारा युग की विचित्रता का वर्णन निम्न पद्य में किया गया है-

प्रिये! युगेऽस्मिन् नवविस्मयाढ्ये, सदा नवोन्मेषविचित्रकल्पे।
मुग्धा निलिम्पा असुरा मुनीशाः, लालायिताः भूमितले भवेयुः।।[158]

IV. युद्ध -

समीक्ष्य महाकाव्य श्रृंगार रस प्रधान महाकाव्य होने से युद्ध विषयक वर्णन का अभाव प्रायः है तथापि कतिपय युद्ध प्रसंग स्मृति स्वरूप देखने को मिलते हैं। भारत-चीन युद्ध वर्णन, भारत के द्वारा बांग्लादेश विभाजन से सम्बन्धित युद्ध वर्णन, प्रसंगवश इन्द्र के चारित्रिक वर्णन में इन्द्र का असुरों के साथ किये गये युद्धों का वर्णन, भारत की स्वतन्त्रता के लिए गये युद्धों का वर्णन, कलि का शेष के साथ कूटनीतिज्ञपूर्ण शीत युद्ध में काम आने वाली शस्त्र सामग्री का वर्णन तथा विभिन्न परमाणु विस्फोटकों का वर्णन करते हुए युद्ध प्रसंगों को संयोजित किया है। यहाँ युद्ध चित्रण का एक निम्न पद्य दृष्टव्य हैं-

त्वं रक्ष सागर! रणोद्यत-पोतजालम् , आकाश ! देहि परितोऽद्य विमानमार्गम्।
कुर्वन्तु शत्रुधरणीं विधुरां प्रवीराः, अग्ने ! वितिष्ठ रिपुनाशकगोलकान्ते।।[159]

V. नायकाभ्युदय -

महाकाव्य में इतिहास प्रसिद्ध अथवा सज्जन चरित्र पर आश्रित कथानक होता है जिसका नायक गुणवान और उच्चकोटि का होता है। नायक की विजय अथवा फलप्राप्ति का निदर्शन कथानक में होना चाहिए। समीक्ष्य महाकाव्य में धीरोदात्त नायक विष्णु की फलप्राप्ति का चित्रण किया गया है। कलि के काम और अर्थ के प्रपंच को रोकने के लिए विष्णु भगवान स्वयं लक्ष्मी को, राजलक्ष्मी की भूमिका निभाने के लिए पृथ्वी पर भेजते हैं तथा शेष को टी.एन.शेषन चुनाव आयुक्त की भूमिका प्रदान करते हैं। इस प्रकार लक्ष्मी, शेष, गरूड़, इन्द्र आदि का कलि से निरन्तर संघर्ष करवाते हुए स्वयं विष्णु लक्ष्य सिद्धि को प्राप्त करते हैं। यहाँ नायकाभ्युदय के कतिपय पद्य दर्शनीय है।

इत्थं व्यंग्यविनोद-पूर्णवचनैर्मायाधवं पद्मजा,
किंचित्-सैन्धवमिश्रितां प्रियकरां सम्याययित्वा सुधाम्।
इष्टामौपयिकीं विधातुमवनौ भेर्त्रोपदिष्टां तदा,
स्वीकृत्यातिमुदं ततान हृदये लक्ष्यार्थसिद्ध्यै हरेः।।[160]

कियच्चिरं वै दयितेन्द्रजाले स्थेयं मया ते प्रियसाधनाय।
प्रपंचविस्तारविलासभाजां कलत्रभाले लिखितं हि दुःखम्।।[161]

VI. वन-उपवन -

संस्कृ त महाकाव्यों में अरण्य, उद्यानादि के वर्णन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। मनुष्य का सात्विक अन्त:करण सदैव उसे प्राकृतिक सान्निध्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है। 'राजलक्ष्मीस्वयंवर महाकाव्य' एक आधुनिक महाकाव्य होने से तथा कल्पित एवं चुनाव से सम्बन्धित कथानक होने के कारण से कतिपय स्थानों पर ही वन-उपवन का वर्णन कवि ने किया है। वनवासियों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए कवि ने वनों का वर्णन भरपूर रूप से किया है एवं आधुनिकता के कारण होने वाले परिवर्तन भो वनों में स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। राम भी आज किसी बहाने वन में नहीं आते, कौन सज्जन हमारी इस सीता (कृषि भूमि) के दर्शन को पूरा करेगा?

समाहृत्याशेषं कुसुमकुलसारं परिमलम्, दिवं याता देवा विगतसुषमं नन्दनवनम्।
शुचित्वं नीराणां गलितममस्पर्श जनितं, शिवागारं दिव्यं शिवगृहमिवाद्यास्ति विहितम्।।[162]

VII. लता-पादप -

विवेच्य महाकाव्य में कतिपय स्थानों पर हरित पूर्ण लता-पादपों का वर्णन किया है जिनमें आम्र वृक्ष, नीम्ब, बेलें आदि का मनोहारी वर्णन है। जिनमें से एक मनोहारी पद्य यहाँ दृष्टव्य है-

रम्यैः सुगन्धि कुसुमामलसौरभाढ्यैः, नानारसालफलभार-विनम्र शाखैः।
वृक्षैर्विनोदितपदे सदनेऽर्चितायाः, कालो मरौ कथमये तव यास्यतीह।।[163]

VIII. ऋतु -

ऋतुओं का जीव-जगत की प्रवृत्तियों और दशाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। काव्य में ऋतु वर्णन की परिपुष्ट परम्परा रही है। आलोच्य महाकाव्य में वसन्त, ग्रीष्म, शीत आदि ऋतुओं का कतिपय वर्णन किया है। ऋतुराज वसन्त जल-थल सभी स्थानों पर, पत्र में, तृण में, सरोवर के कमल में विकास लेकर आता है। वसन्त के आगमन का एक पद्य यहाँ दर्शनीय है-

हिमोपलाघात-जड़ीकृताङ्गे, क्लैब्यं गते दारूणशीतकाले।
भृङ्गाङ्गना-गुंजनलुब्धचित्ते, यथा वसन्तो भुवनेऽभ्युपैति।।[164]

पृथ्वी पर वसन्त आने पर वन के वृक्षों को हर्ष प्राप्त होता है। वसन्त में प्रत्येक वन में कोयल का कुंजन सुनाई पड़ता है। शीतकाल में वृक्ष जैसे निष्कुल हो जाते हैं। ऋतुएं भी दासी बनी हुई विनम्र भाव से प्रकृति की सेवा कर रही है।

इच्छति रसालरसिको नहि सम्प्रति मंजुमंजरी संयोगम्।
अविदित मृदुकौमारा स्मरति न घटितः कदर्तुसंहारः।।[165]

IX. पमोत्सव -

विवेच्य महाकाव्य में लता को सम्बोधित करते हुए, अरि लतिके! काम के बाणों को देखकर क्यों डर रही हो? अरि कलिके! तुम्हारे रूप और माधुर्य के लालसी ये भ्रमर घूम रहे हैं।

करधृतकटिदेशा ऊर्ध्वमाबद्धहस्ताः, चलकटिकुचपदजङ्घा उर्जिताश्लेषभावाः।
रसिकयुगलरासे नृत्य खिन्ना श्लथाङ्ग्यः, स्मरविवशवपुः स्वं प्रार्पयन् कामिबाहुम्।।[166]

X. विवाह -

'राजलक्ष्मी स्वयंवर' महाकाव्य में स्वयंवर पद से अभिव्यक्त होता है कि विवाह से पूर्ण की एक प्रक्रिया जिसमें राजलक्ष्मी स्वयं अपने योग्य वर का वरण करने के लिए विवाह योग्य युवति के रूप में विद्यमान है जिसमें शारदा द्वारा कहा गया है- तुम्हारे निशोत्सव का स्वामी कौन होगा? कोई नहीं जानता। राजलक्ष्मी उत्तर देती है कि मैं तो लोक समूह में उसी का वरण करती हूँ जिसके लिए मेरे हृदय में विराजमान विश्वपति मुझे प्रेरणा देते हैं। मै तो उसे सर्वदा देवोपम अपना सहचारी कमलापति ही मानती हूँ। इस स्वयंवर मत संख्या वाले (चुनाव) में रूपवान राजीव नेत्र को आकाशवाणी शारदा ने विजयी घोषित कर दिया। महाकाव्य के अन्त में राजलक्ष्मी ने अपने नये तन्त्र पति के साथ देवनिर्दिष्ट भूमिका प्रारम्भ की।

XI. जन्म-

महाकाव्य में संतान लाभ का वर्णन, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश तथा मांगलिक लोकाचार इत्यादि को दर्शाया है। आधुनिक कथानक पर आधारित महाकाव्य में राजलक्ष्मी का जन्म भी दर्शाया है। पं. नेहरू के घर में जन्मी इन्दिरा के जन्म के विषय में कवि ने एक पौराणिक कथा का उल्लेख किया है। ''लोग इसे सामान्य बुद्धि वाली स्त्री समझते थे परन्तु वह देश में एक विभूति के रूप में अवतीर्ण देवी थी। युगधर्म की प्रवृत्ति के लिए देवता भी

अप्सराओं के साथ मनुष्य रूप में अवतीर्ण होकर इस महेश्वरी की सेवा के लिए आ पहुँचे। काश्मीरी पं. नेहरू ने इसका प्रेमपूर्वक पालन पोषण किया। वह पिता के गुण पाकर पृथ्वी पर प्रसिद्ध हो गई। प्रसंगवश एक अनाथ बालक के जन्म का बखान भी कवि ने मर्मस्पर्शी रूप में किया है।

स्थालीशूर्पनिनादबोधितभवा नैवार्भकाः स्मो वयम्,
मांगल्येन च जातकर्मविधिना लब्धं न हा स्वागतम्।
मातुः स्तन्यसुधारसेन कृपणा दुर्भाग्यतो वंचिताः,
उत्सङ्गे परिरम्भणैरपि मुदा केनापि नो तर्पिताः।।[167]

XII. वियोग -

विवेच्य महाकाव्य में शारदा का लक्ष्मी को सम्बोधन करते हुए वियोग काल का वर्णन निम्न पद्य में किया गया है।

गता वासरास्ते विलासोत्सवाढ्याः, व्यतीताः क्षणा केलिगेहाभिरामाः।
रमे! स्वर्णसौख्यैः प्रियैः वंचिता त्वं, कथं यापयिष्यस्ययेे! रूक्षकालम्।।[168]

XIII. स्वर्ग -

'राजलक्ष्मी स्वयंवर' महाकाव्य का कथानक कल्पित होने से इसमें दिव्य चरित्र एवं वर्णनों का आधिक्य रहा है और स्वर्गवासी देवता एवं उनके स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है। कलि के प्रपंच राज्य को देखने के लिए स्वर्ग से देवताओं का पृथ्वी लोक पर आने का उल्लेख है तथा उनकी वियोगाग्नि से खिन्न सभी अप्सराएँ भी इन्द्राणी के साथ स्वर्ग से पृथ्वी लोक पर आई तथा राजलक्ष्मी से संवाद करती हुई पुनः स्वर्ग चली गई।

इति विविधविनोदैर्यापितानन्दयोगः, हरिकृतनवलीलालोकनाकृष्टचित्तः।
युगसमुदितबहुदोषाश्लेषसंचारभीतः, सुरयुवतिगणोऽयं स्वर्भुवं संप्रतस्थे।।[169]

'राजलक्ष्मी स्वयंवर' महाकाव्य एक आधुनिक रचना होने से वर्ण्य विषय में नवीनता आना स्वाभाविक है। काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों के अनुसार महाकाव्य का लक्षणोत्तर वर्ण्य विषय का वर्णन किया जा चुका है, परन्तु महाकाव्यकार ने आधुनिक विषय वस्तु का वर्णन भी अपनी शक्ति के अनुसार किया है जिसमें कवि ने आधुनिक समाज की विभिन्न आवश्यक सामग्री को अपने महाकाव्य का वर्ण्य विषय बनाया है।

XIV टी.वी.-

महाकाव्यकार ने परम्परा की लीक से हटकर आधुनिकता का पूर्ण परिचय सिद्ध करते हुए आधुनिक वस्तु वर्णन में टी.वी. के दोष एवं लाभ का पूर्ण रूप से वर्णन किया है। इसका मनोहारी पद्य निम्न है -

यतिष्टीवीनीवीललितरशनामोक्षनिरतो,
वियद्वाणीपाणिग्रहणरसिकः संयमरतिः।
नटीयं ध्यानस्थं छलयति च चित्रालयचरैः
शराणां पाण्डित्यं प्रकटयतु कस्मिन् स्मरधनुः।।[170]

XV. कम्प्यूटर -

21 वीं शताब्दी का नियन्ता माना जाने वाला कम्प्यूटर का भी वर्णन कवि ने अपने काव्य मे किया है। कवि ने निम्न पद्यों में कम्प्यूटर की निन्दा की है।

आयुधभेषितविश्वविहारा, कम्प्यूटरपरिपालनरागा।
मानवमानसशान्तिविसूचिः सम्भविता ननु भाविशताब्दी।।[171]

<u>**कथानक उद्देश्य**</u> - भामह एवं अग्निपुराणकार ने अर्थ को कथा का उद्देश्य माना और कालान्तर में काव्यशास्त्रियों ने इसे नकार दिया। दण्डी और विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य के कथानक का उद्देश्य पुरूषार्थ चतुष्ट्य या चारों में से कोई एक होना चाहिए -

चत्वारस्तस्य वर्गाः तेषु एकं च फलं भवेत्।[172]
चतुर्वगफलायत्तम्।[173]

पं. दवे विरचित राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य में चतुवर्ग में से अर्थ की उपेक्षा की गई है। महाकाव्य में पुरूषार्थों में से अर्थ के अतिरिक्त धर्म, काम और मोक्ष त्रिविध पुरूषार्थों की ही काव्योद्देश्य के रूप में संयोजना की गई है। जहाँ राजलक्ष्मी अपने धर्म का पूर्ण निर्वहन करती है वहीं विष्णु धर्म की रक्षा के लिए नारद को नियुक्त करते हैं एवं स्वयं भी सजग रहते हैं। धर्म के अनुपालन, रक्षण, संवर्धन के लिए सभी पात्र चेष्टारत हैं। पुरूषार्थ में काम की सिद्धि कलि प्रसंग में निरन्तर होती हैं शारदा द्वारा लक्ष्मी की स्तुति, शेष द्वारा राजलक्ष्मी की स्तुति, राजलक्ष्मी द्वारा विष्णु का स्मरण एवं नारद द्वारा लक्ष्मी स्तवन से भक्ति-मुक्ति-मोक्ष स्वरूप पुरूषार्थ की सिद्धि प्राप्त होती है।

कहा जा सकता है कि 'राजलक्ष्मी स्वयंवर' महाकाव्य में धर्म, काम, मोक्ष रूप त्रिविध पुरूषार्थों का कथानकोद्दश्य के रूप में संयोजन किया गया है।

भारत वर्णन- समीक्ष्य महाकाव्य में कवि ने अपने देश के चरित्र को शब्दों में अंकित किया है एवं भारत की मूर्ति को चित्रांकित करने का प्रयास भी किया है।

दिशश्चतस्रो वदनानि यस्य, गायन्ति यस्य श्रुतयश्च गीतम्।
स विश्ववन्द्यः प्रियदेश एषः, येषां ह्विदिस्थोऽस्ति हिरण्यगर्भः।।[174]

अर्थात ''गंगा की तरंगो से अभिषिक्त हिमालय जिसका मस्तक है, मेघ की भस्म से चिह्नित जिसकी काया है, आकाश, पृथ्वी और जल सेना जिसका त्रिशूल है, ऐसा यह मृत्युंजय शिवशरीरधारी देश हमारे हृदय में विराजमान है।''

पूर्वोक्त वर्णनों के आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महाकाव्य के वस्तु वर्णन सम्बन्धी यथासम्भव सभी शास्त्रोक्त वर्ण्य विषयों का समायोजन राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य में किया गया है।

समीक्षा -

पात्र विमर्श के अनन्तर कहा जा सकता है कि विवेच्य महाकाव्य में कथानुसार भूमिका के अनुरूप सभी तरह के पात्रों की संयोजना की गई है। महाकाव्य के नामकरण के अनुरूप नायिका एवं नायक दोनों में शास्त्रोक्त सभी गुणों का समावेश है। नायक कथा का फल प्राप्त करता है तदतिरिक्त अन्य सभी पात्र भी यथोचित रूप से वर्णित हुए हैं। महाकाव्य में पशु-पक्षी, मायावी, कल्पनाप्रसूत पात्रों की योजना भी की गई है। राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य में स्त्री-पुरूष आदि सभी पात्र अपने व्यक्तित्व के अनुरूप कार्य सम्पादन करते हैं।

विवेच्य महाकाव्य में नारद की उपस्थिति नायक विष्णु के साथ-साथ निरन्तर रही है। देवर्षि नारद राजलक्ष्मी स्वंयवर महाकाव्य में विष्णु नायक उपरान्त मुख्य पुरूष पात्र है। उनका स्वरूप एवं परिचय लक्ष्मी महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही इस पकार देती है-

मायाविनस्ते कलहाग्निमूलो, मुखे सुधा यस्य विषं तु चित्ते।
तवान्तरङ्ग प्रणिधिः सदैव, सुराङ्नानां विषमज्वरोऽयम्।।[175]

यह तो मायावी का अंतरंग दूत है जो कि कलहाग्नि का मूल है, मुख में अमृत है, पर हृदय में विष है, यह देवांगनाओं का सर्वदा विषम ज्वर रहा है। यह कथन व्यंग्य स्वरूप है जिसमें अपनत्व की भावना प्रकटित हो रही है। अतः राजलक्ष्मी स्वंयवर महाकाव्य में धर्म, काम एवं मोक्ष रूप त्रिविध पुरूषार्थों का कथानकोद्देश्य के रूप में संयोजन किया गया है। तथा विष्णु की पत्नी लक्ष्मी ने पृथ्वी लोक पर पति के निर्देश से राजलक्ष्मी की भूमिका निभाई है। अतः यहाँ राजलक्ष्मी का स्वंयवर ही महाकाव्य की महत्वपूर्ण घटना है। महाकाव्य के अधिकांश सर्गों में राजलक्ष्मी के चरित्र का वर्णन है। राजलक्ष्मी विवेच्य महाकाव्य की सबसे मुख्य स्त्री पात्र है जो कि इस महाकाव्य की नायिका है। 17 सर्ग में भी कलि एवं शारदा का व्यंग्यपूर्ण संवाद कथानक के महत्त्व को बढ़ाता है।

पुरः स्थितं वीक्ष्य कलिं रमायाः, करालकायं निजपापभीतम्।
तस्यातिचारैः कुपितातिवाणी, वचोभिरूग्रैर्विदधे प्रहारम्।।[176]

कलिरपि भणितं वै शारदायाः सुतीक्ष्णं, मनसि गलितधर्मे धारयन् लाघवेन्।।
अगणितहित भावश्चान्यथा वृत्तिचेताः, अवददचलनिष्ठो व्यंग्यगर्भां हि वाचम्।।[177]

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इतिवृत्त विषयक काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों के परिप्रेक्ष्य में 'राजलक्ष्मी स्वंयवर महाकाव्य' श्रव्य काव्य की, महाकाव्य विधा के रूप में सर्वथा उपयुक्त है। विवेच्य महाकाव्य का कथानक भामह से विश्वनाथ एवं उद्भट्ट तदन्तर हिन्दी आचार्यों के मानदण्डों पर खरा उतरने के कारण सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य' में कल्पित कथानक होने पर भी यह पारम्परिक मर्यादाओं के अनुकूल एक सुसंस्कारित महाकाव्य है।

3. साकेत-सङ्गरम् महाकाव्यम् -

यह महाकाव्य श्रीरामजन्मभूमिमुक्ति संघर्ष के आधार पर विरचित 15 सर्गों एवं विविध छन्दों में निबद्ध एक श्रेष्ठ संस्कृत महाकाव्य है, जिसमें लगभग 600 श्लोक हैं। जिसकी कथावस्तु निम्न प्रकार है-

प्रथमः सर्गः

इस सर्ग में कुल 41 पद्य हैं, जिनमें हिन्दूओं के संगठन के अभाव में देश की दुर्दशा का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है। जैसे विदेशियों का आक्रमण, दासता से उत्पन्न देश की दुर्दशा, हिन्दू धर्म की हानि एवं विदेशी संस्कार के कारण हिन्दु गौरव की विस्मृति तथा म्लेच्छों के आग्रह पर देश का विभाजन आदि के भाव समाहित है। जो निम्न श्लोकों में दृष्टव्य है-

दृष्ट्वा दुर्बलशासनं भुविगतं संहत्यभावं तथा
निबधिं विविशुः क्वचित् क्वचिदसि-प्राबल्य सम्बाधिताः।
दुष्टा लुण्ठन-पाटनाघनिरता वित्तैषणा-मूर्च्छिताः
हिन्दूनामिह मानबिन्दुदलने प्रारेभिरे क्रूरताम्।।[178]

अन्य श्लोक भी-

दिव्यां हिन्दुपरम्परां मुनिजनैः सम्भावितां यत्नतः,
शुद्धां वेद निदर्शितां चिरतमं भद्रैर्जनैः सेविताम्।
व्याकर्तुं हि फिरङ्गिणोऽत्र विदधुर्यत्कैतवं यत्नतो
नाना भ्रान्तिकरैः कुतर्कशतकैश्चक्रे तदेवाप्यसौ।। [179]

जिन मुनिजनों द्वारा सम्मानित, विशुद्ध वेद प्रमाणित, भद्रजनों द्वारा स्वीकृत दिव्य हिन्दु परम्परा को फिरंगियों ने जिन तर्कों के द्वारा विकृत किया था, उन्हीं तर्कों के सहारे लोगों में भ्रान्ति फैलाते हुये, हमारे नेता भी वही कर रहे हैं।

पं. दवे जी ने श्लेषालंकार के माध्यम से यों लिखा है-

धर्म-ग्लानिरतेन तेन बहुधा स्वीयं तृणं पश्यता
हिन्दू संस्कृति-धर्म बोध-विषये भ्रान्तिः समुत्पादिता।
म्लेच्छ-ध्वस्त-सुरालयोद्धतिमतिस्तेनाभवन्मन्थरा
राष्ट्रे पूर्वजगौरवस्मृतिरपिभ्रष्टा नवे सम्भ्रमे।।[180]

इस प्रकार आज अपने भारत देश में बहुसंख्यक होते हुए भी हिन्दु की अस्मिता अस्त है। म्लेच्छ अल्पसंख्या के बहाने अपने धर्माग्रह का मूल्य प्राप्त कर रहा है।

द्वितीय सर्ग-

इस सर्ग में कुल 38 पद्य हैं, जिनमें हिन्दुत्व का बोध कराने वाले एवं राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने वाले राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का उदय तथा उसके द्वारा प्रचारित हिन्दूत्व बोध

का वर्णन किया गया है। इसमें हिन्दु की हीन भावना पर प्रस्फुटित ह्रदय की वेदना को निम्न पद्य के द्वारा उदधृत किया है-

लुप्ताऽस्मिता कथमितो निज विक्रमाढ्या, विस्मारितः कथमनेन च राष्ट्रधर्मः।
शौर्ये मृगेन्द्रमदमर्दन-सक्षमोऽपि, चित्रं नु सर्वदमनः शशकाद् बिभेति।।[181]

क्या कारण है कि प्रचण्ड पराक्रम से पूर्ण हमारी अस्मिता आज विस्मृति के गर्भ में पड़ी हुई है? आश्चर्य है कि सिंह का सामना करने वाला शौर्य आज श्रृगाल से ड़र रहा है। इस दशा को दूर करने का एकमात्र उपाय हिन्दू संघटन है, जिसके लिए संघ के आद्य सरसंघ चालक पं. पू. डा. हेडगेवार ने अनेक निस्वार्थी जीवनव्रती कार्यकताओं का जो खेलों के माध्यम से हिन्दी शक्ति को जागरूक करने का कार्य कर सके, निर्माण किया।

यहाँ पं. दवे जी ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से यों कहा है-

स्फुरन्ती यदन्तो दृढा राष्ट्रभक्ति - रुदग्रा च लोकेषणातो विरक्तिः।
दृगग्रे सदा नूतना संघ-सृष्टिः ध्रुवं कापि सा केशवाख्या विभूतिः।।[182]

<u>तृतीय सर्ग-</u>

इस सर्ग में कुल 49 पद्य हैं, जिनमें विश्वहिन्दू परिषद के द्वारा हिन्दू जागरण का वर्णन किया गया है। जिसमें चिरदासता के कारण सूखे हुए, धर्म वृक्ष को पुनः बल के जल से सींचने के लिय तथा नाना प्रकार की उपासनाओं के कारण बिखरे हुए हिन्दुओं को पुनः राष्ट्रहित के लिये संघटन सूत्र में बाँधने के लिए तथा सभी जाति पन्थ, गोरक्षण एवं अनुयायियों का समन्वय स्थापित करना, पीड़ित व उपेक्षित प्राणियों की सेवा, संस्कृत भाषा का उत्थान, प्रसार तथा प्रशिक्षण एवं मठ, मन्दिर तथा तीर्थों का श्रद्धापूर्वक रक्षण आदि कार्य सन्निहित हैं। जो निम्न श्लोकों में दृष्टव्य है-

हिन्दूहितानां सम्मानमधिकारानुचितांस्तथा।
समन्वयञ्च सर्वेषां जातिपन्थानुयायिनाम्।।[183]

पीडितोपेक्षितानाञ्च प्राणिनां परिसेवनम्।
धर्मान्तरितानाञ्च हिन्दूनामात्मभावनम्।।[184]

संस्कृतस्य समुत्थानं प्रसारं शिक्षणं तथा।
मठमन्दिरतीर्थानां श्रद्धया परिरक्षणम्।।[185]

चतुर्थ सर्ग-

इस सर्ग में कुल 36 पद्य हैं, जिनमें रामनामांकित शिलाओं का निर्माण एवं पूजन का बड़ा भव्य वर्णन किया गया है। इनसे सम्बधित निम्न पद्य दर्शनीय है-

रामनामाङ्किता रम्या, इष्टकाः प्रियदर्शनाः।
परिषत्प्रेरिता भक्ताः निर्ममुः कारू-पण्डिताः।।[186]

यहाँ शिला-पूजनम् का निम्न पद्य दृष्टव्य हैं -

शिलानां पूजनं कर्तुं ग्रामे-ग्रामे गृहे-गृहे।
समवेता अजायन्त धर्मनिष्ठा-परायणाः।।[187]

शिलास्तुतिः का निम्न पद्य दृष्टव्य हैं -

अरीणामियं मर्दिनी वज्रलेखा, मुनीनां मनोह्लादिनी देवमूर्तिः।
हरीणां पयोधि-प्रबन्धोपकर्त्री, शिला किन्नु रामाङ्घ्रि-धन्यास्त्यहिल्या।।[188]

यह राम शिला शत्रुओं का मान मर्दन करने वाली एक वज्रलेखा है, मुनियों के मन को प्रसन्न करने वाली देवमूर्ति है, यह लंका में जाने वाले वानरो के लिय समुद्र पर बाँधने में सहयोग करने वाली शिला है, यह शिला क्या सचमुच राम राम के चरण-कमलों से धन्य हुई अहिल्या है।

एक अन्य श्लोक यह भी श्लाघनीय है-

इयं जानकी किं धरित्री तनूजा, स्फुरन्ती सुहर्म्ये चरन्ती वनान्ते।
मृदो माधुरी मोदिनी मानवानां, शिला भद्रशीलास्त्यहो रामलीला।।[189]

विश्वहिन्दू परिषद् ने हिन्दू जागरण के लिए कई कार्यक्रम आयोजित किये, जिसमें रामशिला पूजन महत्वपूर्ण था। हिन्दुत्व के जागरण का यह एक अद्भुत कार्यक्रम था। रामशिला के विषय में उद्भूत कई मानसिक भावनाओं का यहाँ वर्णन किया गया है।

पंचम सर्ग-

पं. श्री राम दवे विरचित 'साकेतसङ्गरम्' महाकाव्य के इस सर्ग में कुल 24 पद्य हैं, जिनमें श्रीराम ज्योति प्रसारण का वर्णन किया गया है, जिसमें शासनाधिस्थ, धर्मनिरपेक्षतावादियों के द्वारा रामजन्मभूमि भव्य मंदिर के निर्माण का शिलान्यास हो जाने पर

भी कार्यावरूद्ध किये जाने पर विश्व हिन्दू परिषद को यह कार्य पुनः श्रीराम ज्योति आंदोलन के माध्यम से करना पड़ा। जिसका निम्न पद्य दृष्टव्य है-

श्रीरामसत्रारणिमन्थनोत्थो, हुताशनो देवमयः प्रचण्डः।
धृत्वा विरेजे लघुदीपरूपं, विष्णुर्यथा वामनदेवः।।[190]

यहाँ ज्योतिष्मती भारत की चेतना का पद्य दृष्टव्य है -

मा मा प्रसारय करं शलभायमानं, ज्वालामुखी भगवती वसतीह दीपे।
तेजो बिभर्ति तपसां निहितं मुनीन्द्रैर्, ज्योतिष्मती चरति भारत-चेतनेयम्।।[191]

षष्ठ सर्ग-

इस सर्ग में कुल 34 पद्य हैं, जिनमें अयोध्या की ओर कारसेवकों के प्रस्थान का वर्णन किया गया है, जिसका विवेचन निम्नलिखित है -

यया नगापगा-प्रवाहतीव्रतोत्तरङ्गिता
यया मगेन्द्र-मण्डलेऽस्ति गर्जना प्रवर्धिता।
प्रबोधिता यया नगा हिमौघजाड्यतां गताः
धुनोति साद्य भूतलं नु रामजन्म-भूकथा।।[192]

अयोध्या की महिमा का गान भी शान्त रस के माध्यम से निम्न पद्य में दृष्टिगोचर होता है -

प्रशान्तघण्टिकारवाः शिवालया उपेक्षिताः
पुनर् मृदङ्ग-शंख-तूर्य-ताल-नाद-नर्दिताः।
सुमन्द-तैल-तूल-वर्ति-दीपका अकिञ्चनाः
कृता यया प्रभायुता विलासमेतु सा धरा।।[193]

इस प्रकार धन्य है वह धरा जिसने भारत के कण कण में पौरूष भर दिया।

सप्तम सर्ग-

कुल 29 पद्यों से समन्वित इस सर्ग में कारसेवकों के द्वारा अयोध्या में किये गये अदम्य साहस एवं धैर्य का बड़ा ही चमत्कारी वर्णन किया गया है। जिसमें देश के विविध प्रान्तों से अयोध्या की ओर आते हुए जन समुदाय को देखकर प्रशासन ने रेल मार्ग, सड़क मार्ग एवं अन्य तरीकों से उन्हें रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु दृढ़वती वीर, म्लेच्छों की तुष्टि के लिए किये गये इस राज्यादेश की चिंता न करते हुए सारे अवरोधों को तोड़कर, संगरसागर पार करते हुए हनुमान की शक्ति से सम्पन्न निर्भय होकर जा रहे थे-

निरूद्धो रेलसञ्चारो बाधिता वाहनादयः।
मार्गे सञ्चरणञ्चापि राज्यादेशात्प्रबाधितम्।।[194]

भित्वावरोध-सन्दोहं व्युत्क्रम्य संकटोदधिम्।
हनुमद्वीर्य-सम्पन्नाः पययुर्निर्भयं जनाः।।[195]

इस प्रकार दिग् दिगन्त से दृढ़ उत्साह के साथ साकेत की ओर प्रस्थान कर रहे लोग, श्रीराम के जयघोष से शत्रुओं का हृदय दहला रहे थे।

पत्तन ग्रामगोष्ठेभ्यो मन्दिराश्रम-देशतः।
प्रासादगृह-घोषेभ्यो रामभक्ताः समागताः।।[196]

अष्टम सर्ग-

इस सर्ग में कुल 59 पद्य हैं, जिनमें कार सेवकों की कार सेवा संकल्प सिद्धि का वर्णन किया गया है, जो अधोलिखित है- ''कोई परिन्दा भी अयोध्या में प्रवेश नहीं कर सकता'' इस प्रकार की अभिमान भरी वाणी वाली, श्री मुलायम सिंह की प्रतिज्ञा को, तोड़कर रामभक्त राम की शक्ति के सहारे अयोध्या में प्रवेश कर गये। यहाँ पर इसका एक अन्य पद्य दर्शनीय है-

अनेक-विघ्नोच्छल-वीचि भीमं, सशस्त्र-सेना-सुरसाति-घोरम्।
चारेक्षणावर्त-सपत्न-कष्टम्, उल्लंघ्य बाधाजलधिं प्रपन्नाः।।[197]

इस प्रकार राम सेवक वीर, अपनी भुजाओं की निश्रेणी बनाकर एक पर एक चढ़ते हुये, बाबरी मस्जिद के शिखर पर पहुँच गये थे।

शिक्यं यथावाप्य हि गोपबालाः, ससाहसाः खेलरताः प्रसेदुः।
तथैव जीर्णां जरठावशेषामा, रुह्य तां मस्जिदमाप्रसेदुः।।[198]

इस प्रकार के कठोर प्रतिबन्ध में भी, लोक विजय की घोषणा करके, बली अशोक सिंघल ने लोगों में अत्यंत उत्साह भरते हुये, राष्ट्र को विजय की अमृतवृष्टि से आप्लावित कर दिया था। दूरदर्शन पर विजय की सूचना सुनकर लोग प्रसन्न होकर विजयोत्सव मनाने लगे।

हमने पूज्यपाद, ऋषि, मुनि और महात्माओ के पुण्य प्रभाव से ही विजय प्राप्त की है। वीरराम भक्तों के शौर्य और साहस का ही यह फल है। इस प्रकार श्री अशोक सिंघल के ये वचन सुनकर सभी एकत्रित महाव्रतियों ने बार-बार उत्साह भरा विजय नाद किया।

मुलायम सिंह द्वारा प्रेरित छद्‌म वेषधारी दुष्ट, यम के दूतों का साकेतसंगर में रामभक्तों के अग्रगामी महावीरों पर आग्नेयास्त्र से प्रहार किया गया जिसमें अनेक कारसेवक वीरगति को प्राप्त हो गये जिनका विवेचन निम्न पद्यों में दृष्टव्य है-

शरत्कुमारो रामश्च कोठारी कुलदीपकौ।
हतौ राजस्थली वीरौ विजयध्वजरोपिणौ।।[199]

सेठारामो युवा वीरो मालाकार-कुलोद्‌भवः।
देहपुष्पं समर्प्याजौ चक्रे सुरभितं कुलम्।।[200]

नवम सर्ग-

पं. श्रीरामदवे विरचित 'साकेतसङ्गरम्' महाकाव्य के इस सर्ग में कुल 54 पद्य हैं, जिनमें कारसेवकों द्वारा किय गय युद्ध का वर्णन किया गया है। जिनका विवेचन अधोलिखित है -

निवृत्ते जनसम्मर्दे स्वं स्वं विश्राम-संश्रयम्।
प्रवृत्तो रक्षिणां यूथः उपचारे क्षतदेहिनाम्।।[201]

स्वराष्ट्र-मानरक्षकाः कृतोन्नतात्ममस्तकाः,
प्रचण्ड-शौर्य-साहसा निबद्धलक्ष्यमानसाः।
महात्मनां हिते रता दुरात्मनां कृते यमाः,
जयन्ति मातृभूकृते समर्पितात्म-जीवनाः।।[202]

अन्य भी-

नेत्रन्तुदै-रश्रुकराग्निगोलै-ररून्तुदै-स्तीक्ष्णमुखैस्त्रिशूलैः।
विघुत्प्रसारैरसुहारि-तन्त्रैः, संत्रासयामासुरिमे जनौघम्।।[203]

देवताओं के शत्रु, अत्यंत नृशंस असुरों ने भी जो काम पूर्व में नहीं किया, वह काम मुलायम के लोकतन्त्र में दैत्योपम दूतों ने कर दिखाया।

दशम सर्ग-

पं. श्रीरामदवे विरचित ''साकेतसङ्गरम्'' महाकाव्य के इस सर्ग में कुल 32 पद्य हैं, जिनमें रामभक्तों की विजय के पश्चात मुलायम के आक्रोश का वर्णन किया गया है-

मुल्लायमो यादव - वंशजोऽपि, कंसोपमो धर्म - विरूद्ध-बुद्धिः।
नियोज्य सेनां परितः प्रदेशं, मेने स्वसाध्यं ह्यकुतोभयं सः।।[204]

दृष्ट्वा च रोपितं दिव्यं शिखरे गैरिकध्वजम्।
मर्दितं बाबरस्याङ्कं रोषाविष्टो बभूव सः।।[205]

मर्दित बाबर के निशान पर भगवा झण्डा चढ़ा हुआ देखकर, वह आग बबूला हो गया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने भयंकर अवरोधों को लांघकर य लोग यहाँ सुरक्षित कैसे पहुँचे गये। यह विजयोत्सव उसकी प्रतिज्ञा का प्रत्यक्ष खंडन था।

मुलायम के द्वारा सैनिकों की भर्त्सना-

यूयं कृतघ्ना धृतपीनपिण्डाः, अग्न्यस्त्रहस्ता अपि शौर्यशून्याः।
स्थिता यथा गोमय - वक्रतुण्डाः पश्यन्त एतन्मम मानभङ्गम्।।[206]

एकादश सर्ग-

पं. श्रीरामदवे विरचित 'साकेतसङ्गरम्' महाकाव्य के इस सर्ग में कुल 45 पद्य हैं, जिनमें 'हुतात्माभिनन्दन' का वर्णन किया गया है -

भोः भोः प्रचण्ड - भुजदण्डहतारिदर्पाः! , शौर्यप्रभाव-समवाप्त-जगत्प्रतिष्ठाः!।
वीक्ष्याद्य तीर्थधरणीं परितो विषण्णां, किं दूयते नहि मनो भवतां प्रवीराः।।[207]

एक अन्य पद्य भी यहाँ दर्शनीय है-

चिह्नानि यानि विशदानि मनोहराणि, स्तम्भेषु देवसदनोदय-सूचकानि।
स्पष्टं ब्रुवन्ति निरपेक्ष-पर-प्रमाणं, देवालयं रघुपतेर्जनुषोऽत्र सिद्धम्।।[208]

जिनके स्तम्भों पर स्पष्ट रूप से मन्दिर के सुन्दर चिह्न दिखाई पड़ते हैं, जो प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इससे स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि यह रामजन्म का ही मन्दिर है। उन लोगों को धिक्कार है, जो स्वार्थ के मद में अन्धे हो रहे हैं, जिनके हृदय में राष्ट्र की अस्मिता का बोध ही नहीं है, दासता के संस्कारों से जिनकी आत्मा विकत हो गई है, जो व्यर्थ धर्म निरपेक्षता की रट लगाते रहते हैं। उस बुद्धि को धिक्कार है, जो राष्ट्र के गौरव को नहीं पहचानती, धिक्कार है उस स्तुति को जो दूसरों की उन्नति के ही गीत गाती रहती है। धिक्कार है उस स्मृति को जिसे अपने राष्ट्र धर्म का ही स्मरण नहीं है। धिक्कार है वह नौकरी, जिसमें राष्ट्रभक्ति का भाव नहीं ।

धन्याश्च ते भारत-भूमि-पुत्रा, मृत्योरभीता अतिचित्रवीर्याः।
अशस्त्रहस्ता अपि शस्त्रहस्तान् , वितर्जयन्तो विजयं विविन्दुः।।[209]

इस प्रकार मुनियों का प्रबोधन प्राप्त कर, राम कार्य के लिए उद्यत, रामभक्त विजय लाभ में नाचते हुए समरांगण से चले गये।

द्वादश सर्ग-

इस सर्ग में कुल 40 पद्य हैं, जिनमें मुलायम के द्वारा किये गये नृशंस व्यवहार से लोगों में उत्पन्न आक्रोश का वर्णन है-

अयोध्या रामचन्द्रस्य सुधासिक्त-कलेवरा।
अहो कष्टं विरक्तानां रक्तेन रञ्जितास्त्यहो।।[210]

सरयू निर्मला धीरा पवित्रजलवाहिनी।
हिंसया रामभक्तानां शोकेनाद्याति विह्वला।।[211]

कितने दु:ख की बात है कि जो अयोध्या राम के अमृत से सोंचो गई थी, वह आज विरक्त साधुओं के रक्त से रंजित हो रही है। निर्मल नीरधारा, पवित्र जलवाहिनी सरयू भी रामभक्तों की हिंसा से शोक संतप्त प्रतीत हो रही है।

राम-सेवकों का दमन करने के लिए शासन की क्रूरता को देखकर, कुछ लोग शासन को फटकारते हुए आक्रोश प्रकट कर रहे थे।

संस्थापितुं भरतभूमियशः प्रतिष्ठा - मुद्दीपितुं चिर-वितर्जित-हिन्दुवीर्यम्।
उत्पाटितुं पथि गतान् विविधोपरागान् जागर्ति हिन्दुहृदये प्रखराऽस्मिताद्य।।[212]

दास्य काल में जो आज चारों ओर घासफूस फैल गई है उसे हिन्दु पराक्रम की अग्नि जलाकर ही शान्त होगी, ऐसा कवि का दृढ़ विश्वास है-

प्रसृतं परितो दास्य-कालजं तृणगुल्मकम्।
हिन्दू विक्रमदावाग्निर्दग्धैव प्रशमिष्यति।।[213]

त्रयोदश सर्ग-

इस सर्ग में कुल 33 पद्य हैं, जिनमें मुनियों के द्वारा जनाक्रोश के लिए किये गये राजनीति शास्त्र के सहारे का वर्णन किया गया है, अत: यहाँ नृशंस व्यवहार से क्रुद्ध लोगों का देवों के प्रति भी आक्षोभ व्यक्त हुआ है-

सीतानां हरणं सतां, विशसनं धर्मस्थलोत्पाटनं
लंकायां नहि, राम ! पश्य, सरयूतीरे स्फूटं दृश्यते।
यज्ञ-ध्वंस-विधायिनोऽपि, निकषा जीवन्त्यमी राक्षसाः
किं नो राघव ! वीक्षसे तव भृशं क्रन्दत्ययोध्या पुरी।।[214]

मर्यादा पुरूषोत्तम राम अब शिला के रूप में ग्राम, वन, कुटी, तीर्थ, नगर आदि में अवतार ग्रहण कर चुके हैं। अब उन्होंने धर्म के उद्धार हेतु पुनः मुनियों को अभय दान करने तथा राक्षसों का नाश करने हेतु हाथ में धनुष उठा लिया है।

इस प्रकार सशस्त्र संघर्ष का, फल तथा तीर्थ पर व्यर्थ में ही नरसंहार का विचार कर, क्रोध के कारण भड़के शक्तिशाली जनसमूह को लक्ष्य करके धर्मविरोधी शासन की निन्दा करते हुए धीर मुनिजन कहने लगे -

दृष्टवा विनिन्द्यं ननु लोकतन्त्रे, धर्माध्वरे ध्वंसमिदं जनानाम्।
प्रशान्त-चित्तेऽपि करोति नूनं, क्रोधोदयं निष्ठुर-कृत्यजातम्।।[215]

चतुदश सर्ग-

इस सर्ग में कुल 53 पद्यों का प्रयोग हुआ है, जिसमें रामभक्तों की पराक्रम वृद्धि एवं पुनः कारसेवा हेतु अयोध्या प्रस्थान का वर्णन किया गया है-

भक्ताश्च साकेतकथाप्रसारैर्विजृम्भिता-शेषजन-प्ररोषाः।
दुःशासनोत्पाटन-बद्धसन्धा निर्वाचनाजौ दिदिशुः स्ववीर्यम्।। [216]

रामभक्तों ने अयोध्या की घटनाओं का प्रचार करके लोगों के हृदय में शासन के प्रति रोष प्रकट कर दिया, अतः लोगों ने दुष्ट शासन को हटाने के लिये निर्वाचन में अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया।

मुनियों का कहना है कि धर्म से ही पाप का शमन होता है, ऐसा मानकर रामभक्ता ने पुनः पूजा के माध्यम से जन-जागरण करने के लिय श्रीराम चरण पादुका पूजन की नई योजना बनाई।

उस समय तत्कालीन केन्द्र सरकार द्वारा रामजन्म भूमि विवाद का उचित समाधान ना किये जाने पर मुनि भी बहुत L C हुये और उन्होंने सभा में पुनः संघर्ष का शंख बजा दिया।

मोक्षदैकादशीकाले षट्दिनाङ्के दिसम्बरे।
कारसेवा समारम्भो भूयः शीघ्रं विधास्यते।।[217]

उन्होने ने घोषणा कर दी कि मोक्षदा एकादशी, अर्थात् 6 दिसम्बर को पुनः कार सेवा प्रारम्भ की जायेगी। अन्य श्लोक य भी दृष्टव्य है-

साकेतभूमिर्यवनाभिभूता गता विषादं चिरकालदास्ये।
विमुक्तबन्धेव मुदं वहन्ती रेजेऽद्य वीरैः परितो लसन्ती।।[218]

जो अयोध्या भूमि, चिरकाल की दासता के कारण, तथा यवनों से अभिभूत होकर व्याकुल थी, वह आज चारों ओर से हिन्दु वीरों से घिरी हुई, बन्धनों से मुक्ति पाने का आनन्द उठा रही है।

रक्षका योजिताश्चात्र बाबरोपाधिरक्षणे।
हिन्दुसंहतिमालोक्य मुमुदुर्मानसे भृशम्।।[219]

पंचदश सर्ग-

पं. श्रीरामदवे विरचित 'साकेतसङ्गरम्' महाकाव्य के इस सर्ग में कुल 32 पद्यों का प्रयोग हुआ है, जिसमें मस्जिद गिराने एवं साकेतसंगर विजय का वर्णन किया गया है-

अथोदिते भास्वति रामभक्ताः, कर्तुं हि सांकेतिक-कारसेवाम्।
स्नात्वा संख्याः विमले च नीरे, आजग्मुरादाय रजः पवित्रम्।।[220]

इधर, घण्टा, शंख, मृदंग आदि के नाद से प्रेरित वीर, रक्षा के लिये लगाये गये लोह स्तम्भों को तोड़कर, युद्ध में हनुमान से प्रेरित, उत्साही वानरों की तरह रावण वध के समान मस्जिद तोड़ने के लिए पहुँच गये। इस प्रकार आज साधुजनो ने सरयू के तीर पर जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी हुई, चिरकाल से हिन्दुजनों के हृदय में संजोयी गई नपुंसकता आज नष्ट हुई, हिन्दु राष्ट की विगलित सम्भावना पुनः जाग उठी। इस कलंक के मिट जाने से पृथ्वी पर नये गौरव की कथा का श्रीगणेश हुआ-

सन्धा साधुजनस्य चापि सरयू-तीरे कृता पूरिता
क्लैब्यं हिन्दुजनस्य चेतसि चिरात् सम्भावितं खण्डितम्।
हिन्दू-राष्ट्र-विभावनापि विहता विजृम्भिता भूतले
उद्भूता नव गौरवोदयकथा नष्टे कलङ्के भुवः।।[221]

समीक्षा -

'साकेतसंगरम्' 15 सर्गों में निबद्ध के इस महाकाव्य में कवि की सांस्कृतिक चेतना जिस स्फूर्ति के साथ अभिव्यक्त हुई है, उसने प्रमाणित कर दिया है कि वे कितने सहृदय एवं

निर्भीक है कि बरबस कहना पड़ता है - ''निरंकुशा: कवय:'' जोधपुर निवासी पं. श्री रामदवे अपने घनिष्ठ मित्र श्री महेन्द्रनाथ अरोड़ा के बलिदान पर अयोध्या स्थित रामजन्मभूमि-मुक्ति-संघर्ष को महाकवि ने प्रत्यक्षदृष्टा के रूप में चित्रित कर 'इतिहास' को चिरजीवन प्रदान किया है। वस्तुत: पं. श्री रामदवे की यह कृति 'साकेतसङ्गरम् महकाव्य' न केवल वर्तमान काल का प्रेरणा स्त्रोत है, अपितु यह युग-युगों तक 'रामजन्मभूमि - मुक्ति - संघर्ष' का आँखों देखा हाल वर्णित करती रहेगी। जिस रामजन्मभूमि के लिए स्वतंत्रता के पूर्व हिन्दु समाज को अनेक बार संघर्ष करना पड़ा था, उसी के लिये स्वतंत्रता के पश्चात् भी संर्घष करना पड़ा, इसे दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। कैसी विडम्बना है कि समस्त धर्मों का आदर करने वाले हिन्दु समाज को आज धर्मनिरपेक्षता की ओट में मिथ्या पाठ पढ़ाया जा रहा है। हिन्दु के ह्रदय में अपने ही देश में इस प्रकार की अपनी अवमानना से तीव्र आक्रोश है। इस महाकाव्य में देश के स्वतंत्र होने पर देश की अस्मिता की उपेक्षा पर प्रबल आक्रोश की अभिव्यक्ति है तथा एकादशी से प्रारम्भ श्रीरामजन्मभूमि मन्दिर की जीणोद्धार कथा को अभिव्यक्त किया गया है।

2. खण्डकाव्य :

1. भारती विलास खण्डकाव्य -

भारतीविलास 191 पद्यों में निबद्ध एक खण्डकाव्य है। इसमें माया मातृकारूपधारिणी भारती की ही लीलाविलास का वर्णन किया गया है। अकार से क्षकार तक पचास संश्लिष्टात्मक वर्णों को ही भारती नाम से पुकारा जाता है। पचास वर्ण ही उस भारती के अंग और अलंकरण माने गये हैं। जैसा कि निम्न पद्य में दृष्टव्य है-

शब्द ब्रह्म रसायनोदयकरीं सारस्वताराधिताम्
वर्णाच्छादित विग्रहां नवनवच्छन्दोऽम्बराडम्बराम्।
शब्दार्थ ध्वनिरीति-संभृत-रसालंकार-सम्मण्डिताम्
वाग् व्यापारपथे भजे विदधतीं लीलायितं भारतीम्।।[222]

शब्द ब्रह्म को जीवन शक्ति प्रदान करने वाली, विद्वज्जनों की आराध्य देवता, वर्ण-विग्रहवती, भगवती भारती को प्रणाम करता हूँ। जो विविध छन्द वस्त्रों को धारण कर, अपने

दिव्य शरीर को शब्द अर्थ, ध्वनि रीतियुक्त रस अलंकारों से मण्डित करती हुई, विश्व के वाग् व्यापार में नित्य नई-नई लीलाएं प्रकट करती रहती है।

पं. श्रीरामदवे जी ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से यों लिखा है -

माया भारति! भाति कापि भुवनेऽवाच्या तवैषा यया,
सर्वं वर्ण विभावनाऽञ्चितमिदं विश्वं पुरो भासते।
नृत्यन्तीव च लक्ष्यतेऽत्र विशदं काले विलीनापि या
सृष्टिस्त्वद्गुणगुम्फिता ह्यविरतं सद्रोचिषा भासुरा।।[223]

हे भगवति भारति! इस भूमण्डल पर फैली आपकी माया अवर्णनीय है। जिस माया के कारण वर्णों के माध्यम से प्रकटित यह विश्व प्रत्यक्ष सा प्रतीत होता है। जो सृष्टि कालचक्र के प्रभाव से विलीन हो गई है वह भी तुम्हारे गुणसूत्रों से गुम्फित होने पर अपनी यथार्थ सुन्दरता लिये आँखों के आगे नृत्य करती-सी लक्षित होती हैं।

पं. श्रीरामदवे जी ने उपमालंकार के माध्यम से यों लिखा है -

दत्तो रूपावयव-विधुर-ब्रह्मणे रूपराशिः,
अव्यक्तोऽयं नयनसुभगां व्यक्तिमासाद्य मत्तः।
वाच्यो भूत्वा लसति भुवने त्वत्प्रसादादवाच्यः,
मायाऽप्येषा नटति नटिनीवाङ्गणे तस्य मत्ता।।[224]

हे भारति! रूप और अंगहीन इस ब्रह्म को तुमने ही रूप का भण्डार दिया है। यह अव्यक्त भी नयनाकर्षक रूप पाकर मतवाला बन जाता है। जो अवाच्य है वह भी तुम्हारी कृपा से ही भुवनमण्डल में वाच्य बना भ्रमण कर रहा है। उसकी माया भी तुम्हारे अनुग्रह से नटिनी की तरह नाच रही है। नाद ब्रह्म से सम्बन्धित निम्न पद्य दर्शनीय है-

नादब्रह्मशिवाश्रया समुदिता मूलात्पराख्या सती
पश्यन्ती हृदये स्थिता च धिषणायोगे मता मध्यमा।
बक्त्रे व्याकृतवैखरी च विदिता वागात्मिकता मातृका,
देहे न्यासकलाविलास-कलितैर्दैवत्व - सम्पादिनी।।[225]

हे भारति! तुम ही नाद ब्रह्म का आश्रय लेकर मूलाधार से परावाक् के रूप मं प्रकट होती हो, हृदय मे पश्यन्ती रूप से, मध्यमा बनकर बुद्धि में और वैखरी बनकर मुख में वर्णमातृका का रूप धारण करती, मातृका न्यासों द्वारा देह में देवत्व समाहित करती हो। पं. दवे जी भारती के महात्म्य को निम्न श्लोकों के माध्यम से व्यक्त करते हैं-

प्रसक्तानां भोगे जनयति च योगेऽप्यभिरूचिम्
अनास्थानामीशे कलुष निरतानामपि नृणाम्।
द्रुतं-भक्त्युद्रेकं कलयसि कलङ्केऽपि सुषमाम्
द्रवत्यन्तो ग्रावा कुलिशकलनाऽप्येति मृदुताम्।।[226]

हे भारति! तेरी कृपा से ही भाग लिप्त लोग भी योग में रूचिवान बनते हैं। भगवान में विश्वास न करने वाल पापी के हृदय में भी भक्तिभाव जागृत हो जाता है। कलंक भी सुषमा बन जाता है। कठोर पाषाण भी दया से पिघल जाता है और कुलिश की कठोरता भी कोमल बन जाती है।

कलाः समस्तास्तव वर्णवृन्दे, स्वरात्मिके व्यञ्जनव्यक्तरूपे।
अव्यक्तभावा अपि मन्त्रबन्धे, कुर्वन्ति लोकस्य हितं तु सिद्धाः।।[227]

हे भारति! तुम्हारे इस स्वर व्यञ्जनात्मक वर्ण विग्रह में अनेक कलाएं अव्यक्त रूप से रहती हैं जिन्हें सिद्ध पुरुष मन्त्रों के माध्यम से लोक-कल्याण के लिए प्रकट करते हैं।

अनन्तसंख्या विदिताश्च रश्मयः, त्वद्वर्णगा आगमशास्त्रकल्पे।
गुरुप्रसादात्सकलं रहस्यं, विज्ञायते सिद्धिरतैर्हि शिष्यैः।।[228]

हे भारति! तुम्हारे इस वर्णकोष की असंख्य रश्मियों का आगम शास्त्र में वर्णन किया गया है। इसकी विचित्रता को एवं रहस्य को गुरुकृपा से निर्दिष्ट साधना में लगे लोग ही जान सकते हैं।

यहाँ वर्णन्यासफलम् का निम्न पद्य दृष्टव्य है -

षट्चक्रभेदोदितदिव्यशक्तिः, विद्युत्प्रभा मानवदेहनिष्ठा।
न्यासप्रसारैः खणु वर्णबद्धैः, मन्त्रैरियं कुण्डलिनी प्रबोध्यते।।[229]

हे भारति! तुम्हारे वर्ण बद्ध मन्त्र न्यासों क द्वारा ही पिण्ड स्थित कुण्डलिनी शक्ति को जागृत किया जाता है। जिनकी दिव्य शक्ति षट्चक्रों के भेदन से ही प्रकट होती है। जो वि|त् की भांति शरीर में चमकने लगती है।

पृथ्वी व सुमती कृता का यहाँ एक पद्य दृष्टव्य है -

दत्वाऽलंकरणं त्वयैव विहिताशून्या जड़ा पंकिला,
रूक्षाकण्टकिता शिलाहिमहता वात्याटवीवेष्टिता।
लोकानामुपकारिणी हि प्रकृतिः लावण्यसम्भाविता,
पृथ्वी पांसुमती कृता वसुमती विश्वम्भरा सुन्दरी।।[230]

हे भारति! तू ने ही इस शून्य, जड़, कीचड़ भरी, कंटिली, पाषाण और हिम स व्याहत एवं झंझा और जंगलों से घिरी, भयावनी प्रकृति को लावण्य के अलंकारों से अलंकृत किया है तथा इसे लोकोपकारिणी बनाकर सुन्दरता से सजाया है। तथा धूल भरी धरा को वसुमती विश्वम्भरा सुन्दरी बनाया है।

पं. श्रीरामदवे जी ने माधुर्य गुण के माध्यम से यों लिखा है -

धृत्वा लोके मधुर कविताकामिनीरम्यरूपम्,
स्निग्धैर्भावैर्जनयसि नृणां मोदपूरं हृदब्धौ।
विज्ञैर्वन्द्या बहुगुणयुता भावपूर्णा सुवर्णा,
त्वामाश्लिष्य प्रभवति नरः को नु मुग्धो रसज्ञः।।[231]

हे भारति! इस संसार में तुम मधुर कविता कामिनी का रूप धारण कर अपने स्नेह भरे भावों से लोगों के हृदय सागर में आनन्द की हिलौरें पैदा करती हो। वस्तुतः विद्वज्जनों की गुणवती विविध भावों से भरी, तुमसी सुन्दरी का संगम पाकर कौन ऐसा रसज्ञ होगा जो तुम पर मुग्ध न हा।

पं. श्रीरामदवे ने अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना के माध्यम से वृत्तिव्यापार धात्री का वर्णन करते हुए यों लिखा है -

सङ्केते ते निहितममृतं व्यंग्यवैशिष्ट्यपूर्णम्
स्निग्धा कण्ठध्वनिरपि सुधां वर्जयन्तीव भाति।
मेधामन्दे सततमभिधा लक्षणा लक्ष्यलुब्धे
वाचां गर्भोन्नयननिपुणा व्यञ्जनासूतिधात्री।।[232]

इस कविता कामिनी के व्यंग्य व्यापार में भी अमृत भर जाता है। जब तुम संगीत बनकर कंठ से निकलती हो तो सुधा भी फीकी पड़ जाती है। मन्द बुद्धि के आगे अभिधा बनकर, तो लक्ष्य लोभी को लक्षणा बनकर, तथा जो रसज्ञ, वाणी के अन्तः स्थित मर्म को जानना चाहता है, उसके लिये व्यञ्जना का रूप धारण कर आ जाती हो।

पं. श्रीरामदवे जी ने मन्दाक्रान्ता छन्द के माध्यम से यों लिखा है -

स्निग्धाङ्गी त्वं गुरुलघुगुणैर्गुम्फितैर्वर्णमात्रा-
छन्दोबन्धैर्ललितवसनैर्भूषिताङ्गी वरेण्या।
लब्ध्वा कण्ठे स्वरलययुतं गीतिमाधुर्यभावम्
शब्दार्थालंकृतिभरयुता राजसे विश्वहृद्या।।[233]

हे भारति! जब तुम गुरु लघु सूत्रों से ग्रथित वर्णमात्रा बन्धों से सुसज्जित छन्द वस्त्र धारण करती हो तब तुम्हारे कोमल अंग बहुत सुन्दर लगते हैं। तथा जब इन ललित अंगों को शब्द और अर्थ के अलंकारों से सजाकर, स्वर और लययुक्त मधुर संगीत अपने कंठ से प्रकट करती हो तब सारा संसार मुग्ध हो जाता है।

पं. श्रीरामदवे जी ने उत्प्रेक्षालंकार तथा प्रसाद गुण के माध्यम से यों लिखा है -

प्रादुर्भूतां हृदयजलधेः कल्पनोत्तुंगवीचेः
नूनं मन्ये करधृतसुधापूर्णकुम्भां हि रम्भाम्।
लावण्यं ते लसति परितः शब्दब्रह्मोपलब्धम्
दृष्ट्वा मुग्धो भवति मनुजो मोहिनीं मुग्धभावाम्।।[234]

हे भारति! जब हृदय सागर में कल्पना की ऊँची लहरे उठती हैं तब तुम्हारा कविता रूप प्रादुर्भूत होता है। उस समय तुम हाथ में अमृत कलश लिये लक्ष्मी-सी प्रतीत होती हो। शब्द ब्रह्म से उपलब्ध तुम्हारा लावण्य चारों और फैल जाता है। तुम्हारे उस मोहिनी रूप को देखकर कौन सहृदय मुग्ध नहीं होगा।

यहाँ भारती की महिमा का वर्णन पं. दवे द्वारा कुछ इस प्रकार किया गया है-

फलानां वृक्षाणां कुसुमलतिकानाञ्च निलये,
ऋतूनां संहारो व्रजति विलयं कालवलये।
परन्ते रम्येऽस्मिन् विविधविटपे नन्दनवने,
ऋतूनां संघातो लसति सततं मोदजनकम्।।[235]

विविध वृक्षों, फलों, लताओं एवं पुष्पों में निवास करने वाली, समय-समय पर उदित होती ऋतुएं इस कालचक्र में विलीन हो जाती हैं परन्तु हे भारति! तुम्हारे इस वृक्षावली मण्डित नन्दन वन में समस्त ऋतुएं एक साथ प्रमोद प्रदान करती रहती हैं।

यहाँ पर हमन्त ऋतु का पद्य दृष्टव्य है -

हेमन्त हर्षो हरिणेक्षणानाम्, शीताभिलाषा शयनोत्सुकानाम्।
वसन्तलिप्सा स्मरकिंकराणम्, कालावसाने विलयं प्रयान्ति।।[236]

मृगनयनाओं का हेमन्त जनित हर्ष शीतकाल में शय्या में निपटने की उत्कण्ठा, कामी जनों की वसन्त को प्रतीक्षा, समय बीतने पर अस्त हो जाती है।

यहाँ पर ग्रीष्मऋतु का पद्य दृष्टव्य है -

ग्रीष्मर्तुहृद्यः सलिलावगाहः, प्रावृट्प्रवाहेऽस्तमितः प्रजायते।
वर्षाप्रमत्ता जलदाश्च काले, शरदृतोः संकुचिता भवन्ति।।[237]

ग्रीष्म ऋतु में प्रिय लगने वाला जल स्नान, वर्षा ऋतु के आगमन पर ठंडा पड़ जाता है। वर्षा ऋतु के मतवाले बादल शरद् के आगमन पर संकुचित हो जाते हैं।

पं. दवे जी ने भारतो की महिमा का गुणगान इस प्रकार किया है-

पीत्वा स्नेहसुधां जहार तिमिरं यावद् गृहाणां पुरा,
स्निग्धा दीपशिखा सुतेव शिखिनः क्रोडे कुटीनां गता।
यज्ञीयश्च हुताशनो द्विजवरैः सन्तर्पितः सर्पिषा
तावन्नो भुवने प्रदूषणमहारक्षो विविन्दाऽस्पदम्।।[238]

हे भारति! जब तक यह स्नह स्निग्धा दीपशिखा घरों का अन्धकार मिटाती रही तथा अग्नि की प्रियपुत्री की तरह मुनियों की कुटियों की गोद में खेलती रही एवं द्विजवर अग्नि को घृत से तृप्त करते रहे तब तक इस प्रदूषण महाराक्षस की इस धरती पर पांव रखने की हिम्मत न हुई।

यहाँ भौतिक विज्ञान चमत्कृत निम्न पद्य दर्शनीय है-

विश्वं नृत्यति दर्पणेऽद्य सदने नानाविधं यान्त्रिके,
निर्दिष्टे पथि प्रत्ययो नहि परं शास्त्रैर्बुधानां मनाक्।
नास्तिक्यं दितिजादृतं दृढमहो सन्धार्यते मानसे,
मेधादर्पविनष्ट - देवविभवं जातं जगन्मण्डलम्।।[239]

आज तो घर में ही यान्त्रिक दर्पण के माध्यम से सारे संसार की विविध घटनाएं देखी जा सकती है। अतः शास्त्रों में निर्दिष्ट बातों पर बुद्धिमानों का विश्वास नहीं होता। इसलिए उनके हृदय में नास्तिकता बढ़ रही है। आज सारा संसार अपने बुद्धिबल के अहंकार में दैवी शक्ति पर विश्वास नहीं करता।

पं. श्री रामदवे जी ने शार्दूलविक्रीडित छन्द के माध्यम से यों लिखा ह -

एते भौतिक वादिनो नवनवोन्मेषऽति गर्वान्विताः,
मेधामेदुरतातिदर्पगुरव स्वीयोपलब्धौ भृशम्।
दृप्यन्ते निजबुद्धिवैभवफलं मत्वामृषाऽनीश्वराः
ते मूढाः नहि जानतेऽस्ति सकलं त्वत्प्रेरितं भारति!।।[240]

ये नवीन भौतिकवादी, अपने नूतन आविष्कार और उपलब्धियों में अपनी विलक्षण बुद्धि का गौरव मानते हैं। वे अपनी बुद्धि का चमत्कार मानने वाल अनीश्वरवादी मूर्ख यह नहीं जानते कि यह सब तुम्हारी प्रेरणा का ही फल है।

पं. श्री रामदवे जी कृत प्रस्तुत खण्डकाव्य में प्रसाद गुण का निम्न पद्य दृष्टव्य है -

कान्तोऽपि कौतुकमिदं तव पश्यतीह, मौनं तिष्ठति विविच्य युगप्रवृत्तिम्।
जाते स्वकीयमतिदर्पयुते तु लोके, दत्वाऽऽहतिं दिशति देवबलं स्वकीयम्।।[241]

हे भारति ! तुम्हारा पति परब्रह्म भी युग प्रवृत्ति का विचार करता हुआ तुम्हारे इस भौतिक कौतुक को देखता रहता है परन्तु जब कभी यह लोक तुम्हारे द्वारा प्रदत्त बुद्धि का अति अहंकार करने लगता है तब वह भी एक झटका देकर अपनी देवशक्ति का प्रभाव दिखा देता है।

यहाँ पर शार्दूलविक्रीडित छन्द व प्रसाद गुण का पद्य दृष्टिगत हुआ है-

मेधालम्बनगर्विताः नहि जडास्ते कोविदा जानते
पन्थानं दिशते हि केवलमियं नो लक्ष्यलाभं परम्।
कामं तिष्ठतु कामिनीव घिषणा पार्श्वे प्रियालम्बिनी
दत्तेऽस्याः विरहोऽपि मोदमतुलं काले क्वचिच्चेतसे।।[242]

इस उदाहरण में कवि पं. श्री रामदवे जी ने उपमालंकार के माध्यम से कवि की वैदर्भी रीति को उदघाटित किया है।

प्रदूषण प्रसारक से सम्बन्धित निम्न पद्य यहाँ दृष्टव्य है-

धूम्रोद्‌गारपरायणानि परितो धावन्ति यानान्यहो!
नित्यं प्राणितपोषकञ्च पवनं कुर्वन्त्यहो दूषितम्।
यः पूर्वं क्रतुधूमसौरभसुधासंवाहकोऽभूद्दिशाम्
सोऽयं यन्त्रसमुदगतन कुरुते धूम्रेण दिग्दूषणम्।।[243]

हे भारति! देखो आज प्रकृति में भी कितना विकार आ गया है। चारों ओर धूंआ फैलाने वाले यन्त्र वाहन दौड़ रहे हैं जिससे प्राणियों का प्राणपोषक पवन दूषित हो रहा है। जो अग्नि पूर्वकाल में यज्ञधूम्र की सारभसुधा को चारों ओर फैलाया करता था वही आज यन्त्रों के माध्यम से दिशाओं में प्रदूषण फैला रहा है।

अन्य पद्य यह भी दर्शनीय है-

'क्रदतीह नन्दिनी' से उदृत निम्न पद्य यहाँ श्लाघनीय है-

वसन्ति यस्या वपुषि प्रपूते, देवाः समस्ता इति शास्त्रदिष्टम्।
पयोनिषण्णश्च पयोधिदेवः, यदाज्यपुष्टाः सकलाश्च यज्ञाः।।[244]

शास्त्रों में कहा गया है कि गाय के शरीर में समस्त देवता निवास करते हैं। इसके दूध में सागर देवता का निवास है। इसके घृत से समस्त यज्ञ परिपूर्ण होते हैं।

पं. श्री रामदव जी ने उपेन्द्रवज्रा छन्द के माध्यम से यों कहा है -

लक्ष्मी निवासं कुरूते च देवी, यद् गोमये शौचविधानमूले।
यत्पञ्चगव्यं जनपापहारि, दिव्यास्ति धेनुः श्रुतिशास्त्रगीता।।[245]

अपने लेपन से स्थान को पवित्र करने वाले इसके गोबर में लक्ष्मी का वास माना गया है। तथा इसके दूध, दही, घी, गोमय और गोमूत्र से बने पञ्चगव्य में शरीर के समस्त दोष निवारण के गुण हैं, अतः शास्त्रों ने गाय को दव स्वरूप माना है।

पं. श्रीरामदवे जी ने लोकवाणी के माध्यम से यों कहा है -

जाने जाता त्वमसि वरदे! लोकवाणी विमुग्धा
येनाद्याऽयं लगति रुचिरो नामृतावाग् विलासः।
नानाभाषाविलसनपरा वृत्तपत्रानुरक्ता
लोकानां वै हरसि हृदयं चारुवर्वेः सचित्रैः।।[246]

हे भारति! ऐसा लगता है कि तुम भी आज इस लोकवाणी पर मुग्ध हो गई हो जिसके कारण आज तुम्हें इस देववाणी का वाग् विलास अच्छा नहीं लगता। जिसके कारण तुम विविध भाषाओं के साथ मनोविनोद करती हुई इन समाचार-पत्रों पर आसक्त हो गई हो जिनके सुन्दर सचित्र वर्णों से लोगों का मन मोहित कर रही हो।

पं. श्री रामदवे जी ने उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम से यह लिखा है -

युगप्रवृत्तौ निरता त्वमद्य, मन्ये पुराणं परिवर्जयन्ती।
विधाय दूतं जनवाणिपत्रम् , तनोषि मायां भुवने स्वकीयाम्।।[247]

कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम अपनी पुराणी परम्परा छोड़कर इस नये युग की प्रवृत्ति को बढ़ाने में लग गई हो। जो तुम आज इन नये समाचार-पत्रों को अपना दूत बनाकर अपनी ही धरती पर अपनी माया फैला रही हो।

अन्य पद्य यह भी -

अहो! वीणापाणिर्विमलवसना कुन्दधवला, मरालं त्यक्त्वैषा भजति बकमेकालकलितम्।
फिरंगीफेरूणां कपटधृतरागस्य वशगा, सरस्वत्या मेधाहरिमपि न हा संकलयते।।[248]

हे भारति! आश्चर्य तो इस बात का है कि यह विमल वसना, कुन्दधवला विद्या की अधिष्ठात्री शारदा भी नीरक्षीर विवेकी हंस वाहन को छोड़कर मेकाले बगुले की राह पर चल रही है। इन फिरंगी गीदड़ों के बनावटी रंग पर मोहित हुई सी सरस्वती की बुद्धि भी अपना गणित इन गोरों की पद्धति से कर रही है। वह सिंह की पहिचान ही मानो भूल गई है।

पं. श्री रामदवे जी ने शिखरिणी छन्द के माध्यम से यों लिखा है -

त्रपा भूषा यासां कुलवर-वधूनामभिमता
मताऽसूर्यंपश्या नृपकुलमहिष्यश्च भुवि याः।
अहो! तासां वोडा विलयमुपयाताऽद्य सहसा
चरन्त्यो नग्नार्धाः कथमपि न ते वेदनकराः।।[249]

जो कुलांगनाएं लज्जा को अपना भूषण समझती थी जो राजकुल की महीषिएं खुले मुंह सूर्य भी नहीं देखती थी, वे आज लज्जा को तिलाञ्जलि देकर अर्ध नग्नावस्था में घूम रही हैं। हे भारति! यह देखकर क्या तुम्हें पीड़ा नहीं होती?

पं. श्री रामदवे जी ने ओज गुण के माध्यम से यों लिखा है -

राज्यश्रीर्वसुलोकपालतनुजस्यौजस्विनो भूपतेः
वश्या धर्मधुरीणरक्षणपरा वर्णाश्रमोद्धारिणी।
चक्रे शास्त्रपथावलम्बनमियं राष्ट्रे त्वया प्रेरिता
येनेदं खलु भारतं स्व गुरुतां भेजे जगत्यां पुरा।।[250]

हे भारति! वह भी समय था जब राजलक्ष्मी भी आठ लोकपालों के अंशज ओजस्वी राजा के वशीभूत रहती थी और वर्णाश्रम व्यवस्था की रक्षा करती थी और वे राजा भी शास्त्रों के नियमानुसार प्रजारञ्जन करते हुए शासन करते थे। जिसके कारण भारत संसार में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखता था।

पं. श्री रामदवे जी ने शृंगार रस तथा माधुर्य गुण के माध्यम से निम्न पद्य का स्पष्टीकरण किया है -

शृङ्गारे रसभावनोदयकरे माधुर्यमापादितम्
काव्ये तद्गणितं रसज्ञविबुधैः प्रह्लादने कारणम्।
ब्रह्मानन्दसहोदरे रसकुले कादम्बरीमिश्रणम्
जातं भाण्डकृतैः प्रदूषणमिदं संवार्यतां शारदे।।[251]

हे भारति! रस को जानने वाले विद्वानों ने शृंगार रस की भावना में जो माधुर्य निर्दिष्ट किया है, वह काव्य में आनन्द का कारण माना गया है परन्तु इस युग ने उस ब्रह्मानन्द रस में आज भाण्डां की अश्लीलता का विष मिला दिया है। हे भारति! इस आप शीघ्र दूर कीजिये।

पं. श्री रामदवे जी ने वीररस तथा ओजगुण के माध्यम से निम्न पद्य को उद्घाटित करते हुए स्पष्ट किया है -

महारथास्तेऽद्य कथावशेषा, वीर्यं हि येषां प्रथितं जगत्याम्।
मृगा मृगेन्द्रा इव वीभमानाः, दिशन्ति नित्यं प्लुतिपाटवं स्वम्।।[252]

हे भारति! जिन महारथियां ने अपनी वीरता के कारण विश्व में यश कमाया था वे तो आज कथावशेष मात्र हैं। परन्तु आज के हरिण थोड़ी-सी छलांग लगाकर शेरों-सी डींग हांकते रहते हैं।

यहाँ 'विकृति जनितो विषादः' का वर्णन निम्न पद्य में किया गया है-

उच्छिष्टाशनदूषितामलधियो जाता बुधाः साम्प्रतम्
स्वीयं प्रोज्ज्वलवैभवं गरुजनैः सम्भावितं निन्द्यते।
वीर्यं स्वीयममोधमद्य च जडैः शूरैर्न संस्मर्यते
प्राज्ञा विश्वजन प्रकीर्तितगुणा मन्दाः हि मूढैर्मताः।।[253]

पं. श्री रामदवे जी ने इस पद्य में वीर रस तथा ओज गुण को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि हे भारति! दुर्भाग्य से आज पुनः यहाँ के बुद्धिजीवियों की बुद्धि आज विदेशियों का उच्छिष्ट खाने से दूषित हो गई है जो अपने ही पूर्वजों द्वारा समादृत उज्ज्वल वैभव की निन्दा कर रहे हैं। वे जड़मति अपने वीरों की अमोधशक्ति का स्मरण तक नहीं करते। जिन प्राज्ञ-पुरूषों की विश्व प्रशंसा करते हैं, उन्हें वे मूढ़ समझ रहे हैं।

पं. श्री रामदवे जी ने प्रसाद गुण के माध्यम से यों लिखा है -

प्रसादात्ते ख्याता गुरुपदजुषो येऽग्रजवराः
मुखोद्गीर्णं येषां गणितमनघं ब्रह्मभणितम्।
वितस्थुर्यद्द्वारे विनतमुकुटाः पार्थिववराः
जगद्वन्द्यास्ते हा! विकृतमतयः सम्प्रति वृताः।।[254]

हे भारति! तुम्हारी कृपा से जो अग्रजवर जगद्गुरू कहलाते थे जिनके मुख से निकले वचन ब्रह्मवाक्य माने जाते थे तथा जिनके द्वार पर पृथ्वीपति भी अपना सिर मुकुटविनत किये खड़े रहते थे, वे ही आज दुर्भाग्य से विकृतमति हो गये हैं।

पं. श्री रामदवे जी ने मन्दाक्रान्ता छन्द के माध्यम से यों लिखा है -

ब्राह्मं वर्च उदेतु विप्रकुलजे शौर्यञ्च क्षत्रान्वये
वैश्यास्त्यागयुता भवन्तु धनिनः सेवाव्रताश्चान्त्यजाः।
भूयाद् भारति! भारतं पुनरिदं वर्णाश्रमश्रीयुतम्
विन्द्याद् विश्वगुरुत्वगौरवपदं संकल्पितं सूरिभिः।।[255]

हे भारति! इस भारत भूमि पर पुनः ब्राह्मणों का ब्रह्मवर्चस्व जागृत हो, क्षत्रियों में शौर्य चमके, धनिक वैश्य त्यागी हों तथा शूद्र सेवा परायण बने। यह भारत भूमि पुनः वर्ण व्यवस्था की शोभा धारण करे और हमारे पूर्वजों द्वारा संकल्पित विश्व ग़ुरुत्व का गौरव पुनः इस पुण्यभूमि भारत को प्राप्त हो। यही मेरी आपसे प्रार्थना है।

इस प्रकार पञ्च प्राणमय, इच्छा ज्ञान क्रिया रूप, त्रिशक्तिमान्, पञ्चदेव स्वरूप, विश्व में आश्चर्य का उदयकर्ता, सत्व रजतमो गुणकर्ता, त्रिबिन्दुयुक्त विद्युत्तेजोवलयवेष्टित, ज्ञानियों का मुक्तिदाता, नानापुराण इतिहास का जन्मदाता, अक्षर देवता हमारी रक्षा करें।

समीक्षा -

पं. श्री रामदवे जी ने अपन भारती विलास खण्डकाव्य में इन्द्रवज्रा, उपेन्दवज्रा, शिखरिणी, वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित आदि दीर्घ छन्दों का प्रयोग अत्यन्त सफलता के साथ किया है। तथा उत्प्रेक्षा, उपमा, विभावना, श्लेष आदि अलंकारों के माध्यम से त्रिविध गुण माधुर्य, ओज, प्रसाद को भी यथास्थान उद्घाटित किया है। इससे सिh होता है कि छन्दशास्त्र व अलंकार शास्त्र पर पं. दवे जी का पूर्ण अधिकर है तथा इस

खण्डकाव्य में शब्दब्रह्म की माया मातृका रूप धारिणी भारती को ही लीला विलास को वर्णित किया गया है, जो पं. दवे जी की वैदुष्यता का परिचायक है।

(2) ललितालहरी

यह 63 श्लाकों में निबद्ध एक खण्डकाव्य है जिसमें अपनी आराध्या देवी, शैलनिवासिनी माँ ललिता के प्रति समर्पित भक्तिभाव वर्णित किया गया है, जो भक्त की माँ के प्रति सच्ची भक्ति रूपी भेंट है।

पं. श्री रामदवे जी शिखरिणी छन्द के माध्यम से अपनी आराध्या देवी एवं स्वजन्मस्थली समदड़ी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सौभाग्यशाली है यह नगरी समदड़ी, जिसके समीप निर्मल सिकतायुता लूणी नदी स्थित है। निकट में ही सिंहों का शरण देने वाली पहाड़ी खड़ी है। जिसकी कन्दरा में भगवती ललिता अपने परिवार के साथ विराजमान है।

पं. श्री रामदवे जी ने उपमा अलंकार के माध्यम से यों लिखा है -

गुहासीना मातर्भुवनतलतन्त्रं यमयसि
सातां सर्वान् विघ्नान् हरति च सुतस्ते गणपतिः।
महाकाली पर्श्वे वसति तनुपालीव सततम्,
जड़ानां वागीशा हरति जड़ताञ्चात्मकलया।।[256]

हे माँ ललिते! तुम इस कन्दरा में बैठी-बैठी ही सारे संसार का नियन्त्रण कर रही हो। तुम्हारे पुत्र गणपति भी सज्जनों के समस्त विघ्न दूर करते हैं। तुम्हारे पास ही भगवती महाकाली अंगरक्षक की तरह विराजमान है तथा दूसरी ओर खड़ी सरस्वती देवो भी अपनी कृपा से भक्तों की जड़ता को दूर करती है।

पं. श्री रामदवे जी ने ललिता माँ के वात्सल्य भाव को इस प्रकार स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- हे ललिते माँ! तुम्हारा अबोध प्राणियों के प्रति भी कितना मातृतुल्य वात्सल्य भाव है। देखो, ये तुम्हारे पुत्र गणेश के प्रिय वाहन मूषक भी निर्भय होकर तुम्हारी गोद में खेलते हैं। उन्हें भी तुम्हारा पुत्रवत् वात्सल्य प्राप्त है। ये कभी तुम्हारे सुन्दर कौषेय वस्त्रों को खींचते हैं तो कभी आगे रखे नेवैद्य को निड़रता स खाने लगते हैं। फिर भी तुम्हें इन पर कभी क्रोध नहीं आता। वस्तुतः तुम्हारी गृहिणी लीला भी बड़ी आश्चर्यजनक है।

कुमार्यो नृत्यन्त्यो ललितवसना मण्डलगताः
सतालं गायन्त्यः सुभगवनिताश्चापि ललिते!।
लसन्त्यः श्रृंगारैः कनकवलयक्वाणनपराः
त्वदीयं नानात्वं विशदमिव कुर्वन्ति महसि।।[257]

साथ ही सुन्दर वस्त्र धारिणी मण्डल में नृत्य करती हुई कुमारिकाएँ एवं ताल-स्वर में गाती, श्रृंगार से सजी स्वर्णकंकण सजे हाथों से ताली बजाती हुई सुहागिनें ऐसी लग रही थी जैसे इस महोत्सव में आपने ही अपने अनेक रूप प्रकट किये हों।

पं. श्री रामदवे जी ने माधुर्य गुण के माध्यम से इस प्रकार लिखा है-

स्तुतीनां माधुर्यं पिककलरवाकण्ठगलितम्
स्मृतिं यात मातः! सुखयति मनो मे किल यथा।
तथेदं नो भक्त्या विधुरपदकञ्चोद्धतपदम्,
प्रतीच्या उच्छिष्टं चपलगतिकं गीतगलितम्।।[258]

हे ललिताम्बा! जब मैं उन कोकिलकण्ठी सुहागिनों के गीतों के माधुर्य को याद करता हूँ तो मेरा मन बहुत प्रसन्न होता है। जितना आनन्द उन गीतों में आता था उतना आनन्द इन नये विविध वाद्यों पर बजाये जाने वाले पाश्चात्य पद्धति के कोलाहल पूर्ण गोतों में नहीं आता, जिनके पद चञ्चल और भक्तिहीन होते हैं।

पं. श्री रामदवे जी ने करूणरस के माध्यम से यों लिखा है -

खनन्तः पाषाणान् तव सदनसौन्दर्य-निचयान्
हरन्तो वृक्षाणां श्रियमपि च निष्कोषनिरताः।
प्रदुष्टां कुर्वन्तः प्रकृतिमपि जीवोपकरणीम्
अजानन्तो मूढास्तव जननि! कारुण्यकलनाम्।।[259]

हे भगवति माँ! तुम्हारे इस दिव्यस्थान का सौन्दर्य बढ़ाने वाले पत्थरों को भी लोग खोद-खोद कर उखाड़ रहे हैं। यहाँ के वृक्षों की सुन्दरता को भी उन्हें काट-काट कर नष्ट कर रहे हैं तथा प्राणियों का उपकार करने वाली प्रकृति को दूषित कर रहे हैं। हे माँ! ये मूर्ख लोग नहीं जानते कि तुम्हें इन पर कितनी दया है।

यहाँ पर भगवति माँ के वात्सल्य भाव का पद्य दृष्टव्य है -

तथा भूयो याचे तव मधुर-वात्सल्य-सुभगाम्
कृपापूर्णां दृष्टिं सततमतिमोदामृत-झरीम्।
यथा चेतो मात! विविधविषयान्दोलितमिदम्
भवेन्मुग्धं स्निग्धे तव मृदु-कटाक्षेऽनवरतम्।।[260]

तथा पुनः यही प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझ पर अपनी वात्सल्य भरी कृपा दृष्टि डालती रहें, जो निरन्तर बहते अमृत के प्रवाह सी लगती है। जिससे हे माँ! मेरा यह विविध विषयों से आन्दोलित होने वाला मन तुम्हारे स्नेह भरे मदु कटाक्ष पर ही मुग्ध बना रहे।

यहाँ पर करूणरस तथा वात्सल्य रस का पद्य दर्शनीय है -

दयालुत्वं दृष्टवा तव च करुणाकोमलमुखे,
तथेदं वात्सल्यं विषमगतिकेऽप्यात्मजकुले।
समायातो मातस्तव शरणमानन्दसरिते!
स्वकीयं वात्सल्यं वितरसुभगं मेऽपि जननि!।।[261]

हे माँ! तुम्हारे इस करुणा कोमल मुख पर दया का भाव देखकर एवं अपने नटखट बालकों पर भी अपार वात्सल्य का अवलोकन कर तथा तुम्हें सुख सरिता जानकर मैं तेरी शरण में आया हूँ। और तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि हे माँ! मुझे भी आप अपना सुभग वात्सल्य प्रदान करें।

निम्न पद्य में भगवति माँ की लीलाओं से वात्सल्य भाव उमड़ पड़ता सा दिखाई दे रहा है -

क्वचित्काली रूष्टा क्वचिदपि तुष्टा सुवरदा,
क्वचित् स्निग्धा वत्से क्वचिदपि च मुग्धा स्मररिपौ।
क्वचिद् वामा श्यामा क्वचिदपि च मातङ्गतनया,
शिवे! नानारूपा भवसि निजलीलाविलसितैः।।[262]

कभी क्रोध में काली रूप धारण कर लेती हो तो कभी प्रसन्न होकर वरदायिनी बन जाती हो, कभी पुत्र वात्सल्य भाव उमड़ पड़ता है तो कभी अपने पतिदेव पर प्रणय मुग्धा प्रतीत होती हो तो कभी भक्तों के लिए श्यामा और मातङ्गतनया बन जाती हो। हे माँ! इस प्रकार तुम अपने विविध रूपों में अपनी कई लीलाएँ प्रकट करती रहती हो।

यहाँ पर भगवती माँ के शृंगार का पद्य दर्शनीय है -

क्वचित्पीनोत्तुङ्गस्तनभरनता चारूवसना,
लसन्ती सद्रत्नैर्हरहृदयशृङ्गारलहरी।
मनोहर्तुं भर्तुः स्मरदनहनकर्तूरतिमुखे,
दृशादग्धं कामं जनयसि दृशैव त्वमभयम्।।[263]

आश्चर्य है कि कभी-कभी तो तुम कामदेव का दहन करने वाले महादेव का मन हरण करने के लिए नाना प्रकार के शृंगारों से अपना शरीर सजाकर, जिस कामदेव को महादेव ने अपने नेत्र से जलाया था उसी को तुम अपनी दृष्टि से पुनः निर्भय होकर जीवित कर देती हो।

पं. श्री रामदवे जी ने यहाँ शिखरिणी छन्द के माध्यम से माँ ललिता के प्रति अपना समर्पित भक्तिभाव वर्णित करते हुए लिखा है कि-

न मे जातूदीयाज्जननि! फलितेच्छाऽर्चनविधौ,
न वा विद्यादर्पो भवतु न विसर्पोऽप्यवमतेः।
सपर्या-सौभाग्यं लसतु सततं स्वस्थमनसि,
त्वदङ्के देहोऽयं विलयमपि चान्ते च लाभताम्।।[264]

उपर्युक्त पद्य में कवि ने श्लेष अलंकार का प्रयोग 'विधा' शब्द में किया है। इसके दो अर्थ हैं - (i) चन्द्रमा (ii) भाग्य। पं. श्री रामदवे जी ललिता माँ से कहते हैं कि हे माँ! अन्त में मेरी यही प्रार्थना है कि आपकी अर्चना में फल की इच्छा जागृत न हो। न मन में विद्या का अभिमान हो, न कभी पूजा में अरुचि हो, मेरा मन सदा स्वस्थ रहे जिससे मुझे तुम्हारी सपर्या का सौभाग्य निरन्तर मिलता रहे। अन्त में यह नश्वर शरीर भी तुम्हारी गोद में समा जाय, यही मेरी विनय है।

समीक्षा -

पं. श्री रामदवे जी ने ललिता-लहरी खण्डकाव्य में शिखरिणी छन्द को उद्घाटित किया है। तथा उपमा, श्लेषादि अलंकारों के माध्यम से माँ ललिता के पद्यों को स्पष्ट किया है। और इस ललिता लहरी खण्डकाव्य में 'वात्सल्यता' का भाव जागृत हुआ है। तथा साथ ही साथ माँ के वात्सल्यमयो गृहस्थ संचालिका का दिव्य स्वरूप प्रकट हुआ है।

3. वियोगशतकम्

पं. श्रीरामदवे विरचित 'वियोगशतकम्' एक खण्डकाव्य है, जिसमें 111 पद्य हैं, जो मन्दाक्रान्ता छन्द में निबद्ध हैं। यह खण्डकाव्य मेघदूत के अनुरागी एवं अलका नामक आवास के निवासी मित्र आसूलाल संचेती की वियोग वेदना पर लिखा गया है।

पं. श्रीरामदवे जी ने मन्दाक्रान्ता छन्द के माध्यम से यों लिखा है -

आयान्त्येते जलदसमये यक्ष-सन्देशवाहाः,
मत्वाम्भोजा मम गृहमिदं यक्षवासालकाख्यम्।
तत्रैते नो ह्यभिहितविधां वीक्ष्य कान्तां विषण्णाम्
शृण्वन्त्येते नहि मम वचो याचमानस्य दौत्यम्।।[265]

रामगिरि आश्रम में बैठे मेघदूत वर्णित यक्ष का सन्देश लेकर जाते हुए वर्षा के ये बादल मेरे घर का नाम अलका सुनकर यहाँ आ जाते हैं परन्तु यहाँ यक्ष द्वारा वर्णित वियोग विषादयुक्त उस यक्षकान्ता को न पाकर वे यहाँ से शीघ्र ही लौट जाते हैं। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम मेरी प्रिया के लिये भी मेरा सन्देश ले जाओ, उसे ढूँढ़कर पहुँचा देना परन्तु वे बादल मेरी प्रार्थना पर ध्यान ही नही देते।

नैवं त्वद्धा सदयहृदयाः लोक-कल्याण-दक्षाः।
सन्तप्तानां व्यथितमनसां ये प्रसिद्धाः शरण्याः।
श्रुत्वाऽयान्ति श्रवणसुभगं नाम तेऽत्रालकायाः
दृष्ट्वा कान्ता-विरह-विकलां साश्रु-पातं व्रजन्ति।।[266]

मैंने विरह वदना में इन लोक-कल्याणकारी दयालु हृदय वाले मेघों के विषय में कितना बुरा भला कह दिया। वस्तुतः ये तो विरह वेदना, व्यथित मानस वाले व्यक्तियों को शरण देने वालों में गिने जाते हैं। ये तो मेरे, कर्णप्रिय ''अलका'' निवास का नाम सुनकर यहाँ आ गये, उन्हें तो कुबेर की अलका में जाना था। यहाँ आकर जब उन्होंने मुझे प्रिया वियोग में व्याकुल देखा तो ये भी आंसू बहाने लगे और यहाँ से लौटने को उद्यत हुए।

पं. श्री रामदवे जी ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से यों कहा है -

नून जाने भुवनविदिते पुष्करावर्तकानाम्
वंशे जाताः सुभगहृदया वारिदा वर्त्मविज्ञा।
जाने नाहं परमियमहो कुत्र याता प्रिया मे
स्वर्गस्याध्वा ह्यमरवसते-र्दुगमो वोऽपि मेघाः!।।[267]

अरे, प्रिय मेघ बन्धुओं! मैं ठीक प्रकार से जानता हूँ कि आप संसार के प्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक मेघों के वंश में पैदा हुए हैं। आप बड़े दयालु है और आकाश के सारे मार्ग जानते हैं, परन्तु मैं क्या कहूँ मुझे भी पता नहीं है कि मेरो प्रिया कहाँ गई है? साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि जहाँ देवता रहते हैं, उस स्वर्ग लोक का मार्ग भी बड़ा दुर्गम है। वहा पहुँचना आपके लिये भी बड़ा कठिन है।

पं. श्री रामदवे जी ने करूण रस के माध्यम से निम्न पद्य को स्पष्ट किया है -

यत्रासीना जलदसमये हर्म्यवातायनस्था,
उत्संगे में धृतकुचभरा मेघलीलां ददर्श।
कुर्वन्त्यङ्गे रतिमतियुते प्रेमपीयूषवृष्टिम्
तत्रैवाहं नयनसलिलैः शोकसृष्टिं तनोमि।।[268]

हे प्रिये! वर्षाकाल में तुम जिस महल के झरोखों में, अपने पीनपयोधरों को मेरी गोद में रखकर, उन गगनगामी पयोधरों की लीला देखा करती थी, साथ ही मेरे अंगों में रतिभाव का संचार करती हुई प्रेम पीयूष की वृष्टि किया करती थी। हाय! आज वही अकेला बैठा मैं आंसुओं को बहाता हुआ शोक प्रकट कर रहा हूँ।

कवि ने हेमन्त ऋतु का वर्णन निम्न पद्य में किया है -

हेमन्तोऽयं प्रियजनकथाकोविदः संगमार्हः
वर्षाऽवाप्तप्रचुरविभवो माद्यतीवाद्य भाति।
वर्षा लभ्या पुनरपिमुदे तस्य वर्षावसाने
नो मे भूयस्तव तु भविता संगमो मन्दभाग्ये।।[269]

देखो प्रिये! वह हेमन्त भी कितना प्यारा था इसमें प्रियजनों से बातचीत करना एवं मिलना बहुत अच्छा लगता है। आज वही हेमन्त अपनी प्रिया वर्षा से ही सारा वैभव प्राप्त कर बड़ा मतवाला बना सा दिखाई हो पड़ता है। उसे तो वर्षा के साथ पुनः एक वर्ष के बाद मिलने का सुख प्राप्त हो जायेगा। परन्तु मेरे भाग्य में तो पुनः तुम्हारा मिलना सम्भव नहीं लगता।

यहाँ पर शिशिर ऋतु का पद्य दर्शनीय है -

तारुण्याढ्ये शिशिरसमये स्वास्थ्य-कल्याणभावात्
प्रीत्या स्निग्धैर्भिषगुपकृतैर्मोदकैरिष्टमिष्टैः।
पुष्टिं नीता सदनसुषमे! या तनुः स्निग्धभावैः
सञ्जाता सा गलितविभवा मेऽद्य हा त्वद्वियोगे।।[270]

हे प्रिये! इस कड़ाके की ठण्ड वाले शिशिर काल में स्वास्थ्य लाभ के लिये तुम्हारे द्वारा, वैद्यजी के निर्देशानुसार उपयुक्त घृत और शक्कर मिला कर बनाये गये उन मोदकों की याद आती है। तुमने गृहिणी धर्म निभाते हुए जिन मोदकों से इस शरीर को पुष्ट बनाया था वही शरीर आज तुम्हारे विरह में दुर्बल हो गया है।

पं. श्री रामदवे जी ने शृंगार रस के माध्यम से वसन्त ऋतु का वर्णन किया है -

चैत्रे चित्रा ललितवसना बद्धशृंगारहाराः
पूजाभारं मृदुकरतले रञ्जिते रङ्गभूमौ।
धृत्वा यान्त्यः प्रियजनमुदे मन्दिरं शीतलायाः
चित्ते सुप्तां स्मृति-रसकथां मन्थरा दीपयन्ति।।[271]

हे प्रिये! तुम्हारी स्मृति शृंखला में वसन्त ऋतु में आने वाले उस चैत्र मास को याद करता हूँ तो, उन सुन्दर वस्त्रों से सजी हुई, नाना विध शृंगार हार पहिने, होली के रंग से रंगी हुई, अपने हाथ में पूजा की सामग्री लकर अपने प्रियजनों की मंगल कामना के लिये शीतला माता के मन्दिर की ओर जाती हुई, युवतियाँ, तुम्हारी मन में सोई हुई अनेक रसभरी कथाओं की स्मृति को उत्तेजित करती हैं।

पं. श्रीरामदवे जी ने उपमा अलंकार तथा शृंगार रस के माध्यम से यों लिखा है -

पश्यैषां ते मृदुकरजुषां का दशा कङ्कणानाम्
सञ्जाता हा! विगलितरुचां धूसराणां रजोभिः।
रागा रम्याः अलकसुषमा-स्नेह-कूपी च खिन्ना,
कारां नीता इव रसविदस्तेऽद्य शृंङ्गारहाराः।।[272]

देखो! उन बेचारे कंकणों को, जो तुम्हारे कोमल हाथों को सजाया करते थ, वे आज मिट्टी लगने के कारण शोभाहीन हो गये हैं। तुम्हारे उस शृंगार कक्ष में रखे हुए ये सुन्दर केशों की शोभा बढ़ाने वाली सुगन्धित तेल की शीशियाँ तथा तुम्हारें शृंगार की शोभा को बढ़ाने वाले गले के हार, जो जेल में पडे हुए रसज्ञों की तरह व्याकुल दिखाई पड़ते हैं। शोकाकुल एवं व्यथित होते हुए अपने जीवन की प्रिया के बिना नैराश्य भावना को प्रकट करते हुए कहा है -

तारुण्याढ्ये सुमुखिवदने कुण्ठिता कुन्दचर्चा
रम्भा-रम्ये युवतिजघने निम्बभावो नितम्बे।
चेतो-हृद्ये ललित-गमने मन्दभाग्याः मरालाः,
जाता दृष्टिस्तव तु विरहे वीतलावण्य-भावा।।[273]

अर्थात् हे प्रिय! मैं क्या कहूँ? तुम्हारे विरह में मेरी दृष्टि में रहने वाला लावण्य भाव ही अस्त हो गया है। अब तो युवती सुन्दरी के मुख को देखकर कुन्द की चर्चा भी अच्छी नहीं लगती, कदली स्तम्भ जैसी जंघाओं पर शोभायमान पीन नितम्ब नीम के वृक्ष जैसे लगते हैं। अब रमणियों की सुन्दर चाल में हंसों की गति का भाव भी नहीं उठता। मदन नाम वाली प्रिया के परलोक चले जाने पर 'अलका' के स्वामी आँसूलाल संचेती के द्वारा जो विरहोच्छ्वास प्रकट हुए उन्हें अपने हृदय में अनुभव करके श्री रामदवे जी के द्वारा यह अभिनव वाङ्मय शरीर उक्त प्रिया का विरचित हुआ जो वियोगशतकम् नामक खण्डकाव्य के रूप में है। इसकी विशेषता यह भी है कि यह अपनी उपस्थिति से विरह के दु:ख को हर लेता है। मानो वियुक्त को प्रिया का शरीर साहित्य रूप में ही सही, पुन: मिल गया हो। इस प्रकार विरह का अन्त भी हो गया तथा दिवंगत प्रिया की स्मृति रक्षा भी हो गई।

अलकापतिना मदने दयिते परलोकगतेकृतमुच्छ्वसितम्।
अनुभूय हृदा रचितं सुहृदा नववाङ्मयकायमशर्महरम्।।[274]

कवि द्वारा चिर विलाप करने वाले मित्र की विधुरता से उत्पन्न शोक का मूर्त रूप यह 'वियोगशतकम्' रचा गया जो अपने महज लालित्य से भावुक जनों को प्रसन्न करता रहेगा। कवि के सहृदय मित्र श्री गोपीलाल दवे एवं श्री कृष्ण भक्त प्रिय मित्र श्री जगन्नाथ थानवी जी ने श्लोकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है।

समीक्षा -

पं. श्री रामदवे जी ने उत्प्रेक्षा, उपमा अलंकारों के माध्यम से श्रृंगार रस एवं करूण रस को यथा स्थान उद्घाटित करते हुए विरहिणी की वियोग स्थिति को स्पष्ट किया है। और लालित्य भावों से लोगों के चित्त को प्रसन्न किया है। इसमें कालिदास के मेघदूत की स्पष्ट आभा दिखाई देती है।

4. कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य -

यह 113 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है। कवि ने राजस्थान के जालौर जिले में सांचोर नगर के समीप पथमेड़ा क्षेत्र में स्थित गोविन्द गोवर्धन शाला में महाराज श्री दत्तशरणानन्द जी

के कठोर प्रयास से स्थापित गौशाला को व्यवस्था से प्रभावित होकर इस खण्डकाव्य की रचना की है।

पृथ्वी पर स्थित पथमेड़ा स्थान की महत्ता का बखान करते हुए कवि ने लिखा है कि- जिस भूमि पर किसी समय वेदोक्त श्रौत यज्ञ यागादिक हुआ करते थे, जहाँ भक्तिज्ञान और कर्म की त्रिवेणी की अमतधारा बहा करती थी जिसे भगवान श्रीकृष्ण के पवित्र चरण रज का सौभाग्य प्राप्त था तथा जिस धरती पर गो धन का भरमार था। ऐसी थी यह पथमेड़ा की पुण्य धरा।

यहाँ पर शिखरिणी छन्द का पद्य दृष्टव्य है -

शुचावानन्दारण्ये हरिवसतिवृन्दावनसमे
वसन्त्यो नन्दिन्यः परममुदमापुः प्रियकरे।
तृणानां प्राचुर्यं विपुलसलिलं चापि मधुरम्
समासाद्यानन्दप्रदधरणिभागं मुदमियुः।।[275]

इस पवित्र वृन्दावन के समान सुन्दर आनन्दवन में उन गायों को भी बहुत प्रसन्नता हो रही थी। वहाँ घास एवं मीठा जल प्रचुर मात्रा में था। आनन्द देने वाले इस भू भाग पर सभी गाएं बहुत आनन्द अनुभव कर रही थी।

कामधेनु के गौरव का गुणगान करते हुए पं. श्री रामदवे जी ने उपजाति छन्द के माध्यम से यों लिखा है -

यस्याः कृपाऽसादितब्रह्मशक्तिः, तपोनिधिर्वेदपुराणवेत्ता
श्रीरामचन्द्रस्य हितोपदेष्टा ख्यातो जगत्यां हि गुरूर्वसिष्ठः।।[276]

अर्थात् जिसकी कृपा से वसिष्ठ को ब्रह्मशक्ति प्राप्त हुई, वेसंसार में तपोनिधि पुराणवेत्ता कहलाते थे तथा संसार में भगवान रामचन्द्र के हितोपदेष्टा गुरु रूप में प्रसिद्ध हुए।

जातोऽनपत्यो नृपतिर्दिलीपः शापेन पूर्व सुरकामधेनोः।
तदात्मजायाः समुपासनेन सुतं स लेभे रघुनामधेयम्।।[277]

अर्थात् इस कामधेनु के शाप से राजा दिलीप सन्तान हीन हो गये थे। जब उन्होंने मुनि वसिष्ठ के कथनानुसार कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा की तब उन्हें रघु नामक प्रतापी पुत्र की प्राप्ति हुई।

धर्मस्य मूलं गणिता हि गावः ता एव मूलं निजसंस्कृतेश्च।
सर्वेऽपि देवा वपुषि प्रतिष्ठाः इति श्रुतौ नो भणितं हि तस्याः।।[278]

गौओं को हमारे सनातन धर्म एवं संस्कृति का आधार माना गया है। सारे देवता इसके शरीर में विराजमान है। ऐसा वेदों में भी कहा गया है।

पं. दवे जी ने द्रुतविलम्बित छन्द के माध्यम से कामदुधा सुरनन्दिनी के बारे में यों लिखा है -

दधिघृतैर्गृहमंगलसाधिनी निजपुरीषकणैः शुचिताकारी।
हरित मूत्रमलैरपि यारूजो वहति सूत्रमियं निखिलश्रियाम्।।[279]

यह गोमाता दही और घी से घर को मंगलमय बनाती है, अपने गोबर और गौमूत्र से घर को पवित्र करती है। इनके द्वारा अनेक रोगों का अपहरण करती हुई वस्तुतः यह सम्पूर्ण सम्पदाओं का सूत्र मानी जाती है।

प्रकुरूते पयसा परिपोषणम् सुरगणान् हविषा दिवि तर्पितान्।
श्रुतिसुखैर्निजतर्णकरम्भणैः वितरतीह मुदो जनमानसे।।[280]

यह कामधेनु अपने दूध से लोगों का पोषण करती है। स्वर्ग के देवताओं को हवि से तृप्त करती है। अपने रंभाते बछड़ों के सुहावने खरों से जन मानस को आनन्द प्रदान करती है।

पं. श्री रामदवे जी ने श्लेषालंकार व द्रुतविलम्बित छन्द के माध्यम से यों लिखा है -

चरति या तृणमेव हि केवलम्, पिबति तोयमपीहयमुपागतम्।
तदपि सा पयसोऽमृतवर्षणैः, अवति लोकमियं निज पिण्डजैः।।[281]

यह तो केवल घास खाकर एवं प्राप्त जल को पीकर भी अपने दूध की अमृत वृष्टि से एवं अपने शरीर से उत्पन्न मल-मूत्र से संसार की रक्षा करती है।

पं. श्री रामदवे जी गौशाला का वर्णन करते हुए कहा है कि- इस सुन्दर आनन्दवन गौशाला को देखन से ऐसा लगता है, मानों यहाँ कामधेनु कुल की सेवा करने के लिये देवी देवता तथा ऋषि-मुनि मनुष्य का रूप धारण कर विचरण कर रहे हैं, जैसा कि निम्न पद्य में दर्शाया गया है-

त्रिकूटभव्या जगति प्रसिद्धा, सा वैष्णवी भक्तजनोपकर्त्री।
समागता गोकुलधामसिद्धयै, पराम्बिका चाष्टभुजा भवानी।।[282]

त्रिकुट पर्वत की शोभा बढ़ाने वाली जगप्रसिद्ध भगवती वैष्णवी (वैष्णों) देवी भी इस क्षेत्र में भक्तों के हित के लिये अष्टभुजाधारिणी बनकर इस गोकुल धाम में पधारी हुई हैं।

कवि ने 'सा नन्दिनी क्रन्दति' तथा 'क्रन्दतीयं कामधेनुः' नामक अध्यायों में जो कि गोवध वदना कामधेनु का विलाप व पुकार से सम्बन्धित है, जिनका श्लाक 71 से 97 तक में निरूपण किया है।

विश्वोपकर्त्ती जनपोषयित्री, स्वाहावषट्कारहविर्धिधात्री।
मूलंच लक्ष्म्याः दुरितापहन्त्री सा नन्दिनी क्रन्दति साम्प्रतं हा!।।[283]

संसार का उपकार करने वाली, जनपोषिनी, देवयज्ञों के निमित्त हवि का निर्माण करने वाली लक्ष्मी का आहार समस्त पाप प्रणाशिनी धेनु नन्दिनी दुर्भाग्य से आज इस देश में अपने प्राणों की रक्षा के लिए चिल्ला रही है।

भगवान दत्तात्रेय द्वारा भारतवासियों के लिए गोवध निषध की घोषणा-

अस्मिन् गोकुलवृद्धिरक्षणरते पुण्ये विशालाश्रमे
धेनूनां परिरक्षणाय विहिते नाना-सुरैः सेविते।
उद्घोषं कुरूते समुद्धृतभुजोऽत्रात्रेयदत्तः प्रभुः
भो भो भारतवासिनः प्रियजनाः धेनोर्वधोर्वार्यताम्।।[284]

इस गोवंश की रक्षा एवं वृद्धि की रक्षा के पुण्य कार्य में लगे हुए सुरवृन्द सेवित इस विशाल आश्रम में भगवान् दत्तात्रेय अपनी भुजा ऊपर उठाकर घोषणा कर रहे हैं, हे प्रिय भारतवासियों अब गोवध बन्द करो।

इस प्रकार पं. दवे जी ने अपने काव्य में गोहत्यारों पर वाणीरूपी वज्रपात कर, पृथ्वी माता से आग्रह करते हुए कहा है कि- हे पूज्य पृथ्वीमाता! तू इन गो हत्यारों के गोवध केन्द्र पर क्यों नहीं भूकम्प ले आती। जो इस देश में नृंशस गावध का पाप कर रहे है। यूं तो तुमने बेचारे निर्दोष लोगों को गुजरात के विकट भूकम्प में मार दिया परन्तु नन्दिनी वंश घातक गो हत्यारे आज भी निर्भय होकर घूम रहे हैं।

यहाँ पर शार्दूलविक्रीडित छन्द का पद्य दृष्टव्य है -

स्वर्गस्थाः सुरभिप्रियाः कथमहो भक्ताः गवां भारते,
दृष्टं तत्कुलसेवनोदितफलं ह्यन्धैर्हि दानोपमैः।
चाक्षुष्यं निहितं तदीय पयसि प्राप्तं पुरा ज्ञायते
जानन्तोऽपि कथं न संकटगते धेनोः कुले बुध्यते।।[285]

स्वर्ग में बैठे गोभक्त क्या यह नहीं जानते कि इस गोवंश की सेवा से दाना जैसे अन्ध भक्तों ने भी उनके दुग्ध पान मात्र से दृष्टि प्राप्त कर ली थी। यह जानते हुए भी इस गोवंश पर आए संकट पर भी भारतवासी क्यों नहीं जाग रहे हैं।

पं. श्री रामदवे जी ने वसन्ततिलका छन्द के माध्यम से यों लिखा है -

हे पाक शासन सुरेश्वर देवदेव, गोदेहसंस्थितसुराः पतिताः विपत्तो।
वज्रस्य ते कथमहो न हि वीर्यमुग्रम् , सम्प्रत्यहो दिशसि गोवधवारणाय।।[286]

अर्थात् हे सुरेश्वर इन्द्र! गोवध के कारण, गो के पिण्ड के रहने वाले सभी देवता विपत्ति ग्रस्त हैं। फिर भी आप इन देवताओं की रक्षा हेतु तथा गोवध को रोकने के लिये अपने वज्र का बल प्रदर्शन क्यों नहीं करते? राष्ट्रभक्तां की ओर से पं. श्री रामदवे जी ने शार्दूलविक्रीडित छन्द के माध्यम से यों लिखा है -

हे गंगाधर राष्ट्र भालतिलक ह्यस्तंगते हा त्वयि
जाता पुण्य धरेयमार्य जननी दुर्देवतः खण्डिता।
स्वातन्त्र्यऽपि च राष्ट्रमानकलितैः नेयं धरा मण्डिता
गावो भारतवैभवोदयकराः क्रन्दन्त्यहो पीडिताः।।[287]

हे राष्ट्रभक्त बालगंगाधर तिलक! तुम्हारे स्वर्ग सिधारने पर यह पुण्य आर्य भूमि दुर्दव से खण्डित हो गई। राष्ट्र के स्वतन्त्र होने पर राष्ट्र के मानदण्डों का रक्षा द्वारा सम्मान नहीं किया गया। आज भी भारत के वैभव को बढ़ाने वाली गोमाताएं अपने वध के कारण से चिल्ला रही है।

समीक्षा -

कविवर पं. श्रीरामदवे ने 'कामधेनुशतकम्' काव्य के 114 श्लोकों को संस्कृत के शिखरिणी, उपजाति, द्रुतविलम्बित, वियोगिनी, शार्दूलविक्रीडित, वसन्त-तिलका आदि छन्दों, विविध अलंकारां एवं रसों में निबद्ध कर संस्कृत साहित्य के कलापक्षीय मानदण्डों द्वारा पूरित भाव से एक ऐसा काव्यपाक तैयार किया है, जो युगों, शताब्दियों तथा पीढ़ियों तक भारतीय जनमानस को नवचेतना प्रदान करता रहेगा।

5. अपाङ्गलीला खण्डकाव्य-

इसमें दो अध्याय हैं। इस खण्डकाव्य में सृष्टिलीला युगलीला, रासलीला एवं कृपाङ्गलीला का वर्णन किया गया है।

यहाँ पर सृष्टि-लीला का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

सृष्टिर्विचित्रा सचराचरात्मिका, दृष्टिर्बुधानां सदसद्विवेका।
पुष्टिः प्रकृत्याः परितो लसन्ती, ह्यपाङ्गलीला ललिताम्बिकायाः।।[288]

अर्थात् यह सृष्टि सचर और अचर भिन्न रूपों सुशोभित हो रही है। बुधों अर्थात् विद्वानों की दृष्टि में सत्य और मिथ्या ये दो भेद कहे गए है। सभी जगह हे ललिता माँ! प्रकृति मं तेरी ही सृष्टि की लीला रमणीय रूप में प्रकाशित हो रही है।

पं. श्री रामदवे जी ने उपेन्द्रवज्रा छन्द के माध्यम से यों लिखा है -

प्रचण्डरश्मिः सविताम्बरस्थो, विश्वोपकारं कुरुते व्रतस्थः।
उदेति कालेऽस्तमुपैति चायं, तवैव सङ्केत-निदेशनिष्ठः।।[289]

आकाश में स्थित सूर्य की तेज किरणों से सम्पूर्ण विश्व की परिक्रमा करता हुआ उसका कल्याण तथा भलाई करता है। और आपके निर्देशानुसार यह सूर्य लगातार घूमता हुआ सही समय पर उदय होता है और सही समय पर अस्त होता है। हे ललिता माँ! हम सभी सूर्य देवता को प्रणाम करते हैं।

यहाँ पर अपाङ्गलीला का पद्य दृष्टव्य है -

ख्यातोऽस्ति लोके ऋतुराज एषः, सखा स्मरस्य प्रथितो वसन्तः।
प्रवर्तकोऽयं प्रकृतेर्मतो मुदा - मपाङ्गलीला कलितैस्त्वदीयैः।।[290]

अर्थात् यह वसन्त ऋतुओंका राजा ''ऋतुराज'' प्रसिद्ध ह जिसे कामदेव के साथ घूमने का पद प्राप्त है। यही सृष्टि की लीला को परिवर्तित करता रहता है। हे ललिता माँ! तेरी ही अपाङ्गलीला यहाँ व्याप्त है।

यहाँ माँ ललिता के माहात्म्य का निम्न पद्य श्लाघनीय है-

शिष्येषु श्रद्धा गुरुता गुरूणां प्रज्ञा बुधानां प्रतिभा कवीनाम्।
कुशाग्रबुद्धिः श्रुतिशास्त्रबोधे कृपाकटोक्षैस्तव लम्भनीया।।[291]

अर्थात् हे ललिता माँ! शिष्य गणों में तुम्ही श्रद्धा, गुरूजनों में गुरू, विद्वानों में तुम ही प्रज्ञा, कवियों में प्रतिभा, वेद और शास्त्रों का बोध कराने वाली अच्छी बुद्धि तथा रुचि तुम हो। हे माँ जिस पर आपकी कृपा दृष्टि हो जाय, वह गरिमा को प्राप्त करता है।

जाते च सृष्टेर्विकृते स्वरूपे, शिवोऽपि धृत्वा निजरुद्ररूपम्।
तवानुशिष्टेन पथा विधत्ते, संहारकार्यं प्रलयङ्करोऽयम्।।[292]

अर्थात् यह सृष्टि जब-जब विकारों से प्रदूषित होती है, तब ही शिवजी भी रूद्र देवता के रूप को धारण कर लेते हैं। तब आज्ञा और आदेश मिलता है तो शिव भी इस सृष्टि को प्रलय से बचाते हैं।

पं. दवे जी कहते हैं कि सतयुग में जन सत्यपरायण, शास्त्रविहित कृत्यों के साधक, कर्तव्य और भावनिमग्न अपनी बुद्धि में रत, कामभावों को जो बाधा समझता है, जिन व्यक्तियों को राजा का डर नहीं सताता है, उनका जीवन एक लगातार धर्म था। सभी अपने कर्म पालन में रुचि स्वाभाविक थी।

यहाँ पर पं. श्रीरामदव जी ने 'द्वापरयुग व' 'त्रेतायुग' के विषय में यों लिखा है -

त्रेतायामपि धर्मनीतिनिरताः पादोनकृत्याः परं
प्राप्ते द्वापरनामके ननु युगे जाता मनाङ्न्यूनता।
शास्त्राज्ञापरिपालनञ्च विदधुर्दण्डस्य भीत्यैव ते
भूपालाः मुनिशासने च निहितञ्चक्रुः प्रजापालनम्।।[293]

अर्थात् जैसे द्वापर युग का संसार में आगमन हुआ तो धर्म और कम का भाव कमजोर हो गया अर्थात् घट गया। त्रेतायुग में धर्म, नीतिव्रत, के भावों में कमी आयी। मानव, दण्ड, डर से शास्त्रों की आज्ञा का पालन करते थे। मुनियों के अनुशासन में राजा प्रजा की पालना करते थे।

यहाँ पर पं. श्री रामदवे जी ने 'कलियुग' के प्रभाव के विषय में यों कहा है -

लीला ते ललिते! त्वपाङ्गकलिता चित्रास्ति काले कलेः
कामर्थोदयकारिणो हि विविधाः कल्पास्त्वया कल्पिताः।
दृष्ट्वा तानमरा अपीष्टसुलभा भोगे रताः स्वर्गिणः
जाता विस्मितबुद्धयोऽवनितले वासोत्सुकाः साम्प्रतम्।।[294]

अर्थात् हे ललिता माँ! कलियुग की लीला बड़ी विचित्र है। कैसी कलियुग की कला है? कलियुग ने काम और धन के साधन तने अनेक प्रकार के चला दिये। स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं ने सुलभ भोगरत सम्पूर्ण वैभव को देख लिया। और कहा गर्वयुक्त होकर इस धरती पर मुझे रहना प्यारा लगता है।

यहाँ पर पं. श्रीरामदवे जी ने 'रासलीला' के विषय में यो लिखा है -

राधा त्वमेव भवबाधापहारिपदपद्मा-हि गोपकुलजा
भक्तेष्टदान-धृतगोपालवेष-मिष-लीलाविलासललिता।
ख्याता परा त्वमसि जाताऽपरापि खलु विश्वोपकारनिरता
मन्ये तवैव भुवि नाना स्वरूप-नवलीलाकटाक्षजनिता।।[295]

हे ललिता माँ! तुम ही चरण कमलों की बाधा का हरण करने वाली हो, भक्त गोपी वेष में तुम ही राधा हो। परा और अपरा विविध रूपों में लीला कटाक्ष की मनोहारी तथा संसारी का उपकार करने वाली हो।

पं. श्री रामदवे जी ने 'कृपापाङ्गलीला' के सन्दर्भ में यों कहा है -

करोमि मातः स्मरणं त्वदीयं यथोपदिष्टं गुरुभिः स्वकीयैः।
परं मनो मे निरतं प्रपञ्चे निवारयाम्बाशु कृपाकटाक्षैः।।[296]

हे माँ ललिता! मैं तुम्हारा गुरूओं से आज ही स्मरण करता हूँ। मेरे मन में माया को आविष्ट कर उसका निवारण करें। तथा माँ मुझ पर शुभ कृपा दृष्टि बनाये रख। यही मेरी आपसे विनय है।

लब्धो गुरूणां कृपयैव बोधो निलिम्पवाचो नितरां मयाल्पः।
तेनैव कुर्वन् गुणकीर्तनं ते भजेऽहमानन्दभमन्दमम्ब!।।[297]

अर्थात् हे ललिता माँ! मैं तेरा गुण कीर्तन करता रहूँ, जिस अल्पज्ञान से मुझे गुरू की कृपा से सुर वाणी का ज्ञान प्राप्त हो गया। और तुम सभी दानी व्यक्तियों का गुणगान व कीर्तन करता रहूँ।

समीक्षा -

पं. श्री रामदवे जी ने सृष्टिलीला, युगलीला, रासलीला, अपाङ्गलीला, कृपापाङ्गलीला का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। यह अपाङ्गलीला खण्डकाव्य पं. दवे का युग प्रवर्तक बोधक काव्य

है। यह 2 अध्यायों में विभाजित है। कवि ने उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम से अपाङ्गलीला खण्डकाव्य के पद्यों को यथास्थान उद्घाटित करने का श्रम किया है। तथा विविध तोटक छन्दों का प्रयोग भी अपाङ्गलीला खण्डकाव्य के द्वितीय अध्याय में दृष्टिगोचर होता है।

6. कारूण्यकादम्बिनी खण्डकाव्य-

यह 118 पद्यों में निबद्ध एक श्रेष्ठ खण्डकाव्य है। जिसमें पण्डित श्री रामदवे जी के द्वारा अपनी श्रृद्धेया करूणामयी मूर्ति माँ मथुरा के प्रति सच्ची कृतज्ञता ज्ञापित की गई है। जिनकी सद्प्रेरणा से ही इन्हें समय की विकट परिस्थितियों में अध्ययन एवं स्वावलम्बी बनने का मार्ग मिला। माँ के उसी करुणामय संघर्ष से इस कारुण्यकादम्बिनी का बीज उद्भुत हुआ। निम्न श्लोक पं. श्रीरामदवे जी ने माँ क कारूण्यस्वरूप को दर्शाते हुए लिखा है -

क्रोड़ा-रोहण-लालनोदित-मुदां कारुण्यवार्धिश्रियम्
संस्कारोदित-भारतीप्रतिहतध्वान्तां शिवां शारदाम्।
भक्ष्यैः पुष्टिकरैर्मुदा वितरितैः पूज्यान्नपूर्णापमाम्
वृद्धोऽपि स्मृतिमन्दिरे कृतपदां नैवापनेतुं क्षमः।।[298]

अर्थात् गोद में उठाकर प्यार कर प्रसन्न होती, करूणा सागर की लक्ष्मी सी, संस्कारयुक्त वाणी से अज्ञान के अन्धकर को हटाती शारदा सी, पौष्टिक भोजन को प्रेमपूर्वक परोसने वाली अन्नापूर्णा सी, मेरे स्मृति मन्दिर में विराजमान मां को मैं वृद्धावस्था में भी नहीं भूल सकता।

पं. श्री रामदवे जी ने माधुर्यगुण के माध्यम से माँ के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि उसने अपने मधुर कण्ठ के गीतों से समाज का उपकार किया। अपना वात्सल्य भाव शिशुओं में भी बांटा, शुभाशीर्वाद से सौभाग्यवतियों को प्रसन्न किया, अपनी दुर्बल देह को जनहित में लगाया, ऐसी देवतुल्या मेरी मां ईश्वर का ध्यान करती हुई चाहे स्वर्ग चली गई परन्तु वह देवता स्मृतिरूप में आज भी मेरे ह्रदय में विराजमान है।

पं. श्रीरामदवे जी ने वात्सल्य रस के माध्यम से यों लिखा है -

वात्सल्यामृतवर्षिणी शिशुकुले क्रीडा-विनोद-प्रिये,
सौजन्याम्बरचन्द्रिका हितं-करे लोकोपकारात्मके।
भक्त्या वन्दन-कारिणी गुरूजने पूज्यांघ्रिपद्मे तथा
नारीणां सुनिदर्शनं हि ववृते कारुण्य-कादम्बिनी।।[299]

खेल और विनोदप्रिय शिशुओं के लिये वात्सल्य सुधा बरसाती, उपकारी सज्जनों के आगे सौजन्य प्रकट करती, पूज्यवृद्धजनों के आगे आदरपूर्वक सिर झुकाती, वह करुणामयी नारियों के लिये एक आदर्श महिला थी।

पं. श्री रामदवे जी उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम से यों लिखा है -

वार्धक्ये स्मृतिभंगदोष-विकलो लोकोऽस्मि मन्दो मतः
काव्याराधनतत्परस्य तु परं भावाः न जाड्यं गताः।
मन्ये संविद्देवतां हृदिगतां सम्प्रार्थयन्ती दिवः
अम्बा मे ह्यधुनापि संस्मृतिगता जाने हितं चेष्टते।।[300]

अर्थात् आज मैं वृद्धावस्था में स्मृति भंग हो जाने के कारण चाहे मन्दमति माना जाऊं परन्तु काव्यरचना में मेरे भाव जड़ नहीं हो पाते। मैं समझता हूँ स्वर्ग में बैठी मेरी मां मेरे हृदय में सेवित रूप में मेरी स्मृति को प्रेरित करती रहती है।

पं. श्री रामदवे जी ने अपने काव्य में माँ की महिमा एवं त्याग का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। यथा -

शीते कन्धावृतकृशतनुः कम्बलैश्च्छादयन्ती,
ग्रीष्मेस्विन्ना व्यजनधुनितैर्नो मुदा वीजयन्ती।
शुष्कै भोज्यैरुदरभरिणी चात्मनो नः कवोष्णैः
नो जाने सा कतिकति रुजोऽस्मत्कृते हा प्रसेहे।।[301]

अर्थात् जाड़े के दिनों में आप फटी गुदड़ी ओढ़ती और हमें कम्बलों से ढकती, गर्मी में स्वयं पसीने में तर होकर भी हमें पंखे से हवाकर सुलाती, स्वयं रूखी सूखी खाकर पेट भर लेती पर हमें गर्म खिलाती, न जाने उसने हमारे लिए कितने संकट झेले होंगे। माँ के दैनिक कार्यों का मार्मिक चित्रण का अनूठा रूप इस श्लोक में दिखाई देता है-

तस्याः पाणिविलेपनोदितविभाः जानन्ति तद्भित्तयः,
सा वा प्रांगण पालिता च सुरभिर्वत्सेन साकं जलैः।
दूरस्थात् सलिलाशयातदुपह्तै यस्यास्तृषा शामिता,
ग्राम्याः मुग्ध हृदश्च भक्तिसरसैः गीतैश्च नीता मुदम्।।[302]

अर्थात् उनकी सेवा को गांव के घर की दीवारें ही जानती है जिन्हें उसने अपने हाथों से लीपकर उजला किया था अथवा आँगन में बँधन वाली गाय ही जानती थी जिसके लिए दूर तालाब से पानी लाकर उसकी प्यास बुझाती अथवा गाँव की वे सीधी सादी महिलाएं जानती हैं

जो उसके मुख से भक्तिपूर्ण मधुर भजन सुना करती थी। कवि ने अपने काव्य में वर्तमान समय में माँ की दयनीय अवस्था का भी वर्णन किया है। जब माँ युवा पुत्रों के होते हुए भी वृद्धाश्रमों में जाती है।

धिक्तान् पुत्र सुतात्मजादिसुभगे संज्ञापदे संस्थिताान्
ये निन्द्यैः कलितैर्निजैः पदमिदं कुर्वन्त्यहो पंकिलम्।
या धृत्वा नवमासमात्मजठरे यं वै स्थिता संकटे,
वार्धक्ये समुपागते हि सहसा तेनैव सोपेक्ष्यते।।[303]

धिक्कार है उन लोगों को जो पुत्र, सुत, आत्मज आदि सुन्दर संज्ञाओं को धारण करते हुए भी अपने उन नामों को अपने दुष्ट चरित्रों से कलंकित कर रहे हैं। जिस मां ने नौ मास तक उदर में पाला और संकट भोगे तथा प्रसव पीड़ा सही, उसे वे याद भी नहीं करते।

एक अन्य पद्य यह भी दृष्टव्य है-

तस्याः कासरवोऽपि चाद्य शयने बाधा-करो जायते
रोगग्रस्ततनोश्च भेषजमहो वित्तव्ययो गण्यते।
काले भोजनयोजनऽपि वनिता स्वातन्त्र्यमाबाधते
यातायां च दिवं न तेन दिवसे श्राद्धोऽप्यहो स्मर्यते।।[304]

धिक्कार है उन पुत्रों को, जिन्हें मां की वृद्धावस्था में होन वाली खांसी की आवाज भी निद्राबाधक लग रही है, रूग्णावस्था में दवाई का खर्च वित्त का अपव्यय लगता है। समय पर भोजन देना अपनी स्त्री की स्वतन्त्रता का बाधक माना जाता है तथ जिसके मरने पर वे श्राद्ध तक नहीं करते।

समीक्षा -

पं. श्री रामदवे जी ने कारूण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य के माध्यम से माँ के करुणा ऋण से कोई भी कभी भी उऋण नहीं हो सकता यही समझाने का प्रयास किया है। इस माध्यम से कवि आशान्वित है कि काव्य को पढ़कर लोग माँ शब्द की गरिमा का बोध करेंगे और उसके आँचल की छाया का शीतल स्पर्श पाकर आह्लादित होंगे।

7. परिखायुद्धम् खण्डकाव्य-

यह कुल 126 पद्यों में निबद्ध एक श्रेष्ठ खण्डकाव्य है। इस खण्डकाव्य में ईराक युद्ध एवं उससे उत्पन्न भयावह दशा का वर्णन किया है।

जब भगवान विष्णु ने देखा कि कलियुग का प्रभाव चारों ओर खूब फैला गया है, तो वे उस पर नियन्त्रण रखने के लिए देवताओं को नियुक्त कर स्वयं समुद्र में शेषशय्या पर सो गये। पं. श्री रामदवे जी के द्वारा रचित अनुष्टुप् छन्द का पद्य यहाँ दर्शनीय है -

देवानां सहयोगेन कलौ भौतिक वैभवम्।
ववृधे विविधाकारं लोकविस्मयकारकम्।।[305]

कलियुग में देवताओं के सहयोग से भौतिक वैभव भी नाना प्रकार से बढ़ने लगा, जो लोगों के लिये बड़ा विस्मय कारक था।

शिलातैलाप्तसम्पत्तिः प्राचुर्योन्मदमानसः।
ईराकश्चकमे कर्तुं कुवैतं स्ववशे बलात्।।[306]

पैट्रोल के माध्यम से अधिक धन मिलने पर वे लोग उन्मत्त हो गये। ईराक ने भी अपने समीपवर्ती छोटे कुवैत देश को अपने अधीन करना चाहा।

दुष्ट्वेदमेरिकाराष्ट्रमीराकस्य दुराग्रहम्।
तद्वीर्यनिग्रहार्थं सः पावकास्त्राणि प्रैरयत्।।[307]

ईराक के इस दुराग्रह को देखकर अमेरिका ने उसकी शक्ति का निग्रह करने के लिये अग्न्यस्त्रों को परित किया। ईश्वर अपनी माया से संसार का क्रमशः सृजन, पालन और विनाश भी करता है। विनाश के भी निमित्त होते है पूर्व में दुर्योधन, दुःशासनादि दुर्भद शासकों के व्यवहार से विनाशकारी महाभारत हुआ था। भगवान विष्णु के भी देखते-देखते अनेक वंश नष्ट हो गये। इसके बाद शासन पर बैठे हुए क्षत्रियों के धर्महीन होने पर यवनों का प्रवेश हुआ। इन्द्रप्रस्थ क्षत्रियों के हाथों से चला गया, मुगलों का शासन चल पड़ा। दूर से आये यवन राज सिंहासन पर बैठे गये, राजा पराजित हो गये। युद्ध के कारण यह धरा रक्त रंजित हो गई। राणा प्रताप, शिवाजी आदि धर्मात्मा राष्ट्रभक्त वीरों ने यवन शासन का विरोध किया। समय बीतने पर प्रशासन में प्रमत्त हुए सुरासुन्दरी क मोही मुगल अंग्रेजों की सेना से पराजित हो गये। कालचक्र में भारतीयों के स्वतन्त्रता युद्ध में अंग्रेज भी पराजित होकर चले गये।

पं. श्री रामदवे जी ने अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यों कहा है -

श्रुत्वा स्वाहावचो भार्या, वासवस्यापि दीपिता।
प्रोवाच तद्वचः पुष्ट्यै, सन्दिहाना हरेः कृते।।[308]

स्वाहा के वचन सुनकर इन्द्राणी भी भड़क उठी और स्वाहा का समर्थन करती हुई, विष्णु भगवान के कार्य पर सन्देह प्रकट करती हुई बोली -

सत्यं वदति कल्याणी, स्वाहेयं वह्निवल्लभा।
पद्मजाकान्तसंस्त्याने, जाले सीदन्ति वै सुराः।।[309]

इन्द्राणी - अग्निवल्लभे! कल्याणी स्वाहा, सत्य कह रही है, वस्तुत: इस पद्मजाकान्त के फैलाये हुए जाल में सभी देवता दु:खी हो रहे हैं।

संसार के चारों ओर प्रजातन्त्रात्मक प्रशासन के व्याप्त होने पर भी युद्ध की प्रवृत्तियाँ नहीं रुकी। अपनी प्रभुता की रक्षा वहाँ भी समाप्त नहीं हुई। इस तन्त्र में भी प्रलंयकारी अणुशस्त्र प्रकट हो गये। प्रजातन्त्र में राष्ट्रों में परमाणुशस्त्रों को बढ़ाने की होड़ लग गई। भौतिक उन्नति का नायक अमेरिका राष्ट्र विश्वविनाशक शस्त्रों से सम्पन्न हो गया। जापान देश ने इसके परमाणु शस्त्रों के प्रहार का विनाशकारी फल भी भोगा। इधर भौतिक उन्नति के युग में मरूस्थलवासी ईराक के लोग भी भूमि से निकले पेट्रोल से समृद्ध हो गये और अन्य छोटे राष्ट्रों को तुच्छ समझने लगे।

ईराकराष्ट्राधिपतिर्हुसेन सद्दामपूर्वो नवलब्धिवामः।
मेने स्वसेनायुधदर्पमत्तो दशाननं वै परिखाधिनाथम्।।[310]

ईराक के शासक सद्दाम हुसैन ने भी अपने निकटवर्ती कुवैत राज्य को अपनी शक्ति से अपने अधीन करने का प्रयत्न किया। अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में अनेक राष्ट्रों के टुकडे कर दिये थे। कुवैत भी जो पहले ईराक का ही अंग था उसे पुन: प्राप्त करने के लिए सद्दाम ने प्रयास किया।

अमेरिका के राष्ट्रपति के ये वचनकर सुनकर कुवैत का दमन करने को उद्यत सद्दाम बलशाली बुश को तुष के समान मानता हुआ बोला -

मा माति बुक्क निजशस्त्रबलेऽति बुश्श!, जानामि जल्पितमिदं तव भीतिगर्भम्!
स्कन्धे निधाय शितशस्त्रभरं परेषां, लोकाञ्जुहोषि समराङ्गणपावके त्वम्।।[311]

अरे बुश! अपने शस्त्र बल पर अधिक बक-बक मत करो। डरी हुई तुम्हारी इस बकवास को खूब समझता हूँ। तुम तो अपने शस्त्रों को दूसरों के कन्धों पर रखकर लोगों को युद्ध की आग में झोंकते रहते हो।

अस्मद्धरातलमिदं नु कुवैतसंज्ञम्, खण्डीकृतं निजहिताय फिरंगिधूर्तैः।
एतेऽस्मदीयकुलजा अरबास्त्वयैव दुष्टेन, शत्रुपदवीं गमिताश्छलेन।।[312]

यह कुवैत नामक राष्ट्र हमारी ही भूमि है। इन धूर्त अंग्रेजों ने ही अपने हित के लिये इसको अलग किया था। इन हमारे ही कुल के अरबों को तुम ने ही अपने ही छल कपट से इन्हें हमारा शत्रु बना दिया है।

इतोऽम्बराद् गोलक-चण्डवृष्टया, इतश्च टैंकौघ-विमुक्त-शल्यैः।
इतोऽम्बुधिव्यापृत- पोत - मुक्तैः, भीमायुधैर्व्यग्रमभूत् समस्तम्।।[313]

इधर आकाश से गिरते हुए भयंकर गोलों की वृष्टि हो रही थी, उधर टैंको से छोड़े जा रहे बाण गिर रहे थे, दूसरी ओर से समुद्र में फैले जहाजों से छोड गये भयंकर शस्त्रों से सारा ईराक व्यग्र हो उठा था।

समीक्षा -

पं. श्री रामदवे जी की यही कल्पना इस खण्डकाव्य का विषय है, जो ईराक युद्ध के कारण कवि हृदय में उत्पन्न हुआ जिसको कवि ने अपनी सरल भाषा शैली में विभिन्न प्रकार के छन्दों से निबद्ध किया है और इस संजोया है। तथा इस काव्य से ध्वनि भी प्रकट होती है कि जब कभी कोई नेता किसी संघर्ष पूर्ण कार्य में प्रवृत्त होता है तो कई लोगों को अपने साथ भी जोड़ता है, परन्तु उन पर जब कोई विनाशकारी संकट आ पड़ता है तो साथ में जाने वाले सहयोगी जनों की पत्नियाँ इस संकट का कारण उस नेता पर ही थोपती हैं और इसका उपालम्भ उस नेता की पत्नी को देती हैं, जो प्राय: लोक में देखा जाता है।

8. सौन्दर्यलीलामृतम् खण्डकाव्य -

यह 143 पद्यों में निबद्ध एक श्रेष्ठ खण्डकाव्य है। प्रस्तत खण्डकाव्य में ईश्वर कृत सृष्टि में प्राणियों की विविध सौन्दर्यलीलाओं का वर्णन किया गया है -

पं. श्री रामदवे जी ने मङ्गलम् में शार्दूलवक्रीडित छन्द के माध्यम से यों लिखा है -

सौन्दर्यं लसतीह विश्व-विततं नानाविधं निर्मलम्
तत्रेदं ललनागतं तु कुरुते सम्मोहनं पश्यताम्।
दीप्यन्ते रसगर्भिताश्च हृदये शृंगारभावा अपि,
तस्मिन् हे ललिते! तवैव सुभगं सद्वैभवं भासताम्।।[314]

पं. श्री रामदवे जी कहते है कि हे भगवती! ललिते! इस संसार में फैला हुआ नाना प्रकार का निर्मल सौन्दर्य हमें यहां दिखाई पड़ता है। उसमें ललनागत सौन्दर्य दर्शकों को मोहित किये बिना नहीं रहता। उसे देखकर मन में रसगर्भित शृंगार भाव भी उठने लगते हैं। उस सौन्दर्य में मुझे तुम्हारे ही सुन्दर वैभव की प्रतीति होती रहे।

पं. दवेजी ने अपने काव्य में सौन्दर्य विभावना के विषय में यों कहा है -

सौन्दर्यस्य गवेषणाय सकलं विश्वं समुत्कण्ठितम्
वृद्धा राष्ट्रविनायका अपि रताः सौन्दर्य-सम्भावने।
लावण्य-प्रतिमान-मानन-मुखैर्मानेन या मानिता
सा कीर्तिं भजते हि विश्वजयिनीवात्राऽभितः सुन्दरी।।[315]

आज सारा संसार सौन्दर्य की खोज में उत्कण्ठित दिखाई पड़ता है। वयोवृद्ध राष्ट्र के नेता भी सुन्दरता की प्रतियोगिता में जो सुन्दरी निर्धारित मानदण्ड़ों में खरी उतरती है उसे विश्वसुन्दरी का सम्मान प्रदान करते हैं।

पं. दवे जी ने हास्य रस के माध्यम से प्रकृति के सौन्दर्य को निम्न रूपों में उद्घाटित किया है -

वेणीं पश्यति वासुकिः सह तृषा वाणीं प्रिया कोकिला
श्रोणीं शैलतटं गतिञ्च कृपणाः सिंहा मराला गजाः।
चन्द्रश्चारूमुखं मृगाश्चनयनं हास्यं स्मितं चन्द्रिका
कान्ते! त्वत्सुषमासुधा-कणकृते लुब्धं समस्तं जगत्।।[316]

हे सुन्दरी! तुम्हारी सुषमासुधा के कण पर सारी प्रकृति मुग्ध दिखाई पड़ती हैं। वासुकि तुम्हारी वेणी के वैशिष्ट्य का प्यासा है, कोयल वाणी की मधुरता पर ललचा रही है, पर्वत नितम्ब बिम्ब की ओर निहार रहा है, तुम्हारी चाल पर सिंह, हाथी और हंस होड़ लगाए बैठे हैं, चांद मुखड़े की ओर देख रहा है, हरिण नयनों की चञ्चलता की चाह लिये बैठे हैं तो चाँदनी तुम्हारी मुस्कान पर लालायित दिखाई पड़ रही है।

पं. दवे जी ने उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम से यों कहा है -

काव्यं तद्यशसे भवत्यनुपमं यस्मिस्त्वदीयं यशः,
नाट्यं चापि तदेव भाति रुचिरं लास्येन ते मण्डितम्।
गीतं कर्णसुखं तदेव बहुधा त्वत्कण्ठतो निर्गतम्
नूनं सा सकला कलाऽस्ति विकला यस्यां न ते सङ्गमः।।[317]

हे सुन्दरि! आश्चर्य है कि काव्य भी वही अनुपम यशस्वी गिना जाता है जिसमें तुम्हारें सौन्दर्य का गुणगान किया गया हो। नाटक भी तुम्हारी विलासलीला से ही रुचिकर लगता है। गीत भी वही मधुर लगता है जो तुम्हारे कण्ठ से निकला हो। वस्तुतः वे सारी कलाएं निरर्थक सी लगती है जिनमें तुम्हारे सौन्दर्य का संयोग सम्मिलित न हुआ हो। एक दिन सायंकाल के समय, जीव्याजड़ीभूत इस मन का सागर की लहरी लीला से बहलाने के लिये मुम्बई की समृद्धि के मुकुर प्रसिद्ध कामिनी- केलि प्रांगण चौपाटी पर पहुँचा। वहां जो कुछ ललनानिष्ठ सौन्दर्य को देखा उसका ही मैं कवि भावना से वर्णन कर रहा हूँ। यहाँ सम्बन्धित निम्न पद्य दृष्टव्य है-

नित्यं नोचितमस्ति तेऽटनमिदं वत्से! तटेऽसंस्तुतैः
तारुण्योद्धतभावदुष्टमतिभिः शीलानभिज्ञैश्लैः।
स्वच्छन्दाचरणं स्त्रियाञ्च सततं लोके न शोभावहम्
मुञ्च त्वं चलतां हि शिष्टकुलजे! शीघ्रं वरोऽन्विष्यते।।[318]

इधर किसी स्वच्छन्दचारिणी युवति को उसकी मां समझा रही है हे पुत्रि! प्रतिदिन तुम्हारा अपरिचित युवकों के साथ घूमना अच्छा नहीं है। तुम्हें इनके चरित्र का पता नहीं ये जवानी के कारण बड़े उद्धत और दुष्ट होते हैं। फिर स्त्रियों का नित्य स्वच्छन्द विचरण करना शोभा नहीं देता। इसलिये तुम इनका साथ छोड़ दो। शीघ्र ही तुम्हार लिये अभिष्ट वर ढूंढ लिया जायगा।

पं. श्री रामदवे जी ने श्रृंगार रस के माध्यम से यों कहा है -

गलोलसच्चारुसुवर्णकण्ठी, वक्षोलसन्मौक्तिकहारिहारा।
सत्कञ्चुकीनद्धपयोधरैषा, ग्राम्याप्यहो नागरिकाभिकाम्या।।[319]

गले में सुन्दर सुवर्ण कण्ठी पहिने, गले में सुन्दर मुक्ताहार धारण किये सुन्दर, कञ्चुकी से कुचों को निबद्ध किये, मरुस्थलीया ग्रामवासिनी भी नागरिकों का मन मोह रही है।

पं. श्री रामदवे जी ने सौन्दर्य का वर्णन उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम से इस प्रकार किया है -

लावण्यतीर्थे पुलिनेऽत्र सिन्धोः, चौपाटिसंज्ञावति मोहमय्याः।
आयान्ति रामा धृतचारुवेशाः, लावण्यलीला कलनाय मन्ये।।[320]

बम्बई का यह सागरतटीय चौपाटी स्थल सायंकाल में एक सौन्दर्य संगम का तीर्थ बन जाता है। यहाँ पर विविध देशीय वेषधारिणी वनिताएं भ्रमणार्थ आती हैं उनका सौन्दर्य इस सागर में जल क्रीड़ा करना प्रतीत होता है।

यहाँ पर सौन्दर्यलीला का पद्य दृष्टव्य है -

यथार्थसंज्ञा नगरी विशाला, हालाहली मोहमयीव बाला।
अत्राङ्गनानामपि कास्त्यवाच्या, सौन्दर्यलीला-ललिता च माया।।[321]

वस्तुतः यह विशाल नगरी मदभरी मोहमयी मोहिनीबाला है यहाँ की अंगनाओं की लावण्यलीला ललिता माया भी अनिर्वचनीय है। एक ओर इस सौन्दर्य सागर के किनारे बैठी कोई पर्वतीया कुमारी यहां पर विहार करते तरूणों का चित्त चुरा रही है जिसके शरोर पर कोई सुवर्ण का भूषण न होते हुए भी वह अपनी सुन्दरता से ही भूषित हो रही है।

यहाँ पं. श्री रामदवे जी ने सन्देह अलंकार के माध्यम से यों कहा है -

ग्राम्यापि लावण्यरुचासि रम्या, श्यामाभिरामा निगृहीतकामा।
सम्पश्यतां चेतसि मौनमग्ना, सन्दोहजनिं विघत्से।।[322]

तुम बाह्य रूप से ग्राम्य होते हुए भी अपने लावण्य के कारण बहुत सुन्दर लग रही हो। तुम सुन्दरी श्यामा ने लगता है काम को भी पकड़ रखा है। मौन बैठी तुम्हें देखकर मेरे हृदय में कई सन्देह उत्पन्न हो रहे है।

इस महानगरी में अभिसारिकाएं भी कई रंग दिखाती है -

काचिद् वामा मदनविवशा दत्तचित्ताऽभिसारे,
सन्देशं स्वं रहसि मिलितुं प्रापयित्वात्मनीनम्।
गन्त्र्या चेयं द्रुतगतिकया प्रस्थिताऽभीष्टदेशम्
जातामार्गे विरतगतिका कुट्टिनी स्नेहशून्या।।[323]

कोई मदनविवशा अभिसारिका, अपने विटसहचर को एकान्त में मिलने का सन्देश भेजकर अपनी तीव्र गतिका कार से अभीष्ट स्थान की ओर जा रही थी परन्तु गाड़ी में तेल न होने के कारण वह स्नेह शून्या कुट्टिनी की तरह बीच में ही रुक गई।

यहाँ पर विरहिणो भावा: का निम्न पद्य दृष्टव्य है -

गोष्ठे गोमय लिप्तचारुचरणां क्लिन्नां श्रमोद्‌बन्धनैः,
प्रोद्‌भूतां प्रणयालवालसुभगे स्नेहाम्बुसिक्ताङ्गणे।
शुष्यन्तीं विकलां हिरण्यलतिकां मन्दे मरौ निर्जले
दृष्ट्वा हा! विवशस्य मानसमिदं नित्यं शुचा दूयते।।[324]

अर्थात् जो स्वर्णलता प्रेम की क्यारी स सुन्दर स्नेहसिक्त प्रांगण में लहलहाती रहती थी, वह आज निर्जल मरुस्थल में सूख रही है। उस श्रम बन्धन में मुर्झाई हुई उस लतिका के गोमय लिप्त चरणों को देखकर विवश मन बड़ा दुखी हो रहा है।

यहाँ पर वैराग्य संवेदना का पद्य दृष्टव्य है -

कश्चिच्चात्र सिताम्बरावृततनुर्लूनालकः श्रावकः
वर्षीयान् विपणाधिपोऽपि जलधेर्गाम्भीर्यमुद्‌भावयन्।
मत्वा भोगविलासं सौख्यचलतां वैराग्यभाग्योदयात्
पार्श्वस्थं नवदीक्षितं हि जरठं ज्ञानं दिशन् तिष्ठति।।[325]

यहीं पर काई श्वेत वस्त्र लपेटे, वयोवृद्ध व्यापारी, मुण्डित कशों वाले साधु के वेष में समुद्र के गाम्भीर्य पर दृष्टि डाले, वैराग्य भाव के कारण भोग विलास के सुख को अस्थिर मानकर अपने पास में बैठे हुए नवदीक्षित वृद्ध को ज्ञानोपदेश करता हुआ बैठा है।

समीक्षा -

पं. श्री रामदवे जी ने इस काव्य को छन्द व अलंकारों के माध्यम से यथा स्थान उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है। तथा कवि ने सौन्दर्यलीलामृतम् के मनोरम दृश्यों को अपनी कल्पना के साथ संयुक्त कर काव्यबद्ध कर दिया। इस काव्य में श्रृंगार रस के दोनों पक्षों का चित्रण है।

9. विनादकौस्तुभम्-

यह आधुनिक सामाजिक, राजनैतिक घटनाओं पर लिखा गया 121 पद्यात्मक व्यंग्यचित्रात्मक काव्य है, जो संस्कृत की विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया है।

10. केलिभूकैतवम्-

इस खण्डकाव्य में विलास केन्द्र आधुनिक क्लब की एक अभिसारिका द्वारा विज्ञापन के माध्यम से विवाह के प्रलोभन में वंचित युवक की घटना का वर्णन किया गया है।

11. काव्य मंजूषा-

इस काव्य में पं. दवे जी द्वारा समय-समय पर विविध प्रसंगों पर लिखी गयी 98 कविताओं का संग्रह। इसके अलावा अप्रकाशित ग्रन्थ कैलिभ्कैतवम्, मेघोपालम्भनम्, अकिंचनचैत्यम्, यवनीनवनीतम् का भी वर्णन हुआ है। कवितामञ्जरी में 1952 वर्ष में जोधुपर नगर में समायोजित संस्कृत सम्मेलन के अवसर स्वागत-गोतम्, सारिकागीतम्, कुरु व गर्वं कुसुम! चित्ते, कौमुदीमहोत्सव, कादम्बिनी, शारदी, दिवाकरः, दीन हृद्यानि, बाधतेऽयं शीतकालः, मरुगङ्गा, भारत-विभाजन-वेदना, शरण्याः शरणार्थिनः, संस्कृत-सेविनो व्यथा, ध्येयनिष्ठं प्रति, शंखनादः, नरकेसरी (महाराण प्रतापसिंह प्रति), हेममहापुरुष वन्दे, केशवस्मृतिः (डाक्टर हेडगेवार स्मृति), भारते भातु भारती, दिव्यास्ति नः संस्कृति, स्वंतन्त्रता (नगरस्वरुपिणी छन्दः), स्वयमेव मृगेन्द्रता, स्वार्थाय तस्मै नमः, पुरुषोत्तमस्य प्राघान्ये पण्डितस्य मनोव्यथा, राजीवं हतसौरभम्, कथं पङ्कजेपङ्किला दृष्टिरेषा, गुर्जरभूमिकम्पः, आकर्ण्योत्कल विप्लवं समुदिता, समस्यापूर्तिः, कालिदास कविता, माघे विमुग्धाःवयम् माघोल्लासरसः (रसिकेषुनिवेदनम्), चायां मायावर्ती नुमः, चाय प्रातः स्मरणम्, विजया प्रशस्तिः, वृत्तपत्र ! नमोऽस्तुते, आलस्येमाहात्म्यम् आदि है। यहाँ 1952 वर्ष में जोधपुर नगर में समायोजित संस्कृत सम्मेलन के अवसर पर रचित 'स्वागत-गीतम्' कवित की निम्न पंक्तियाँ उद्धृत है-

विकसिंत हृद्याम्बुजं न, कुसुमिंत प्रियकाननं नः
निबुध-जन मधुकर-पिकानाम्, मधुमय करुते वसन्तम्।। स्वागतम्।।
कुरु न गर्वं कुसम! चित्ते, सौरभारव्ये लघूनि वित्ते।[326]
कदा जाने को नु कुर्याद्, नृशंसं कुलिशं स्व हस्ते।।[327]

भारत-विभाजन-वेदना का एक पद्य यहाँ दृष्टव्य है-

बालानां पिशितेन मातृवदनं हा! मर्दितं निर्घृणैः
शूलाग्रैर्जठरं विदार्य विहतं गर्भस्य सम्पातनम्।
स्वीयानां पुरतः सुतापहरणं स्त्रीणां कुचोत्पाटनम्
क्रूरैः पश्यत कास्ति नात्र विहिता पैशाचिकी दुष्क्रिया।।[328]

भारतीय संस्कृति के माहात्म्य से औत-प्रौत निम्न पद्य यहाँ श्लाघनीय है-

श्रौतस्मार्त पथानुगैर्द्विजवरैर्यज्ञाग्निना पाविता,
गंगायाः शुचिना जलेन शिरसि प्रेम्णाभिषिक्ता च या।
सर्वेषां हितकारिणी मुनिजनैः शुद्धात्मना भाविता,
दिव्या संकरताप्रभवरहिता पुण्यास्ति नः संस्कृतिः।।[329]

आलस्य के सम्बन्ध में निम्न पद्य भी यहाँ दृष्टव्य है-

आलस्य कुतोविद्या यो ब्रुते स जडो मतः।
विद्यावन्तोऽपि दासत्वं कामयन्तोऽलसात्मनाम्।।[330]

12. सांई चरित्रम्-

शिरड़ी के सिद्ध संत श्री सांई बाबा के लीला प्रसंगों का विविध छन्दों में निरूपण किया गया है। पं. श्री रामदवे जी द्वारा अनुवादित कृतियों का विवरण निम्नानुसार है -

1. निर्मला -

यह पं. श्रीरामदवे का निर्मला उपन्यास 27 विमाओं के निबद्ध है। यह एक सुप्रसिद्ध उपन्यास है, जिसका संस्कृत में रूपान्तरण पं. दवे जी द्वारा किया गया है। प्रथम विराम का संस्कृत रूपान्तरण यहाँ दृष्टव्य है -

भूरिकुटुम्बजन-परिपालनपारायणस्थ बाबू उदयभानुलालस्य परिवारे आसन् बहवः सदस्याः। एके मातुलेयाः, अपरे स्वस्त्रेयाः, पितृस्वस्त्रया, इतरे च भ्रातृव्याः। परं नासीत् तस्य तैः सह सविशेष प्रयोजनम्। स आसीत् न्यायालयस्य श्रेष्ठतमः प्राङ्विवाक् (वाक्कीलः)। लक्ष्मीप्रसादात् सः परिवार सदस्यानां परिपालनम् आश्रयदानं वा स्वकर्तव्यमिव मन्यते स्म। परं तत्र नास्ति अस्माकं सविशेषं प्रयोजनम्। अस्माकं लक्ष्मीभूतं तु केवलं कन्याद्वयम्। एका निर्मला, अपरा च कृष्णा। उभे अपि पाञ्चालिकाक्रीडा परायणे आस्ताम्। निर्मला

पञ्चदशवर्षीया, कृष्णा च दशवर्षकल्पा। सत्यपि आयुर्भेदे नासीत् तयोः प्रकृतौ विशेषण भेदः। उभे अपि चपले, कीडा-केलि-परायणे, पाञ्चालिकापरिणय-प्रभृतिक्रीडारसिके, परं आस्ताम् गृहकार्य पराङ्मुखमतिके। जनन्या आकारितेऽपि कार्यभारभीते कोष्ठे निलीनगात्रे अभूताम्। सहोदर निग्रह-निपुणे दासतर्जनदक्षिणे उभे कर्णपथं गते एव वा। स्वरे द्वारमुखं उपतिष्ठेत स्म।

परं अ। सहसा घटिता कापि अतिर्किता घटना, येन ज्येष्ठा ज्येष्ठेव लक्ष्यते। कनिष्ठा च कनिष्ठेव व्यवहरति। कृष्णा तु तथैव आसीत्। परं निर्मला सञ्जाता गम्भीरा, एकान्तप्रिया लज्जाशीला च।

इतः चिरात् उदयभानुलालः निर्मलायाः विवाहार्थं प्रयासपरायणः आसीत्। अ। सफलीभूतस्तस्य परिश्रमः। बाबूउदयभानुसिन्हामहोदयस्य ज्येष्ठपुत्रेण सह तस्या सम्बन्धः दृढीभूतः। उक्तं च वरस्य जनकेन - यदि भवते रोचते चेत् कन्याविवाहे धनं ददातु न वा, नात्र मे आग्रहः परं, वरयत्रिणां सम्मानसत्कारः सम्यक्तया विधेयः, येन आवाम् लोके उपहास्यतां न व्रजेव। बाबू उदयभानुलालः वृत्या तु आसीत् वाग्व्यवहारे पटुः, परं वित्तसंग्रहवृत्तौ आसीत् अदक्षिणः। कन्याविवाहे यौतुकदानं तस्य कृते महती समस्या अवर्तत, परं यदा वरस्य पित्रैव यौतुकादाने परित्यक्तः आग्रहः, तेन सह एतद्विषये निश्चिन्तो जातः। इतः पूर्वम् अधमर्णताभीतभीतः आसीत्। तथापि द्वित्रा उत्तमणाः तेन निर्धारिताः आसन्। अनुमितं च तेन यत् न्यूनातिन्यूनं विंशतिसहस्त्रमितं तु धनं विवाहे अपेक्षते एव। अतः यौतुकादानभीतिमुक्तः सः अतीव प्रसन्नवदनः आसीत्।

परं अनया सूचनया अबोधबालिका निर्मला गृहकोणं प्रापिता समावृतवदना तिष्ठति। अस्याः मनसि एका महती विचित्रा आशंका समुद्भूता। अस्याः तनुलोमानि केनापि अज्ञातभयेन आक्रान्तानि आसन्। न जाने किं स्यात्? तस्याः मनसि न सन्ति तानि आशोल्लासविलसितानि, यानि तरुणीनां वपुषि जनयन्ति तारूण्य-तरंगितानि, उपनयन्ति नयनापांगेषु वक्रताम्, उदभावयन्ति अधरेषु स्मितमाधुर्यम्, कलयन्ति च अंगेषु अलसवलयितानि। न तत्र अभिलषित-लास्यानि। तत्र केवलं आशंका-चिन्ता-भीति-विकल्पाः। नैतावता तत्र यौवनमपि पूर्णतया स्फुटितम् आसीत्। कृष्णा किंचित् जानाति नापि जानाति। जानाति सा केवलम् भविष्यति भगिनी

भूषणश्रृंगारमण्डिता, वादयिष्यन्ति द्वारि वाद्यानि। आगमिष्यन्ति अतिथयः, भविष्यन्ति नृत्यानि। एतद् ज्ञात्वा सा प्रसीदति मनसि। एतदपि जानाति सा यत् भगिनी प्रस्थानकाले सर्वैः सह मिलित्वा रोदिष्यति। ततः करिष्यति श्वशुरगृहं प्रति प्रस्थानम्। सममेव चिन्ताकुलापि सा, अहम् ततः परं भविष्यामि एकाकिनी।

कृष्णा - अयि प्रिये ज्येष्ठे भगिनि! अद्य तु अवश्यं चलतु। पश्य, कियत् सुखावहं वहति पवनम्।

निर्मला - न मे मनो वाञ्छति। त्वमेव गच्छ।

कृष्णा साश्रुनयना, वेपमानस्वरा च उक्तवती - अद्य त्वं कथं न चलसि? कथं मया सह न भाषसे। कथं रहसि निलीयमाना तिष्ठसि? उद्वेजते मे एकाकिन्या हृदयम्। यदि एवं न चलसि चेत्, अहमपि न गमिष्यामि। त्वया सह अत्रैव स्थास्यामि।

निर्मला - यदा अहम् इतः प्रस्थास्ये, तदा त्वं किम् करिष्यसि? तदा कया सार्धं क्रीडिष्यसि? कया सह भ्रमणार्थं यास्यसि?

कृष्णा - अहमपि त्वया सार्धं चलिष्यामि। नाहम् एकाकिनी स्थातुं पारयिष्यामि अत्र।

निर्मला - सस्मितमवदत् - परं अम्बा त्वां न प्रेषयिष्यति।

कृष्णा - तर्हि अहमपि त्वां न मोक्ष्यामि गमनाय। कथम् अम्बां न कथयसि? ''नाहं गमिष्यामि'' इति।

निर्मला - कथयन्ती तु अस्मि, परं न कोऽपि मां शृणुते।

कृष्णा - किं तर्हि नैतत् त्वदीयं गृहम्?

निर्मला - नूनं नास्ति। यद्येवं स्यात्, तर्हि को मां बलात् इतः निष्कासयत्।

कृष्णा - किं तर्हि अहमपि एकदा इतः निर्वासिता भविष्यामि?

निर्मला- तर्हि किं त्वम् अत्रैव स्थास्यसि? वयं कन्यकाः। अस्माकं गृहं क्वापि न भवति।

कृष्णा - किं तर्हि चन्द्रोऽपि निर्वासितो भविष्यति?

निर्मला - चन्द्रस्तु पुत्रः अस्ति। तं न कोऽपि अपनेष्यति।

कृष्णा - किं दुहितारः दुष्टाः भवन्ति?

निर्मला- यदि ताः दुष्टाः न भवेयु चेत्, न निर्वासनं विन्देयुः।

कृष्णा- चन्द्रस्तु अतीव धृष्टः, तं न कोऽपि अपसारयति। वयं तु न कामपि धृष्टतां कुर्मः।

एतावतैव समागतः चपलगतिकः चन्द्रः। छद्युपरि निर्मलां दृष्टा अवदत् - तर्हि भवती अत्र स्थिता। अहो! साम्प्रतं तु वाद्यानि वादयिष्यन्ते। भगिनि नववधूः भविष्यति। शिविकारोहणं विधास्यति। चन्द्रस्य पूर्णनाम चन्द्र भानु सिन्हा अस्ति। वयसा निर्मला - कृष्णाभ्यां कनिष्ठः।

समीक्षा -

यह निर्मला उपन्यास सुप्रसिद्ध गद्य सम्राट मुशीप्रेमचन्द द्वारा विरचित है। जो तात्कालिक सामाजिक समस्याओं का वास्तविक चित्रण करने वाला सुप्रसिद्ध उपन्यास है जिसका संस्कृत रूपान्तरण पं. दवे जी द्वारा किया गया है।

2. ध्रुवस्वामिनी -

यह सुप्रसिद्ध नाटक हिन्दी के कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित है। इस नाटक का संस्कृत रूपान्तरण श्री पं. श्रीरामदवे जी के द्वारा किया गया है।

शिबिरस्य पृष्ठभागः। तस्य पृष्ठतः प्राचीरोपमा पवर्तमाला। शिबिरस्य एकस्मिन् कोणे चन्द्रातपं लम्बमानम् अस्ति स्वर्णरञ्जिताः जवनिकाः कौशेयरज्जुभिः स्तम्भेषु निबद्धाः सन्ति। द्वित्राः रमणीयाः मञ्चाः। चन्द्रातपपर्वतयोः मध्ये लघुतमः कुञ्जः। पर्वतात् एका कृशतरा जलधारा शाद्वलां भूमिं प्रति प्रवहति। निर्झरस्य समीपे शिलाश्लिष्टानां लतानां शाखा पवनाघातेन दोलायमानाः सन्ति। द्वित्रा लघुपादपाः सन्ति। तेषु कुसुमभार-विनता सेवतीलता लघुतमं कुञ्जं रचयन्तीव लक्ष्यते। शिबिरस्य कोणतः ध्रुवस्वामिन्याः प्रवेशः। तस्याः पृष्ठतः तुंगकलेवरा कुरूपा नारी खड्गं हस्ते गृहीत्वा प्रविशति।

ध्रुवस्वामिनी- (समक्षं पर्वतं वीक्ष्य) अहो! इतः उन्नतकलेवरः स्वप्रभुत्व पराक्रमं प्रदर्शयन् इव अभ्रंकशोऽयं शैलशिखरः, इतश्च इमाः बालाः मृदुलाः निरीहाः वल्लर्यः बालपादपाश्च। नूनं एभिः गिरिशिखरचणेषु अवनतैः भाव्यमेव। (खड्गधारिणी दृष्ट्वा) कथं मन्दाकिनी नागता? (ताम् मौनं स्थितां दृष्ट्वा) कथं मौनम् अवलम्बमानासि? एतत् तु अहं जाने यत् अस्मिन् राजकुलस्य

अन्तः पुरे मत्कृते चिरात् संचिता अस्ति नीरवा अवमानना। या मयि आगतायामेव समागता। किं पुनः त्वादृश्या दास्या अपि सा अवलम्ब्यते? त्वयतु शैलमालोपमं मौनम् न अवलम्बनीयम्। (दासी दशनदर्शनेन विनयं दिशन्तो पुरः प्रचलनाय संकेतयति) अरे! किमिदं मे भाग्य विधातः। इदं कीदृशं इन्द्रजालम्!! तद् दिने राजपुरोहितेन कतिचिद् आहुति-प्रदानानन्तर मह्यं य आशीर्वादः प्रदत्तः किं स अभिशापः आसीत्। अस्मिन् राजकीयेऽन्तः पुरे सर्वेऽपि रहस्यं निगूह्य व्यवहरन्ति, प्रवदन्ति ततश्च मौनमवलम्बन्ति।

(खड्गधारिणी विवशतायाः भयस्य च अभिनयं कुर्वन्ती अग्रे गमनस्य संकेतं करोति) तर्हि किं त्वं मूका असि? त्वं किमपि वक्तुं न पारयसि, अतः एव मन्ये, मत्सेवायां नियोजिताऽसि। असह्यं खलु इदं मत्कृते। किम् अस्मिन् राजकुले मानवतायाः एकमपि निदर्शनं न लप्स्यते? यत्र कुत्रापि पश्यामः कुब्जाः, वामाः वक्राङ्गाः, क्लीबाः मूकाः बधिराः एव दृश्यन्ते।

(कोपाविष्टा ध्रुवस्वामिनी पुरतो गत्वा निर्झरस्य समीपे उपविशति। खड्गधारिणी इतस्ततोः वीक्ष्य ध्रुवस्वामिन्याः पादयोः समीपे उपविशति)

खड्गधारिणी - (साशंङ्क परितो विलोक्य)

भगवति! नहि सर्वोऽपि देशकालो भोषणौचित्यं भजते। क्वचित्तु मौनं नानुचितं भवति। अहं तु भवत्याः दासी एव अस्मि। अवरोधकाले मौनं भजामि। अत्र सन्देहवारणाय एव एवं विधीयते।

ध्रुवस्वामिनी- अयि। तर्हि त्वं वाचाला अपि असि? तर्हि किमर्थम् एतत् कैतवम्? एतत्तु ब्रूहि।

खड्गधारिणी- कस्यापि व्यथितस्य वेदनां वेदयितुमेव एतत् विहितम्।

चन्द्रगुप्तस्तु भवत्याः विस्मृतिपथं न गतो भवेत्?

ध्रुवस्वामिनी- (सोत्कण्ठम्) स एव किम्? यो मा बन्दिनीं विधातुं गतः आसीत्।

खड्गधारिणी- (दशनाभ्यां जिह्वां दमयन्ती) भवती कथं एवं भणति! स तु स्वयम् आत्मनः भवितव्यतां न वेत्ति। प्रतिक्षणं सन्देहदिग्धाः अस्य प्राणाः। तेन पृष्टम् अस्ति, कोऽस्ति मे तत्र दोषः?

ध्रुवस्वामिनी- (सौदासीन्यं स्मितं दिशन्ती) को दोषः? तत्तु अहं वदामि! तर्हि किं कुमारोऽपि बन्दीभूतः?

खड्गधारिणी- देवि! एवमेव अस्ति किञ्चित्! राजाधिराजं निवेद्य, तस्य कमपि उपकारं कर्तुं पारयिष्यसि?

समीक्षा - यह 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक जयशंकर प्रसाद विरचित है। जिसका कवि पं. श्रीरामदवे जी ने संस्कृत में रूपान्तरण किया है।

3. गीताञ्जलि -

यह कृति बंगला भाषा के सुविख्यात एवं प्रथम भारतीय नोबल पुरस्कार विजेता कवि गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा प्रणीत है। इस कृति में गुरुवर टैगोर की 128 विविध भाव-प्रवण कविताओं का संकलन है। इस कृति का भी संस्कृत में रूपान्तरण पं. श्री रामदवे जी के द्वारा किया गया है।

निष्ठुरा-दया -

अनन्तो मे वासनावह्नि
करुणा क्रन्दनमप्यस्ति मे ह्यनन्तम्
तथापि रक्षितोऽस्म्यहं त्वया
स्वकीयेन निशितेनाङ्कुशेन
येन नाहं भस्मीभूतोऽस्मि तस्मिन्
त्वदीयेयं निष्ठुरा दया
मम जीवनस्य कणे-कणे
व्याप्तास्ति पूर्णरूपेण।।

वरदानम् -

व्यथापूर्णास्वपि निशासु, यदा परिहसतीयं जगती।
न स्यां शंकितचेताः, इदमेव केवलं याचे वरदानम्।।

अरुण-किरण-जालम् -

अम्ब! ते करुणा-स्निग्ध-चरणौ
प्रातः कालीने अरुण-किरण-जाले
एव निवासं भजेते।

विरहज्योतिः -

प्रकाशः, अरे! कुत्रास्ति प्रकाशः?
विरह-ज्वालया प्रदीपय दीपम्।
विधेहि प्रशान्तं प्रदीपकम्
विरहज्वालया प्रदीपय नवं दीपकम्।।

नभो वारिदाः -

नभो वारिदानां निविड़ेऽन्धकारे
नीरव - निशोपमम् मन्दं मन्दम्, मौनप्रभाते
सर्वेषां दृशं वञ्चयित्वा न प्रस्थातव्यम्।।

आषाढ - सन्ध्या -

घनीभूता आषाढ - सन्ध्या
दिवसोऽप्यवसितश्चायम्।।
वृष्टेः जलधारा वर्षति मन्दम् मन्दम्
कुटीरकस्य कोणे स्थितोऽसि त्वम्,
कस्मिन् विचारसागरे निमग्नोऽसि?
जलकणैः आर्द्रोऽयं पवनः
कं सन्देशं दातुम् व्रजसि यूथिकावने?।।

स्वरजालम् -

कियन्मधुरं गायसि त्वं गीतम्
मुग्धोऽहं तत् शृणोमि केवलम्
शृणोमि केवलम्।।
जगत्याः प्रतिकणम्
व्यापृता ते गीतिकादीप्तिः।
तव स्वराणां गंगा
पाषाणखण्डान् भित्वा प्रवहति वेगेन
कामयेऽहम्, यत्
अहमपि योजयानि आत्मनः स्वरम्
तेषु स्वरेषु।
परं न मे स्वराः प्रभवन्ति
त्वत्स्वरान् ग्रहीतुम्।
प्रसृतं परितस्ते स्वरजालम्
निगड़ितोऽहम् त्वया
विलक्षणेऽस्मिन् जाले।।

समीक्षा- रवोन्द्र साहित्यं प्रायेण संगीतमयस्ति। तस्य गीतानि न केवलं स्वरतालवाहकानि, अपितु अर्थगाम्भीर्यम् शब्दमाधुयञ्चापि निधिरूपेण वहन्ति। सन्ति च तानि दिव्यभावपूर्णानि। गीताञ्जले: गीतानि आध्यात्मिकीय क्षुत्पिपासां शमयन्ति। शास्त्रीय-संगीत विदाम् आलापे एव जायते रसानुभूति:। परं सामान्यो जन: शब्दार्थयुक्तं संगीतं श्रुत्वैव आनन्दम् अनुभवति। साम्प्रतिके यान्त्रिके युगे संगीतरूपेऽपि जातमस्ति महत्वपरिवर्तनम्।

4. ब्रह्मरसायनम् -

यह कृति भी पं. श्री रामदवे जी के द्वारा सिन्धी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि शाह अब्दुल लतीफ के महाकाव्य शाह जो रिसालो के 300 पद्यों का संस्कृत रूपान्तरण है। इस महाकाव्य में परब्रह्म की महत्ता पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

शाह लतीफ की कविता हिन्दू राग-रागनियों में ढली है। शाह जो रिसालो काव्य में कल्याण, यमन कल्याण, श्रीराग आशा, रामकली आदि सुर है।

यह स्वयं सिद्ध है कि भारत के पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के साहित्य में भावात्मक और विचारात्मक एकता है। भाव और भाषा में कितना ही भेद क्यों न हो, फिर भी वह एकता की स्वर लहरी झंकृत हुए बिना नहीं रहती।

जो भाव संस्कृत साहित्य में है, उन्हीं भावों को शाह लतीफ ने और ढंग से अपने काव्य में प्रकट किया है -

'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति'

पूर्णता में ही आनन्द है, अल्पज्ञता में नहीं। इस बात को शाह ने कितने सुन्दर रूपक अलंकार में व्यक्त किया है।

जा वाहुड मं बहु, ताँ तूं मच्छ! ना मोटिएं,
काए मे कोहु करिएं, पाई मोटण जो पहु ?

हे मत्स्य! उस जलाशय से, जिसमें विपुल जल के कारण वेग और प्रवाह है, क्यों लौटने की चेष्टा करता है? वह इस छिछले जल में क्या करेगा?

भिद्यते हृदय ग्रन्थि: छिद्यन्ते सर्वसंशया:।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे।
सिन्धी - पेही जां पांण मे, कयमि रुह रिहाण।
नकी डूंगर डेह मे नका केचि युनि कणि
पून्हं थियसि पाण, ससुई तों सूर हुआ।

जब मैंने अन्तर्मुख होकर आत्माराम से राम कहानी कही, तो कोई डूंगर या पहाड़ी प्रदेश नजर नहीं आया। मैं खुद पुन्हूँ बन गई और मेरे सारे दुःख दर्द जाते रहे।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
सिन्धी - जिते अर्शु न उभुको, जमीन नाहे जरो।
न को चाड़िहो चंड जो न को सिजु सरो।।

जहां न आकाश या अन्तरिक्ष है, न जमीन है, न कोई चांद की चांदनी है न सूर्य का प्रकाश है।

शाह ने इस काव्य को 30 स्वरों में निबद्ध किया है -

1. पहला सुरकल्याण है - सब कुछ ईश्वर ही है। उसकी व्यापकता ही मान्य है। प्रेम का पुजारी होना बड़ा कठिन है। इस दुर्गम मार्ग में भी प्रेमी को माधुर्य का अनुभव होता है।

2. सुर यमन कल्याण - इसमें वैद्यों की विफलता प्रदर्शित की गई है। प्रिय को याद करने वाली न रोती है, न कुछ कहती है। यहां विषपान करने वाला ही अमृत का अधिकारी माना गया है।

3. सुर खंभात - साजन के सौन्दर्य के आगे चांद सूरज बेचारे क्या है? चांद को उपालम्भ दिया गया है। ऊँट को प्रिय सन्देश देने भेजा जाता है। मन को ऊँट का रूप दिया गया है।

4. सुर श्रीराग - इसमें नावों में माल लादकर बेचने वालों की चर्चा है।

5. सुर सामुंडी - इसमें सौदागर अपनी-अपनी प्रियतमाओं को छोड चले है। उनकी ह्दय भावनाओं का बड़ा ही भव्य दर्शन है। प्रेमिका बनजारे प्रेमी पर व्यापार के तौर तरीके भूल जाने का अभिशाप उंडेलती है।

6. सुरसुहिणी - सुहिणी कच्चे घड़े से दरिया पार करने चली है, सुहिणी को कोई भय नहीं है। हजारों को डुबाने वाला दरिया ही आज डूब रहा है। किनारे पर कई स्त्रियां खड़ी है परन्तु अंदर घुसे बिना, जीवन धन कहाँ मिलता है?

7. सुरसारंग - इसमें कवि ने मेघों से प्रार्थना की है।

8. सुर केडारो - इसमें वीरांगनाओं की गर्वोक्तियों, रणांगण में रक्त बहाने वालों की प्रशंसा अद्‌भुत प्रकार से वर्णित है।

9. सुर ससुई - इसमें ससुई प्रिय पुन्हू से मिलने निकलती है।

10. सुरमाजुरी - इसमें प्रेयसी प्रिय से कहती है - यदि वध ही करना है तो तू स्वयं अपने हाथ से कर ले।

11. सुरदेसी - जीवात्मा परमात्मा के मिलनार्थ व्यथित है। नियति के नियम तोड़े जाते है।

12. सुर कोहियारी - इसमें विरहाग्नि की विषमता और भीषणता का वर्णन है।

13. सुर हुसेरी - सारे सुखों के सौदे में विरह खरीदना है। जीवन भर जलना है।

14. सुर सोरक - इसमे याचक कहता है मुझे मालधन नहीं चाहिये। जीवन दे सको तो दो। काम क्रोधादि को कत्ल करना है।

15. सूर बर्वो सिन्धी - सुरक्षा के लिए करीम की कृपा और अल्लाह का अनुराग ही भक्त के लिए पर्याप्त है। भ्रमर वृत्ति हेय है।

16. सुर मूमल राणो - मूमल राणे के लिए तडफती है। मनोतियाँ करती है। उसके आये बिना ह्रदय का अन्धकार नहीं मिटने वाला है।

17. सुरखाहोड़ी - प्रेमी के दर पर जांति-पांति अपेक्षित नहीं है, पर विरले ही आगे आते हैं।

18. सुररामफली - इसमें योगी जनों के लिए विशेष सलाह है। योगी जन बड़ी रहस्यमय राह ढूँढ लेते हैं। वे वह जगह देख आये हैं, जो पथ-प्रदर्शकों के लिये भूल भुलैय्या है। योगी होना कठिन है। ह्रदय में कडाई चढानी पड़ती है।

19. सुर रिप - रिप का अर्थ है आपदा। अनुरागी के लिये प्रिय से जुदाई ही आपदा है।

20. सुरलीला चनेसर - इस सुर में लीला चनेसर से मिलनार्थ चिन्तित है। सन्त की सलाह है कि यह मार्ग ही मनुहारों का है। ये साजन शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा हृदय की सुन्दरता को अधिक मान्यता देते हैं। सर्वस्व त्याग दो और अपना काम बनाओ।

21. सुर बिलाबल - घर में कामक्रोधादि चोरों की टोलियां घुसी हैं। उन्हें निकालो। सुलतान का संग करो। वह जैसा हाल देखता है, तदनुसार कृपा करता है।

22. सुरड्हरू - इसमें कवि बड़े दीन-हीन हो गये हैं। अपनी क्षुद्रता पर दु:खी हैं। करुणामय की करुणा को ही एकमात्र आधार मानते है। जगत् की नश्वरता पर भी दो बूंदे बहाई है।

23. सुरकपाइती - इस सुर में कवि ने कातने-बुनने की साधना-सामग्री लेकर कई आध्यात्मिक तत्व व्यक्त किये हैं। अन्त में कहते हैं कि कातने-वातने की दिक्कतें कहाँ तक करोगी? तुम सौदागर से दोस्ती कर लो और अपना काम बनाओ।

24. सुरप्रभाती - इसमें कर्मगति पर कवि ने लेखनी चलाई है। वह बड़ी गहन है। लोह को सोना बनना है तो पारस का स्पर्श नितान्त आवश्यक है।

25. सुरघातू - मल्लाहे अगाध सागर में मोती लेने पैठ जाते हैं। भव-सागर की भँवरों पर हवाएं चोट करती है।

26. सुर आशा - इसमें सर्वप्रथम द्वैतभावना को छोड़ने की सलाह है। हस्ती मिटाने वालों के लिये न नियम है, न मर्यादा। प्रेमयोग की दिनचर्या निराली होती है।

27. सुर मारुई - इसमें सन्त कवि के हृदय में देशभक्ति, स्वदेश प्रेम की भावना सहसा जागृत हो गई है। इस सुर में कवि ने मारुई की कहानी के माध्यम से देश-पम के गीत गाये हैं।

28. सुर कामोड - इसमें तमाची के समक्ष धीवरी नूरी, सेविका भाव रखती है। इस रूपक में नूरी आत्मा और तमाची परमात्मा है।

29. सुर पूरब - इसमें कौओं से सन्देश ले जाने के लिए प्रार्थनाएँ की गई है।

30. सुर कारायल - इसमें हंसों से कहा गया है कि कभी बकों का संग मत करना। हंस-हंस ही है। उनमें कोई काला न होगा। जहां रहेंगे उस सर को सुशोभित कर देंगे। अन्त में कहा - कि -देखो - वही पक्षी, वहीं पिंजरा, वही सरोवर और वही हंस, जरा अन्तर्मुख होकर देखो तो व्याध भी अन्दर ही नजर आयेगा।

सौन्दर्य लहरी जैसे श्रेष्ठस्तुति काव्य में भगवती के ब्रह्मस्वरूप और लौकिक सुन्दरता का वर्णन मिलता है। उसमें जो आनन्द की अनुभूति होती है वही ब्रह्मानन्द है। इसी तरह उर्दू के कवियों में और आध्यात्मिक दृष्टि वाले कवियों में लौकिक दृष्टिजन्य सौन्दर्य मिलता है। इसलिये, इससे सिद्ध होता है कि किसी भी देवता की उपासना करने वाले सिद्धसंत क्यों न हो, उन्हें अपना प्रेम और भक्ति व्यावहारिक रूप में प्रकट करनी ही पड़ती है। ऐसे एक परब्रह्मतत्व को मानने वाले किसी का विरोध नहीं करते।

'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।'

समीक्षा - ब्रह्मरसायन सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए विद्वान धर्माचार्यों ने सामान्य जन ह्रदय में ईश्वर के प्रति श्रद्धा जागृत करने के लिए भक्ति के माध्यम से शास्त्रों में वर्णित अनेक देवी-देवताओं की उपासना का मार्ग प्रकट किया। अत: प्रस्तुत काव्य में इस सिद्धान्त का भलि-भाँति पालन किया गया है।

5. अकिञ्चन चैत्यम् -

अंग्रेजी के महाकवि ''टॉमसग्रे'' कृत (एलिजो) शोक गीत का पद्यानुवाद 32 श्लोकों में किया है। सभी श्लोकों की संरचना शार्दूल विक्रीडितम् छन्द में है। अंग्रेजी के अमर कवि टॉमस ग्रे की कालजयी रचना "Elegy Written in a Country Churchyard" कथ्य और शिल्प दोनों की विलक्षण कसावट के लिए प्रसिद्ध है। ग्रे ने वर्षों की साधना और बार-बार शिल्प के परिमार्जन के बाद इसे अन्तिम रूप दिया था। सत्तर बार इस रचना को पुनरीक्षणों द्वारा चमकाया था। विश्व साहित्य में इसके अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए हैं।

पं. दवेजी द्वारा किये गए संस्कृत पद्यानुवाद के 32 श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध है। अनुवाद, विशेषकर काव्यानुवाद के मुख्य रूप में दो तरह के अभिगम प्रसिद्ध है।

एक तो वह जिससे अनुवादक मूल कविता के नामों, स्थानों और परिवेश को ज्यों का ज्यों रखकर रचना का सीधा और यथार्थ अनुवाद करता है। दूसरा वह जिसमं अनुवादक, अनुवाद की भाषा के अनुरूप परिवेश को ढाल देना है। कहीं-कहीं स्थान और नामों को अपने देश के अनुकूल परिवर्तित कर लेता है। जैसा कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने शायलॉक को शैलाक्ष, बसानियों को वसन्त, पोर्शियों की पुरश्री आदि का रूप देकर शेक्सपियर के ''मर्चेण्ट ऑव वेनिस'' का अनुवाद किया था।

ग्रे की एलिजि (शोकगीत) का शिल्प पूर्णत: इंग्लिस्तान के परिवेश का अपना है। अत: इसी परिवेश में उसका अनुवाद संस्कृत जैसी क्लासिकी और परिशुद्धिप्रवण भाषा में करना न तो सम्भव है और न सार्थक। अत: श्री दवे ने उसका जो काव्यानुवाद संस्कृत की अपनी शैली और मुहावरों में किया है वह संस्कृत के परिवेश के अनुरूप पठनीय बन गया है। जैसे -

Now fades the glimmering landscape on the sight,
And all the air a solemn stillness holds,
Save where the beetle wheels his droning flight,
And drowsy tinklings lull the distant folds.

संस्कृतानुवाद -

मन्दं भास्वद् भूतलं च सहसा दृष्टेः पथो लीयते,
विश्रान्तेऽनिलसंवहे च परितो निस्तब्धता लक्ष्यते।
गुञ्जन् वा परिदृश्यतेऽत्र चपलोऽयं भृङ्गकीटाऽधुना,
निद्रालस्यजुषां गलेषु विचलद्घण्टारवो वा गवाम्।।

हिन्दी गद्य - टिमटिमाते हुए मन्द प्रकाश में धरातल का दृश्य अब धीरे-धोर आँखों से ओझल हो रहा है। सम्पूर्ण वातावरण एक प्रगाढ़ नीरवता को थामे हुए हैं। सिवाय इसके कि कोई भृंगकीट अपनी गूंजभरी गोल चक्करदार उडान भर रहा है। पालतू पशुओं के गले में बंधी घंटियों की ध्वनि उनके दूरस्थ बाड़ों को तन्द्रिल बना रही है।

समीक्षा -पं. श्रीरामदवे जी द्वारा किया गया पद्यानुवाद कविता का कथासूत्र भी सूक्ष्म है। कवि एक ग्रामीण श्मसान स्थल (कब्रिस्तान) के वर्णन के माध्यम से निर्धन ग्राम्य जनां के कठिन संतुष्ट जीवन की ओर इंगित करता है। साथ ही मानव जीवन की क्षण भंगुरता एवं नश्वरता का

भी हृदय स्पर्शी वर्णन करता है। इस प्रकार कविता में सार्वभौमिकता एवं सार्वजनिकता व्याप्त है और साथ में शोक, करूण एवं माधुर्य आदि गुण झलकते हैं।

6. अत्रिख्याति, बह्मविनय एवं ब्रह्मसमन्वय -

ये पं. मधुसूदन ओझा द्वारा कृत वेद विज्ञान से सम्बद्ध संस्कृत टीकायें हैं, जिनका हिन्दी अनुवाद राजस्थान पत्रिका प्रभारी गुलाबचन्द कोठारी जी के कहने पर पं. श्री रामदवे जी के द्वारा किया गया है जो अभी अप्रकाशित है।

संदर्भ सूची

1. Poetry in Interpretations of life, thought, imagination and emotion, Hudsan
2. पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति - अथर्ववेद - 17-8-32
3. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षमभिषष्व जाते। तयोरम्यः विप्पलं त्वाऽन्त्यन्त्रनमुनन्यों भियाकशीति।। ऋग्वेद 1-164-20
4. वाचस्पति गैरोला संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ- 971
5. Poetry is the spontancaus over flow of powerful feelings. It takes its origin from emotions recollected in tranquility – Word Sworth.
6. Our sweetest songs are thouse tell the saddest tall, - Shelly
7. Poem is at bottom a criticism of life – Methew Arnold
8. डॉ. शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास - पृ. 139
9. वाचस्पति गैरोला - संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 840
10. देवीप्रसाद गुप्त - महाकाव्य : सिद्धांत और मूल्यांकन, पृ. 1
11. रविन्द्रनाथ ठाकुर - मेघनाथ वध- महाकाव्य, भूमिका, पृ. 157-158
12. देवीप्रसाद गुप्त - महाकाव्यः सिद्धांत और मूल्यांकन, पृ. 1
13. दण्डी, काव्यादर्श, परिच्छेद 1, 14-20 श्लोक
14. रूद्रट, काव्यालंकार, अध्याय 16, 17-19 पद्य
15. भामह, काव्यालंकार, परिच्छेद 17, 19-22 पद्य
16. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद 6, 315-325 पद्य
17. "As to the general taste there is a little reason to doubt that a work whereheroic actions are related in a elevated style will, without further requisite, be deemed an epic poem."

18 "An epic poem is by common consent a narrative of some length and deal with events which have a certain grandeur and importance and come from a life of action, especially of voilent action such as a war, it gives a special pleasure because its events and persons in hance our belief in the worth of human achievement in the dignity nobility of man; -C.M. Bowre, from Virgil to Milton" P.1

19 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पृष्ठ सं.-1, पद्य सं.- 1

20 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पृष्ठ सं.-10, पद्य सं.- 44

21 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पृष्ठ सं.-10, पद्य सं.- 45

22 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पृष्ठ सं.-13, पद्य सं.- 13

23 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पृष्ठ सं.-16, पद्य सं.- 23

24 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पृष्ठ सं.-16

25 भृत्याभरणम् तृतीय सर्ग पृष्ठ सं.-21, पद्य सं.- 18

26 भृत्याभरणम् तृतीय सर्ग पृष्ठ सं.-21, पद्य सं.- 22

27 भृत्याभरणम् महाकाव्य पृष्ठ सं.-22, पद्य सं.- 26

28 भृत्याभरणम् चतुर्थ सर्ग पृष्ठ सं.-24, पद्य सं.- 02

29 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पृष्ठ सं.-25

30 भृत्याभरणम् पृष्ठ सं.-26, पद्य सं.- 13

31 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पृष्ठ सं.-30, पद्य सं.- 27

32 भृत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 16, पृष्ठ सं. 35

33 भृत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 22, पृष्ठ सं. 36

34 भृत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 17, पृष्ठ सं. 42

35 भृत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 20, पृष्ठ सं. 43

36 भृत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 14, पृष्ठ सं. 48

37 भृत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 14, पृष्ठ सं. 53

38 भृत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 29, पृष्ठ सं. 57

39 भृत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 2, पृष्ठ सं. 58

40 भृत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 24, पृष्ठ सं. 63

41 भत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 2, पृ. 67

42 भत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 11, पृ. 68

43 भत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं 8, पृ. 74

44 भृत्याभरणम् महाकाव्य पद्य सं. 27, पृ. 78

45 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं 7, पृ. 80

46 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं 9, पृ. 80

47 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं 18, पृ. 82

48 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं 20, पृ. 82

49 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 08, पृ. 86

50 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 12, पृ. 92

51 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 1, पृ. 96

52 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 2, पृ. 96

53 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 01, पृ. 103

54 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 17, पृ. 106

55 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 02, पृ. 109

56 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 09, पृ. 110

57 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 01, पृ. 116

58 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 04, पृ. 116

59 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 01, पृ. 123

60 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 11, पृ. 125

61 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 1, पृ. 129

62 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 9, पृ. 130
63 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 22, पृ. 133
64 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 01, पृ. 135
65 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 08, पृ. 136
66 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 01, पृ. 142
67 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 03, पृ. 142
68 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 16, पृ. 145
69 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 11, पृ. 150
70 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 12, पृ. 150
71 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 18, पृ. 152
72 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 16, पृ. 158
73 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 30, पृ. 161
74 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 01, पृ. 162
75 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य सं. 04, पृ. 162
76 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 01, पृ. 169
77 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 05, पृ. 170
78 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 02, पृ. 176
79 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 03, पृ. 176
80 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 03, पृ. 183
81 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 05, पृ. 184
82 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 06, पृ. 184
83 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 03, पृ. 190
84 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 06, पृ. 191
85 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 09, पृ. 192
86 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 07, पृ. 198

87 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 30, पृ. 203

88 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 02, पृ. 204

89 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 04, पृ. 204

90 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 08, पृ. 205

91 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 02, पृ. 212

92 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 04, पृ. 212

93 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 17, पृ. 215

94 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 03, पृ. 219

95 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 04, पृ. 219

96 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 10, पृ. 220

97 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 02, पृ. 225

98 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 07, पृ. 226

99 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 24, पृ. 230

100 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 01, पृ. 232

101 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 05, पृ. 234

102 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 16, पृ. 236

103 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 27, पृ. 239

104 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 30, पृ. 240

105 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 07, पृ. 242

106 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 13, पृ. 243

107 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 35, पृ. 248

108 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 41, पृ. 249

109 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 04, पृ. 253

110 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 35, पृ. 260

111 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् पद्य 39, पृ. 261

112 साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, 3.32

113 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 1.91

114 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 1.92

115 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 2.1

116 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 1.95

117 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 15.19

118 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 15.20

119 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 15.10

120 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 15.11

121 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 18.42

122 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 1.51

123 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 15.2

124 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 18.20

125 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 17.9

126 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 17.6

127 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 17.16

128 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 18.21

129 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 2.1

130 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 2.2

131 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 2.3

132 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 2.9

133 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 2.20

134 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 2.43

135 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 2.44

136 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 2.62

137 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 3.62

138 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 4.51

139 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 14.27

140 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 14.80

141 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 1.62

142 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 1.33

143 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 1.94

144 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 3.49

145 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 3.34

146 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 4.2

147 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 5.3

148 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 6.1

149 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 7.62

150 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 7.64

151 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 7.71

152 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 17.61

153 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 4.9

154 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 4.13

155 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 3.24

156 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 3.49

157 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 17.22

158 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 15.13

159 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 8.8

160 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 1.95

161 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 15.5

162 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 10.73

163 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 3.19

164 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 5.36

165 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 13.30

166 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 16.52

167 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 11.8

168 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 3.9

169 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 17.71

170 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 11.14

171 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 11.49

172 अग्निपुराण, 37.34

173 साहित्य दर्पण, 6.318

174 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्यम्, 12.5

175 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 1.50

176 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 17.20

177 राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, 17.31

178 साकेतसङ्गरम् महाकाव्य 1.3

179 साकेतसंगरम् महाकाव्य 1.33

180 साकेतसंगरम् महाकाव्य 1.36

181 साकेतसंगरम् महाकाव्य 2.13

182 साकेतसंगरम् महाकाव्य 2.25

183 साकेतसंगरम् महाकाव्य 3.5

184 साकेतसंगरम् महाकाव्य 3.6

185 साकेतसंगरम् महाकाव्य 3.8

186 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 4/1

187 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 4/3

188 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 4/12

189 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 4/13

190 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 5/7

191 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 5/24

192 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 6/27

193 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 6/30

194 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 7/4

195 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 7/7

196 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 7/12

197 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 8/3

198 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 8/14

199 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 8/52

200 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 8/53

201 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 9/1

202 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 9/21

203 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 9/50

204 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 10/1

205 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 10/7

206 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 10/12

207 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 11/3

208 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 11/26

209 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 11/31

210 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 12/1

211 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 12/2

212 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 12/37

213 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 12/40

214 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 13.5

215 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 13/25

216 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 14/3

217 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 14/24

218 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 14/42

219 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 14/44

220 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 15/1

221 साकेतसंगरम् महाकाव्यम् 15/17

222 भारती विलास: पद्य सं. 1, पृ. सं. 15

223 भारती विलास: पद्य सं. 2, पृ. सं. 15

224 भारती विलास: पद्य सं. 3, पृ. सं. 16

225 भारती विलास: पद्य सं. 9, पृ. सं. 18

226 भारती विलास: पद्य सं. 15, पृ. सं. 20

227 भारती विलास: पद्य सं. 19, पृ. सं. 21

228 भारती विलास: पद्य सं. 22, पृ. सं. 22

229 भारतीर विलास: पद्य सं. 26, पृ. सं. 23

230 भारती विलास: पद्य सं. 28, पृ. सं. 24

231 भारती विलास: पद्य सं. 38, पृ. सं. 28

232 भारती विलास: पद्य सं. 39

233 भारती विलास: पद्य स. 54

234 भारती विलास: पद्य स. 58

235 भारती विलास: पद्य स. 73

236 भारती विलास: पद्य स. 74

237 भारती विलासः पद्य स. 75

238 भारती विलासः पद्य स. 80

239 भारती विलासः पद्य स. 99

240 भारती विलासः पद्य स. 102

241 भारती विलासः पद्य स. 106

242 भारती विलासः पद्य स. 112

243 भारती विलासः पद्य स. 116

244 भारती विलासः पद्य स. 131

245 भारती विलासः पद्य स. 132

246 भारती विलासः पद्य स. 137

247 भारती विलासः पद्य स. 138

248 भारती विलासः पद्य स. 149

249 भारती विलासः पद्य स. 150

250 भारती विलासः पद्य स. 151

251 भारती विलासः पद्य स. 157

252 भारती विलासः पद्य स. 167

253 भारती विलासः पद्य स. 171

254 भारती विलासः पद्य स. 172

255 भारती विलासः पद्य सं. 188

256 ललिता लहरीः पद्य सं. 8

257 ललिता लहरीः पद्य सं. 21

258 ललिता लहरीः पद्य सं. 22

259 ललिता लहरीः पद्य सं. 33

260 ललिता लहरीः पद्य सं. 40

261 ललिता लहरीः पद्य सं. 48

262 ललिता लहरी: पद्य सं. 52

263 ललिता लहरी: पद्य सं. 53

264 ललिता लहरी: पद्य सं. 61

265 वियोग शतकम् पद्य सं. 6

266 वियोग शतकम् 8

267 वियोग शतकम् 9

268 वियोग शतकम् 15

269 वियोग शतकम् 34

270 वियोग शतकम् 36

271 वियोग शतकम् 44

272 वियोग शतकम् 55

273 वियोगशतकम् पद्य सं. 91

274 वियोगशतकम् पद्य सं. 110

275 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 06

276 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्यम् पद्य सं. 16

277 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 20

278 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 27

279 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 33

280 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 32

281 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 40

282 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 66

283 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 71

284 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 98

285 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 103

286 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 106

287 कामधेनुशतकम् पद्य सं. 112

288 अपाङ्गलीला (सृष्टिलीला) पद्य सं. 01

289 अपाङ्गलीला (सृष्टिलीला) पद्य सं. 6

290 अपाङ्गलीला पद्य सं. (सृष्टिलीला) 13

291 अपाङ्गलीला पद्य सं. (सृष्टिलीला) 27

292 अपाङ्गलीला पद्य सं. (सृष्टिलीला) 32

293 अपाङ्गलीला पद्य सं. (युगलीला) 02

294 अपाङ्गलीला पद्य सं. (युगलीला) 03

295 अपाङ्गलीला (रासलीला) 01

296 अपाङ्गलीला (कृपापाङ्गलीला) 01

297 अपाङ्गलीला (कृपापाङ्गलीला) 04

298 कारूण्य कादिम्बिनी पद्य सं. 02

299 कारूण्य कादिम्बिनी पद्य सं.16

300 कारूण्य कादिम्बिनी पद्य सं.22

301 कारूण्य कादिम्बिनी पद्य सं. 36

302 कारूण्य कादिम्बिनी पद्य सं. 48

303 कारूण्य कादिम्बिनी पद्य सं. 96

304 कारूण्य कादिम्बिनी पद्य सं. 98

305 परिरवा युद्धम् पद्य सं. 02

306 परिरवा युद्धम् पद्य सं. 06

307 परिरवा युद्धम् पद्य सं. 07

308 परिरवा युद्धम् पद्य सं. 25

309 परिरवा युद्धम् पद्य सं. 26

310 परिरवा युद्धम् पद्य सं. 84

311 परिरवा युद्धम् पद्य सं. 98

312 परिरवा युद्धम् पद्य सं. 100

313 परिरवा युद्धम् पद्य सं. 112

314 सौन्दर्यलीलामृतम् (मङ्गलम्) पद्य सं. 01

315 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्यविभावना) पद्य सं. 01

316 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्यविभावना) पद्य सं. 4

317 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्यविभावना) पद्य सं. 5

318 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्यविभावना) पद्य सं. 12

319 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्यविभावना) पद्य सं. 27

320 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्यविभावना) पद्य सं. 52

321 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्यविभावना) पद्य सं. 53

322 सौन्दर्यलीलामृतम् (मौनामृतम्) पद्य सं. 4

323 सौन्दर्यलीलामृतम् (मौनामृतम्) पद्य सं. 1

324 सौन्दर्यलीलामृतम् (विवशाः विरहिणः) पद्य सं. 11

325 सौन्दर्यलीलामृतम् (वैराग्य संवेदना) पद्य सं. 01

326 कविता मञ्जरी, स्वागत-गीतम्, पद्य सं. 01, पृष्ठ सं. 247

327 कविता मञ्जरी, कुरु न गर्वं कुसुम्! चित्ते, पद्य सं. 01, पृष्ठ सं. 249

328 कविता मञ्जरी (भारत-विभाजन-वेदना), पद्य सं. 01, पृष्ठ सं. 259

329 कविता मञ्जरी (दिव्यास्ति नः संस्कृतिः), पद्य सं. 01, पृष्ठ सं. 272

330 कविता मञ्जरी (आलस्य महात्म्यम्), पद्य सं. 13, पृष्ठ सं. 305

अध्याय - चतुर्थ

पं. श्रीरामदवे जी की सारस्वत साधना का समग्र मूल्यांकन

काव्य-शास्त्रीय समीक्षा -

कवि संसार का चैतन्य प्रधान व्यक्ति होता है। वह अपने परिसर से ही काव्य जगत की सृष्टि के लिए विषय-वस्तु एकत्रित करता है। अपनी काव्य प्रतिभा के सहयोग से वह ऐसी रचना को अभिव्यक्त करता है जो लोकरंजन के साथ-साथ लोक कल्याण को भी प्रस्तुत करती है। रचना की यह अभिव्यक्ति कवि के मानसिक संस्कार पर अधिक निर्भर रहती है। लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत कवि अपनी कविता को जनसाधारण की दृष्टि से सरल व सरस बनाने का प्रयत्न करता है। इस विशाल दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए भी कवि काव्य-शास्त्रीय परम्परा का निर्वाह करने के लिए पूर्णतः सजग रहता है। उसकी कविता की कसौटी तो काव्यशास्त्रीय अध्ययन ही है जो उसे कवि की श्रेणी में लाकर खड़ा करती है।

काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसमें पदार्थ ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कई स्थितियाँ होती ह जिनमें स्थित होकर काव्य पूर्णता को प्राप्त होता है। काव्य में शब्द और अर्थ प्रमुख होते हैं। आचार्य मम्मट ने काव्य के स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए लिखा है -

''तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि''[1]

वे शब्द और अर्थ जो अदोष, सगुण तथा अलंकार से युक्त और कभी-कभी अलंकार रहित भी हों, काव्य कहलाते हैं। आचार्यों ने काव्य के लिए गुण, रीति, मार्ग, पदलालित्य आदि भाषा शैली की दृष्टि से, अलंकार-सौन्दर्य की दृष्टि से तथा छन्द योजना को काव्य निर्माण की दृष्टि से आवश्यक माना है। इनके आधार पर काव्य का कला पक्ष उभरता है तथा रस के आधार पर उसके भाव पक्ष का ज्ञान प्राप्त होता है।

पं. श्री दवे जी की रचनाओं का इन्ही दोनों पक्षों की दृष्टि से अध्ययन इस अध्याय में किया जायेगा।

1. महाकाव्यः

(अ) कला पक्ष - (1) गुण

काव्य गुण का स्वरूप निर्धारित करते हुए आचार्य मम्मट ने लिखा है -

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।[2]

अर्थात् जिस प्रकार शूरता इत्यादि आत्मा के धर्म हैं, इसी प्रकार जो काव्य में प्रधानतया स्थित रस के धर्म हैं तथा रस के साथ नियत स्थिति वाले हैं, ऐसे रसोत्कर्ष के हेतु गुण कहलाते हैं। गुण तीन प्रकार के होते हैं - माधुर्य, ओज और प्रसाद।

माधुर्य गुण - आह्लादकत्वं माधुर्यं श्रृंगारे द्रुतिकारणम्।[3]

चित्त की द्रुति का कारण जो आह्लादकता है वही माधुर्य गुण है। यह श्रृंगार रस में होता है। करुण, विप्रलम्भ श्रृंगार तथा शान्त रस में उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर हो जाता है।

ट वर्ग से भिन्न, अपने-अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त समस्त स्पर्श वर्ण, लघु स्वर जिनके बीच में हों ऐसे 'र' और 'ण' अल्पसमास या मध्य समास वाली वृत्ति जा रचना माधुर्य की व्यंजक है।

पं. श्री दवे जी क 'भृत्याभरणम्' महाकाव्य में माधुर्य गुण से परिपूर्ण एक उदाहरण दृष्टव्य है -

''भृत्याकृत्याभिविष्टं मम हृदयमहो! बन्धनादद्य मुक्तम्,
भृत्योत्पाताभितापा भृतिपतिकुह-कव्याधयोऽपि प्रशान्ताः।
नो लाभभावे न च हृदि विषमः कोऽपि शोकोऽस्ति हानौ
नन्नं भृत्यानिवृत्त्या धनपद ममता पाशतो मोचिताऽस्मि।।''[4]

संभोग श्रृंगार में चित्त को द्रवीभूत करने वाला माधुर्य गुण गुम्फित निम्न दर्शनीय पद्य है।

सापि स्मितोदयविकूणन चारूवस्त्रा, कान्तेङ्गितं छलनया वलितं विदित्सुः।
प्रोवाच कान्तरतिरंजनमेदुराङ्गी, भृङ्गीव माधवमुखं परितश्चरन्ती।।[5]

(लक्ष्मी भी अपनी मन्द हँसी और तिरछे कटाक्षों से चारू वदना कपट भरे, कान्त के मनोभावों को जानना चाहती हुई कहने लगी, जिसके अंग कान्त रतिरंजक वाक्यों से रोमांचित हो गये थे, तथा जो भ्रमरी की भांति माधव के मुखकमल के चारों ओर भ्रमण कर रही है।)

यहाँ टकार अपने वर्ग से सर्वथा रहित है एवं स्पर्श वर्णों से युक्त यह पद्य श्रृंगार रस के सहभाव में चमत्कृत हो रहा है।

करुण रस सिक्त निम्न पद्य में माधुर्य गुण, करुण के उत्कर्षाधायक स्वरूप को हृदयंगम करता है -

इतः श्येनचंचुप्रहारप्रभीताः, गता मृत्युवक्त्रं शुचातीव खिन्नाः।
शरण्यं शिविं भूपतिं संस्मरन्तः, भ्रमन्त्यत्र दीनाः कपोताः विपन्नाः।।[6]

अर्थात् इधर बाजों के चंचु प्रहार से डरे हुए, मृत्यु मुख में गये हुए से शोक से खिन्न, शिबि राजा की शरण को याद करते हुए दीन विपन्न कबूतर भ्रमण कर रहे हैं।

इस पद्य में करुण की अभिव्यक्ति में माधुर्यगुण सहायता प्रदान कर रहा है। समास विहीना पदावलो माधुर्य गुण से चित्त के द्रवीकरण का कारण बन रही है।

माधुर्य गुण कवि का प्रिय गुण है तथा इस गुण का कवि ने सभी रसों के लिए प्रयोग किया है। वैदर्भी रीति की पद संघटना में इस गुण का ही योगदान समाश्रय होता है।

ओज गुण - **'दीप्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजोवीररस स्थितिः'**[7]

दीप्ति रूप चित्त (आत्मा) के विस्तार का हेतु ही ओज गुण है उसकी स्थिति वीर रस में होती है वीर रस से वीभत्स में तथा वीभत्स से रौद्र में ओज गुण बढ़कर होता है।

वर्गों के प्रथम तथा तृतीय वर्ण के साथ द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण का योग, रेफ से ऊपर-नीचे किसी वर्ग का सम्बन्ध, तुल्य वर्णों का योग, ट वर्ग, श, ष वर्ण दीर्घ समास तथा विकट रचना ओज गुण के व्यंजक हैं।

योगद्यतृतीयाभ्यामन्त्योरेण त्ल्ययोः।
टादिः शषौ वृत्तिदैर्ध्यं गुम्फ उद्धत ओजसि।।[8]

अर्थात् वर्ग के प्रथम वर्ण का तृतीय से और द्वितीय का चतुर्थ से योग, रेफ के साथ किसी वर्ण का योग, समान वर्णों का योग तथा ट वर्ग, श, ष का प्रयोग, दीर्घसमास से युक्त तथा विकट रचना ओज गुण की अभिव्यंजक होती है। यह चित्त के विस्तार का जनक होता है। राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में युद्ध के प्रसंगों में कतिपय ओज का प्रयोग दृष्टव्य है।

इन्दिरा-यशोगान प्रसंग में देवी की तीक्ष्ण तलवार क प्रहार वाला दृश्य रसोत्कर्षाधायक बन गया है।

दुष्टे विनाशनिरते नरमेधलग्ने, प्रोन्मादनष्टमतिके हतकेऽतिपापे।
स्त्रीणां सतीत्व हरणाङ्गविशंसनोग्रे, शत्रौ पपात तव देवि! सिताऽसिधारा।।[9]

अर्थात् जब दुष्ट विनाश में लगे हुए मनुष्यों का वध कर रहे थे, तब उन पापियों की उन्माद के कारण मति नष्ट हो गई थी जो स्त्रियों का सतीत्व हरण कर रहे थे एवं अंग काट का उग्र कार्य कर रहे थे। उन शत्रुओं पर उस देवी ने अपनी तीक्ष्ण तलवार का प्रहार किया।

इस पद्य में ट वर्ग की अधिकता तथा दीर्घ समास योजना है। यह विकट रचना ओज गुण को अभिव्यक्त करती हुई चित्त विस्तार का हेतु बनती है।

भृत्याभरणम् महाकाव्य से ओज गुण का पद्य दृष्टव्य है-

प्रवर्धमानं भृतिवीर्यमुग्रं, प्रशासनोदण्डकरोयसर्गम्।
उपप्रलोभोपधि-बाधितार्थं, दृष्ट्वेत्यवोचत् किल राजलक्ष्मीः।। [10]

पं. श्री रामदवेजी ने ओजगुण के माध्यम से निम्न पद्य को उद्घाटित करते हुए कहा है कि देवताओं के मन्त्र बल के प्रभाव से वृद्ध पुरुष बन जाता है और पत्थर शिव बन जाता है-

वृद्धोपि तारुण्यमुपैति रुग्णा, युवा च वार्धक्यमुपैति तन्त्रैः।
अनेन भद्रेण कृतप्रतोष्ठः, पाषाणखण्डोऽपि शिवत्वमेति।।[11]

यहाँ साकेतसंगरम् से ओज गुण का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

यदोजःस्फुटं राजते संघरूपं, यदीया स्मृति हिन्दु-राष्ट्राभि-लाषे।
यशः सौरभं वर्धते यस्य नित्यम्, अयं देवतात्मा मणिमातृभूमेः।।[12]

अर्थात् जिनका तेज आज संघ के रूप में प्रकाशित हो रहा है, हिन्दु राष्ट्र की भावना में जिनकी स्मृति बसी हुई है, जिनके यश की सुगन्ध प्रतिदिन फैल रही है। वस्तुतः वह देवतात्मा इस मातृभूमि के उज्ज्वल रत्न थे।

प्रसाद गुण -

जब काव्य में ऐसे पदों का प्रयोग किया जाये, जिनकों सुनते पढ़ते ही श्रोता या पाठक को अर्थ बोध हो जाय, वहाँ प्रसाद गुण की स्थिति होती है। प्रसाद गुण को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट लिखते हैं -

शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्रविहितस्थितिः।।[13]

अर्थात् सूखे ईंधन में अग्नि की तरह तथा स्वच्छ जल के समान जो चित्त में सहसा व्याप्त हो जाता है वह सर्वत्र रहने वाला प्रसाद गुण है।

प्रसाद गुण, शब्द रचना के द्वारा श्रवण मात्र से शब्द से अर्थ की प्रतीति कराने वाला सभी वर्णों, समासों तथा रचनाओं वाला होता है।

श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणोमतः।।[14]

विवेच्य महाकाव्य के सभी वीर शृंगारादि नौ रसों में प्रसाद गुण की स्थिति देखी जा सकती है, जहाँ रचना के पठन एवं श्रवण के तत्काल अनन्तर अर्थावबोध हो जाता है।

लक्ष्मी की प्रशंसा करते हुए विष्णु के द्वारा कथित निम्न पद्य में प्रसाद गुण अभिव्यंजित होता है।

नाहं स्वकीय-कलयाऽम्बुधिमन्थनोत्थाम्, हर्तुं प्रभुः किल सुधां सहसाऽभविष्यम्।
दध्यां न चेदनुपमं ललनास्वरूपं, सम्मोहनाय सबलासुरसङ्गमस्य।।[15]

अर्थात् यदि मैं प्रबल असुरों का मोहित करने के लिए मोहिनी ललना का रूप धारण न करता तो समुद्र मन्थन से निकले अमृत को अपनी कला मात्र से प्राप्त नहीं कर पाता।

इस पद्य में प्रसाद गुणाभिव्यंजक संयोजना तथा पदावली से पसाद की रसपूर्ण सृष्टि हुई है।

पं. दवे जी ने प्रसाद गुण के माध्यम से यह भी कहा है-

दिदृष्या च केचिद् भृति लब्धतीर्थाः, ग्रामाधिप-पैष्यगदाद् विमुक्ताः।
अदृष्ट-पूर्वानुपलभ्य भोगान् , हृष्यन्ति वै पतन-पुण्य पीनाः।।[16]

साकेतसंगरम् महाकाव्य स प्रसाद गुण का निम्न पद्य दर्शनीय है -

धन्याश्च ते भारत-भूमि-पुत्रा, मृत्योरभीता अतिचित्रवीर्याः।
अशस्त्रहस्ता अपि शस्त्रहस्तान् , वितर्जयन्तो विजयं विविन्दुः।।[17]

पण्डित दवे विरचित तीनों महाकाव्यों में माधुर्य, ओज, प्रसाद तीनों ही गुणों का रसोत्कर्ष में महनीय योगदान रहा है। ये गुण रस के स्थायी धर्म हैं। अतः इनकी समुचित स्थिति से अंगी रस शृंगार सहित सभी अंग रसों का समुचित सद्भाव दृष्टिगोचर होता है। अतः पं. श्री रामदवे ने अपन महाकाव्यों में सफलतापूर्वक गुणों को रस सद्भावी रूप से प्रस्तुत किया है तथा गुणों को अभिव्यक्त करने में उनकी लेखनी सफल सिद्ध हुई हैं।

2. रीति - रीति को पद संघटना के रूप में प्रस्तुत करते हुए विश्वनाथ कविराज का कथन है -

पद संघटना रीतिरंगसंस्था विशेषवत्।
उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा।।
वैदर्भी चाथ गौडी च पांचाली लाटिका तथा।[18]

अर्थात् शरीर में मुखादि अवयवों की तरह काव्य की पद संघटना को रीति कहा जाता है। रीति काव्य में रसादि को पोषक होती है। यह चार प्रकार की होती है -

1. वैदर्भी 2. गौड़ी 3. पांचाली 4. लाटिका

लाटी रीति, वैदर्भी तथा पांचाली के अन्दर ही स्थित है। अत: रीति तीन प्रकार की ही मानी गई है-

वैदर्भी- **माधुर्य व्यंजकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका।**
अवृत्ति अल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।

अर्थात् वैदर्भी वह रीति है जो माधुर्य के अभिव्यंजक वर्णों से पूर्ण असमस्त अथवा अल्पसमास युक्त ललित रचना होती है। माधुर्य अभिव्यंजक वर्ण हैं अपने-अपने वर्ग के अन्तिम वर्णों से युक्त, ट वर्ग को छोड़कर शेष ऽपर्श वर्ण, ह्रस्व रकार तथा णकार।

यहाँ पर वैदर्भी रीति का पद्य दृष्टव्य है -

श्रीमन् साधु कृतं गजो नियमितोमत्तोऽङ्कुशेनाञ्जसा
हन्तव्यो नरभक्षको मृगपतिर्लुब्धः सदा शोणिते।
दृष्टव्यः करूणादृशा मृगशिशुर्व्याधस्य पाशङ्गतः
क्षन्तव्यः सकृदेव युक्तभुजगः केकी च बद्धाञ्जलिः।।[19]

उपर्युक्त उदाहरण वैदर्भी रीति के लिये अत्यावश्यक ट वर्ग के वर्णों का सर्वथा अभाव है। राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य में प्रधान रूप से वैदर्भी रीति का आश्रय लिया है। महाकाव्यकार कालिदास आदि के अनुरूप वैदर्भी रीति के प्रयोग में अभिरूचि और उत्साह प्रकट करते हैं चूंकि महाकाव्य श्रृंगार रस प्रधान है, अत: जब कवि ने श्रृंगार रस को पुष्ट किया है तब उन्होंने वैदर्भी रीति को अपनाया है।

राजलक्ष्मी को सम्बोधित करते हुए इन्द्र का यह पद्य- 'कोई यज्ञ नहीं करता! कलियुग में सभी नास्तिक हो गये हैं। तुम भी इन्द्रप्रस्थ में आ गई हो, अब मेरा क्या होगा?'

यज्ञं न कुरूते लोकः कलौ नास्तिकतां गतः।
इन्द्रप्रस्थमुपेता त्वं किं में देवि! भविष्यति।।[20]

इस पद्य में समास रहित पद, लालित्य की अभिव्यक्ति में पूर्णत: समर्थ है। साथ ही विप्रलम्भ श्रृंगार वर्णन के रसाचित्य की दृष्टि से भी यह पद्य सर्वथा उपयुक्त है। यहाँ ट वर्ग के

वर्णों का अभाव, वर्ग के पंचम वर्ण से युक्त स्पर्श वर्ण माधुर्य गुणोपेत होकर वैदर्भी रीति का संयोजित करते है।

गौडी रीति -

आचार्य विश्वनाथ ने गौड़ी रीति का लक्षण करते हुए कहा है -

ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्धः आडम्बरः पुनः समासबहुला गौड़ी।[21]

गौडो रीति ओज गुण पर आश्रित है। ओज गुण के प्रकाशक वर्णों से युक्त बन्ध आडम्बर वाली और समास बहुला होती है। ओज गुणाभिव्यंजक वर्ण प्रथम और तृतीय वर्णों के साथ उसी वर्ग के उनके बाद वाले वर्णों का प्रयोग, रेफ के साथ योग एवं तुल्य का योग टादि, श, ष होते हैं।

भारत पाक के युद्धावसर पर इन्दिरा द्वारा सेना के लिए किये गये साहसिक्य प्रबोधन में गौड़ी रीति गुम्फित होती दिखाई देती है।

उतिष्ठ रे भरतभूजनुषाकृतार्थ!, उत्तिष्ठ पुष्टवपुषा बलवन्मृगेन्द्र!।
उत्तिष्ठ चण्डभुजखण्डितशत्रुमुण्ड, उत्तिष्ठ दुष्टदलनोद्यतवज्रदण्ड!।।[22]

(अरे! भारत भूमि पर जन्म लेन से कृतकृत्य बलवान सिंह! अपने बलिष्ठ शरीर के साथ उठो, विजयोचित शौर्य भाव धारण करने वाले दुष्टों के दलनार्थ वज्रदण्ड लेकर खड़े हो जाओ।)

उपर्युक्त पद्य में ओज गुणाभिव्यंजक ट वर्ग, दीर्घ समास आदि विकट बन्ध वाली गौड़ी रीति की संयोजना कर रहे हैं।

यहाँ गौड़ी रीति का एक अन्य पद्य दृष्टव्य है -

दृष्टव्या चिरात्स धरणीं भरणीं सुराणाम् , दुर्दैवघोर-रजनी-जवनी-विमुक्ताम्।
वीरप्रचण्ड-भुजदण्ड-विखण्डितार्तिम् , मोदं जगाम मुदितामिव मन्यमानः।।[23]

पांचाली रीति -

आचार्य विश्वनाथ ने पांचाली रीति का लक्षण करते हुए कहा है -

समस्त पंचष पदो बन्धः पांचालिका मता।[24]

पांचाली रीति, वैदर्भी और गौड़ी रीति दोनों की मध्यवर्तिनी शैली है। यह प्रसाद गुण पर आधारित होती है। इसमें सुकुमार वर्णों का प्राचुर्य रहता है। यह गुण सभी रचनाओं में अनिवार्यतः माना जाता है।

दु:ख सर्वत्र व्याप्त है। इसका वर्णन निम्न पद्यों में किया है जो कि पांचाली रीति से निबद्ध है।

भार्या रोदिति भर्तारं लघुवेतनवृत्तिकम्।
भर्ता कुत्सयते कान्तां नवशाटीप्रकामिनीम्।।[25]

वराय कन्यका व्यग्रा पुत्रार्थश्च विवाहिता।
जनवृद्ध्या विषीदन्ति परिवारनियोजकाः।।[26]

अर्थात् भार्या कम वेतन वाले पति से दु:खी है तो भर्ता साड़ी चाहने वाली पत्नी से दु:खी है, कन्या वर के लिए दु:खी है तो विवाहिता पुत्र के लिये तथा परिवार नियोजक जनवृद्धि से दु:खी है।

उपयुक्त पद्यों में वैदर्भी एवं गौड़ी रीति दोनों के ही गुणों के सम्मिलित वर्ण होने से पांचाली रीति है। यहाँ चित्त की प्रसन्नता भावार्थ की शीघ्र सम्प्रेषणीयता का समुचित निदर्शन है।

यहाँ पांचाली रीति का निम्न पद्य दर्शनीय है -

वित्ताकर्षण-विस्मृताखिलरसो यातो भृतेर्बन्धनम्
वात्सल्यं विजहाति रागफलितं मातृत्वभावोऽप्यहो।
हृष्यन्ती शिशुकुड्मलैः प्रियजनैः स्नेहाभिषिक्ता शुभा
दाम्पत्योत्सवमाधवा सुरभिता म्लानाऽधुना वाटिका।।[27]

यहाँ धन के लोभ में महिलाएं मातृत्व भी भूल गई हैं, दाम्पत्य जीवन शुष्क हो गया है। अत: यह पद्य पांचाली रीति में निबद्ध किया गया है।

समीक्षा- पद संघटनारूप रीतियों के विवेचन से स्पष्ट है कि पं. दवेजी ने अपने महाकाव्यों में तीनों ही रीतियों का अपेक्षानुसार आश्रय लिया है। रचनाकृत औचित्य के आधार पर रीतियों का चुनाव महाकवि की शैली का प्रभावशाली पक्ष है। महाकाव्य में कवि ने अपनी भावनाओं को रीतियों के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। कथानक के अनुरूप पदों का विकास महाकाव्य की रीति चयन की एक विशिष्टता है। महाकाव्य के शास्त्रोक्त स्वरूप के अनुसार ही रचना विधान प्रस्तुत किया गया है। कवि ने अपने वर्णनों में अभीष्ट रस की अभिव्यक्ति हेतु नितान्त अनुरूप शैली का चुनाव किया है तथा रस औचित्य की दृष्टि से यह निर्वाह सर्वथा सफल रहा है।

छन्द योजना -

महाकाव्य लक्षणानुसार सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिए तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तित किया जाता है परन्तु छन्द प्रयोग में कवि ने महाकाव्य के लक्षणों तथा परम्परागत नियमों में स्वेच्छा से परिवर्तन किया है, जिससे पं. दवे की अपनी वर्णन शक्ति की श्रेष्ठता का परिचय सिद्ध होता है। उन्होंने एक ही सर्ग में 5-6 छन्दों का प्रयोग किया है किन्तु कथानक तथा वर्ण्य विषय की लय एवं गति के प्रति सजग रहे हैं। राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य में कुल 11 छन्दों का प्रयोग किया गया है।

अनुष्टुप् छन्द -

यह रस सिद्ध महाकवियों का प्रिय छन्द रहा है। इसका प्रयोग विवेच्य महाकाव्य में प्रचुर मात्रा में किया गया है। लक्षण निम्नानुसार है -

श्लोक के षष्ठं गुरूज्ञेयं, सर्वत्र लघुपंचमम्।
द्विचतुः पादयोर्ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं, प्रत्येक चरण में पंचम वर्ण लघु तथा षष्ठ वर्ण गुरू होता है, द्वितीय और चतुर्थ चरणों में सप्तम वर्ण लघु होगा, शेष के लिए कोई नियम नहीं है। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 405 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 100 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 243 बार किया है।

I S S I S I
उदाहरण **लोकायुक्तो म हा भा गो राजलक्ष्म्याः स्व यं व रम्।**
I S S I S I
मुहूर्ते सु भ गे क र्तुं चिन्तयामास सत्व रम्।। [28]

I S S I S I
उदाहरण **नाना भौतिक भो गा नां, दातायं विघ्न वा रणः।**
I S S I S I
प्रियंकुर्वश्च स र्वे षां, लोक-हृद्यो भ विष्यति।। [29]

यहाँ अनुष्टुप छन्द का निम्न पद्य दर्शनीय है-

उदाहरण-

I S S I S I
मतवीर्य - क्षयं याते लोकतन्त्रोपजीवने
I S S I S I
राजलक्ष्मीस्तिरश्चक्रे वीर्यहीनान् प्रशासकान् [30]

इन्द्रवज्रा -

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।[31]

अर्थात इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरू वर्णों के क्रम से 11 वर्ण होते हैं। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 13 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 1 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 70 बार किया है। उक्त लक्षण की दृष्टि से निम्न उदाहरण दृष्टव्य है-

तगण तगण जगण गु.गु.

S S l S S l l S l S S

उदाहरण **भोः भोः जना ! भा र त भू मि पु त्राः**

जानन्ति सम्यक् चिरसेवकान्नः।

अस्मदलस्यैव चिरप्रयासात्

स्वातन्त्र्यभावं भजते धरित्री।।[32]

तगण तगण जगण गु.गु.

S S l S S l l S l S S

उदाहरण **भृत्यानुरक्तैस्तरूणैर्वयस्यै् ,**

नानाविधोयायन - भूषणाद्यैः।

मिष्टान्नपानैर्मधुरैश्च गीतै -

भृत्यातनूज - प्रभवोऽभ्यनन्दि।।[33]

उपेन्द्रवज्रा -

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततौ गः।[34]

अर्थात् उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरु वर्णों के क्रम से 11, 11 वर्ण होते हैं। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 35 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 4 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 15 बार किया है। उक्त लक्षण समन्वित निम्न पद्य दृष्टव्य है -

जगण तगण जगण गु.गु.

l S l S S l l S l S S

उदाहरण **विलोकयैतान् सखि! शासनस्थान् ,**

प्रचारसिद्धान् सचिवान् सभायाम्।

श्वेताम्बरान् आत्मदलप्रतिष्ठा -

प्रकीर्तनार्थं चरतः समन्तात्।।[35]

जगण तगण जगण गु.गु.
I S I S S I I S I S S

उदाहरण
इदं हि राष्ट्रं परमं पवित्रम्
प्रदूषितं येन कुचेष्टितेन।
तमद्य भृत्यातनयं निहन्तुम्
उत्कोचमाक्रोशमवाप लोकः।।[36]

उपजाति छन्द -

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ,
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु,
वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।[37]

अर्थात् इन्द्रवज्रा में क्रमशः तगण, तगण, जगण एवं दो गुरू वर्ण और उपेन्द्रवज्रा में जगण तगण, जगण, दो गुरु वर्णों के क्रम से 11 वर्ण होते हैं। इन दोनों छन्दों के मिश्रण से उपजाति जाति छन्द बनता है। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 354 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 321 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 126 बार किया है। उक्त छन्द में निबद्ध निम्न उदाहरण दृष्टव्य है -

जगण तगण जगण गु.गु.
I S I S S I I S I S S

उदाहरण
पुराण जल्पैर्ग मितान्धकारम् (उपेन्द्रवज्रा)

तगण तगण जगण गु.गु.
S S I S S I I S I S S

मुग्धा प्रजा या चिर काल मत्र। (इन्द्रवज्रा)
नीता प्रकाशं नवबोधदीपै
रस्माभिरेवास्ति निज-प्रयासैः।।[38]

तगण तगण जगण गु.गु.
S I I S S I I S I S S

उदाहरण
मामेव कृत्वा हरिरूपमेष (इन्द्रवज्रा)
लेभे स्वयं पापमपापविद्धः।

जगण तगण जगण गु.गु.
I S I S S I I S I S S

हितं स्थितं मर्कट-रूप-मध्ये
ज्ञातं मया नो मदनातुरेण।।[39] (उपेन्द्रवज्रा)

तगण तगण जगण गु.गु.
S S I S S I I S I S S

उदाहरण लब्ध्वापि लोकोत्तर - शौर्यसारं (इन्द्रवज्रा)

हिन्दुः किमर्थं भजतेऽद्य दैन्यम्। (इन्द्रवज्रा)

राष्ट्राभिमानो हृदये न किञ्चित् गु.गु. (इन्द्रवज्रा)

जगण तगण जगण गु.गु.
I S I S S I I S I S S

न चापि खेदोऽस्ति हि दास्यभावा।।[40] (उपेन्द्रवज्रा)

वंशस्थ छन्द -

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।[41]

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमण जगण, तगण, जगण, रगण के क्रम से 12-12 वर्ण होते हैं। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 1 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 5 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 1 बार किया है। उक्त छन्द में निबद्ध निम्न उदाहरण दृष्टव्य है -

जगण तगण जगण रगण
I S I S S I I S I S I S

उदाहरण- उवाच विप्रःस्फुरिताध रोरुषा,

शपंजनान् पीठगतान्निवारकान्।

इयच्चिरं मे ददतोऽहतं मतम्

मताधिकारः कथमद्य हन्यते।।[42]

जगण तगण जगण रगण
I S I S S I I S I S I S

उदाहरण चिराय भृत्या परिसेविताप्यहो

न साधुवृत्ते विरतेऽनुकूला।

प्रायो हि लोके खलु पुंश्चलीनां

निर्व्यूढरागेऽपि चलैव मैत्री।।[43]

भुजंगप्रयात छन्द -

भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः।[44]

इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, यगण, यगण, यगण के क्रम से 12-12 वर्ण होते हैं। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 18 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 23 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 11 बार किया है। उक्त छन्द में निबद्ध निम्न उदाहरण दृष्टव्य है -

यगण यगण यगण यगण
I S S I S S I S S I S S

उदाहरण

पुरालो कपालां शजात नॅपेन्द्वैः
प्रजारंजकैः सत्कुलीनैः प्रवीरैः।
हृदा भाविता धर्मतन्त्रानुबन्धैः
कथं जीवयिष्यस्ययेे! नूत्न-तन्त्रे।।[45]

यगण यगण यगण यगण
I S S I S S I S S I S S

उदाहरण

सतीनां कथाव र्जितालो कमध्ये,
प्रतिष्ठाऽसतीनां स्थिता राजतन्त्रे।
विलुप्तेऽपि वाराङ्गना-नाम-पट्टे,
स्थिरं कुट्टिनीनां यशो वृत्तपत्रे।।[46]

द्रुलविलम्बित छन्द-

द्रुतविलम्बितमाहनभौभरौ।[47]

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में नगण, भगण, भगण, रगण के क्रम से कुल 12-12 वर्ण होते हैं। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 23 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 27 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 7 बार किया है। उक्त छन्द में निबद्ध निम्न उदाहरण दृष्टव्य है -

नगण भगण भगण रगण
I I I S I I S I I S I S

उदाहरण

तुरग मेधहयो न, रथोऽस्त्ययं
भ्रमति हिन्दु-जनैक्य विधित्सया।
सुरसरिज्जल-कुम्भमहोत्सवः
क्रतुभंय न तवास्तु शतक्रतो!।।[48]

वसन्ततिलका छन्द -

उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौगः।[49]

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में तगण, भगण, जगण, जगण और अन्त में दो गुरू वर्णों के क्रम से 14 वर्ण होते है। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 208 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 116 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 43 बार किया है। उक्त छन्द में निबद्ध निम्न उदाहरण दृष्टव्य है -

तगण भगण जगण जगण गु.गु.
S S I S I I I S I I S I S S

उदाहरण दक्षाम तार्जन विधौकि तवाश्च चाटाः,
अज्ञातकूटकलिता नटनायकाश्च।
चारा विपक्षमतखण्डनलब्धदीक्षाः,
आजग्मुरत्र बहवो गणपक्षिणोऽपि।।[50]

तगण भगण जगण जगण गु.गु.
S S I S I I I S I I S I S S

उदाहरण ग्रीवावि चुम्बिचि कुराम लभाल पट्टा,
कृष्णोप-नेत्र-विनिगूढ-कटाक्षवाणा।
रागारुणाधर-जडीकृत-बिम्बदर्पा,
रेजे कपोल-परिभावित-पाटलाब्जा।।[51]

तगण भगण जगण जगण गु.गु.
S S I S I I I S I I S I S S

उदाहरण उत्पाट्य हिन्दुजन-मानस-मानकेतून्
उन्मूल्य भूमिपति-सेवित-धर्म-सेतुम्।
आश्रित्य दुष्ट-दनुजो-चित पापवृत्तिं
चक्रुर्नृशंसमसुरा इव गर्ह्य-कृत्यम्।।[52]

मालिनी छन्द -

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।[53]

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण, यगण के क्रम से 15 वर्ण होते हैं तथा 8, 7 पर यति होती है। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 57 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 49 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 18 बार किया है। उक्त छन्द में निबद्ध निम्न उदाहरण दृष्टव्य है -

नगण नगण मगण यगण यगण
I I I I I I S S S I S S I S S

वसति सरिदु पान्तेका प्यवश्या पिपासा,
मधुवनपरिपारश्वे कोकिला मौनवाणाी।
शशिनमुपगतेयं कौमुदी क्लिश्यमाणा,
बकमिव समुपेता खिद्यते हा मराली।।[54]

नगण नगण मगण यगण यगण
I I I I I I S S S I S S I S S

उदाहरण धनिक जनक जांहबा ल्यतोभु क्तसौख्या
पठन-चरण-मग्ना पाकबोधानभिज्ञा।
नहि गृह-विधिविद्यालब्धतीर्थास्मि तावत्
कलयति मम गृह्यं कान्तहस्तानुकम्पा।।[55]

नगण नगण मगण यगण यगण
I I I I I I S S S I S S I S S

उदाहरण

इयम तिशय पुण्या राम-सम्भूति-भूमिः
सकलभुवन-हिन्दू-जाति-सम्मान-मूर्तिः।
पुरत इह दृशां वः क्लिश्यमाना वरेण्या
कषति नही कथं भोः मानसं भारतीयाः।।[56]

शिखरिणी छन्द -

रसैरूद्रैश्छिन्नायमनसभलागः शिखरिणी।[57]

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण और अन्त में एक लघु तथा एक गुरू वर्णों के क्रम से 17 वर्ण होते है तथा 6,11 वर्णों पर यति होती है। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 45 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 28 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 22 बार किया है। उक्त छन्द में निबद्ध निम्न उदाहरण दृष्टव्य है -

यगण मगण नगण सगण भगण ल. गु.
I S S S S S I I I I I S S I I I S

उदाहरण

यथागो ष्ठीकामो भवति कविरा मोदम तिकः,
क्षुधार्तो दीनो वा जठरभरणं काम्यति यथा।
गृहद्वारं सारं गणयति यथाऽऽद्यूनशुनकः,
तथैवायं भ्रष्टाचरणमतिकः शासनरतिः।।[58]

यगण मगण नगण सगण भगण ल.गु.
I S S S S S I I I I I S S I I I S

उदाहरण

महिष्यो गावोवा शशक मशका किञ्चन खगाः
लतायाः पर्णानां रदनकदनं कुर्वत इह।
हसन्तो वीक्षन्ते कुटिलपथिकाः कौतुकमिदम्
निरालम्बां मत्वा परिहरति कश्चिन्नहि परम्।।[59]

यगण मगण नगण सगण भगण ल.गु.
I S S S S S I I I I I S I I I I S

उदाहरण

क्रातूनां ज्वालाभिः समधिगत-देवत्वविभवाः
सपर्यासञ्चारैः ललितसुषमाः पुष्प-निकरैः।
प्रकुर्वाणाश्चितं प्रमुदितमिमाः कीर्तन रसैः
त्विषो भक्तेर्दिव्या विकिरणपरा राघवशिलाः।।[60]

मन्दाक्रान्ता छन्द -

मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।[61]

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण, तगण, तगण तथा अन्त में दो गुरू वर्णों के क्रम से 17 वर्ण होते हैं और 4,6,7 पर यति होती है। 12-12 वर्ण होते हैं। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 12 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 24 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 1 बार किया है। उक्त छन्द में निबद्ध निम्न उदाहरण दृष्टव्य है -

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.
S S S S I I I I I S S I S S I S S

उदाहरण **काचिन्मु ग्धाहरि तवस नासारि कानङ्ग मत्ता,**
नृत्योन्मत्ता गलितवसना कीरसंश्लेषवश्या।
अन्विष्यन्ती रमणवसतिं वारूणी विह्वलाङ्गी,
आघूर्णन्ती शुकमुपगता नेतुमेकान्तवासम्।।[62]

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.
S S S S I I I I I S S I S S I S S

उदाहरण **रात्रौ निद्रां हरति परितो रोदनं वै शिवानाम्**
व्याघ्रात्पातो जनयति भयं क्षेत्रिकक्षोभहेतुः।
द्वारे किञ्चित्पवन विधुते जायते प्रेतशंका
निद्राभंगे कथमपि भिया याप्यते रात्रिशेपः।।[63]

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.
S S S S I I I I I S S I S S I S S

उदाहरण **राज्यभ्रष्टैः कुटिल-चरितैः स्वार्थ-लिप्सैकलक्ष्यैः**
नाना-व्याज-प्रतिकृतिरतैश्द्द्यतः कल्प्यमानम्।
दृष्ट्वा भूयो मुनिजनगणो हिन्दुवर्गेऽभिघातं
कर्तुं सिद्धोऽभवदनुपदं तत्प्रतीकारमाशु।।[64]

शार्दूलविक्रीडित छन्द -

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौसततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।[65]

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और अन्त में एक गुरू वर्ण के क्रम से 19 वर्ण होते है। तथा 12,7 पर यति होती है। 12-12 वर्ण होते हैं। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 248 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 278 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 68 बार किया है। उक्त छन्द में निबद्ध निम्न उदाहरण दृष्टव्य है -

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गुरु
S S S 1 1 S 1 S 1 1 1 S S S 1 S S 1 S

उदाहरण एषाऽध मेनिशा विषाद जननी नोवैचि रंस्यास्य ति,
एते चान्धधियः प्रमत्तहृदया यास्यन्ति भीत्या लयम्।
शीघ्रं चोदयमेष्यतीह रुचिरं तन्त्रं नवीनं प्रिये,
आश्वस्ता भव पद्मजे! कथमये! चेखिद्यते चेतसि।।[66]

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु.
S S S 11 S 1S1 1 1S S S 1 S S 1 S

उदाहरण क्रीडामो दविहा रमग्र मनसो ऽभ्यासेडल सान्प्राय शः
छात्रावास-विलास-वीत-समयानुत्पातघातोन्मुखान्।
पितॄणां श्रम-सञ्चितं हुतवतो वितं हि फल्गूद्यमे
दृष्ट्वा रोदिति शारदा भूतिमुखांश्छात्रान् प्रबोधान्तकान्।।[67]

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु.
S S S 1 1 S 1 S 1 1 1 S S S 1 S S 1 S

उदाहरण घंटा-शंख-मृदङ्ग-तूर्य-निनदैः सम्प्रेर्यमाणा द्रुतं
भित्वा शङ्कुकुलावरो धमभितो रक्षाकृते रोपितम्।
युद्धे मारुति-नोदिता इव महोत्साहा महावानराः
प्राप्ता मस्जिद्मर्दनाय सहसा हन्तुं तथा रावणम्।।[68]

स्रग्धरा छन्द -

म्रभ्नैयानांत्रमेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्[69]

अर्थात् इस छन्द में मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण (तीन यगण) होते हैं। तथा 7-7-7 वर्णों पर यति होती है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में 21-21 वर्ण होते हैं। पं. दवेजी ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में इस छंद का प्रयोग कुल 2 बार तथा भृत्याभरणम् महाकाव्य में 24 बार एवं साकेतसंगरम महाकाव्य में 1 बार किया है। उक्त छन्द म निबद्ध निम्न उदाहरण दृष्टव्य है -

मगण रगण भगण नगण यगण यगण यगण
S S S S 1 S S 1 1 1 1 1 1 S S 1 S S 1 S S

उदाहरण धन्यः कल्याणसिंहो रघुपति चरणाम्भोजभक्ति-प्रतिष्ठः
जित्वा यो वै सपत्नान् नव चितिसमरे प्राप राज्याधिपत्यम्।
हृत्वा साकेतनिष्ठं रिपुकुलकलितं लाछनं साहसेन,
लेभे पुण्यां प्रतिष्ठामगणित-पदवीपीठलोभो वरेण्यः।।[70]

समीक्षा -

कवि ने अनुष्टुप् , इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, भुजंगप्रयात, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित एवं स्रग्धरा छन्दों का प्रयोग किया है। सर्वाधिक प्रयोग अनुष्टुप् छन्द का है। इसके अलावा अनुष्टुप्, उपजाति, शार्दूलविक्रीडित एवं शिखरिणी छन्दों का प्रयोग भी पं. दवे जी को प्रिय है। उक्त महाकाव्यों में उपजाति, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, शिखरिणी एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द बार-बार प्रयुक्त है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि राजलक्ष्मीस्वयंवर, भृत्याभरणम् तथा साकेतसङ्गरम् महाकाव्यों में रचना विधा तथा भावों के अनुकूल छन्दों का समुचित प्रयोग किया है। अत: रस भाव के अनुकूल दीर्घ तथा लघु छन्दों के कुशल प्रयोग में पं. दवे जी सिद्धहस्त दिखाई पड़ते है। पं. दव जी के तीनों ही महाकाव्य शिल्प रस सिद्ध महाकाव्य के तथा कवियों की प्रवृत्ति के अनुकूल है। विदग्ध महाकाव्य के अनुसार रीति, गुण, भाषा, छन्द, वाग्व्यवहार आदि का कुशलतापूर्वक निर्वाह किया गया है। महाकाव्य का शिल्प कविता के चमत्कार को सहृदयावर्जक बनाता है जो रसानुकूल औचित्य के सतर्कता पूर्ण निर्वहन करने के लिए फलस्वरूप आनन्द के आस्वादन में पूर्ण सक्षम है।

अलंकार योजना -

काव्य सहृदय के हृदय को सतृप्त कर देने वाला साधन होता है। इस तृप्ति का कारण है - काव्यगत सौन्दर्य, काव्य में इस सौन्दर्य की सृष्टि के लिए अलंकार, गुण, रीति आदि को चारूत्व हेतु के रूप में स्वीकृत किया गया है। इनमें अलंकारशास्त्रियों ने अलंकारों को विशेष रूप से सौन्दर्यवर्धक माना है और वे अलंकारों के अभाव में काव्यत्व का ही स्वीकार नहीं करत। वामन कहते हैं-

सौन्दर्यमलंकारः काव्यं ग्राह्यमलंकारात्।[71]

इससे पूर्व भामह, दण्डी, रूद्रट् तथा उद्भट्ट भी काव्य में अलंकारों के सर्वातिशायी महत्व को प्रतिपादित कर चके हैं। भोज, हेमचन्द्र, जयदव तथा वाग्भट्ट ने भी काव्य के शोभाधायक तत्व के रूप में इनकी अपरिहार्यता का प्रतिपादन किया है। आनन्दवर्धन तथा मम्मट ने भी अलंकारों को काव्य शरीर के चारुत्व का हेतु माना है। रसवादी आचार्यों के मत में अलंकार काव्य के शोभाधायक एवं उत्कर्षाधायक तत्व हैं।

यह तो निश्चित ही है कि अलंकारों से कविताकामिनी का कलेवर कमनीय बनता है। रसानुकूल अलंकारों से काव्य की सुन्दरता में कई गुणा वृद्धि हो जाती है। जैसे कि आचार्य मम्मट ने कहा है कि काव्य में यदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हो तो वे उसके काव्यत्व का उसी प्रकार और अधिक रमणीय बना देते हैं, जिस प्रकार अंगजादि आभूषण स्वाभाविक लावण्य में और अधिक वृद्धि कर देते हैं। अलंकार भाषा की व्यंजना शक्ति को तीव्र करते हैं और वे भावों की सशक्त अभिव्यक्ति में सहायक भी होते हैं। इस प्रकार काव्य में स्वाभाविक रीति से प्रयुक्त अलंकार ही काव्य की शोभा के कारण एवं रस तथा भावों के उपकारक होते हैं। भावों के प्रवाह में अलंकार स्वत: ही प्रस्फटित होते हैं तथा सौन्दर्य को उत्पन्न करते हैं।

राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य में भी अलंकारों का प्रचुर प्रयोग है। कतिपय स्थलों पर यह काव्य अलंकारों के बोझ से दबी हुई कामिनी की भांति मंथर गति से चलने वाला तदतिरिक्त अन्य दो महाकाव्य भी सर्वत्र अलंकारों के सहज सौन्दर्य से सहृदयों को आकृष्ट करने वाले हैं।

य महाकाव्य विभिन्न अलंकारों के वैभव तथा गरिमा से मण्डित है। इनके अलंकार नियोजन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - शब्दालंकार तथा अर्थालंकार।

शब्दालंकार -

जो अलंकार शब्द के आश्रित होते हैं, उन्हें शब्दालंकार कहते हैं अर्थात् जहाँ शब्द का परिवर्तन असहत्व होता है, शब्द विशेष के कारण ही जहाँ अलंकार की स्थिति रहती है। प्राय: यह माना जाता है कि शब्दालंकार केवल चमत्कारोत्पादक ही होते हैं, किन्तु यह मान्यता उचित नहीं है, क्योंकि काव्य पुरूष के सौन्दर्य प्रसाधन में जितना महत्व अर्थालंकारों का है, उतना ही महत्व शब्दालंकारों का भी है। विद्वानों ने शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों को सरस्वती के एक-एक कान का कुण्डल बताया है तथा दोनों का समान महत्व भी प्रतिपादित किया है। शब्दालंकार चमत्कारमूलक ही नहीं अपितु भावमूलक भी होते हैं, वे भावोत्कर्ष में भी सहायक होते हैं।

अनुप्रास -

जहाँ व्यंजनों की समता हो, पर उनके स्वर समान हो अथवा नहीं हो तो वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। आचार्य मम्मट के अनुसार अनुप्रास का लक्षण निम्न है -

वर्णसाम्यमनुप्रासः।[72]

विवेच्य महाकाव्य में शब्द चारुत्व का प्रमुख आधायक अलंकार अनुप्रास सैकड़ो पद्यों में शोभायमान है। अनुप्रास से चमत्कृत पद्य यहाँ दर्शनीय है।

यमाश्रित्याद्‌भुतं देवं प्रलयोदयकारकम्।
अपूज्याः पूज्यतां यान्ति पूज्या यान्ति पराभवम्।।[73]

यहाँ य, म, प, ज आदि वर्णों की साम्यता से शब्द अलंकृत हो रहे है।

शिलानां पूजनं कर्तुं ग्रामे-ग्रामे गृहे-गृहे।
रामवेता अजायन्त द्यर्मनिष्ठा-परायणाः।।[74]

श्लेष -

श्लिष्ट शब्दों के द्वारा अनेक अर्थों के कथन किये जाने को श्लेष अलंकार कहते हैं। आचार्य मम्मट ने श्लेष का लक्षण देते हुए कहा है -

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्‌भाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।।[75]

अर्थात अर्थभेद के कारण भिन्न-भिन्न होकर भी जब शब्द एक उच्चारण के विषय होते हुए शिलC प्रतीत होते हैं तो वहाँ श्लेष अलंकार होता है। उदाहरणार्थ -

गिरिमस्तकवासिन्यै हासिन्यै हरिगर्जने।
अत्ता महिषमर्दिन्यै दुर्गायै ते नमो नमः।।[76]

अर्थात् शिखर पर रहने वाली, सिंहों की गर्जना पर हंसने वाली, अत्ता महिष का मर्दन करने वाली दुर्गा तुम्हें नमस्कार।

श्लिष्टार्थ - राष्ट्रपति वी. वी. गिरि पर शासन करने वाली, जन नेताओं की उपेक्षा करने वाली, कांग्रेस अध्यक्ष अत्ता को हराने वाली दुर्गा (इन्दिरा) को नमस्कार।

श्रुत्वा मनिवरादेवं भारतस्य दशां हरिः।
उवाच शमयन् क्षोभं धर्म हानोर्जितं मुनेः।।[77]

यमक

सार्थक होने पर भिन्न अर्थ वाले वर्णसमुदाय या वर्ण श्रृंखला की क्रमशः आवृत्ति या पुनः श्रवण को यमक कहते हैं।

आचार्य मम्मट के अनुसार -

अर्थेसत्यर्थभिन्नानां वर्णानां यः पुनः श्रुतिः।[78]

अर्थात् अर्थ होने पर भिन्न अर्थ वाले वर्ण समुदाय की उसी क्रम में आवृत्ति होने पर यमक अलंकार होता है। उदाहरणार्थ-

कृता ये पणाः पूरिता नैव मन्ये, तथोल्लंघिताश्चापि वित्तानुबन्धाः।
कृतञ्चापि पीठे विधानप्रतीपम्, तथापि प्रसीद प्रसीदैकवारम्।।[79]

उपर्युक्त पद्य में प्रसीद-प्रसीद स्थलों पर भिन्न-भिन्न अर्थ में आवृत्ति वाले पद चारुत्व को स्पष्ट रूप से बढ़ाते हैं।

अन्य उदाहरण दृष्टव्य हैं-

शूलानियैश्च सुमनांसि मतानि भक्त्या, कारापि सारसरणी गणितात्मशक्त्या।
आश्लिष्य मृत्युमपि नो ग्लपितं यदास्यम्, तेषां हिमाद्रिशिखरं धवलं यशोभिः।।[80]

पदे पदे स्थितानुग्रान् वञ्चयित्वास्त्रधारिणः।
रक्षिता राममन्त्रेण प्रययुरिव निर्भयम्।।[81]

अथालंकार

जो अलंकार अर्थ पर आश्रित होते हैं, उन्हें अर्थालंकार कहते हैं। इनका काव्य में विशेष महत्व है। अग्नि पुराणकार ने तो अर्थालंकारों के अभाव में सरस्वती को विधवा ही कह दिया है-

अर्थालंकाररहिता विधवैव सरस्वती।[82]

अर्थलंकारों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। महाकाव्य में प्रयुक्त अर्थालंकार एवं उनके उदाहरण निम्नानुसार है-

उपमा

दो पदार्थों में समानता दिखलाना ही उपमा है। आचार्य ममट ने उपमा का लक्षण इस प्रकार किया है-

साधर्म्यमुपमाभेदे।

अर्थात् उपमेय और उपमान में भेद होने पर उनमें साधर्म्य को ही उपमा कहते हैं। इसकी छटा कतिपय पद्यों में दर्शनीय है-

उत्पाते नकुलाश्चलाश्च मशकालुब्धा यथोदुम्बरे,
कर्णेऽकिंचनटिट्टिभाश्च कृपणा ध्वांक्षाश्च तीर्थे यथा।
रोलम्बा मधुलोलुपाश्च विफला दास्यप्रयासे जडाः,
आयाता नरनारदाः कपिमुखा अस्मिन् महत्यध्वरे।।[83]

यहाँ नेताओं की समानता मच्छर, नकुल, टिड्डी एवं कौओं से की गई है।

इस प्रकार महाकाव्यकार ने उपमा के सभी भेद मालोपमा, पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, सृष्टोपमा आदि का समुचित प्रयोग किया है।

दृष्ट्वा चिरात्स धरणीं भरणीं सुराणाम्
दुर्दैवघोर-रजनी-जवनी-विमुक्ताम्।
वीरप्रचण्ड-भुजदण्ड-विखण्डितार्तिम्
मोदं जगाम मुदितामिव मन्यमानः।।[84]

साकेतसंगरम् से यहाँ उपमा का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

क्रूरा दुष्टाः सुरामत्ताः राक्षसा इव रक्षकाः।
हिंसकाः श्वापदाः घोरा व्यचरन् सरयूतट।।[85]

रूपक

बिना किसी निषेध के उपमेय और उपमान के आरोप को रूपक कहते हैं। आचार्य मम्मट ने रूपक का लक्षण इस प्रकार किया है-

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।
अतिसाम्यादनपह्नुतभेदयोरभेदः।।[86]

अर्थात् उपमान एवं उपमेय में अभेदारोप को रूपक कहा जाता है। यह अभेदारोप उपमान एवं उपमेय में अत्यन्त साम्य के ही कारण होता है। उदाहरणस्वरूप-

सुरभित सितचूर्णापाण्डु वक्त्राश्चिरण्ट्यः
तरुण जनवयस्यान् प्रेमपाशे निबद्धुम्।
विहित वितथयत्नाः कुट्टिनीचक्रबद्धाः
धनिक जनमृगाणां पाशराशिं ग्रथन्ते।।[87]

अर्थात् ये कुट्टिनियाँ सुगन्धित श्वेत-चूर्ण से अपने मुख को गौर वर्ण बनाकर, तरुण मित्रजनों को अपने प्रेम पाश में बाँधने के लिए, जाल पाश में फँसी व्यर्थ प्रयत्न परायणा, धनिक मृगजनों को अपने पाश में फँसाती है। इस पद्य में धनिक जन पर मृग का अभेदारोप होने से रूपक अलंकार है।

यहाँ अन्य पद्य भी दर्शनीय है-

भाले चन्दन-चर्चिकां सुरभितां ताम्बूल-वीटीं मुखे
कौषेयाम्बर-कञ्चुकं सुललितं कण्ठेऽक्षमालां दधन्।
हित्वा नीरस-संगमां भूतिमसौ लेखावलीढाननाम्
ब्राह्मण्यां भजते मुदा द्विजवपुः स्निग्धां सुधावर्षिणीम्।।[88]

किं मे पश्यसि वल्कलं जडमते! पश्याद्य मे पौरुषं,
किं रे दृप्यसि सैन्यसाधनभरे पश्यात्मवंशक्षयम्।
टंकार-ध्वनि-पातितारि-रमणी-गर्भं मनाक् चक्षुषा
रक्षोध्नाशुगवाहकं मरणदं पश्याद्य सज्यं धनुः।।[89]

उत्प्रेक्षा

जहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत की संभावना की जाये, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। आचार्य मम्मट ने इसका लक्षण करते हुए कहा है-

संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेनयत्।[90]

अर्थात् प्रकृत की अप्रकृत के रूप में संभावना करने को उत्प्रेक्षा कहते हैं। कवियों ने कल्पना चमत्कार दिखाने के लिए उपमा के अनन्तर उत्प्रेक्षा का सर्वाधिक प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षा से युक्त यह पद्य दृष्टव्य है-

चला च कापि षोडशी महाभिमानिनी नटी, निजप्रिय-प्रचारकार्य-सङ्कटेऽपि हर्षिणी।
धरामुपागतेव कापि देवलोक-वासिनी, अहोऽद्य यात्यकिंचनं नु पद्मजा पदातिनी।।[91]

अर्थात् महाभिमानिनी नटी के समान कोई चंचल षोडशी भी अपने प्रिय के प्रचार कार्य के कष्ट में भी प्रसन्न है। अहो! ऐसा प्रतीत होता है मानो कि देववासिनी लक्ष्मी पृथ्वी पर आकर पदल ही अकिंचन के समीप जा रही है।

यहाँ पर उत्प्रेक्षा के अन्य पद्य दृष्टव्य है-

परित्यक्त्वा रम्यं वरटवनिता मानससरः
कथं हा सेवन्ते चिकिलकलुषं पल्वलतटम्।
क्व ते हंसाः शुभ्राः क्व च मलजुषो भेकतनयाः
परित्यक्तं मन्ये प्रकृतिकलयाप्यात्मचरितम्।।[92]

मनोः प्रतिष्ठां परिवर्जयन्तः, कुर्वन्त्यमी मानवधर्मवार्ताम्।
नूनं मृषैते समताविमूढाः, मृगान् मृगेन्द्रैः सह योजयन्ति।।[93]

अतिशयोक्ति

जब उपमान के द्वारा उपमेय का ज्ञान हो या उपमान उपमेय का निगरण कर उसके साथ अभेद स्थापना करे तो वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। आचार्य मम्मट ने अतिशयोक्ति का लक्षण इस प्रकार से किया है-

निगीर्याध्यवसानंतु प्रकृतस्य परेण यत्, प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्।
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः, विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा।।[94]

अर्थात् उपमान द्वारा उपमेय का निगरण, प्रस्तुत का अन्य रूप से वर्णन तथा यदि के समानार्थक शब्द लगाकर कल्पना करने और कार्यकारण के पौर्वापर्य-विपर्यय में अतिशयोक्ति होता है। उदाहरणार्थ-

मणिमनोहरहारविभूषिताः स्तनभरोन्मदमेदुर मन्मथाः।
पृथुनितम्बनिवारितवारणा अभिययुर्वनिता विजयोत्सवम्।।[95]

इस पद्य में नितम्बों द्वारा हाथियों का हटाने के कारण अतिशयोक्ति अलंकार है क्योंकि नितम्बों से अधिक पृथुलता, विशालता हाथियों की है जिनका नितम्बों के द्वारा हटाया जाना असम्भव है।

भृत्याभरणम् से अतिश्योक्ति अलंकार का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

लक्ष्मीर्लोचनगोचरा भवति चेत् त्रातुं न विष्णुः प्रभुर्
वाणी चेद् विजहाति वेधसमिमं स्निग्धा न चित्रं महत्।
नित्यं कोपकरालिकापि भजते काली शमं मत्पुर
इष्टं में विजयां निपीय कुरुते प्रीत्याशुतोषोऽप्यसौ।।[96]

साकेतसंगरम् से अतिश्योक्ति अलंकार का निम्न पद्य दर्शनीय है-

भोः भोः बाबर-वंशजाः! मनसि नो कृत्वा मुधागर्वितम्,
उद्वेज्याः कपिशंकया नु बलिनो वज्राङ्गवीरा अमी।
नो चेद् यास्यथ रावणस्य कुगतिं लंकापतेर्दर्पिणः
उद्धर्तुं कृतनिश्चया रघुपतेर्जन्मस्थलीं तेऽधुना[97]

दृष्टान्त

जहाँ उपमेय, उपमान तथा उनके साधारण धर्मों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। आचार्य मम्मट ने इसका लक्षण निम्न प्रकार से किया है-

दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्।
एतेषां साधारणधर्मादीनां दृष्टान्तोनिश्चयो यत्र स दृष्टान्तः।।[98]

अर्थात् जब उपमेय, उपमान तथा उनके साधारण धर्म में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का निश्चय हो तो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। उदाहरणार्थ यहाँ एक पद्य दृष्टव्य है-

हरिप्रदत्तेन वरेण मत्तस्तस्यैव जातो विपरीत एषः।
भस्मासुरोऽवाप्य यथाशुतोषात् वरं, नु तस्यैव रुजं चकार।।[99]

अर्थात् यह दुष्ट कलि विष्णु भगवान के द्वारा प्रदत्त वर की मस्ती में उनके ही विपरीत हो गया। जैसे भस्मासुर शंकर से वर प्राप्त करके उनके ही विपरीत हो गया था।

यहाँ विष्णु से वर प्राप्त कर कलि के विपरीत होने को उपमेय वाक्य तथा शिव से वर प्राप्त कर भस्मासुर के विपरीत होने को उपमान वाक्य में तथा साधारण धर्म विपरीत को बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से अभिव्यक्त करने के कारण दृष्टान्त अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास

आचार्य मम्मट के अनुसार इसका लक्षण निम्न हैं-

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येण परेण वा।।[100]

अर्थात् जहाँ साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा सामान्य का विशेष के साथ अथवा विशेष का सामान्य के साथ समर्थन किया जाये ता वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। अर्थान्तर शब्दार्थ को अलंकृत करना महाकवियों को विशेष प्रिय रहा है। पं. दवे जी ने अपने महाकाव्यों में अर्थान्तरन्यास का पर्याप्त प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ-

प्रत्याशिपत्रं यदि नो लभेय, दशा मदीया भवितातिदीना।
क्षीणेषु पुण्येषु यथा दिविस्थो निवर्तते मर्त्यपदं विपन्नम्।।[101]

अर्थात् यदि मुझे प्रत्याशी पत्र नहीं प्राप्त होता है, तो मेरी स्थिति वैसी ही दयनीय हो जावेगी जैसी पुण्यक्षीण हो जाने पर कोई स्वर्गस्थ प्राणी की विपन्न मर्त्यलोक लौट आने पर होती है।

प्रस्तुत पद्य में (प्रत्याशी) सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन किया गया है, अत: यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यहाँ पर अर्थान्तरन्यास का एक अन्य पद्य दृष्टव्य है-

अग्रजान्त्यजभेदोऽत्र, न कार्यो भूतिमिच्छता।
मदर्चायां शिवोक्तायां, वामाध्वैव मतो वरः।।[102]

विभावना

प्रसिद्ध कारण के बिना ही कार्योत्पत्ति के वर्णन में विभावना अलंकार होता है। आचार्य मम्मट के अनुसार-

क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।[103]

अर्थात् कारण का प्रतिषेध करके भी फल का कथन करना विभावना है। उदाहरणार्थ-

समर्पिताशेषविभूतिकोषाः, बलायुधोद्दामगजाश्ववित्ताः।
ऋतेऽपि युद्धाद् विजिता नृपाला यता वशं वल्लभपाटवेन।।[104]

उपर्युक्त पद्य में युद्धरूपी कारण का प्रतिषेध होने पर भी विजयरूपी फल का कथन किये जाने से विभावना अलंकार है।

विशेषोक्ति

पयाप्त तथा पूर्ण कारण के होने पर भी कार्योत्पत्ति का न होना विशेषोक्ति अलंकार है। मम्मट के अनुसार लक्षण निम्न हैं-

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।
मिलितेष्वपि कारणेषु कार्यस्याकथनं विशेषोक्तिः।।[105]

अर्थात् अखण्ड़ या पूर्ण कारण के होते हुए भी कार्य या फल का न होना विशेषोक्ति है। उदाहरणार्थ-

प्राणान्तोऽपि रसायनैरभिनवैः द्रागेव सम्भाव्यते,
धान्यं सम्पुटितं विषेण मलिनं, नीरंच नालीमलैः।
पेयं कीटपतंग-पंकजनितैः पूर्ण विषैः पीयते,
मृत्योर्हेतुकुलं विकीर्य कुरूते, प्राणार्पणे गर्वितम्।।[106]

अर्थात् नये-नये रसायनों से मृत्यु की शीघ्र सम्भावना रहती है। अनाज विष से सम्पुटित मिलता है। जल नाली की गंदगी से मलिन है, पेय पदार्थ भी कीट पतंगों के कीचड़ से उत्पन्न विष भरे है। आश्चर्य है- मृत्यु के सारे कारणों को फैलाकर भी शासन प्राण दान का गर्व करता है।

उपर्युक्त पद्य में मृत्यु के सारे कारणों क होने पर भी शासन के द्वारा प्राणदान का गर्व विशेषोक्ति अलंकार है।

स्वभावोक्ति

किसी वस्तु की जाति, स्वभाव या गुण का यथावत् वर्णन करने में स्वभावोक्ति अलंकार होता है। आचार्य मम्मट ने इसका लक्षण देते हुए कहा है-

स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।[107]

अर्थात् बालकादि की स्वाश्रित या आत्मगत क्रिया एवं रूप के वर्णन को स्वाभावोक्ति कहा है। उदाहणार्थ-

नाकर्णितं हितकरं वचनं गृहिण्याः, नैवादृतञ्च जननीरुदितं विरोधे।
वित्ते हुते च निखिले विकलं कुलं मे, हा वंचितोऽस्मि नपनीतिमरीचिकाभिः।।[108]

चुनाव में पराजित एक राजनेता की आत्मपीड़ा - मैंने अपनी पत्नी की हितकर बात नहीं सुनी, विरोध में माँ के रोने पर भी ध्यान नहीं दिया, अब सारा धन (चुनाव में) होम देने पर मेरा कुल व्याकुल हो रहा है। हाय! मैं राजनोति की मृगमरीचिका से ठगा गया हूँ।

उपर्युक्त पद्य में पराजित राजनेता की आत्मपीड़ा का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है।

षड्र्तुभावितं सदा, सरित्प्रवाह-पावितम्।
लतावितानमण्डितं, प्रफुल्लपादपार्चितम्।।[109]

अयोध्यानगरी की महिमा के गान का स्वाभाविक वर्णन करते हुए पं. दवे जी ने यों कहा है-

पुरी पुण्यश्लोका भवजलधि नौकाऽमरधरा,
समृद्धा साम्राजां रविकुलमणीनां प्रभुतया।
अवन्ध्या तेजोभिर्गुरवर-वसिष्ठस्य तपसा-
मयोध्या सद्वन्धा जयति जननी पुण्यजनुषाम्।।[110]

स्मरण

पूवानुभूत पदार्थ के सदृश किसी अन्य पदार्थ को देखकर उसकी स्मृति को स्मरण अलंकार कहते हैं। मम्मटानुसार लक्षण निम्न हैं-

यथानुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः स्मरणम्।[111]

उदाहरणस्वरूप-

स्वार्थप्रमत्तामरकामिनीनाम्, लक्ष्मीरूपालम्भवचो निशम्य।
स्वकान्तलीलां हृदयाभिरामाम् , संस्मारयन्ती समुवाच वाचम्।।[112]

श्रुत्वैतदुक्तं सहजं रमायाः, पत्युर्विधेयत्वमुपागतायाः।
देवाङ्गनानामपि कृष्णमाया, युगान्तरस्था स्मृतिमाजगाम।।[113]

अर्थात् पति के निर्देश में विवश लक्ष्मी की सहज वाणी सुनकर देवांगनाओं को भी अन्य युग में की गई कृष्ण की माया याद आई। उक्त पद्य में पूर्वानुभूत विष्णु की लीला का स्मरण, लक्ष्मी के द्वारा उल्लेखित की गई वर्तमान विष्णु की लीला को देखकर (सुनकर) किया गया है। अतः यहाँ स्मरण अलंकार है।

भ्रान्तिमान्

अत्यधिक सादृश्य के कारण उपमान में उपमेय की निश्चयात्मक भ्रान्ति को भ्रान्तिमान अलंकार कहते हैं। आचार्य मम्मट भ्रान्तिमान का लक्षण देते हुए कहते हैं-

भ्रान्तिमानन्यसंवित्तत्तुल्य दर्शने।[114]

अर्थात् समान वस्तु को देखकर अन्य वस्तु की प्रतीति ही भ्रान्तिमान् अलंकार है।

उदाहरण-

विवेद नो सीधुमदप्रमत्ता, श्लेषप्रपन्ना शठनायकस्य।
येनापनीतोपयमानुबन्धात्, तस्यैव पाशं पतिता विसंज्ञा।।[115]

कोई नायिका सुरा में प्रमत्त हुई, किसी शठ नायक के बाहुपाश में पड़ गई, वह विसंज्ञ अवस्था में यह जान नहीं पाई कि जिसने उसके साथ विवाह बन्धन तोड़ा था उसी के पाश में वह पड़ गई।

यहाँ यह नायिका के द्वारा शठनायक जैसा समझकर अपने परित्यक्त पति के ही बाहुपाश में पड़ना भ्रान्तिमान अलंकार है।

सन्देह

उपमेय में उपमान के संशय को सन्देह अलंकार कहते हैं। आचार्य मम्मट के अनुसार लक्षण निम्न है-

ससंदेहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः।[116]

अर्थात् सादृश्य के कारण उपमान का उपमेय के साथ संशयात्मक ज्ञान को संदेह अलंकार कहते हैं। उदाहरणस्वरूप-

किं नः काम्यति मेदिनीयमधुना भूयाऽसृजातर्पणं
कङ्काल-पचयं दिदृक्षति पुनः किं वा रणे युध्यताम्।
आहोऽिवन्मु सलोदयस्य मिषतो हन्तुं यदून् इच्छति,
दुष्टानां दलनाय वाञ्छति पुनः किं वा महाभारतम्।।[117]

ग्रीवा चुम्बिकचा विकुंचितकुचा शृंङ्गारशून्याङ्गका,
देहे पौरुषकंचुकं पदयुगे यामं दधाना दृढ़म्।
स्वच्छन्दं युवकैर्विनोदचपलैर्यान्ती समं निर्भया,
नारीयं नर एष वेति न पुनर्विज्ञायते पृष्ठतः।।[118]

ग्रीवा तक कटे केशवाली, कुंचित कुचा, शृंगारहीन अंगों वाली, शरीर पर पुरुषों का चोला पहने, पैरों में तंग पायजामा धारण किये हुए, विनोद चपल युवकों के साथ निर्भय होकर स्वच्छन्द रूप से जाती हुई नारी, पीठ से नारी है कि पुरूष? ज्ञात ही नहीं होता।

यहाँ वेशभूषा सादृश्य से नारी और पुरुष में संशय संदेह अलंकार द्वारा चमत्कार उत्पन्न होता है। एक अन्य पद्य यहाँ दर्शनीय है-

कीर्त्या किं क्षुदुपद्रवावलितया किं वा दरिद्रैगुणैर्
दत्ते किं शुचिता विहाय विपदं भक्त्यापि संभाविता।
लब्धं किन्नु विना वने विचरता तापं प्रतापेन वा
नष्टं किं यवनाङ्घ्रिधृष्टशिरसो मानस्य मानं विना।।[119]

विरोधाभास

जहाँ वास्तविक विरोध न होकर विरोध का आभास मात्र हो तो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। आचार्य मम्मट ने उसका लक्षण इस प्रकार दिया है-

विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुध्दत्वेन यद्वचः।
वस्तुवृत्तेनाविरोधेऽपि विरूध्दयोरिव यदभिधानं स विरोधः।।[120]

अर्थात् जब दो पदार्थों में परस्पर वास्तविक विरोध न होने पर भी उनमें विरोध का वर्णन किया जाये तो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।

उदाहरणार्थ

चित्रंगतोऽपि कुरुते जनचित्तशुद्धिं, तापे स्थितोऽपि तनुते जनतापशान्तिम्।
हिंस्रैर्हतोऽपि दिशतेऽद्य जनानहिंसाम्, गांधिर्गतोऽपि हरतीह समाधिमाधिम्।।[121]

अर्थात् वह महात्मा आज चित्र में बैठा भी जनता के चित्त को शुद्ध कर रहा है। धूप में तपता हुआ भी, जनता का ताप शान्त कर रहा है। हिंसकों के द्वारा मारे जाने पर भी लोगों को

अहिंसा का मार्ग दिखा रहा है। आज समाधि में बैठा हुआ भी वह महात्मा गाँधी हमारी व्याधि को मिटा रहा है।

इस पद्य में महात्मा हिंसक लोगों को अहिंसा का पाठ पढ़ा रहा है। समाधि में बैठा हुआ व्याधि को मिटा रहा है। इस प्रकार विरोधी गुणों का वर्णन होन से विरोधाभास अलंकार है।

वक्रोक्ति

वक्ता के अन्यार्थक वाक्य का यदि श्रोता, काकु या श्लेष के द्वारा अन्यार्थ कल्पना कर दे तो वहाँ वक्रोक्ति होती है। आचार्य मम्मट ने सर्वप्रथम वक्रोक्ति का ही निरूपण किया है। इनके अनुसार-

यदुक्तमन्यथावाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा।।[122]

अर्थात् वक्ता के किसी अभिप्राय से कहा गया वाक्य यदि श्रोता द्वारा काकु या श्लेष से दूसरे अभिप्राय में योजित हो जाये तो वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरणस्वरुप-

विदेशिराज्यर्पितचेतनानां स्वहस्तदग्धात्मनिकेतनानाम्।
सुराङ्गनाराधनतत्पराणां यशो न कस्याविदितं क्षितीशाः।।[123]

अरे क्षितीश्वरों! विदेशियों के हाथ में अपनी शक्ति समर्पित करने वाले, अपने हाथ से अपना घर जलाने वाले, सुरा और सुन्दरी की अराधना में समय व्यतीत करने वाले आप लोगों की कीर्ति को कौन नहीं जानता? अत: यहाँ वक्रोक्ति अलंकार है।

अन्य उदाहरण-

सिध्यर्धि-समवेतास्ते वक्रतुण्डा गुहेश्वराः।
अरिष्टा अपि मोदन्ते गिरिजाशङ्करात्मजाः।।[124]

वक्रोक्ति का निम्न पद्य दर्शनीय है-

निरूद्धा नियता यात्रा कार्तिक्यां तीर्थवासिनाम्।
पुण्य पर्वणि पापेन निरूद्धं देवदर्शनम्।।[125]

समीक्षा- शब्दलंकार कविता-कामिनी की शोभा को वर्धित करने वाले रसभाव को समुज्ज्वल करने में योगदान करने वाले हैं। कतिपय स्थलों पर अलंकार भाव के प्रवाह को अवरूद्ध से करते प्रतीत होते हैं किन्तु विषय-वस्तु के विस्तृत होने से एवं आधुनिक लेखन का प्रभाव बना

रहने से इस युग में होना स्वाभाविक ही है। अलंकार भाषा भाव की गति के अनुरूप ही चमत्कार उत्पन्न करने वाले हैं। पं. दवे जी ने अपने तीनों महाकाव्यों में शब्द अलंकार एवं अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग अच्छी तरह से किया ह। अत: हम कह सकते हैं कि पं. दवे जी अलंकार प्रयोग में कुशल कवि है।

(2) भाव पक्ष - रस

रस का स्वरूप -

काव्य के सुनने या पढ़ने से श्रोता या पाठक के चित्त में जो विलक्षण अलौकिक आनन्द आता है उसी का नाम 'रस' है- 'रस्यते अनेन इति रस:'।

रस का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए आचार्य भरतमुनि ने लिखा है-

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"[126]

विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारिभावों का स्थायिभावों के साथ संयोग होने से रस की निष्पत्ति होती है-

कारणान्यथ: कार्याणि सहकारीणियानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।
विभावानुभावास्तत् कथयन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायिभावो रसः स्मृतः।।[127]

अर्थात् लोक में रति आदि रूप स्थायिभाव के जो कारण, कार्य तथा सहकारी होते हैं, वे यदि नाटक या काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो क्रमश: विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं और उन विभावादि से व्यक्त वह रति आदि रूप स्थायोभाव रस कहलाता है। स्थायोभाव मन के भीतर स्थिर रूप से रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो उठता है और हृदय में एक अपूर्व आनन्द का संचार कर देता है। इस स्थायिभाव की अभिव्यक्ति ही रसास्वाद जनक या रस्यमान होने से रस रूप शब्द से बोध्य होती है।

स्थायीभाव- नव्य मनोविज्ञान के अनुसार दस मन: संवग माने गये हैं। क्रमश: ये इस प्रकार हैं- भय, क्रोध, जुगुप्सा, शोक, रति, विस्मय, हास, निर्वेद, उत्साह और वात्सल्य स्नेह। इन स्थायिभावों से क्रमश: भयानक, रौद्र, वीभत्स, करूण, शृंगार, अद्भुत, हास्य, शान्त, वीर और वात्सल्य रस की निष्पत्ति होती है।

विभाव- रसानुभूति के कारणों को विभाव कहते हैं। ये दो प्रकार के हैं- आलम्बन और उद्दीपन।

अनुभाव-अनुभाव आन्तर रसानुभूति से उत्पन्न उसकी बाह्याभियक्ति के प्रयोजक शारीरिक व्यापार हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य विश्वनाथ का कथन है-

उदबुद्धकारणैः स्वैः स्वैवहिभावं प्रकाशयन्।
लोक कार्यरूपः सोनुभावः काव्यनाट्ययोः।।[128]

व्यभिचारोभाव- उद्बुद्ध हुए स्थायिभावों की पुष्टि तथा अपचय में जो उनके सहकारी होते हैं उनको व्यभिचारिभाव कहते हैं। इनकी संख्या 33 है-

निर्वेदग्लानिशंकाख्यास्तथाऽसूया मद श्रमाः।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्ता मोहः स्मृतिर्धृतिः।।
व्रीड़ा चपलता हर्ष आवेगो जड़ता तथा।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्राऽपस्मार एव च।।
सुप्तं प्रबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता।
मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च।।
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः।।[129]

यहाँ कविराज विश्वनाथ द्वारा निर्दिष्ट और नौ रसों में से महत्त्वपूर्ण तीनों रस संयोजन के काव्यशास्त्रीय प्रतिमान को पं. श्रीराम दवे ने स्वीकार किया तथा शृंगार रस को अंगी या प्रधान रस के रूप में वर्णित किया है।

अंगीरस-शृंगार

'शृंगार' शब्द 'ऋ' गतौ धातु से निष्पन्न हुआ है। **'शृंगं प्राधान्यम् इयर्ति इति शृंगारः'** शृंग अर्थात् कूट भावना के उच्च शिखर पर पहुंचने वाला रस शृंगार कहलाता है।

'शृंगे प्रभुत्वे शिखरे चिह्ने क्रीडाम्बुयन्त्रके।[130]

शृंगार रस की अनेक विद्वानों ने परिभाषाएँ दी है जो निम्न प्रकार हैं-

'स्त्रीपुंसयोर्मिथो रागः वृद्धि शृंगार उच्यते।[131]

धनंजय कहते हैं कि परस्पर अनुरक्त नायक नायिका के हृदय में रम्य देश, काल, कला, देश, उपभोग आदि के सेवन द्वारा आत्मा की जो प्रमुदित अवस्था जाग्रत होती है, वह रति स्थायी भाव है और यही रति जब नायक नायिकाओं के अंगों की मधुर चेष्टाओं द्वारा चर्वणा का विषय बनती है, शृंगार रस कहलाती है।

रम्यदेश-कला-काल-देशभोगादिसेवनैः
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः
प्रहृष्यमाणा शृंगारो मधुरांग-विचेष्टितैः।।[132]

शारदातनय ने भावप्रकाशन में कहा है कि शृंगार के लिए ललित विभाव अपेक्षित होते हैं। इन्हीं में सुखानुबन्धी मानस विकास उदित होता है, जिसमें सत्त्व और रजस दोनों का संस्पर्श होता है। यही सुखानुबन्धी विकास शृंगार है और इसी का रसन होता है-

विभावा ललिताः सत्त्वानुभावव्यभिचारिभिः।
यदा स्थायिनी वर्तन्ते स्वीयाभिनयसंश्रया।
तदा मनः प्रेक्षकाणां रजस्सत्वव्यपाश्रयि।
सुखानुबन्धी तत्रत्यो विकारो यः प्रवर्तते।
सः शृंगारः - रसाभिख्या लभते रस्यते च तैः।।[133]

सिंहभूपाल के अनुसार 'विभाव, अनुभाव, सात्विक और संचारीभावों द्वारा सामाजिकों के हृदय में रस्यमानता को प्राप्त रति ही शृंगार है।

'विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीयमाना स्वाद्यत्वं रतिः शृंगारः उच्यते।।[134]

भानुदत्त के मतानुसार 'युवति और युवकों के परस्पर परिपूर्ण प्रमोद आनन्द को अथवा सम्यक् रूप से पूर्णता को प्राप्त करता हुआ रतिभाव ही शृंगार है।'

'यूनौ परस्परं परिपूर्णः प्रमोदः सम्यक् पूर्ण रतिभावो वा शृंगारः।[135]

आचार्य विश्वनाथ शृंगार को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि शृंग का अभिप्राय है 'मन्मथोद्भेदः। इस आधार पर शृंगार का अर्थ हुआ 'अनुभूति का विषय बना वह रस जो कामोद्भेद से सम्भूत हुआ है।'

'शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते।।[136]

स्पष्ट है कि संस्कृत काव्याचार्यों ने रति नामक स्थायी भाव के स्वरूप का प्रदिपादन करने के परिप्रेक्ष्य में शृंगार रस के स्वरूप को परिभाषित किया है, क्योंकि अपचय, परिपाक व अभिव्यक्ति की एक विशेष अवस्था में स्थायी भाव ही सहृदय की चर्वणा का विषय होता है इसलिए आचार्यों ने शृंगार को परिभाषित करते हुए रति स्थायी भाव को विशेष महत्व दिया है।

विभाव-

'तत्र शृंगारस्य स्त्रीपुंसावालम्बने चन्द्रिका वसन्त विविधोपवन रहः स्थानादय उद्दीपनविभावाः।[137]

अर्थात् शृंगार रस के स्त्री-पुरुष आलम्बन विभाव, चन्द्र ज्योत्सना, वसन्त ऋतु, अनेक तरह के उपवन, एकान्त स्थान आदि उद्दीपन विभाव है।

अनुभाव-

'तन्मुखावलोकन-तद्गुणश्रवण कीर्त्तनादयोऽन्यो सात्त्विकभावाश्चानुभावाः।[138]

अर्थात् प्रेमपात्र के मुख का दर्शन, उसके गुणों का श्रवण और कीर्तन प्रभृति तथा स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, विवर्णता, अश्रुपात, प्रलय - ये आठों सात्विक भाव अनुभाव होते हैं

व्यभिचारी भाव-

स्मृतिचिन्तादयो व्यभिचारिणः।[139]

अर्थात् स्मरण, चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

शृंगार के भेद-

रसगंगाधरकार शृंगार के दो भेद बताते हैं- संयोग व वियोग या विप्रलम्भ -

'तत्र शृंगारो द्विविधः संयोगो विप्रलम्भश्च।[140]

आचार्य मम्मट व आचार्य विश्वनाथ भी शृंगार के दो भेद मानते हैं-

'तत्र शृंगारस्य द्वौ भेदौ, सम्भोगो विप्रलम्भश्च।[141]

विप्रलम्भोऽथ संभोग इत्येष द्विविधो मतः।।[142]

1. संयोग शृंगार -

जब स्त्री पुरुषों के संयोग काल में रति उपभुक्त होती रहती है, तब संयोग शृंगार होता है।

रतेः संयोगकालावच्छिन्नत्वे प्रथमः।[143]

साहित्य दर्पणकार का कथन है कि 'जहाँ एक दूसरे के प्रेम में अनुरक्त विलासी नायक-नायिका परस्पर दर्शन, स्पर्शन आदि का सेवन करते हैं, वह संयोग शृंगार है।

'दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ।
यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः।[144]

उनकी दृष्टि से संभोग शृंगार के भेद-प्रभेदों की गणना नहीं की जा सकती। देश, काल, परस्परावलोकन, आलिंगन, अधरपान, परिचुम्बन आदि के कारण संभोग के अनन्त भेद हो सकते हैं इसलिए काव्यालोचकों ने यह माना है कि इस शृंगार प्रकार का एक ही रूप है, वह है संभोग शृंगार।

'संख्यातुमशक्यतया चुम्बनपरिरम्भनादि बहुभेदात्।
अयमेकः एव धीरैः कथितः संभोग शृंगारः।[145]

फिर भी आचार्य विश्वनाथ ने सामान्यतः संयोग शृंगार के 4 भेदों का वर्णन किया है-

1. पूर्वरागान्तर संयोग 2. मानान्तर संयोग 3. प्रवासान्तर संयोग 4.करुणविप्रलम्भान्तर संयोग

साहित्यदर्पणकार का स्पष्ट मत है कि 'विप्रलम्भ के अभाव में संयोग शृंगार चवर्णा का विषय नहीं होता है।'

'न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।[146]

2. विप्रलम्भ शृंगार

जब रति स्त्रियों के वियोगकाल में उपभुक्त नहीं होती रहती है, तब विप्रलम्भ शृंगार कहलाता है।

'वियोगकालावच्छिन्नत्वे द्वितीयः।[147]

अर्थात् विप्रलम्भ का अर्थ होता है- 'संभोग सुख के आस्वाद से परम्परानुगत नायक नायिका का विशेष रूप से वंचित रहना। भोज ने विप्रलम्भ की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'जहाँ रति नामक भाव, प्रकर्ष को प्राप्त कर ले परन्तु अभीष्ट को प्रान्त न कर सके, वहाँ विप्रलम्भ होता है।'

भावोदया रतिर्नाम प्रकर्षमधिगच्छति।
नाधिगच्छति चाभीष्टं विप्रलम्भस्तदोच्यते।।[148]

विश्वनाथ कविराज के अनुसार 'जहाँ नायक नायिका की रति तो प्रगाढ़ होती है किन्तु परस्पर मिलन नहीं हो पाता, वहाँ विप्रलम्भ होता है।'

'यत्र तु रतिः प्रकृष्टाः नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ।[149]

रुद्रट ने विप्रलम्भ के प्रथमानुराग, मान, प्रवास और करुण ये चार भेद माने हैं। भोज ने उक्त चार भेदों को स्वीकार किया है। विश्वनाथ भी इन्हीं भेदों का उल्लेख करते हैं। मम्मट ने

विप्रलम्भ के पाँच प्रकार बताये हैं- अभिलाषा हेतुक, विरह हेतुक, ईर्ष्या हेतुक, प्रवास हेतुक और शाप हेतुक-

अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पंचविधः।[150]

इसमें एक विरह हेतुक नया उपभेद है। अभिलाषा हेतुक पूर्वराग है, ईर्ष्या हेतुक माना है। शापहेतुक को कुछ ने करुण में कुछ ने प्रवास में माना है।

पं. दवे जी के महाकाव्य में दोनों भेदों का विप्रलम्भ व संयोग का परिपुष्ट निदर्शन प्राप्त होता है।

एक कृषक वनिता अपने पति के वियोग में कैसे व्याकुल होकर वसन्त को उलाहना देती है, इसका मनोहारी चित्रण इस प्रकार किया है-

दुर्भिक्षे पशुजीवनावनकृते दूरं गतो वल्लभः,
शुष्केयं वसुधापि वारिविरहे नालंकृता दृश्यते।
श्रूयन्ते न च दूरतोऽपि मथुरावासन्तिका गीतिकाः,
केनाहं सखि! पूरयामि मनसा प्रीतिं वसन्तागमे।।[151]

अर्थात् यहाँ परदेश गया कान्ता का प्रिय आलम्बन विभाव, वसन्त का आगमन उद्दीपन विभाव, वसन्त के आगमन पर प्रिय का स्मरण एवं अनुभूति आदि व्यभिचारी भावों से तथा प्रिय के प्रति रति आदि स्थायी भाव को विप्रलम्भ श्रृंगार रूप में पुष्ट करते हैं।

कवि ने राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य के 16 वें सर्ग में तो मानों कि संभोग श्रृंगार की छटा ही बिखेर दी है। सम्भोग श्रृंगार का यह पद्य अत्यन्त मनोहारी है।

शिलीमुखः कोऽपि मधुप्रमत्तः, मधुव्रतां कामपि चारुगात्रीम्
बलाद् विचुम्बन् करवर्जितोऽपि, नीतो विसंज्ञां चषकाधरेण।।[152]

यहाँ भ्रमर और भ्रमरी आलम्बन विभाव, मदिरा में मत्त उद्दीपन विभाव, चुम्बन से उत्पन्न रोमांच विभाव एवं चुम्बन से भ्रमर के निषेध की चिन्ता व्यभिचारी भाव है। इसमें रति आदि स्थाई भाव होने से संभोग श्रृंगार उपचित होकर पुष्ट होता है।

यहाँ पर एक अन्य पद्य श्रृंगार रस का दृष्टव्य है-

हसति भृतको दृष्ट्वा चेन्मां प्रियाप्रियसाधकम्
विमलमुकुरे स्वीयं वक्त्रं जडो ननु पश्यतु।
अकिरदमितं श्मश्रूत्कूर्चे पुरा य इहोर्जितम्
भृति-रति कृते सः स्वीयास्यं करोति विलोमकम्।।[153]

वीर रस-

रस सूत्र के प्रणेता आचार्य भरत के अनुसार वीर रस उत्तम प्रकृति के पुरुषों में अवस्थित तथा उत्साह स्थायी भाव वाला होता है। आचार्य विश्वनाथ वीररस का स्वरूप वर्णित करते हुए कहते हैं-

उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावः
महेन्द्रदेवता हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः।[154]

अर्थात् वीर रस में उत्कृष्ट धीरोदात्त रूप प्रकृति वाला नायक होता है और वह उत्साह नामक स्थायी भाव वाला होता है। वीराधिपति महेन्द्र उसका देवता और वह सुवर्ण वर्ण वाला कहा गया है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। उत्साह चित्त का उत्कर्ष विशेष है।

राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में वीर रस की अभिव्यक्ति अधिसंख्य प्रसंगों में हुई है। पं. श्री राम दवे ने विष्णु को महाकाव्य का नायक एवं कलि को महाकाव्य में प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत किया है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में अनेक स्थानों पर वीर रस की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है।

इस महाकाव्य में प्रधानमंत्री के 1984 के लोकसभा चुनाव का वर्णन होने से भी तत्कालीन राजीव गाँधी की माता इन्दिरा द्वारा जीते गये युद्धों के वर्णन से भी वीर रस स्वतः स्फुटित हो जाता है। इससे सम्बन्धित यहाँ कुछ पद्य दृष्टव्य हैं-

पाकारिमानमर्दिन्या इन्दिराया यशोऽमलम्।
वीर्यंच विश्वविख्यातं गीयतेऽस्मिन् स्वयंवरे।।[155]

जयति वियलक्ष्म्या भारतं भूषयन्ती, रिपुबलदरदाने साहसं दर्शयन्ती।
स्त्रियमिति हृदि मत्वा मानिनं मर्दयन्ती, स्फुरति जगति विख्यातेन्दिरा वैजयन्ती।।[156]

जयति जगति राष्ट्रोत्कर्षरूपं दिशन्ती, जनक-विहित-दोषं लीलया क्षालयन्ती।
अगणित जन हत्याकारिणो दण्डयन्ती, निगडितरहमानं बन्धनान्मोचयन्ती।।[157]

उपरोक्त पद्यों में इन्दिरा गाँधी के शौर्य का वर्णन है जो उसने पाकिस्तान के साथ युद्ध में दर्शाया था तथा अन्तिम पद्य में बांग्लादेश के विभाजन का वर्णन है जो उनकी शूरता एवं वीरता का ज्वलन्त प्रमाण है।

उपरोक्त पद्यों में वीर रस का आलम्बन एक नायिका को माना गया है। यह आधुनिक कवि पं. दवे का एक विशेष प्रयोग है जो लीक से हटकर रचना शैली का ज्वलन्त प्रमाण है, क्योंकि 20 वीं शती से पूर्व वीर रस का आलम्बन नायक को ही मानते हैं, न कि नायिका को और यहाँ अस्वाभाविक जैसी कोई बात भी नहीं हैं, क्योंकि यहाँ कवि का कल्पित कथानक या कल्पना ही नहीं है, उक्त घटना का दृश्य ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणित भी है।

यहाँ आलम्बन भाव पाक आदि, उद्दीपन उनकी दुर्नीति के आधार पर की गई प्रतिक्रिया, इन्दिरा गांधी का शौर्य एवं चातुर्य अनुभाव है तथा इन्दिरा की बुद्धि, उग्रता एवं आवेग संचारी भाव है एवं उनके हृदय में विद्यमान उत्साह स्थायी भाव यहाँ वीर रस को उपचित करता है।

पं. दवे श्रृंगारिक कवि होते हुए भी उन्होंने वीर रस के वर्णन में अपनी लेखनी को पूर्ण रूप से मुक्त रखा है। एक उत्साह युक्त उक्ति में वीर रस स्वत: ही स्फुटित हो जाता है।
यहाँ पर वीर रस का पद्य दृष्टव्य है-

वीर्यं विनाशयति सैन्यगता मलाका, धैर्यं निहन्ति सुधियां सदनप्रविष्टा।
शीलं हरत्यभिमुखं कुलजाङ्गनानाम् , राष्ट्रास्मिताञ्च विनिहन्ति गता प्रशिक्षाम्।।[158]

साकेतसंगरम से वीर रस का पद्य दर्शनीय है-

कार्यसिद्ध्यै धृतोत्साहा उल्लंघ्य सरितो गिरीन्
मारुतेः साहसं शौर्य वहन्तो न गताः श्रमम्।।[159]

करुण रस-

आयार्य भरत ने करुण रस की उत्पत्ति 'शोक' नामक स्थायी भाव से मानी है-

'अथ करुणो नाम शोकस्थायीभावप्रभव: उज्ज्वलवेषात्मकः।[160]

वनवासियों की दीनता के वर्णन में करुण रस स्वत: ही परिपुष्ट हो जाता है। जैसा कि निम्न उदाहरण में दर्शाया गया है-

न वासो नो निवासोऽस्ति न चान्नं नाम्बुसाधनम्।
तृणान्नकृतनिर्वाहा जीवामो वनवासिनः।।[161]

'हम वनवासी तो घास खाकर ही जीवनयापन कर रहे हैं।' वाक्य करुण मर्मस्पर्शी है।

यहाँ पर करुण रस का एक अन्य पद्य दृष्टव्य है-

श्रीमन् साधु कृतं गजो नियमितो मत्तोऽङ्कुशेनाञ्जसा
हन्तव्यो नरभक्षको मृगपतिर्लब्धः सदा शोणिते।
दृष्टव्यः करुणादृशा मृगशिशुर्व्याधस्य पाशङ्गतः
क्षन्तव्यः सकृदेव भुक्तभुजगः केकी च बद्धाञ्जलिः।।[162]

यहाँ पर एक करुण रस का पद्य दर्शनीय है-

दयाल्वो महात्मानो दृष्ट्वा हिंसक-दुष्कृतम्।
शोक-दुख-विनिर्मुक्ता अप्यापुर्वेदनां पराम्।।[163]

रौद्र रस-

आचार्य भरत के अनुसार रौद्र का 'क्रोध' स्थायी भाव होता है। इसका उद्‌भव राक्षस, दानव तथा उद्धत प्रकृति के मनुष्यों के संग्राम के द्वारा होता है।

'अथ रौद्रो नाम क्रोधस्थायी भावात्मको रक्षोदान वोद्धतमनुष्यप्रकृतिः संग्रामहेतुकः।'[164]

राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य में रौद्र रस की समुचित अभिव्यंजना उपलब्ध होती है। कवि ने यहाँ मतदाता सूची में नाम न होने से मत से वंचित ब्राह्मण के वेश में नारद की क्रोध से उत्पन्न रौद्र रस का चित्रण स्वाभाविक रूप से किया ह।

विलोकयैनं सखि! भार्गवोपमम्, रुषारूणाक्षं मतवंचितं द्विजम्।
निवारितोऽयं मतदानतो भृशम्, शपत्यहो! ते नववल्लभास्पदम्।।[165]

शारदा बोली हे सखि! क्रोध से लाल नेत्रों वाले परशुराम जैसे इस ब्राह्मण को देखो, जिसको मत से वंचित कर दिया है। वह तुम्हारे नये पति के रूप में जो चुनाव में खड़ा है, उसे शाप दे रहा है।

यहाँ जिसने मतदाता सूची से ब्राह्मण का नाम हटाया है वह शत्रु रूप आलम्बन विभाव, मत न डालने देना उद्दीपन विभाव, ब्राह्मण का तिरस्कार आदि अनुभाव, ब्राह्मण की उग्रता, रक्त वण के नेत्र आदि व्यभिचारी भावों से ब्राह्मण के हृदय में स्थित क्रोध रूप स्थायी भाव रौद्र रस को अभिव्यक्त करता है।

राम सेवकों का दमन करने के लिए शासन की क्रूरता को देखकर, कुछ लोग शासन को फटकारते हुए आक्रोश प्रकट कर रहे थे। अतः यहाँ निम्न पद्य दर्शनोय है-

विलोक्य क्रूरतां घोरां रामसेवक-मर्दने
आक्राशं प्रकटीचक्रुः शपन्तः केऽपि-शासनम्।।[166]

यहाँ रौद्र रस का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

स्वाधिकारोपलब्ध्यर्थं, संघर्षः क्रियतां सदा।
कलौ कर्त्तव्यनिष्ठानां, नो गतिर्जायते शुभा।।[167]

भयानक रस-

भयानक रस की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए आचार्य भरत कहते हैं कि विकृत शब्द, भयंकर जन्तुओं के दर्शन, युद्ध, अरण्य एवं सूने घरों में जाने तथा गुरुजन एवं राजा के प्रति अपराध आदि हो जाने पर भयानक रस उत्पन्न होता है।

विकृतखसत्व दर्शन संग्रामारण्य शून्यगृहगमनात्।
गुरुनृपयोरपराधात्कृताकरश्च भयानको ज्ञेयः।।[168]

पंजाब प्रदेश में व्याप्त आतंक का वर्णन करते हुए कवि ने वहाँ के निवासियों का जो वर्णन किया है उसमें भयानक रस स्वतः ही स्फुटित हो रहा है।

पुण्ये पंचनदप्रान्ते जाते चातङ्कपङ्किले।
भयभीता जना देव्याः शरण्यं पदमाययुः।।[169]

जब पवित्र पंजाब आतंक से ग्रसित हो गया तो वहाँ के लोग भयभीत होकर देवी (इन्दिरा) की शरण में आये।

यहाँ आतंकवाद आलम्बन विभाव है, उसकी क्रिया प्रतिक्रिया उद्दीपन विभाव है। प्रदेश का पंकिल होना अनुभाव है। सामान्य जन का भयभीत होकर पलायन करना व्यभिचारी भाव है, जो भय रूप स्थायी भाव को भयानक रस रूप में परिणत करता है।

प्रवृद्धे पौरुषे भृत्या, विविधाशयवर्तिनी।
कीलनोन्मीलने सिद्धा, जाता दुर्ललितप्रिया।।[170]

इस भृत्या के क्रोधित होने पर, सरस्वती, लक्ष्मी, अग्नि वरुणादि देवता भी भयभीत हो जाते हैं-

वाणी शूलधरापि भीतिविवशा प्रच्छादयत्याननम्
लक्ष्मीश्चञ्चल-विग्रहापि भजते स्थैर्यं सुरक्षापदे।
तेजो ध्वान्ततले तृषातिविकलः पाशीमरुत्स्वेदितः
सर्वं देवकुलं हि भाति विकलं रोषारुणे तन्मुखे।।[171]

वीभत्स रस-

आचार्य भरत कहते हैं कि 'अप्रिय घिनौने पदार्थ के दर्शन तथा अप्रिय गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द तथा दोषों से पूर्ण अनेक प्रकार की त्रासदायक वस्तुओं के अनुभव करने पर 'वीभत्सरस' उत्पन्न होता है।'

अनभिमत दर्शनेन च गन्धरसस्पर्शशब्ददोषैश्च।
उद्वेजनैश्च बहुभिर्वीभत्सरसः समुद्भवति।।[172]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार जिसका स्थायीभाव 'जुगुप्सा' है वह विभत्स रस होता है।

राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य में वीभत्स रस का चित्रण कतिपय स्थानों पर प्राप्त होता है। जिसमें से यहाँ पर भारत-पाक युद्ध के पश्चात् के वर्णन में वीभत्स रस स्वतः स्फुटित होता है-

गोमावयोऽपि युधि मांसमुखाः प्रसन्नाः नृत्यन्तु नाम नवशोणित-पान-पुष्टाः।
क्रीडन्तु गृध्रशिशवोऽप्यरिमुण्ड-खण्डैः, तृप्तास्तु रक्ततृषिता रणचण्डिकापि।।[173]

यहाँ रुधिर इत्यादि आलम्बन विभाव, नेत्र संकुचन आदि अनुभाव, मोह, अपस्मार आदि व्यभिचारी भावों से जुगुप्सा नामक स्थायीभाव वीभत्स रस में अभिव्यक्त होता है। कुछ पदोन्नति को छोड़ने वाले भृत्य अपने ही सामने अपने साथी की पदोन्नति देखकर दुःखी होते हैं-

समुपलभ्य-पदोन्नति वर्जने, क्वचिदसावनुताप-समाकुलः।
सहचरं गुरूवेतन-शालिनं, पुरत एव विलोक्य विषीदति।।[174]

अद्भुत रस-

आचार्य भरत के अनुसार विस्मय स्थायीभाव वाला अद्भुत रस कहलाता है।

अथाद्भुतो नाम विस्मयस्थायीभावात्मकः।[175]

आचार्य विश्वनाथ भी 'विस्मय' को अद्भुत रस का स्थायीभाव मानते हैं।

'अदभुतो विस्मयस्थायीभावाः।[176]

उदाहरणस्वरूप-

नो यश्चिराय भजतामपि दृष्टिलभ्यः, सोयं समागत इह स्मृत एव शीघ्रम्।
इत्यात्मनः प्रणय-सौभगमामनन्ती, वीक्ष्यापि साति मुदिता न विवेद किंचित् ।।[177]

हास्य रस-

आचार्य भरत हास्य रस का स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि विपरीत स्थान पर अलंकारों को धारण करने, विकृत व्यवहार, वाक्य तथा वेश के प्रदर्शन करने और विकृत अंगों, चेष्टाओं आदि के द्वारा हास्य कहलाता है। निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है-

विपरितालंकारैर्विकृताचाराभिधानवेषैश्च।
विकृतैरंगविकारैर्हसतीति रसः स्मृतो हास्यः।।[178]

आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार 'हास' स्थायी भाव वाला यह रस आकार विकृति, चेष्टा-विकृति तथा अन्य विकृतियों से आविर्भूत होता है।

विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद् भवेत्।
हास्यो हासस्थायीभावः।[179]

इस हास्य के स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित और अतिहसित नाम 6 भेद हैं।

देवताओं ने जब भगवान से गरीबी के निवारण का उपाय पूछा और कहा कि भारत के लोग शीघ्र धनाढ्य हो जायें, इस पर हंसते हुए लक्ष्मी ने उत्तर दिया कि-

प्रहसन्तो तदा पद्मा प्रोवाच सुरसत्तमान्।
क्वचिद्दृष्टमहो देवाः! वैभवं हरिसेविनाम्।।[180]

इस प्रकार हास परिहास में लक्ष्मी की विष्णु के विपरीत उक्ति वाक् व्यवहार नामक स्थायी भाव को विकसित करती है। लक्ष्मी आलम्बन, उसकी उक्ति उद्दीपन, उनकी भाषा का अन्योक्त कथन अनुभाव, उत्तम प्रगतिगत स्मित हास नामक स्थायी भाव हास्य रस को रसरूपता पदान करते हैं।

यहाँ पर हास्य रस का एक अन्य पद्य दृष्टव्य है-

साम्यञ्च पुम्भिः प्रतियोगितासु, ययौ न संकोचमियं विधातुम्।
चक्रे गुरुणामपि सोपहासम्, कक्षासु दक्षा विषये जडानाम्।।[181]

शान्त रस-

आचार्य भरत कहते हैं कि 'मोक्ष प्राप्ति में उपयोगी आध्यात्मिक ज्ञान से उत्पन्न होने वाला, तत्त्व ज्ञान में हेतुभूत अर्थ से युक्त रहने वाला तथा मोक्ष ज्ञान के लिए कहे गये वचनों के द्वारा शान्त रस उत्पन्न होता है।'

मोक्षध्यात्मसमुत्थस्तत्त्वज्ञानार्थहेतुसंयुक्तः।
नैः श्रेयसोपदिष्टः शान्तरसो नाम सम्भवति।।[182]

आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि जिसका स्थायीभाव 'शम' है नायक जिसका उत्तम है, वह शान्त रस होता है।

शान्तः शमस्थायीभाव उत्तमप्रकृतिर्यतः।[183]

आचार्य मम्मट कहते हैं कि जिसका स्थायी भाव 'निर्वेद' है वह शान्त रस है।

निर्वेदः स्थायीभावो शान्तोऽपि नवमोरसः।[184]

शान्त रस संस्कृत महाकाव्य परम्परा में महनीय स्थान रखता है। शृंगार, वीर तथा शान्त रस में से कोई एक अंगीरस के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। राजलक्ष्मीस्वयंवर महाकाव्य में शान्त रस की समुचित निष्पत्ति प्राप्त होती है। विष्णु-लक्ष्मी संवाद प्रसंग में, नारदलक्ष्मी के स्तवन में, शेष-लक्ष्मी के स्वतवन प्रसंग से शान्त रस की पुष्टि होती है।

अर्थ काम की भावना से, किंवा कलह के कृत्यों से तथा शंख भरी नादों से प्रारम्भ हुआ यह चुनाव समर समाप्त होने जा रहा है। कोई विजय की आशा से प्रसन्न हो रहे हैं, कोई दुर्भाग्य से दुःखी है। इस प्रकार नाना प्रकार की व्यूहग्रथन से विषम बना यह संभ्रम शान्त हो रहा है।

कामार्थोत्थैः कलहकलितैः शङ्खभेरिनिनादैः,
प्रारब्धोऽयं चयनसमरो याति विश्रान्तिभावम्।
कश्चित्त्वाशामुदितहृदयः कोऽप्यदिष्ट्या विषण्णः,
नाना व्यूहग्रथनविषमः सम्भ्रमः शान्तिमेति।।[185]

यहाँ शान्त रस का एक अन्य पद्य दृष्टव्य है-

सुप्तौ जागरणे प्रवाससमये कार्यालये वा गृहे
वेला-वेध-घटी-त्रिशूलजनिता कालस्य व्याधिर्गता।
शान्तं वार - दिनाङ्ककार्यविषये दैनन्दिनी-वन्दनम्
नूनं कालवंशवदोऽपि नितरांकाले न बद्धोऽस्म्यहम्।।[186]

यहाँ पर साकेतसंगरम् से शान्त रस का पद्य दृष्टव्य है-

यस्यार्थेऽयमगाधनीरधिरहो तीर्णस्त्वया दुस्तरो,
विप्लुष्टा दशकन्धरस्य नगरी संवेष्टिता राक्षसैः।
तस्यैनां ननु राघवस्य परितोऽयोध्यां विलोक्याकुलां
कोपस्त कथमद्य वज्रवपुषो नो जृम्भते मारुते!।।[187]

समीक्षा-

पं. श्री राम दवे ने महाकाव्य के नामकरण के अनुरूप शृंगार रस की योजना प्रधान रूप से की है। शृंगार कविकुलगुरु कालिदास का प्रिय रस रहा है। राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य में शृंगार को अंगीरस तथा वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, हास्य, अद्भुत, करूण तथा शान्त रस को अंग रूप में उपस्थिापित किया गया है। महाकाव्य में नायक विष्णु, नायिका राजलक्ष्मी के प्रणय की शृंगारिक अभिव्यक्ति उपनिबद्ध है।

भृत्याभरणम् महाकाव्य में शृंगार, वीर, करूण, रौद्र, भयानक तथा शान्त रस पं. दवे जी ने काव्य में उपनिबद्ध किया है। यद्यपि साकेतसङ्गरम् महाकाव्य में वीर रस की प्रमुखता है फिर भी यत्र-तत्र भयानक, करूण एवं शांत रस को पं. दवे जी ने काव्य में निबद्ध किया है। महाकाव्य के इतिवृत्त, प्रकृति, सन्धि आदि के अनुरूप औचित्य का समुचित ध्यान रखा गया है। महाकाव्य में काव्यास्वाद की दृष्टि से काव्य के आत्मतत्व अर्थात् चैतन्य रस की महाकाव्यकार पं. श्री राम दवे ने सुन्दर तथा सरस योजना की है। अतः हम कह सकते हैं कि निश्चय ही महाकवि एक रस सिद्ध महाकाव्य की रचना करने में पूर्ण रूप से सफल रहे हैं।

(2) खण्डकाव्यः

पं. श्री रामदवे जी के खण्डकाव्यों का कला पक्ष तथा भाव पक्ष निम्नलिखित है-

यहाँ पर वैदर्भी रीति का पद्य दृष्टव्य है-

अस्तं याता धृतिरपि हृदो विच्युतो रागबोधः,
गीतिर्वीता श्रुतिसुखकरा नोत्सवास्ते ऋतूनाम्।
नाऽलङ्कारेऽप्यभिरुचिरतः शून्यता भाति गेहे,
हा! जातोऽहं विरसहृदयो निष्ठुरस्त्वद्वियोगे।।[188]

हे प्रिये! तुम्हारी इस विरह पीड़ा में - अब तो हृदय का धैर्य भी टूट गया है, राग बोध भी जा चुका है, कानों को प्रिय लगने वाले गीतों में अब रूचि नहीं रही, ऋतुओं के उत्सव भी अच्छे नहीं लगते, शरीर को सजाने के साधनों में भी कोई आसक्ति नहों रही, यह पूरा घर ही सूना लगता है, तुम्हारे वियोग में मेरा हृदय अब नीरस और निष्ठुर हो गया है।

उपर्युक्त पद्य वियोग शृंगार का उदाहरण है। तथा माधुर्य गुण का भी प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

पं. श्री राम दवे जी ने सम्पूर्ण **'वियोगशतकम्'** में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है। जिसका एक पद्य यहाँ दृष्टव्य है-

मगण भगण नगण तगण तगण गु. गु.

S S S S 11111S S 1S S1 S S

ज्योत्स्नाशु भ्रा नवत मभवा मारुती यन्त्रग न्त्री,
सौभगिन्याः करसरसिजप्रेरिता या शुभाहे।
यातायां हा! त्वयि दिवमहो! वल्लभा ते,
तिष्ठत्येषा विरतगतिका साम्प्रतं देवमाना।।[189]

विवेच्य काव्य में यमक शब्दालंकार का चमत्कार अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है। जिसका एक पद्य यहाँ दृष्टव्य है-

कश्चित्कान्ता-विरह-गुरुणा-शोकतापेनतप्तः
एकान्तस्थो निजसहचरी-सेव्यमानालकायाम्।
काले-काले मधुरविषयान् संस्मरन् पूर्वभुक्तान्
दृष्ट्वा मेघान् वियति सहसा सोऽब्रवीन्मुग्धचेताः।।[190]

उपर्युक्त पद्य में 'काले-काले' स्थलों पर भिन्न-भिन्न अर्थ में आवृत्ति वाले पद चारुत्व को स्पष्ट रूप से बढ़ाते हैं। अतः यहाँ यमक अलंकार सुस्पष्ट है।

पं. श्री दवे जी ने उत्पेक्षालंकार, प्रसादगुण तथा पाँचाली रीति के माध्यम से यों कहा है-

मन्ये मेघा अतिजडधियः क्षारनीराप्तसाराः, जानन्त्येते भुवनपदवीं नोऽमराणां हि मार्गम्।
नूनं जातोऽम्यहमपि रुजा विप्रयोगस्य मूढः, याञ्चाकामो चरक-जलदे मेघदूतानुरागी।। [191]

उपर्युक्त पद्य में मन्ये, नूनं उत्प्रेक्षा बोधक शब्द हैं। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

पं. श्री दवे जी ने श्लेषालंकार के माध्यम से यों लिखा है-

नो मे हृद्या लगति वनिताविप्रयोगार्तिभाजे, मुक्तेर्वार्ता श्रमणभणिता प्रावृषि प्रीतिकाले।
मे तु श्लिष्टाः कविकुलगुरोर्यक्षसन्देशबन्धाः, कान्ताहेतोः प्रणयसरसाः वर्णिता मेघदूते।।[192]

यहाँ पर उपमा का पद्य मनोहारी है-

रत्युत्कण्ठा चपलनयना त्वं हि सौभाग्यरात्रौ, शृंगाराढ्या ललितवसना पुष्पशय्याधिरूढा।
बद्धे जानौ निहितचिबुका कुंचिता पद्मिनीव, यत्नाज्जातोन्नमितवदनाम्भोजपीयूष वर्षा।।[193]

यहाँ पर वैदर्भी रीति तथा माधुर्य गुण का निम्न पद्य श्लाघनीय है-

वियोगिनां प्राणहरोऽपि पूज्यते, शिवस्यमूर्धानमुपाश्रितोऽयम्।
शृङ्गारसारे भजतेऽनुभावम् , कन्दर्प सेनापदवीं प्रपन्नः।।[194]

यहाँ पर वियोग शृंगार रस का पद्य दर्शनीय है-

यदा रत्यारूढा प्रणयविवशाभोषृविरहे, स्पृहाचिन्तोन्मादैर्जनयसि च कारुण्यकलनाम्।
भवन्त्युच्छ्वास्ते विरहजनिता मेदुरघनाः, प्रियस्मृत्यालम्बा नयनजलधारोदयकराः।।[195]

यहाँ पर भक्तिरस, प्रसाद गुण तथा पांचाली रीति का पद्य दृष्टव्य है-

यदा भक्त्युद्रेको हरिमधुकथाकीर्तन-भवः, उदेति स्निग्धान्ते प्रभुचरण-संसिक्तमनसः।
विरक्तेऽप्यासक्तिं व्रजयुवतिरागे जनयते, निमग्ने राधाया रमणरसलीलाम्बुधितले।।[196]

जब शृंगार रस का रति भाव भगवद् विषयक बन जाता है तब प्रभु चरणों में अनुरक्ति रखने वाले भक्तजन के प्रेम भरे हृदय में, हरिकथा एवं कीर्तन के कारण भक्तिरस प्रबल हो जाता ह तो विरक्त पुरुष भी व्रजाङ्गना के प्रेम भरे प्रसंगों में आसक्त होकर राधास्मरण के लीलासागर में ड्ब जाता है।

यहाँ पर हास्य रस का पद्य दर्शनीय है-

क्वचिद् वाग्भिर्वेशैर्विविधकलितैः कौतुककरी,
हसन्ती व्यालोला प्रमथ-वशगा शुक्लवसना।
स्मितैः स्पन्दैरक्ष्णोर्विकिरसि मुदं प्रेक्षकगणे
विनोदव्यापारैर्ललितनटितैर्नाट्य-भुवने।।[197]

जब रंगमंच पर नाट्यकला में हास्य रस प्रकट करना चाहती हो तब प्रमथ देवता के आवेश में श्वेत वस्त्र पहनकर, कभी वाणी से तो कभी विविध प्रकार की वेषभूषा से अपने कौतुक दिखाती हुई कभी हंसी से, कभी अपने अंगो के हाव-भाव से कभी आँखों के इशारे से दर्शकों का मनोरञ्जन करती हुई कई रंग दिखाती हो।

यहाँ पर करुण रस का पद्य श्लाघनीय है-

यमोपास्या शोकाश्रयधृतकपोताभवसना
ह्यनिष्टाप्तौ दीना प्रियजनविनाशेऽतिविकला।
वियोगे वामानां किमथ पुरुषाणाञ्च कृपणा,
जनानां कारुण्यं जनयसि च शोकैर्हृदि भृशम्।।[198]

जब करुण रस प्रकट करना चाहती हो तो कपोतवर्ण के वस्त्र पहनकर यम की उपासना करने लगती हो। किसी अनिष्ट घटना घटित हो जाने पर किं वा प्रियजन की मृत्यु हो जाने पर अति दीन बन जाती हो। किं वा किसी स्त्री अथवा पुरुष के वियाग में व्यथित होकर शोक प्रकट करती हो तो दर्शकों के हृदय में कारुण्य प्रकट हो जाता है।

यहाँ पर रौद्र रस का पद्य दृष्टव्य है-

क्वचिद् रुद्राराध्या भवसि रणचण्डी भयकरी
रणे शस्त्राघातैः रिपुजन-विनाशे च निरता।
सरोषं भ्रूभङ्गै र्द्विषदुरसि पादाहतिपरा
प्रकम्पं देवानामपि मनसि भीमा कलयसि।।[199]

जब रौद्र रस प्रकट करना चाहती हो तो रुद्रदेवता की आराधना में भयंकर रणचण्डी बन जाती हो। युद्ध में शस्त्रों द्वारा रिपुजनों का संहार करती हुई, क्रोध में भ्रकुटि चढ़ाकर शत्रुओं की छाती पर चढ़ जाती हो। तुम्हारा यह रौद्र रूप देखकर देवता भी भय से कांपने लगते हैं।

पं. दवे जी ने वीर रस, ओजगुण तथा गौड़ी रीति के माध्यम से यों कहा है-

सुवर्णाभा वीरा सुरधरणिनाथाश्रयवती
विजेतव्यालम्बा तुमुलनिनदैः शंखपटहैः।
रणाङ्के वीराणां मनसि विजयोत्साहनपरा
क्वचिद्दाने धर्मे दिशसि निजवीर्यं सुचरितैः।।[200]

जब वीर रस प्रकट करना चाहती हो तो तुम्हारा रंग सुनहरा हो जाता है इन्द्र तुम्हारे आराध्य बन जाते हैं। विजय का आलम्बन लिये शंख मृदंग आदि रणवाद्यां की तुमुल ध्वनि से योद्धाओं के हृदय में उत्साह का सञ्चार करने लगती हो। कभी-कभी अपने पुण्य चरित्र से दानवीर और धर्मवीर बनने का भी मार्ग प्रदर्शित करती हो।

उपर्युक्त पद्य में पं. दवे जी ने व्यतिरेकालंकार का बड़े सहज ढंग से प्रयोग किया है।

पं. दवे जी ने भयानक रस के माध्यम से यों लिखा है-

भीत्युत्पादनतत्परा क्वचिदहो कालाधिरूढाऽसिता
चेष्टाभिर्भयदाभिरेव कुरुषे चित्ते प्रकम्पोदयम्।
वैवर्ण्यं स्खलितञ्च वाचि सहसा सम्पादयन्ती भृशम्
सम्मोहं जनमानसे प्रकुरुषे भीमाकृतिर्भारति!।।[201]

जब भयानक रस प्रकट करना होता है तब कृष्णवर्ण धारण कर काल पर सवार हो जाती हो। तुम्हारी भयंकर चेष्टाओं से लोगों के हृदय भय से कांपने लगते हैं। तुम्हारा डरावना रूप देखकर लोगों की हवाएँ उड़ जाती है वाणी लड़खड़ाने लगती है और तुम्हारी भीमाकृति से लोग घबराने लगते हैं। यहाँ पर बीभत्स रस का पद्य दृष्टव्य है-

चित्रं नीलकलेवरा कृतमहाकालाश्रया भीषणा,
मांसाऽसृक्परिलिप्तविग्रहवती मज्जास्थिमग्नालया।
भीमा प्रेतकरंकदारुणतनु र्निष्ठीवनालम्बिनी
मोहावेगजुगुप्सितैर्वलयिता बीभत्समालम्बसे।।[202]

हे भारति! जब तुम बीभत्स रस का अवलम्बन करती हो तब तुम अपना कलेवर श्याम बना देती हो। महाकाल का आश्रय लेकर भंयकर रूप धारण करती हुई, शरीर पर रक्त और मांस का लेप कर देती हो। तुम्हारा निवास मज्जा और अस्थियों स भरा रहता है। प्रेतों के भयावह कंकाल देह पर धारण कर भयंकर बन जाती हो। मुंह से लारें और थूंक टपकता रहता है। तुम्हारे चारों ओर अघोरी और नशाबाजों का जुगुप्सित घेरा बना रहता है।

यहाँ पर पं. दवे जी ने अद्‌भुत रस के माध्यम से यों कहा है-

आश्चर्योदयकारिणी क्वचिदहो गन्धर्वदेवार्चिका,
संश्रित्याद्‌भुतमिन्द्र जालकलितं पीताम्बरावेष्टिता।
नानावेगवितर्कविभ्रमसमुत्कण्ठाकरैश्चेष्टितैः
लोकान् विस्मयकारकैः प्रकुरुषे मुग्धान् विदग्धान् निजैः।।[203]

जब तुम अद्‌भुत रस प्रवाहित करना चाहती हो तब पीतवस्त्र पहनकर गन्धर्वों की उपासिका बन जाती हो। आश्चर्यजनक इन्द्र जालों का प्रदर्शन करती हुई, नाना प्रकार के आवेग, वितर्क, संभ्रम और उत्कण्ठा जगाने वाले विस्मयकारी कृत्यों से विदग्धजनों का भी मन मोह लेती हो।

यहाँ पर शान्त रस का पद्य दृष्टव्य है-

कुन्देन्दुश्रियमाश्रिता क्वचिदहो नारायणोपासिका,
शान्ता विश्वविलासवस्तुनिवहे निःसारतावेक्षिणी।
आलम्ब्यात्मविशुद्धरूपमनघं पुण्यार्जनोत्कण्ठिता
रागद्वेषविवर्जिता हृदि सदा वैराग्यमाराध्यसि।।[204]

जब तुम शान्त रस प्रदर्शित करना चाहती हो तो, कुन्द और चन्द्र से श्वेत वस्त्र पहनकर शान्तभाव से नारायण की उपासना में लग जाती हो। संसार की समस्त विलास वस्तुओं को नि:स्सार समझकर, आत्मा के निर्मल स्वरूप का ध्यान करती हुई पुण्य कार्यों में व्यस्त हो जाती हो। हृदय से सारे रागद्वेष निकालकर सर्वदा वैराग्य की ही चर्चा करती हो।

यहाँ पर पं. दवे जी ने वात्सल्य रस के माध्यम से यों लिखा है-

क्वचिद् डिम्भालम्बा वससि सदने चारुचरित!
शिशूनङ्के कृत्वा दिशसि निजवात्सल्यविभवम्।
विचुम्बन्ती गण्डं स्मितरतशिशोः स्तन्यसजुषः
यशोदेवानन्दं जनयसि सतां कृष्णजननी।।[205]

जब तुम वात्सल्य रस वितरित करती हो, तब कृष्ण जननी यशोदा की तरह बाल गोपाल के प्रति अपना अनुराग दिखाकर सहृदयों का मन मुग्ध कर देती हो। सुन्दर सदन में शिशुओं को गोद में बिठाकर अपना स्तनपान कराती हुई, उन बाल गोपालों का कपोल चूमकर वात्सल्य भाव प्रकट करती हो।

यहाँ पर शार्दूलविक्रीडित तथा उत्प्रेक्षालंकार का पद्य दृष्टव्य है-

माया भारति! भाति कापि भुवनेऽवाच्या तवैषा यया,
सर्वं वर्णविभावनाऽञ्चितमिदं विश्वं पुरो भासते।
नृत्यन्तीव च लक्ष्यतेऽत्र विशदं काले विलीनापि या
सृष्टिस्त्वद्गुणगुम्फिता ह्यविरतं सद्रोचिषा भासुरा।।[206]

यहाँ पर मन्दाक्रान्ता तथा यमकालंकार का पद्य दर्शनीय है-

मौनं-मौनं वियतिचरतां वैखरी खेचराणाम्,
शीतोष्णानां शशिरविरुचां रोचना-लेखनी त्वम्।
शून्ये चित्राङ्कनकृतिरता तूलिका रञ्जयित्री
पञ्चाङ्गानां प्रकृतिसुरभेः मण्डनं संविधत्से।।[207]

यहाँ पर शिखरिणी छन्द का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

मुनीनां सिद्धानां तपसि निरतानामपि वने,
स्थितानां संविष्टा हृदि कथमये! हंस विधिना।
विकल्पं संकल्पं सकलमपि हित्वा च रहसि,
भजन्ते येनैते परममुदमात्मन्यभिरताः।।[208]

पं. दवे जी ने उपजाति छन्द के माध्यम से यों कहा है-

वर्णाऽर्णवे रश्मिकला विशाले, रत्नान्यमूल्यानि हि निह्नुतानि।
कलाविदो योगपथाधिरूढा, गर्भे प्रवेष्टुं प्रथिताः समर्थाः।।[209]

पं. दवे जी ने वसन्ततिलका छन्द के माध्यम से यों लिखा है-

आकाशमेत्य रमते विमलाऽत्र गङ्गा, ताराग्रहाश्च यदलंकरणे नियुक्ताः।
यन्नामपूर्वसुभगा प्रथिता च वाणी, शून्येऽयमूल्य-विभुता निहिता त्वयास्मिन्।।[210]

पं. दवे जी ने द्रुतविलम्बित छन्द के माध्यम से यों लिखा है-

अयि सुधाकर चारुमुखि ! प्रिये ! कुमुदिनी-कुल-कौशल-कर्षिणि !।
कुवलयेष्वपि कल्पितकेलिके !, कथमये कलितस्तव सङ्गमः।।[211]

पं. दवे जी ने यमक तथा उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम से यों कहा है-

यन्त्रारूढा-कलयसि नवां भौतिकीं सृष्टिमद्य, गेहे गेहे सुलभमखिलं साधनं भोगभूतेः।
विश्वं सर्वं नटति सदने यन्त्रितं यन्त्रतन्त्रे मन्ये व्यूढं कलिहितकृते नव्यलीलायितं ते।।[212]

हे भारति! तुम ही आज यन्त्रों के माध्यम से नये-नये भौतिक आविष्कारों की सृष्टि कर रही हो। घर-घर में तुमने ही लोगों को आधुनिक भौतिक सुख साधन उपलब्ध करवाये हैं। तुम्हारी कृपा से आज घर में हो यन्त्रों के माध्यम से सारा संसार अभिनय करता-सा प्रतीत होता है। ऐसा लगता है मानों तुम कलियुग के हितार्थ ही ये नई लीलाएं दिखा रही हो।

पं. दवे जी ने सम्पूर्ण '**ललिता-लहरी**' खण्डकाव्य को शिखरिणी छन्द में समायोजित किया है। जिसका एक पद्य यहाँ दृष्टव्य है-

समृद्धं सौभाग्यं भजति नगरीयं समदड़ी,
स्थिता कण्ठे यस्या विमलसिकता लूणि-सरिता।
शरण्या सिंहानां लसति च गुहाङ्का शिखरिणी,
वसत्यम्बा प्रीत्या परिजनयुता यत्र ललिता।।[213]

यहाँ पर वात्सल्य रस तथा उपमा अलंकार का पद्य दृष्टव्य है-

सलीलं खेलन्तः समधिगत-वात्सल्य-विभवाः,
चरन्त्याकर्षन्तस्तव ललितकौषेयवसनम्।
हरन्तो नैवेद्यं ह्यभयमिभवक्त्राश्वबटुकाः
गृहिण्यास्ते लीलां चकितमिव पश्यामि ललिते !।।[214]

हे ललिते माँ! तुम्हारा अबोध प्राणियों के प्रति भी कितना मातृतुल्य वात्सल्य भाव है। देखो, ये तुम्हारे पुत्र गणेश के प्रिय वाहन मूषक भी निर्भय होकर तुम्हारी गोद में खेलते हैं। उन्हें भी तुम्हारा पुत्रवत् वात्सल्य प्राप्त है। ये कभी तुम्हारे सुन्दर कौषेय वस्त्रों को खींचते हैं तो कभी आगे रखे नेवैद्य को निडरता से खाने लगते हैं। फिर भी तुम्हें इन पर कभी क्रोध नहीं आता। वस्तुतः तुम्हारी गृहिणी लीला भी बड़ी आश्चर्यजनक है।

यहाँ पर माधुर्य गुण का पद्य दृष्टव्य है-

स्तुतीनां माधुर्यं पिककलरवाकण्ठगलितम्,
स्मृतिं यात मातः! सुखयति मनो मे किल यथा।
तथेदं नो भक्त्या विधुरपदकञ्चोद्धतपदम्,
प्रतीच्या उच्छिष्टं चपलगतिकं गीतगलितम्।।[215]

यहाँ पर करुण का पद्य दर्शनीय है-

खनन्तः पाषाणान् तव सदनसौन्दर्य-निचयान्,
हरन्तो वृक्षाणा श्रियमपि च निष्कोषनिरताः।
प्रदुष्टां कुर्वन्तः प्रकृतिमपि जीवोपकरणीम् ,
अजानन्तो मूढास्तव जननि! कारुण्यकलनाम्।।[216]

हे भगवति माँ! तुम्हारे इस दिव्यस्थान का सौन्दर्य बढ़ाने वाले पत्थरों को भी लोग खोद-खोद कर उखाड़ रहे हैं। यहाँ के वृक्षों की सुन्दरता को भी उन्हें काट-काट कर नष्ट कर रहे हैं। प्राणियों का उपकार करने वालो प्रकृति को दूषित कर रहे हैं। हे माँ! ये मूर्ख लोग नहीं जानते कि तुम्हें इन पर कितनी दया है।

यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार का पद्य श्लाघनीय है-

भृशं व्यस्तां मन्ये दलितजन-कल्याणकलने,
गृहस्थानात्मीयानपि नहि रुचा येन लससि।
गजास्यः क्लिन्नाङ्गो भ्रमति बटुकः सीधुमठरः,
गृहाद् दूरे कान्तो वसति विजया-पान-रसिकः।।[217]

पं. दवे जी ने यमक अलंकार के माध्यम से यों कहा है-

ततो युक्तां नानाविध-सुरभितैः पोषकफलैः,
पयः पीनां विज्यं धनुरिति च मन्त्रैः शुचिकृताम्।
समर्प्योमाभत्रे चषकपरिपूर्णां हि विजयाम् ,
पिबन्त्युच्छिष्टां ते हर हर वदन्तोऽतिमुदया।।[218]

पं. दवे जी ने वैदर्भी रीति तथा प्रसाद गुण की अलौकिक छटा अपने **'कारुण्य कादम्बिनी'** नामक खण्डकाव्य में कुछ इस प्रकार बिखेरी है-

माधुर्यं कलकण्ठगीतिकलितं दत्वोपकृत्ये मुदा।
वात्सल्यं शिशुमण्डले च सुभगावृन्दे शुभा आशिषः।
देहं सा श्रमकर्षितं जनहिते धृत्वेश्वरं मानसे
याता पुण्यकृतालया दिवमितो नो मे परं चेतसः।।[219]

उपर्युक्त पद्य में वात्सल्य रस का भी प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर करुण रस तथा पूर्णोपमा अलंकार का उदाहरण दर्शनीय है-

क्रोड़ा-रोहण-लालनोदित-मुदां कारुण्यवर्धिश्रियम्
संस्कारोदित-भारतीप्रतिहतध्वान्तां शिवां शारदाम्।
भक्ष्यैः पुष्टिकरैर्मुदा वितरितैः पूज्यान्नपूर्णोपमाम्
वृद्धोऽपि स्मृतिमन्दिरे कृतपदां नैवापनेतुं क्षमः।।[220]

यहाँ पर उत्प्रेक्षालंकार तथा प्रसाद गुण का एक अन्य पद्य दृष्टव्य है-

वार्धक्ये स्मृतिभंग दोष-विकलो लोकाऽस्मि मन्दो मतः
काव्याराधनतत्परस्य तु परं भावाः न जाड्यं गताः।
मन्ये संविद्देवतां हृदिगतां सम्प्रार्थयन्ती दिवः
अम्बा मे ह्यधुनापि संस्मृतिगता जाने हितं चेष्टते।।[221]

यहाँ पर भक्ति रस का निम्न पद्य दर्शनीय है-

वामाः श्रुत्वा कुरुणभरिताः गीतिका साश्रुनेत्राः,
बाला गीतैः शयनसुखदै र्निद्रया मोदमापुः।
भक्ताश्चान्ये हरिमधुकथाकीर्तनैर्वीतमोहाः
जायन्ते स्मास्या मधुर-वचनैस्तर्पिता वाग्मिनोऽपि।।[222]

यहाँ पर वसन्ततिलका छन्द तथा वात्सल्य भाव का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

वात्सल्य भाव भरितानि सुधोपमानि, मातस्त्वदीय कलितानि हृदि स्फुरन्ति।
यत्संस्मृतिप्रणिहितो जगदम्बिकायाः, वात्सल्यमेव पुरतो मनसा प्रयाचे।।[223]

उपर्युक्त पद्य में प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है।

पं. देव जी ने स्वभावोक्ति अलंकार तथा हास्यरस के माध्यम से यों कहा है-

पीयूषवृष्टिभिशिखामित मोदकाभिः, दृग्भिर्विषादमलवारणवाहिनीभिः।
मालिन्य पूर्णमपि डिम्भवपुः प्रकामम्, सम्पाद्यते विमल-चारुरुचं सुहास्यम्।।[224]

पं. दवे जी ने शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा भक्ति रस के माध्यम से यों लिखा है-

मर्त्या मे जननी गता दिवमितः शिष्टा स्मृतिः केवलम्
हे मातर् जगदम्बिके! त्वमसि मेऽमर्त्या शरण्याऽम्बिका।
कारुण्यामृतशीकरैर्मम तनुं स्नेहेन संप्लावय
येनाहं तव भक्ति-भावनिरतो भूयां सदा जीवने।।[225]

पं. दवे जी ने माधुर्य तथा हास्य रस के माध्यम से यों कहा है-

माधुर्यं समयोदितोत्सवकुले नो दृश्यते साम्प्रतम्,
नो नृत्यं युवतीजनस्य मधुरा होलोत्सवे गीतयः।
नो सा नीरकटाहरंगरमणीरागोत्सवा पञ्चमी,
नो वा हास्य-विनोदभावभरिताः सौहार्दस्निग्धोत्सवाः।।[226]

यहाँ पर भयानक रस तथा प्रसाद गुण का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

विद्युद्दीपक-दीप्तिखण्डितविभाः स्नेहप्रदीपा अमी,
कोणस्था विकलन्ति वर्तिवदनाः खिन्ना हि दीपोत्सवे।
विस्फोटैर्भयदै र्विषण्णवदना भीता यथाऽकिञ्चनाः
दीना दीपशिखापि खिन्नहृद्या विद्युल्लता-न्यक्कृता।।[227]

यहाँ पर माधुर्य गुण का पद्य दर्शनीय है-

माधुर्यं मृद्भाण्डसञ्चयजुषे धान्यस्य यद्भाव्यते
यद् वा सौरभसौभगञ्च निहिते गव्यान्विते भोजने।
तन्नो सम्प्रति यन्त्रनिर्मितमहाकारागृहे सञ्चिते
किं वा क्रत्रिमधातुनिर्मितियुते पात्रेऽपि संलभ्यते।।[228]

यहाँ पर स्वभावोक्ति अलंकार तथा प्रसाद गुण का निम्न पद्य दर्शनीय है-

या डिम्भं परिपश्यतीह जनके श्वश्रूजने लज्जया
धृत्वाङ्के न ययौ, जगाम न मनाक् क्लान्तिं श्रमैर्यौवने।
सा जाता निजपुत्रपोत्र वनितावृन्देन संवेष्टिता
वाधक्ये पलितालकाद्य विरता गेह-क्रिया-बन्धनात्।।[229]

यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार का पद्य दृष्टव्य है-

कासारास्ते जलदसमयेऽप्यम्भसा हीन-पात्राः
नो दृश्यन्ते शिरसिकलशाः गीतलोलाः वध्ट्यः।
नो वा नद्योऽप्य भिनवजलाः स्वागतं संलभन्ते
मन्ये रुष्टा प्रकृतिरपि हा! स्वस्तिगीतैर्विहीना।।[230]

यहाँ पर श्लेष अलंकार का पद्य दर्शनीय है-

बाल्येमूत्रपुरीष-संवृत-तनुः कष्टेन निन्ये निशाः
कृत्वा लालन पालनञ्च महता यत्नेन यो वर्धितः।
दत्ता रूपवती प्रिया च वनिता तारुण्यभावं गते
तस्याः वै जरया गते तु वपुषि क्लान्तिं स्थितोऽवाङ्मुखः।।[231]

पं. दवे जी ने **'कामधेनुशतकम्'** खण्डकाव्य में भक्ति रस तथा प्रसाद गुण के माध्यम से यों कहा है-

त्रयीवेयं श्रौतक्रतुविधिविधानोदयकरी
क्रियाभक्तिज्ञानत्रिविध घृतधाराऽमृतझरी।
सुपूता कृष्णस्यामलचरण-पांसुश्रितियुता
गवां सौभाग्येडा जयति पथमेड़ावनिरियम्।।[232]

यहाँ पर अनुष्टुप छन्द का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

येषां वै सततायासैः आनन्दवनवासिनी।
गोवर्धनगोशालैषा जाता तीर्थसमाऽधुना।।[233]

यहाँ पर उपजाति छन्द के माध्यम से पं. दवे जी ने यों लिखा है-

यस्याः प्रसादोदितदिव्यभावैः सर्वानभीष्टान् मुनिकौशिकस्य।
सम्पूरयामास गुरुर्वसिष्ठः सा कामधेनुर्जगतः प्रतिष्ठा।।[234]

यहाँ पर श्लेष अलंकार तथा प्रसाद गुण का पद्य दर्शनीय है-

यया त्रिलोकी परिपाल्यते निजैः पीयूषतुल्यैरनिशं पयोभिः।
शस्यैः प्रशस्यैः कुरुते च शाद्वलाम् धरामिमां मूत्रपुरीषदानैः।।[235]

पं. दवे जी ने गौड़ी रीति, वीररस तथा ओजगुण के माध्यम से यों कहा है-

जातोऽनपत्यो नृपतिर्दिलीपः शापेन पूर्व सुरकामधेनोः।
तदात्मजायाः समुपासनेन सुतं स लेभे रघुनामधेयम्।।[236]

यहाँ पर उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द का उदाहरण दृष्टव्य है-

धर्मानपेक्षोदितलोकतन्त्रे शिक्षाप्यभीष्टा न हि धर्मयुक्ता।
अतोऽद्य वन्ध्याश्रुतिशास्त्रगीता खरीव धेनुर्ह्यवमन्यते जडैः।।[237]

यहाँ पर वैदर्भीरीति तथा माधुर्य गुण का पद्य श्लाघनीय है-

मधुरया सुधया सुरतोषिणी विपुलया रमया जनरञ्जिनी।
परमया कृपया कृषिवर्धिनी जयति कामदुधा सुरनन्दिनी।।[238]

यहाँ पर करुण रस तथा पाञ्चाली रीति का पद्य दृष्टव्य है-

हरति शोकमियं निशिस्वप्नगा वृषभदर्शनमप्यतिकामदम्।
दिशति गोघृतदुग्धदधिश्रितम् श्रियमहो किमुताजिरपालने।।[239]

उपर्युक्त पद्य में प्रसाद गुण, श्लेष अलंकार तथा वंशस्थ छन्द का प्रयोग दृष्टिगोचर हुआ है।

यहाँ पर पं. दवे जी ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से यों लिखा है-

अस्मिन् सदानन्दवने सुरम्ये मनुष्यरूपेण हि कामधेनोः।
कुलस्य सेवां विहितुं नु मन्ये, चरन्ति देव्यो मुनयो निलिम्पाः।।[240]

यहाँ पर उपमा अलंकार का पद्य दृष्टव्य है-

यवनाः पिशिताशना मता, परमेते खलु हिन्दवोऽप्यहो।
असुरा इव मांसहेतवे ह्यबला गा व्यथयन्ति साम्प्रतम्।।[241]

यहाँ पर वात्सल्य रस एवं प्रसाद गुण का निम्न पद्य दर्शनीय है-

पिशिताशनदग्धचेतसो गतवात्सल्यदयाशु भाशयाः।
न हि तर्णकहिंसनेऽप्यहो जायन्ते विकलाः हि हिन्दवः।।[242]

यहाँ पर शार्दूलविक्रीडित छन्द का पद्य दृष्टव्य है-

वन्द्ये! किन्नवसुन्धरे! प्रकुरुषे कम्पनम् गोघातके
देशे यत्र नृंशंसहिंसनपरा कुर्वन्त्यघं सर्वदा।
कृत्वा गुर्जरभूतले तु विकटं कम्पं हतास्तापसाः
नन्दिन्याः कुलघातकाः कथमिमे तिष्ठन्त्यहो निर्भयाः।।[243]

यहाँ पर शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा वीर रस का पद्य दृष्टव्य है-

गो हत्या प्रतिरोधनार्पितनिजप्राणाः महान्तो जनाः
वीराः क्षत्रियवंशजा मुनिवराः सिक्खा गुरूपासका।
आचार्या इह धर्मरक्षणरताः भक्तास्तथा नैष्ठिकाः
क्षिप्ताः संकटकंटकाकुलवने किंवा हता निर्घृणम्।।[244]

यहाँ पर वीर रस, ओजगुण तथा वैदर्भी रीति के माध्यम से पं. दवे जी ने यों कहा है-

शौर्यं किन्न हि जृम्भते रघुकुले लब्धोदयानां नृणाम्
स्वातन्त्र्याहवदत्तजीवनसुखाः मौनं स्थिताः शासने।
धर्मव्याजनिमीलितात्मनयनाः पश्यन्ति पापं न हि
को भूयो विनिवारयेदिदमहो पापं धराव्याप्तृतम्।।[245]

'परिखायुद्धम्' खण्डकाव्य में पं दवे जी ने पांचाली रीति के माध्यम से ये कहा है-

नारायणो विश्वतले प्रवृत्ते, कलिप्रभावे परितः प्रकामम्।
देवान् नियोज्यास्य नियन्त्रणाय, शेषाङ्गतल्पे शयञ्चकार।।[246]

उपर्युक्त पद्य में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है, तथा प्रसाद गुण भी विद्यमान है। यह उपजाति छन्द का श्रेष्ठ उदाहरण भी है।

यहाँ पर अनुष्टुप छन्द तथा श्लेष अलंकार का पद्य दृष्टव्य है-

क्रमेलकानां मेषाणां रोमराश्युपजीवनाः।
यवना मरुवास्तव्याः, श्रियः श्लेषं प्रपेदिरे।।[247]

उपर्युक्त पद्य में पाँचाली रीति तथा प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर शान्त रस तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द का पद्य दृष्टक है-

सुप्तः क्षीरपयोधिशेषशयने शान्तो मयाभ्यर्चितः,
लेभे नो सुखमेष येन सहसाऽरेभे नवं नाटकम्।
शस्त्रस्फोट विपन्नवारिधिकुले ज्वालावली संकुले,
जाने नो कमयं तु तैलकलुषे तल्पे सुखं विदन्ति।।[248]

उपर्युक्त पद्य में पांचाली रीति, प्रसाद गुण तथा श्लेष अलंकार का भी प्रयोग किया गया है।

पं. दवे जी ने भयानक रस तथा शाईलविक्रीडित छन्द के माध्यम से क्यों कहा है-

एते पावकवासवाऽनिलनिभा जाताः सखायः सुराः
मत्वा कौतुकमेव कल्पितमिदं चक्रुर्न ते वारणम्।
मन्यन्तां निजसाहसिक्यममराः कामं कलेः किङ्कराः
अस्माकं खलु योषितां तु हृदयं भीत्या भृशं वेपते।।[249]

यहाँ पर श्लेष अलंकार का पद्य दृष्टव्य है-

कान्तो मेऽपि च चक्रिचक्रपतितः पङ्केऽपि न म्लायते,
नित्यं साधुतपोविमर्दनिरतो जानाति नो मोहितः।
यज्ञानुग्रहलब्धदेवनगरीदिव्याधिपत्य-श्लिषः,
क्षीणे पुण्यचये तु नेदमहतं तिष्ठेन्मघोनः पदम्।।[250]

वहाँ पर वसन्ततिलका छन्द का पद्य दृष्टव्य है-

आस्वादितुं दितिसुतश्रमवारिजातं, पीयूषपूर्णचषकं सततं पुरोगाः।
काले प्रमादकलिते विषमे विमूढाः, देवाः सदैव विषमाक्षपदं स्मरन्ति।।[251]

यहाँ पर वीर रस का पद्य दर्शनीय है-

वेदाभ्यास जडस्तवापि सुभगः कस्यास्ति नो संस्तुतः,
नायं खिद्यति लोकबोधनपटुर्वक्त्रैश्चतुर्भिर्वदन्।
जानीते नहि शूलविद्ध पुषां कीदृग् रणे संकटं,
येन त्वं विषमार्तिसङ्गरकथां कौतूहलं मन्यसे।।[252]

उपर्युक्त पद्य में ओज गुण तथा गौड़ी रीति का भी प्रयोग हुआ है एवं शर्दूलविक्रीडित छन्द है।

यहाँ पर पं. दवे जी ने ओजगुण तथा वीर रस के माध्यम से यों लिखा है-

पाश्चात्यैश्च महावीरैः राष्ट्रैर्युद्धः विधायिना।
दग्धा लङ्कापुरी स्वीया रावणोपमदर्पिणा।।[253]

उपर्युक्त पद्य अनुष्टुप् छन्द का उदाहरण है। तथा गौड़ी रीति का प्रयोग दृष्टिगत हुआ है।

यहाँ पर पं. दवे जी ने वीर रस, ओजगुण, गौड़ीरीति, श्लेष अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द के माध्यम से यह कहा है-

कामं वीर्यविसर्पवलये तिष्ठेत् क्षणं दुर्मदः
यास्यत्येव करालकालकवलं प्राप्ते तु काले द्रुतम्।
एतामेव पुरापि मृत्युपदवीं नीताः खला विष्णुना,
काले तत्कुरुते गृहीतरशनो नाथः स्वमायाबलात्।।[254]

यहाँ पर पं. दवे जी ने यमक अलंकार उपमालंकार, प्रसाद गुण तथा पांचाली रीति तथा उपजाति छन्द के माध्यम से यह कहा है-

शिलारसं येन च भूमिनिष्ठमाविर्बभूवार्थकरं प्रभूतम्।
पदे-पदे चापि हि तैलकूपा जलप्रकूपा इव संबभूवुः।।[255]

यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार का पद्य दर्शनीय है-

तस्मादरे ! त्वं विरमाद्य युद्धात् कुवैत-भूमिं कुरु बन्धमुक्ताम्।
नो चेन्मदीयैर्जगति प्रसिद्धैः शस्त्रैस्तवान्तो भवितास्ति नूनम्।।[256]

उपर्युक्त पद्य की दूसरी पंक्ति में अतिश्योक्ति अलंकार का भी प्रयोग हुआ है। इसके अलावा उपजाति छन्द तथा प्रसाद गुण तथा पांचाली रीति का प्रयोग दृष्टिगोचर हुआ है।

यहाँ पर वसन्ततिलका छन्द, वीर रस, ओजगुण तथा गौड़ी रीति का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

शाठ्येन कण्टककुलं किरतस्तवैषा, नीतिश्चिराय भविता सफला न दृप्त !।
इस्लामधर्मतुमुलध्वनि-संहतानां, वीर्यं नु पश्य जड ! सम्प्रति तेऽन्तकारम्।।[257]

उपर्युक्त पद्य में अनुप्रास अलंकार का भी प्रयोग देखने को मिलता है।

यहाँ पर पं. दवे जी ने वीर रस, ओज गुण, गौडी रीति के माध्यम से यों कहा है-

शार्मण्य शौर्यविभवं प्रथितं जगत्यां, जातं तवैव मनसो जनकं ज्वरस्य।
तत्रापि भ्रातृजनभेदनभित्तिका या, संनिर्मिताऽद्य पतिता प्रथते तवाघम्।।[258]

इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर उपजाति छन्द का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

विनाशिताशेषसमुद्रपोतं विचूर्णिताखण्डविमान जातम्।
विकम्पिता शेष-बल-प्रयोगम् ईराक देशं विदधेऽभिभूतम्।।[259]

पं. दवे जी ने वीर रस तथा रौद्र रस के माध्यम से यों कहा है-

समर्जिते भूरिधनेन भव्ये प्रचण्डवीर्ये नवशस्त्रजाते।
ध्वस्तेऽपि शत्रोः प्रबलप्रहारैः सद्दामदर्पो न शशाम किञ्चित्।।[260]

यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द का पद्य दृष्टव्य है-

विनष्टाखिलशस्त्रौघो ध्वस्तसैन्यपराक्रमः।
सद्दामपन्नगः क्रुद्धश्चक्रे घोरां प्रतिक्रियाम्।।[261]

यहाँ पर पं. दवे जी ने गौड़ी रीति, ओजगुण, वीर रस, शान्तरस, उत्प्रेक्षा अलंकार तथा उपजाति छन्द के माध्यम से निम्न पद्य इस प्रकार व्यक्त किया है-

नष्टेऽपि कामं युधि रक्तबीज- वीर्ये न शान्तस्तदमर्षभावः।
काले तु प्राप्ते पुनरेष एव युद्धोपरागं जनिताऽस्ति नूनम्।।[262]

पं. दवे जी ने मालिनी छन्द के माध्यम से यों लिखा है-

इति मुनिमुखवार्ताऽकर्णनाश्वस्त-चित्ताः,
कटुकमधु विजल्पाऽऽलब्धगोष्ठी विनोदाः।
युधि पुनरभिशङ्क्ये चिन्तयन्त्यः स्वभूमिं,
निजगृहमुपयाताः कान्तचिन्ता विमुक्ताः।।[263]

उपर्युक्त पद्य में पांचाली रीति तथा प्रसाद गुण विद्यमान है।

निम्न पद्य में भक्ति रस तथा अश्वधाटी छन्द के माध्यम से पं. दवे जी ने यों लिखा है-

कामेश्वरी सुभग कामेश्वराङ्कृत वासाभिराममुकुटा
कस्तूरिकातिलकभालाललाममुखपद्मप्रसन्न हृदया।
कारुण्यसिन्धुशुभदृष्टिर्विशालभवपाथोधिपुण्यतरणी
भूयात्सदैव मयि स्निग्धात्मभावयुतदृष्ट्यावलोकनपरा।।[264]

यहाँ पर वसन्ततिलका छन्द का पद्य दृष्टव्य है-

यत्प्रेरिता भवति शब्दमयी सुसृष्टिः, चित्ते स्फुरन्ति सरसा विविधाश्च भावाः।
तामेव भक्तिवशगां हृदये निषण्णां, संविन्मयीं भगवतीं ललितां नमामि।।[265]

यहाँ पर उपेन्द्रवज्रा छन्द का पद्य दृष्टव्य है-

विशालतेयं वियतोऽप्यमेया, ह्यगाधतेयं वितता पयोधेः।
सहिष्णुता चापि वसुन्धरायाः, तवैव लीलाप्रभवास्ति मातः।।[266]

यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार का पद्य दर्शनीय है-

प्रभा च नक्षत्रगताप्रशस्या, ध्रुवे स्थिरत्वं चपलाश्च खेटाः।
चन्द्रे प्रकाशो निशि चान्धकारः, घूक प्रमोदोऽपि तवैव लीला।।[267]

यहाँ पर वैदर्भी रीति, माधुर्य गुण तथा उत्प्रेक्षा अलंकार का निम्न का पद्य दृष्टव्य है-

स्वरे च माधुर्यमिदं पिकानां, मनोज्ञतेयञ्च मयूरपिच्छे।
शुक्ला अमी मानसराज हंसाः, तवैव मन्ये नुदितैर्लसन्ति।।[268]

उपर्युक्त पद्य में उपजाति छन्द है।

पं. दवे जी ने रूपक अलंकार के माध्यम से इस प्रकार कहा है-

काशांशुका पद्ममनोज्ञवक्त्रा, ज्योत्स्नादुकूला रजनी मनोज्ञा।
नीलोत्पलाक्षी प्रकृतिः प्रसन्ना, तवैव लीलां शरदातनोति।।[269]

यहाँ पर हास्य रस का पद्य दृष्टव्य है-

हिमाद्रिहास्ये सरितां प्रवाहे, पयोधिगाम्भीर्य-वितानवित्ते।
सरोवराणां सुतपोवनानां, शोभाविधानेऽपि तव प्रबन्धः।।[270]

उपर्युक्त पद्य में प्रसाद गुण तथा पांचाली रीति का प्रयोग दृष्टिगत है।

यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार का निम्न पद्य मनोहारि है-

पिनाकपाणेः शिरसिप्रबद्धा, स्वर्गापगेयं लभते प्रतिष्ठाम्।
तीरे च तीर्थानि जलेऽमलत्वं, तवैव लीलोपहितं नु मन्ये।।[271]

यहाँ पर गौड़ी रीति तथा ओजगुण का पद्य श्लाघनीय है-

वीर्यं मृगेन्द्रे गजपीवरत्वं, भीमा भजङ्गाश्चपला कुरङ्गाः।
चतुष्पदानामृजुता गवां वै, त्वदञ्चितोऽयं पशुजातिभेदः।।[272]

उपर्युक्त पद्य में उपमालंकार तथा उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है।

पं. दवे जी ने वैदर्भी रीति तथा माधुर्य गुण के माध्यम से यह कहा है-

रसेषु शृङ्गाररसाधिपत्यं, गद्येषु लालित्यकलाप्रसिद्धिः।
पद्ये नवोक्तिप्रतिभा कवीनाम्, तवैव मातः करुणाधिगम्या।।[273]

इस पद्य में शृंगार रस तथा उपेन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर शृंगार रस का निम्न पद्य श्लाघनीय है-

अतीत्य लोकांल्ललसेऽम्ब ! येन, ख्यातासि त्वं वै ललितेति नाम्ना।
शृङ्गारभावां च वदन्ति केचित्, रसप्रधानां सकलाङ्गरम्याम्।।[274]

यहाँ पर पं. दवे जी ने स्वभावोक्ति अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द के माध्यम से यों लिखा है-

सत्ये सत्यपरायणा हि मनुजाः शास्त्रोपदिष्टं निजं
चक्रुः स्वात्मधियैव कृत्यमखिलं कामानपेक्षाः सदा।
नो राज्ञः खलु दण्डभीतिविवशाः धर्मे रतास्तेऽभवन्
सर्वेषां निजकर्मपालनरुचिः स्वाभाविकी चाभवत्।।[275]

यहाँ पर अद्भुत रस एवं प्रसाद गुण का उदाहरण दृष्टव्य है-

मन्त्राणां बलमस्ति शास्त्रनिवहे ह्यत्यद्भुतं वर्णितं
शापानुग्रहशक्तिरप्यतिशयं ख्याता मुनीनामपि।
अस्तं सा गमिता त्वया कलियुगे लीलां दिशन्त्या निजां
नीता भौतिकयन्त्रशक्तिरधुना विश्वेऽभितो गौरवम्।।[276]

यहाँ पर उत्प्रेक्षालंकार का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

सैवेयं वसुधा त एव मनुजास्तान्येव भूतान्यपि
सर्वञ्चैकपदे परीतगतिकं जातं हि नः पश्यताम्।
जाताः संहृतशासनाः नृपतयः प्राप्तं प्रजाशासनम्
मन्ये सर्वमिदं तवैव ललिते ! दृष्टेर्हि लीलायितम्।।[277]

यहाँ पर वैदर्भी रीति तथा माधुर्य गुण का निम्न पद्य दर्शनीय है-

आश्चर्यं यवनान्वयेऽपि बहवः कृष्णस्य भक्ताः प्रियाः
जाताः वै रसखानतुल्यभगवत्साकाररूपार्चकाः।
त्वक्त्वा यावनपद्धतिं हरिकथागाने रतास्ते मुदा
लीला ते ललिते ! जडेऽपि तनुते चित्ते सुधामाधुरीम्।।[278]

यहाँ पर पं. दवे जी ने तोटक छन्द के माध्यम से यों कहा है-

युगलीलाऽपाङ्गनिपातकृता ललितेऽस्ति विचित्रतमा जगति।
विकृतात्मधियो वरदा अमराः कलयन्ति न ते निजसृष्टिविधिम्।।[279]

यहाँ पर वीर रस का पद्य दृष्टव्य है-

आरुह्य यद्वै शशिभौमभूमिः जिता तवापाङ्गहितावीयः।
सामान्यपुंसोऽपि विहारहेतोः भूमावपीदं सुलभं प्रजातम्।।[280]

इस पद्य में गौड़ी रीति तथा ओजगुण का भी प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर उपमा का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

कलिप्रभावाद्विकृतिं प्रयातं संगीतनेपथ्यकलाकलापम्।
कुरुष्व दृष्टिं विमलां नु येन तवैव लीलामिव भावये तत्।।[281]

यहाँ पर स्वभावोक्ति अलंकार का पद्य दर्शनीय है-

कटाक्षपातं करुणेक्षणायाः विहाय नान्यास्ति गतिर्मदीया।
अतोऽम्ब ! डिम्भं दयितं त्वदीयं करावलम्बेन निधेहि चाङ्के।।[282]

पं. दवे जी ने 'कनकमञ्जरीछन्द' के माध्यम से यह कहा है-

जयति सुन्दरी श्री पुराधिपा ललितलीलया विश्वमोहिनी।
हरिहरार्चिता लोकवन्दिता विपुलविक्रमा दनुजदामिनी।।[283]

यहाँपर अश्वघाटी छन्द तथा उत्प्रेक्षालंकार का निम्न पद्य दृष्टव्य है-

राधा त्वमेव भवबाधापहारिपदपद्मा-हि गोपकुलजा
भक्तेष्टदान-घृतगोपालवेश-मिष लीलाविलासललिता।
ख्याता परा त्वमसि जाताऽपरापि खलु विश्वोपकारनिरता
मन्ये तवैव भुवि नाना स्वरूप-नवलीलाकटाक्षजनिता।।[284]

पं. दवे जी ने मालिनी छन्द के माध्यम से यह कहा है-

लगति नहि मनो मे चञ्चलं ध्यानमार्गे, विशति च न हि वृत्तिर्व्याकृता पूजनेऽपि।
विकृतिविकलचेतो रञ्जनार्थं निबद्धं, भवतु जननि ! काव्यं तेऽर्चनारूपमेतत्।।[285]

पं. दवे जी ने शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा अद्भुत रस के माध्यम से यों कहा है-

लीलेयं ललिते ! त्वदीयमधुरापाङ्गोदभवा ह्यद्भुता
त्वद्रूपैः खलु वर्णजातकुसुमैस्त्वत्प्रेरणा गुम्फिता।
भावानां गुणग्रन्थिभिश्च कलिता भक्त्यार्पिता मालिका
तुभ्यं ह्येव समर्पयऽम्ब, सकलं वस्तु त्वदीयं मुदा।।[286]

यहाँ पर उपजाति छन्द का पद्य दृष्टव्य है-

व्यष्ट्याहितां ते ललिते ! हि लीला, विलोक्य देवा अपि विस्मयन्ते।
भक्तास्तु दृष्ट्वा हृदये प्रसन्नाः, मातृत्वभावं तव कामयन्ते।।[287]

यहाँ पर अनुष्टुप छन्द का पद्य दृष्टव्य है-

अन्नपूर्णा क्वचिद्भूता, नानारसरसायनैः।
युक्तेनान्नेन कुरुषे चातिथ्यं गृहिणीसमा।।[288]

यहाँ पर अनुष्टुष् छन्द का एक अन्य पद्य भी दर्शनीय है-

विचित्रा गृहिणी लीला, ललिते ! वि मोहिनी।
यया मुग्धाः सुरा एते द्रष्टुकामा इमाम् मुदा।।[289]

यहाँ पर शार्दूलविक्रीडित छन्द के माध्यम से पं. दवे जी ने यों कहा है-

क्रीडा-कन्दुक-ताड़नोद्धृत-पदाघातेन शंभोः करात्
भ्रष्टे वै विजयानुपानकलशे क्रुद्धेन संताडितम्।
दृष्ट्वा रोदनतत्परं स्वतनयं बालं गणेशं प्रियं
रुष्टा मौनमुपाश्रिता भगवती पायात् प्रसन्ना द्रुतम्।।[290]

यहाँ पर पं. दवे जी ने 'मत्तमयूरछन्द' के माध्यम से यों लिखा है-

कारुण्यामृतपूर्णशरीरा षड्मस्था, भक्तानां प्रियकर्त्री दक्षा स्मितवक्त्रा।
निर्भीका धृतमुद्रा श्रीदाऽऽभरणाढ्या, विख्याता त्वं मंगलदात्री ललिताम्बा।।[291]

यहाँ पर पं. दवे जी ने 'पंचचामरछन्द' के माध्यम से यों कहा है-

न वेद्मि शास्त्रपद्धतिं न चापि पूजनक्रमं
स्मरामि ते पदाम्बुजं न चेतसाऽचलेन वै।
तथापि ते कृपैषणां त्यजामि नो सदाम्बिके !
अतोऽम्ब ! देहि मेऽपि ते सदा कृपावलम्बनम्।।[292]

यहाँ पर पं. दवे जी ने शिखरिणी छन्द तथा करुण रस के माध्यम से यों कहा है-

विशालेऽस्मिन् राष्ट्रे बहव इह दीनाः हि शिशिरे,
गताः शीताघातैर्यमसदनमावास-विधुराः।
परन्त्वत्रासीना दिनकर-कृपाभाजन-वृताः
परित्राताश्चण्डीकरुणकलितापांगकलया।।[293]

उपर्युक्त पद्य में प्रसाद गुण तथा पांचाली रीति का प्रयोग हुआ है।

पं. दवे विरचित यहाँ **'सौन्दर्यलीलामृतम्'** खण्ड काव्य में श्रृंगार रस से औत-प्रौत निम्न पद्य श्यालघनीय है-

शृङ्गारोत्सवसाधनाय मिलिता वामा नु किं सर्वतः
नाना देशविदेश-वासिकलिते लावण्यपण्यस्थले।
सज्जा-मण्डनमाण्डिता नवनवैर्भावैर्मनोहारिणीः
कन्दर्पो रसिकार्चनाय किमु.वा रामा इमाः प्रैरयत।।[294]

अर्थात् इन रससुन्दरियों को देखकर कई संभावनायें मन में उठने लगी। क्या ये कामिनियें विविध देश-विदेश वासियों द्वारा निर्मित इस लावण्य पण्य स्थल पर शृंगारोत्सव मनाने आई है? किंवा कामदेव द्वारा नानाविध शृंगारों से सजाईं गई, इन सुन्दरियों को अपने विविध हावभावों से रसिकों को रिझाने के लिए यहाँ भेजा गया है?

यहाँ पर विप्रलम्भ शृंगार का पद्य दृष्टव्य है-

त्वं जानासि यदा मदीयमखिलं वृत्तं तदोक्तेन किम्,
चित्ते मे विरहानलो ज्वलनयं प्राणा अमी व्याकुलाः।
नायातः प्रिय! बोधितोऽपि नु वरम् तत् साम्प्रतं कथ्यताम्
सो धन्यो मम जीवने ननु कदा भूयः समायास्यति।।[295]

हे प्रिय! तुम मेरी सारी स्थिति से सुपरिचित हो अतः उसे पुनः दोहराने से क्या? तुम जानते ही हो हृदय में विरह की आग जल रही है। प्राण व्याकुल है। यह ठीक है कि मेरे बुलाने पर भी तुम नहीं आ पाये, परन्तु अब बताओ वह धन्य घड़ी पुनः मेरे जीवन में कब आयेगी?

इस प्रकार पं. दवे जी ने शृंगार रस के अलावा रौद्र, करुण एवं शान्त रस का भी प्रयोग किया है।

यहाँ करुणरस का निम्न पद्य 'विरहिणो भावः' शीर्षक से दृष्टिगोचर होता है-

गोष्ठे गोमय लिप्तचारुचरणां क्लिन्नां श्रमोद्बन्धनैः,
प्रोद्भूतां प्रणयालवालसुभगे स्नेहाम्बुसिक्ताङ्गणे।
शुष्यन्तीं विकलां हिरण्यलतिकां मन्दे मरौ निर्जले
दृष्ट्वा हा! विवशस्य मानसमिदं नित्यं शुचा दूयते।।[296]

जो स्वर्णलता प्रेम की क्यारी से सुन्दर स्नेह सिक्त प्रांगण में लहलहाती रहती थी, वह आज निर्जल मरूस्थल में सूख रही हैं। उस श्रम बन्धन में मुर्झाई हुई लतिका के गोमय लिप्त चरणों को देखकर विवश मन बड़ा दुखी हो रहा है।

यहाँ पर रौद्ररस का पद्य दर्शनीय है-

किं वञ्चिता गुरुजनैरनुरूप बन्धोः, किं वा छलेन रसिकस्य गतासि कोपम्।
उद्वेजितासि किमुवा चपलेन यूना, कोपेक्षणेव परिभासि यतस्त्वमद्य।।[297]

क्या तुम्हारे गुरुजनों ने तुम्हें अपने अभीष्ट साथी से वञ्चित किया है ! किवां तुम्हारे प्रणयी ने तुम्हारे साथ धोखा तो नहीं किया? जिससे तुम उद्विग्न प्रतीत होती हो ! किवां किसी मनचले युवा ने तुम्हारे साथ छेड़छाड़ तो नहीं की है? जिससे तु कुपित नयना प्रतीत हो रही हो।

पं. दवे जी ने उपमा अलंकार के माध्यम से यों लिखा है-

कन्दर्पलीलामिव दर्शयन्त्यम्रप्यन्ति नो वारिधितीर्थभूमौ।
दृष्ट्वेति केचिन्मनसा शपन्ति, सकौतुकं केऽप्यवलोकयन्ति।।[298]

यहाँ पर उत्प्रेक्षालंकार का पद्य दर्शनीय है-

आघ्रातु कामोऽपिन पारयत्यसौ लब्धुं द्विरेफः कलिकाङ्गगन्धम्।
शून्येऽस्ति मौना कलिकापि दीना हतानि नूनं मधुगुञ्जितानि।।[299]

क्या करे बेचारा भौंरा कलिका के अंगों की सौरभ पाना चाहते हुए भी उसे सूँघ नहीं पा रहा है। यह विवशता की मारी कली भी शून्य में मौन पड़ी हुई है। आज मधु और गुञ्जन की मृत्यु हो गई सी लगती है।

यहाँ अनुप्रास अलंकार को छटा दर्शनीय है-

इतश्च भिक्षानिरता युवत्यः, क्लिन्नाम्बरा याचनदीनमुख्यः।
गौराङ्गनाकौतुकमीक्ष्य तीरे, भवन्ति भिक्षाविरताः क्षणाय।।[300]

श्लेष अलंकार का निम्न उदाहरण दृष्टव्य है-

यातं वयो मे स्मरणे त्वदीये, लब्धाः परं नो प्रणयप्रसङ्गाः।
अथापि याचे जननान्तरेऽपि, त्वय्येव भूयात् प्रणयानुबन्धः।।[301]

इसमें विभक्ति तथा प्रत्यय श्लेष का प्रयोग हुआ है-

मुग्धेनेन्दुमुखीसुखे न विदिता चन्द्रे सुधापूर्णता,
लालालुब्धमनोजवेन गणितं सत्सौरभं नाम्बुजे।
धम्मिलेधृतबन्धनेन विदितंहा! सौष्ठवं नाम्बुदे,
तुच्छापूर्णतम प्रमुग्धमनसा पूर्णं मयोपेक्षितम्।।[302]

इस नश्वर चन्द्रमुखी के मोह में चन्द्रगत सुधा की पूर्णता को भुला बैठा। लालाक्लिन्न मुख की ओर मन को भगाते हुए मैंने कमल की सुगन्ध न पहिचानी। कामिनी के केशपाश को बादल

समझकर उसमें तो बंधा रहा परन्तु बादल की शोभा को विस्मृत कर गया। वस्तुतः मैं इस तुच्छ अपूर्ण के मोह में पड़ा पूर्ण को भूलता ही गया।

अर्थान्तरन्यास अलंकार का उदाहरण -

सौन्दर्यं शिवसत्यभावसुभगं यत्कल्पितं सूरिभिः,
जातं तन्नवजातदूषितधियां दुर्बोधनैर्गर्हितम्।
येनैषा वितताऽपकीर्तिलघुता शृंगारभावेऽधुना
सा नो संलभतां कदापि ललिते! काव्ये पदं मामके।।[303]

हमारे पूर्वज ऋषियों ने इस सौन्दर्य को शिव और सत्य के साथ जोड़ा था। वह नवजात दूषित मतिकों के कुतर्क से निन्दित हो गया जिसके कारण इस सौन्दर्य के शृंगार भाव में अपकीर्ति की लघुता फैल गई। हे भगवति! आप कृपा करें कि वह लघुता मेरे काव्य में प्रवेश न करे। विभावना अलंकार का उदाहरण-

पातुं तेऽपि यतन्त एव यतयः सौन्दर्य-लीलामृतम्
दृष्टुं तेऽपि समीहमानमनसो लावण्यलीलाटवीम्।
आघ्रातुं सुषमाऽभिरामकुसुमं वाञ्छाऽस्ति तेषामपि
बद्धा ये नहि सङ्गमोत्सुकधियः कषायकारागृहे।।[304]

हे सुन्दरि! क्या कहे! कई योगी लोग, जो काषाय वस्त्रों के कारागृह में बन्धे हुए नहीं हं तुम्हारी सौन्दर्यलीला सुधापान के लिये लालायित रहते हैं। वे भी तुम्हारे लावण्य वाटिका में विहार करना चाहते हैं। उनकी भी कामना रहती है कि उन्हें तुम्हारी सुषमा सुमन की सौरभ प्राप्त हो। प्रसाद गुण का पद्य-

वेणीं पश्यति वासुकिः सह तृषा वाणीं प्रिया कोकिला
श्रोणीं शैलतटं गतिञ्च कृपणाः सिंहा मराला गजाः।
चन्द्रश्चारुमुखं मृगाश्चनयनं हास्यं स्मितं चन्द्रिका
कान्ते ! त्वत्सुषमासुधा-कणकृते लुब्धं समस्तं जगत्।।[305]

हे सुन्दरि! तुम्हारी सुषमासुधा के कण पर सारी प्रकृति मुग्ध दिखाई पड़ती है। वासुकि तुम्हारी वेणी के वैशिष्ट्य का प्यासा है, कोयल वाणी की मधुरता पर ललचा रही है, पर्वत नितम्ब बिम्ब की ओर निहार रहा है, तुम्हारी चाल पर सिंह, हाथी और हंस होड़ लगाए बैठे हैं, चांद मुखड़े की ओर देख रहा है, हरिण नयनों की चञ्चलता की चाह लिये बैठे हैं तो चाँदनी तुम्हारी मुस्कान पर लालायित दिखाई पड़ रही है।

वैदर्भी रीति का उदाहरण-

स्वर्गीयाऽमृतवाहिनी मधुरता सारं प्रसारो मुदाम्
स्निग्ध-स्मेरमुखाम्बुजोद्गतमिदं सुस्वादु सन्माक्षिकम्
नूनं कर्णपुटामृतं सुभणितं सारस्वतं वैभवम्
अद्यापि श्रुतिगोचरान्न गलितं यातेऽपि दूरं सखे।।[306]

हे सखे! चाहे तुम कितने ही दूर क्यों न चले गये हो। परन्तु तुम्हारी मधुरवाणी मेरे कानों में निरन्तर गूंजती रहती है। वस्तुतः तुम्हारी यह वाणी तो स्वर्गंगा की मधुरता का सार थी, प्रसन्नता का प्रसार थी, स्नेह भरे खिले हुए मुखकमल से निकला मधु था।

पांचाली रीति का पद्य-

कामं चित्रकला विशाल विपटैः भूयात्तरटैर्मण्डिता,
किंवा कोकिल केलिहंसलसितैदृश्यर्भवेद्भूषिता।
तावन्नो परमां परन्तु भजते चेतोहरां सा श्रियम्
यावन्नो नयनाभिरामवनितालीला पदं विन्दते।।[307]

चित्रकला को चाहे कितना ही विशाल वृक्षों से भरे तटिनी तटों से सजाया जाय, किंवा कोयल मोर और हंसों के सुन्दर दृश्यों से अलंकृत किया जाय, परन्तु वह चित्रकला तब तक हृदयहारिणी शोभा को प्राप्त नहीं कर पाती जब तक नयनाभिरामवनिता की लोला को वहाँ स्थान न दिया जाय।

अनुष्टुप छन्द का उदाहरण-

I S S   I S I

उदाहरण - **वासनाव्यस ना सक्ते, विष्टे सौन्दर्यमन्दिरम्।**

I S S   I S I

सौन्दर्योपास्तिसक्तानां भक्तानां गलित य शः।।[308]

उपजाति छन्द का उदहारण-

तगण तगण जगण गु.गु.
S S I S S I I S I S S

उदाहरण **पीयूषमेतत् वदनेन्दुलभ्यम्** (इन्द्रवज्रा)

जगण तगण जगण गु.गु.
I S I S S I I S I S S

इमे चकोरास्तृषिताः पिबन्तु। (उपेन्द्रवज्रा)
मौने च मुक्ते विरमेत नूनम्
औत्सुक्यमेतत् तव दर्शकाणाम्।।[309]

वसन्ततिलका छन्द का उदहारण-

तगण भगण जगण जगण गु.गु.
S S l S ll l S l l S l S S

उदाहरण क्षैषाज ड़ापर वतीप्र कृतिः पु राणा,

क्षेयञ्च चेतनयुताऽङ्गविभाऽङ्गनानाम्।

कुर्मः प्रजापतिसमा कवयः स्वमन्त्रैर

हृद्यां युतिं नवनवां गुणगुम्फितेन।।[310]

मन्दाक्रान्ता छन्द का उदाहरण-

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.
S S S S l l l l l S S l S S l S S

उदाहरण दृष्टवाऽभीष्टं सह चरव रंलग्न मन्यप्र सङ्गे

काचित्तन्वी गमनमतिका दूरमेकान्तदेशम्।

कृत्वा किञ्चिन्मिषमिह दृशा दत्तसंकेतभावा

यूना सार्धं व्रजति मिषतो वञ्चयन्ती वयस्यान्।।[311]

शिखरिणी छन्द का उदाहरण-

यगण मगण नगण सगण भगण ल.गु.
l S S S S S l l l l l S l l l l S

भ्रमन्त्ये तेमूढा लटभ ललना भोगर सिकाः

स्मरान्धा वित्ताढ्या युवकहतका मूढमतिकाः।

भृशं धृष्टा विद्धा अपि युवति-तीक्ष्णाक्षि-विशिखै,

सरोजिन्याः पृष्ठं जहति नहि मुग्धाः मधुलिहः।।[312]

शार्दूलविक्रीडित छन्द का उदाहरण-

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु.
S S S l l S l S l l l S S S l S S l S

उदाहरण काव्यंत द्यशसे भवत्य नुपमं यस्मिंस्त्व दीयंय शः

नाट्यं चापि तदेव भाति रूचिरं लास्येन ते मण्डितम्।

गीतं कर्णसुखं तदेव बहुधा त्वत्कण्ठतो निर्गतम्,

नूनं सा सकला कलाऽस्ति विकल यस्यां न ते सङ्गमः।।[313]

समीक्षा-

भावपक्ष की दृष्टि से पं. दवे जी ने अपने सभी खण्डकाव्यों में श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, भयानक, वीर, अद्भुत, बीभत्स एवं शान्त रस को अंग रूप में उपस्थापित किया है तथा कलापक्ष में अनुष्टुप्, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित तथा इन छंदों के अतिरिक्त अपांगलीला खंडकाव्य में

कवि दवे जी ने अन्य कवियों से हट कर तोटक, कनकमंजरी, अश्वघाटी, पंचचामर एवं मत्तमयूर आदि प्रामाणिक छंदों का प्रयोग किया है तथा अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्द अलंकारों एवं उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह, रूपक, स्वभावोक्ति एवं दृष्टान्त आदि अर्थालंकारों का भी प्रयोग खण्डकाव्यों में किया है, जो विशेष उल्लेखनोय है। भावपक्ष की दृष्टि से विवेच्य खण्डकाव्य में उपर्युक्त सभी रसों का उचित निर्वाह किया गया है। खण्डकाव्य में काव्यास्वाद की दृष्टि से काव्य के आत्मतत्व अर्थात् चैतन्य रस की खण्डकाव्यकार पं. श्रीराम दवे ने सुन्दर तथा सरस योजना की है। तथा कलापक्ष में छन्द तथा अलंकारों, रीतियों, गुणों के उदाहरण देते हुए आलोड़न-विलोड़न कर निश्चित स्थान पर समायोजित करते हुए निबद्ध किया है। निश्चय ही महाकवि पं. दवे जी एक रस सिद्ध खण्डकाव्य की रचना करने में पूर्ण रूप से सफल रहे हैं।

(3) अनुवादित रचनाएं-

(1) निर्मला-

यह हिन्दी उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द विरचित तात्कालिक समस्याओं का वास्तविक चित्रण करने वाला 27 विरामों में निबद्ध सुप्रसिद्ध उपन्यास है, जिसका संस्कृत में रूपान्तरण पं. दवे जी द्वारा किया गया है। प्रथम विराम का संक्षिप्त संस्कृत रूपान्तरण इस प्रकार है-

भूरिकुटुम्बजन- परिपालनपरायणस्य बाबू उदयभानुलालस्य परिवारे आसन् बहवः सदस्याः! एके मातुलेयाः, अपरे स्वस्रेयाः, पितृस्वस्रेया, इतरे च भ्रातृव्याः। परं नासीत् तस्य तैः सह विशेषं प्रयोजनम्। स आसीत् न्यायालस्य श्रेष्ठतमः प्राड्विवाक् (वाक्कील:)। लक्ष्मीप्रसादात् सः परिवार सदस्यानां परिपालनम् आश्रयदानं वा स्वकर्तव्यमिव मन्यते स्म। परं तत्र नास्ति अस्माकं सविशेषं पयोजनम्। अस्माकं लक्ष्यीभूतं तु केवलं कन्याद्वयम्। एका निर्मला, अपरा च कृष्णा। उभे अपि पाञ्चालिकाक्रीडापरायणे आस्ताम्। निर्मला पञ्चदशवर्षीया, कृष्णा च दशवर्षकल्पा। सत्यपि आयुर्भेदे नासीत् तयोः प्रकृतौ विशेषेण भेदः। उभे अपि चपले, क्रीडा-केलि-परायणे, पाञ्चालिकापरिणय-प्रभृतिक्रीडारसिके, परं आस्ताम् गृहकार्य पराङ्मुखमतिके। जनन्या आकारितेऽपि कार्यभारभीते कोष्ठे निलीनगात्रे अभूताम्। सहोदरनिग्रह-निपुणे दासतर्जनदक्षिणे उभे कर्णपथं गते एव वाद्यस्वरे द्वारमुखम् उपतिष्ठेते स्म।

अस्मिन् निर्मला उपन्यासे पाञ्चाली रीतिः, प्रसादगुणः, दर्शनीयः। 'स्वकर्तव्यमिव' पंक्त्याम् उपमा अलंकारः अस्ति।

(2) ध्रुवस्वामिनी-

यह सुप्रसिद्ध नाटक हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित है। इस नाटक का संस्कृत रूपान्तरण भी पं. दवे जी के द्वारा किया गया है। इस ध्रुवस्वामिनी नाटक में कुल तीन दृश्य हैं। जिनमें से प्रथम दृश्य का संक्षिप्त संस्कृत रूपान्तरण इस प्रकार है-

ध्रुवस्वामिनी - भो कुमार! मृत्यु-निर्वासिनयोः सुखं किम् त्वया एकाकिनैव आस्वादयिष्यते। नैतत् भविता। कोऽस्ति नृपतेः निर्देशः जानासि? मत्तः त्वत्तश्च सममेव मुक्तिः। तर्हि तदेव किं न स्यात्। उभौ अपि चलिष्यावः। मृत्युकन्दरां प्रविशन्ती अहमपि तव ज्योतिर्भूत्वा निवर्णिं कामये। अपरामपि विनोदवार्ताम् प्रलयपरिहासञ्च द्रष्टुम् पारयिष्ये। अहो ! मम सहचरि! त्वदीयं ध्रुवस्वामिनी वेषं यदि ध्रुवस्वामिनी एव न पश्येत् तर्हि वितथैव एतत् सर्वम्। (उभाभ्याम् हस्ताभ्यां चन्द्रगुप्तस्य चिबुकं गृहीत्वा सकरुणं वीक्षमाणा)। अस्मिन् नाटक पाञ्चाली रीत्या वर्तते प्रसादगुणः च दर्शनीयः। एवं च करुणरस्य प्रयोगमपि दृष्टव्यम् अस्ति।

(3) गीताञ्जलि-

यह कृति बंगला भाषा के सुविख्यात एवं प्रथम भारतीय नोबल पुरस्कार विजेता कवि गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा प्रणीत है। इस कृति में गुरुवर टैगोर की 128 विविध भाव-प्रवण कविताओं का संकलन है। इस कृति का भी संस्कृत में रूपान्तरण पण्डित दवे जी के द्वारा किया गया है। जिनमें से किन्ही कविताओं का संक्षिप्त संस्कृत रूपान्तरण इस प्रकार है-

विरहत्योतिः

प्रकाशः, अरे ! कुत्रास्ति प्रकाशः?
विरह-ज्वालया प्रदीपय दीपम्।
विधेहि प्रशान्तं प्रदीपकम्
विरहज्वालया प्रदीपय नवं दीपकम्।।

''भाग्ये इदमेव लिखितम्''
इति कथनान्मरणं वरम्
विरह-बह्निना प्रदीपय स्वकीयं दीपकम्।।

गायतीयं वेदना दूतिका
भो:भो:! प्राणा:! त्वत्कृते जागर्ति जगदीश्वर:,
स: निशाया: घनान्धकारे
आह्वयति त्वाम् अभिसाराय,
विषण्णां वीक्ष्य त्वां, गौरवान्वितं विधत्ते ते प्रणयम्,
त्वत्कृते प्रबोधमानोऽस्त्ययं प्रणयी प्रभु:।।

गगनाङ्गणं पूरितमम्बुदै:
निर्झरति च वारि वर्षाया:,
प्रशान्तं प्रदीपकं प्रज्वालय विरह-वह्निना,
अस्यां घोरान्धतमिस्त्रायाम् एकाकी एव,
तव, प्रतीक्षायाम्, प्रबोधमानोऽस्मि।।

झरझरति वर्षा-जलम्,
विद्योतते च विद्युदेषा क्षणमितम्।
तरणी चेयम् आवृता तिमिरेण
नो जाने कियदूरदेशात्
निशाया: गंभीरगीतिस्वर: श्रूयते,
गीतमिदम् समाकर्षति मे मानसं प्रकामम्
प्रकाश:! अरे कुतस्त्योऽयम् प्रकाश:
प्रदीपय, प्रणयदीपकम् विरहाग्निनैव प्रणयिन् !।।

गर्जन्ति घना:, प्रसरन् अस्ति च प्रभञ्जन:,
विगता संगमवेला,
साम्प्रतं न शक्यते क्वापि गन्तुम्,
निबिड़ेयं निशा,
कृष्ण पाषाणोपमा काली,
एतादृश्यां निशायाम्
प्रदीपय प्राणान्
प्रणयदीपकेनैव प्रणयिन्।
विरहाग्निनैव प्रदीपय निजं दीपकम्।।

अस्मिन् 'विरह-ज्योति:' भाव प्रवण कवितायाम् उपमा अलंकारश्लेष अलंकारश्च प्रयोग: दर्शनीय:। वियोग शृंगार रसस्य प्रयोगमापि अस्ति। एवञ्च माधुर्यं गुणं वैदर्भीरीत्या: दृष्टिगोचरम् भवति।

(4) ब्रह्मरसायनम्-

यह कृति भी पं. श्रीराम दवे जी के द्वारा सिन्धी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि शाह अब्दुल लतीफ के महाकाव्य शाह जो रिसालों के 300 पद्यों का संस्कृत रूपान्तरण है। इस महाकाव्य में परब्रह्म की महत्ता पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। यहाँ पं. दवे जी ने अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यों लिखा है-

एकमेवास्ति तद्ब्रूहि नान्या वाचो भवन्तु ते।
सत्यमक्षरमेतत् त्वं चित्ते नित्यं लिखन् वस।।[314]

पं. दवे जी ने वीर रस तथा ओजगुण के माध्यम से यों लिखा है-

स्निग्धा नाह्वयते शूलं, साहसिक्यं भवेद् यदि।
न ततः स्यात् परावृत्तिः प्रीति र्मुण्डविमर्दिनी।।[315]

पं. दवे जी ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से यों लिखा है-

को दोषश्छुरिकायाः वै, हन्तुः करगता तु सा।
प्रियालावण्य-मुग्धोऽयं लोहोऽपि द्रवति ध्रूवम्।।[316]

यहाँ पर उपजाति छन्द का पद्य दृष्टव्य है-

प्रिया वियोगे विषमेऽपि काले, न जायते मृत्युगतापि भीतिः।
जातेऽपि घाते सहसा प्रचण्डे, मुखाद् बहिर्नैति विषादनादः।।[317]

यहाँ पर प्रसाद गुण, पंचाली रीति तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द के माध्यम से पं. दवे जी ने यों कहा है-

इष्टश्चेत् प्रियसंगमस्तव सखे! भूयाः नु चौराध्वगः,
रात्रौ जागरणं महोत्सवसमं येषां तु सञ्जायते।
नो विश्रान्ति सुखं परं न वचसा देहव्यथा वाच्यते
शूलारोहणमुद्यता अपि न ते पीडां निजां व्यञ्जते।।[318]

उपर्युक्त पद्य में अतिशयोक्ति अलंकार है।

यहाँ पर पं. दवे जी ने स्त्रग्धरा छन्द के माध्यम से यह कहा है-

देह प्रश्वासतुल्याः प्रतिपदमवनौ सञ्चरन्त्यात्ममत्ताः,
एते चाद्वैतबोधाः बहुजनहृदये लब्धपुण्यात्म-भावाः।
एतद् भद्रे ! रहस्यं क्वचिदपि वचसा क्वापि नो वेदनीयं
तेषां ख्यातेर्जनानां प्रकटनमपि भो ! गण्यते दोष एव।।[319]

यहाँ पर शार्दूलविक्रीडित छन्द का पद्य दृष्टव्य है-

रथ्या नो परिहीयतां प्रणयिनः रे स्नेहमुग्धाः जनाः!
उद्विग्नाः हतसाहसाः प्रियगृहं त्यक्त्वा न वा गम्यताम्।
तस्मान् मुष्टिमितामवाप्य तु दयां धन्यं जनुर्गणयताम्
अस्माकं यदि तत्कृतेऽर्पणमिदं सोऽस्मान् कथं त्यक्ष्यति।।[320]

पं. दवे जी ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से यों कहा है-

वदन्ति ते चेत् प्रवदन्तु कामम्, प्रतिक्रिया नो नहि तत्र युक्ता।
भुंक्ते फलं यो कुरुतेऽन्यनिन्दाम्, द्वेष्टा सुखं विन्दति नात्र नूनम्।।[321]

यहाँ पर शृंगार रस तथा माधुर्य गुण का निम्न पद्य दर्शनीय है-

रे रे पूर्णनिशाकर ! स्वकलया त्वं पूर्णया मण्डितः
शृंगारान् बहुधा विधाय कुरु भोः ! कामं निजोद्दीपनम्।
किं वा सन्तु सहस्त्रशो हि विधयः स्निग्धेन कर्तुं तुलां,
साम्यं ते क्षणजीविनः कथमरे ! भूयात् सदाभासिना।।[322]

अर्थात् हे चतुर्दशी के चन्द्र ! चाहे तुम हजारो सिंगार करके उदित होओ, अनेक उपाय कर लो, फिर भी तुम प्रिय की लेश-मात्र तुलना में नहीं आ सकते। तुम्हारे सम्पूर्ण जीवन जैसा मेरे प्रिय का एक क्षण है।

एक अन्य पद्य में पं. दवे जी ने उत्प्रेक्षा अलंकार तथा शार्दूल विक्रीडित छन्द के माध्यम से यों लिखा है-

एषा कृष्णकलेवरा भयकरी रात्रिः स्थिता सम्मुखं
चण्डोर्मिं जलधिञ्च तर्तुमपि नो पार्श्वेऽस्ति संसाधनम्।
मृत्कुम्भं परिरभ्य वारिधिमियं विष्टाऽऽविलम्बं प्रिया
मन्ये तत्प्रणयेन शोषितजलो जातोऽम्बुधिः प्राङ्गणः।।[323]

(5) अकिञ्चनचैत्यम्-

यह ग्रन्थ आंग्ल भाषा के सुप्रसिद्ध कवि टॉमसग्रे की प्रसिद्ध कविता 'ELEGY (एलिजी) शोक गीता है। इसके पद्यों का संस्कृतानुवाद पं. दवे जी के अथक प्रयासों से किया गया है, जिसका संक्षिप्त विवेचन निम्न है-

Now fades the glimmering landscape on the sight,
And all the air a solemn stillness holds,
Save where the beetle wheels his droning flight,
and drowsy thinklings lull the distant folds.

संस्कृतानुवाद- मन्दं भास्वद् भूतलं च सहसा दृष्टेः पथो लीयते,
विश्रान्तेऽनिलसंवहे च परितो निस्तब्धता लक्ष्यते।
गुंजन वा परिदृश्यतेऽत्र चपलोऽयं भृङ्गकीटाऽधुना,
निद्रालस्यजुषां गलेषु विचलद्घण्टारवो वा गवाम्।।

(6) ब्रह्मविनय, ब्रह्मसमन्वय एवं अत्रिख्याति-

ये तीनों ही पं. मधुसूदन ओझा द्वारा रचित वेदविज्ञान से सम्बद्ध संस्कृत टीकायें हैं, जिसमें सृष्टि के नियमों का विवेचन है। जिनका हिन्दी अनुवाद राजस्थान पत्रिका प्रभारी गुलाबचन्द कोठारी जी के कहने पर पण्डित दवे जी के द्वारा किया गया है।

संदर्भ सूची

1 काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, प्रथम उल्लास, पृ. 18

2 काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, अष्टम उल्लास का., 66

3 काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, अष्टम उल्लास का., 68

4 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 30.6

5 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 1.45

6 राजलक्ष्मी स्वयंरम् महाकाव्य, 10.37

7 काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, अष्टम उल्लास का., 69

8 काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, अष्टम उल्लास का, 75

9 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 7.68

10 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 28.2

11 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 34.28

12 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 2.26

13 काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास का., 70

14 काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास का., 76

15 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 1.38

16 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 17.2

17 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 11.31

18 साहित्यदर्पण, विश्वनाथ कविराज, परिच्छेद-9 का., 1

19 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 29.15

20 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 9.12

21 साहित्यदर्पण, 9.12

22 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 8.3

23 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 1.3

24 साहित्यदर्पण, 9.4

25 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 12.66

26 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 12.67

27 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 18.3

28 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 5.1

29 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 10.17

30 साकेतसंगरम् महाकाव्य 14.2

31 छन्दोमंजरी, पृ. 13

32 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 7.2

33 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 5.31

34 छन्दोमंजरी, पृ. 16

35 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 7.1

36 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 36.38

37 छन्दोमंजरी, पृ. 14

38 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 8.41

39 भृत्याभरणम् महाकाव्य

40 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 2.9

41 छन्दोमंजरी, पृ. 34

42 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 14.31

43 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 33.1

44 छन्दोमंजरी, पृ. 07

45 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 3.7

46 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 2.20

47 छन्दोमंजरी, पृ. 30

48 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 3.26

49 छन्दोमंजरी, पृ. 20

50 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 16.12

51 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 4.32

52 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 9.53

53 छन्दोमंजरी, पृ. 18

54 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 11.28

55 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 20.25

56 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 21.25

57 छन्दोमंजरी, पृ. 23

58 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 10.2

59 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 32.23

60 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 4.23

61 छन्दोमंजरी, पृ. 17

62 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 16.61

63 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 16.8

64 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 14.13

65 छन्दोमंजरी, पृ. 22

66 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 18.56

67 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 21.5

68 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 15.13

69 छन्दोमंजरी, पृ. 22

70 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 15.32

71 काव्यालंकार सूत्र, 1.1.1

72 काव्यप्रकाश, 9.79

73 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 4.17

74 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 4.3

75 काव्यप्रकाश, 9.84

76 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 9.8

77 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 3.1

78 काव्यप्रकाश, 9.84

79 राजलक्ष्मी स्वंयवर, 4.43

80 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 1.16

81 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 6.10

82 काव्यप्रकाश, 10.87

83 राजलक्ष्मी स्वंयवरम् महाकाव्य, 5.33

84 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 1.3

85 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 9.38

86 काव्यप्रकाश, 10.94

87 राजलक्ष्मी स्वंयवर, 16.68
88 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 31.32
89 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 13.14
90 काव्यप्रकाश, 10.92
91 राजलक्ष्मी स्वंयवरम् महाकाव्य, 5.54
92 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 11.25
93 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 1.30
94 काव्यप्रकाशः 10, 100-101
95 राजलक्ष्मी स्वंयवरम् महाकाव्य, 16.5
96 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 24.27
97 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 5.22
98 काव्यप्रकाश, 10.102
99 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 1.68
100 काव्यप्रकाशः, 10.109
101 राजलक्ष्मीस्वयंवर, 5.76
102 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 10.12
103 काव्यप्रकाशः, 10.107
104 राजलक्ष्मीस्वयंवरम् महाकाव्य, 2.7
105 काव्यप्रकाश, 10.108
106 राजलक्ष्मीस्वयंवरम् महाकाव्य, 11.39
107 काव्यप्रकाश, 10.111
108 राजलक्ष्मीस्वयंवम् महाकाव्य, 15.47
109 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 7.13
110 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 6.13
111 काव्यप्रकाश, 10.99
112 राजलक्ष्मीस्वयंवरम् महाकाव्य, 17.53
113 राजलक्ष्मीस्वयंवरम् महाकाव्य, 17.55
114 काव्यप्रकाशः, 10.132
115 राजलक्ष्मीस्वयंवरम् महाकाव्य, 16.42

116 काव्यप्रकाश, 11.12

117 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 12.33

118 राजलक्ष्मीस्वयंवरम् महाकाव्य, 11.66

119 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 24.26

120 काव्यप्रकाश, 10.108

121 राजलक्ष्मीस्वयंवरम् महाकाव्य, 7.11

122 काव्यप्रकाश, 9.78

123 राजलक्ष्मीस्वयंवरम् महाकाव्य, 2.15

124 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 31.9

125 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 9.15

126 काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास सूत्र-43, पृ. 119

127 काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास सूत्र-43, पृ. 27-28

128 साहित्यदर्पण, परिच्छेद 3, श्लोक सं 132, पृ. 200

129 काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास सूत्र-46, पृ. 136

130 मोदिनीकोश, 3.25

131 रसरत्नहार, शिवराम त्रिपाठी, 6

132 दशरूपक, 4.47-48

133 भावप्रकाश, 2.43

134 रसार्णव सुधाकर, 1.78

135 रसतरंगिणी, तरंग 6, पृ. 128

136 साहित्य दर्पण 3.183

137 रसगंगाधर, पृ. 148

138 रसगंगाधर, पृ. 148

139 रसगंगाधर, पृ. 148

140 रसगंगाधर, पृ. 148

141 काव्यप्रकाश पृ. 121

142 साहित्यदर्पण 3.186

143 रसगंगाधर, प्रथम अध्याय, पृ. 155

144 साहित्यदर्पण, 3.210

145 साहित्यदर्पण, 3.211

146 साहित्यदर्पण, तृतीय परि., का. सं. 211

147 रसगंगाधर

148 सरस्वती कष्ठाभरण, 5.45

149 साहित्यदर्पण, 3.183

150 काव्यप्रकाश, पृ. 154

151 राजलक्ष्मीस्वंयवरम् महाकाव्य, 13.81

152 राजलक्ष्मीस्वंयवरम् महाकाव्य, 16.40

153 भृत्याभरणम् महाकाव्यम् 20.11

154 साहित्यदर्पण, 3.232

155 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 7.64

156 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 7.65

157 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 7.66

158 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 35.22

159 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 11.39

160 नाट्यशास्त्र, पृ. 75

161 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 13.50

162 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 29.15

163 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 8.58

164 नाट्यशास्त्र, पृ. 327

165 राजलक्ष्मीस्वंवरम् महाकाव्य, 14.22

166 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 12.32

167 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 10.22

168 नाट्यशास्त्र, 6.70

169 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 8.14

170 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 13.1

171 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 12.21

172 नाट्यशास्त्र, 6.74

173 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 8.7

174 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 26.12

175 नाट्यशास्त्र, पृ. 345

176 साहित्यदर्पण, 3.242

177 राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य, 15.3

178 नाट्यदर्पण, 6.50

179 साहित्यदर्पण, 3.214

180 राजलक्ष्मीस्वंयवरम् महाकाव्य, 7.40

181 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 4.9

182 नाट्यशास्त्र, 6.84

183 साहित्यदर्पण, 3.245

184 काव्यप्रकाश, 4.34

185 राजलक्ष्मीस्वयंवरम महाकाव्य, 14.30

186 भृत्याभरणम् महाकाव्य, 30.10

187 साकेतसंगरम् महाकाव्य, 12.40

188 वियोगशतकम् खण्डकाव्य, 64

189 वियोगशतकम् खण्डकाव्य, 57

190 वियोगशतकम् खण्डकाव्य, 1

191 वियोगशतकम् खण्डकाव्य, 7

192 वियोगशतकम् खण्डकाव्य, 12

193 वियोगशतकम् खण्डकाव्य, 69

194 भारती-विलास खण्डकाव्य, 36

195 भारती-विलास खण्डकाव्य, 43

196 भारती-विलास खण्डकाव्य, 44

197 भारती-विलास खण्डकाव्य, 45

198 भारती-विलास खण्डकाव्य, 46

199 भारती-विलास खण्डकाव्य, 47

200 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 48

201 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 49

202 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 50

203 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 51

204 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 52

205 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 53

206 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 2

207 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 16

208 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 14

209 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 25

210 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 30

211 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 62

212 भारती-विलासः खण्डकाव्य, 81

213 ललिता-लहरी खण्डकाव्य, 1

214 ललिता-लहरी खण्डकाव्य, 14

215 ललिता-लहरी खण्डकाव्य, 22

216 ललिता-लहरी खण्डकाव्य, 33

217 ललिता-लहरी खण्डकाव्य, 42

218 ललिता-लहरी खण्डकाव्य, 46

219 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 10

220 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 2

221 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 22

222 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 38

223 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 58

224 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 61

225 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 68

226 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 77

227 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 78

228 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 92

229 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 81

230 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 94

231 कारुण्य-कादम्बिनी खण्डकाव्य, 97

232 कामधेनु शतकम् खण्डकाव्य, 1
233 कामधेनु शतकम् खण्डकाव्य, 14
234 कामधेनु शतकम् खण्डकाव्य, 15
235 कामधेनु शतकम् खण्डकाव्य, 21
236 कामधेनु शतकम् खण्डकाव्य, 20
237 कामधेनु शतकम् खण्डकाव्य, 30
238 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, 31
239 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, 37
240 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, 41
241 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, 92
242 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, 97
243 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, 102
244 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, 104
245 कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य, 105
246 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 1
247 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 4
248 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 16
249 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 18
250 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 27
251 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 36
252 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 37
253 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 51
254 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 60
255 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 78
256 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 96
257 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 101
258 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 104
259 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 111
260 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 114

261 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 117
262 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 123
263 परिखायुद्धम् खण्डकाव्य, 126
264 अपाङ्गलीला (मंगलाचरणम्), 3
265 अपाङ्गलीला (मंगलाचरणम्), 5
266 अपाङ्गलीला (सृष्टिलीला), 2
267 अपाङ्गलीला (सृष्टिलीला), 4
268 अपाङ्गलीला (सृष्टिलीला), 8
269 अपाङ्गलीला (सृष्टिलीला), 18
270 अपाङ्गलीला (सृष्टिलीला), 21
271 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (सृष्टिलीला), 22
272 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (सृष्टिलीला), 24
273 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (सृष्टिलीला), 25
274 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (सृष्टिलीला), 35
275 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (युगलीला), 1
276 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (युगलीला), 5
277 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (युगलीला), 7
278 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (रासलीला), 10
279 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (युगलीला द्वितीय), 1
280 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (युगलीला द्वितीय), 16
281 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (रासलीला), 1
282 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (कृपापाङ्गलीला), 8
283 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (निवेदनम्), 13
284 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (रासलीला), 1
285 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (समर्पणम्), 1
286 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (व्यष्टि-लीला), 4
287 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (व्यष्टि-लीला), 1
288 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (व्यष्टि-लीला), 3
289 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (गृहिणी-लीला), 1
290 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (मंगलाचरणम्) व्यष्टिलीलामूल, 2
291 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (कृपालीला) पंचचामरछन्द, 5
292 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (कृपालीला), 5

293 अपाङ्गलीला खण्डकाव्यम् (चण्डिकापाङ्गलीला), 3
294 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्यलीला), 2
295 सौन्दर्यलीलामृतम् (विवशा:विरहिण:), 6
296 सौन्दर्यलीलामृतम् (विवशा:विरहिण:), 11
297 सौन्दर्यलीलामृतम् (मौनामृतम्), 8
298 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्यलीला), 38
299 सौन्दर्यलीलामृतम् (विवशाः विरहिणः), 26
300 सौन्दर्यलीलामृतम् (विवशाः विरहिणः), 31
301 सौन्दर्यलीलामृतम् (विवशाः विरहिणः), 31
302 सौन्दर्यलीलामृतम् (वैराग्य संवेदना), 10
303 सौन्दर्यलीलामृतम् (मंगलम्), 3
304 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्यलीला), 6
305 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्य-विभावना), 4
306 सौन्दर्यलीलामृतम् (विवशाः विरहिणः), 21
307 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्य-विभावना), 9
308 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्य-विभावना), 15
309 सौन्दर्यलीलामृतम् (मौनामृतम्), 11
310 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्य-विभावना), 54
311 सौन्दर्यलोलामृतम् (सौन्दर्य-विभावना), 17
312 सौन्दर्यलीलामृतम् (वैराग्यसंवेदना), 5
313 सौन्दर्यलीलामृतम् (सौन्दर्य-विभावना), 5
314 ब्रह्मरसायनम् खण्डकाव्य, 3
315 ब्रह्मरसायनम् खण्डकाव्य, 15
316 ब्रह्मरसायनम् खण्डकाव्य, 18
317 ब्रह्मरसायनम् खण्डकाव्य, 26
318 ब्रह्मरसायनम् खण्डकाव्य, 46
319 ब्रह्मरसायनम् खण्डकाव्य, 64
320 ब्रह्मरसायनम् खण्डकाव्य, 94
321 ब्रह्मरसायनम् खण्डकाव्य, 99
322 ब्रह्मरसायनम् खण्डकाव्य, 106
323 ब्रह्मरसायनम् खण्डकाव्य, 213

पंचम अध्याय

पण्डित श्रीरामदवे का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान

समस्त भारतीय मान्यताओं और विचारधाराओं का एकमात्र उद्‌गम स्थान वेद ही है। भारतीय धर्म ग्रन्थों में वैष्णव को मंगलकारी देव के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। 'रूद्र' नाम जो शिव का पर्यायवाचक माना जाता है, का उल्लेख हमें ऋग्वेद में ही प्राप्त होता है। ऋग्वेद में जहाँ एक तरफ रूद्र देव का भयानक रूप वर्णित है, वहाँ सौम्यरूप के भी दर्शन होते हैं। यजुर्वेद में इन रूद्र देव के नाम और रूप का पर्याप्त विकास हुआ ह और इन्हें कई प्रशंसा सूचक उपाधियां प्रदान की गई हैं। अथर्ववेद में रूद्रदेव जनसाधारण की आस्था के केन्द्र बन चुके थे तथा उन्हें महादेव की उपाधि प्राप्त हुई। अथर्ववेद 6/44/3, 6/57/1, 10/10/16 ब्राह्मण ग्रन्थों में रुद्रदेव का पद और भी ऊँचा हो गया। उन्हें विष्णु के पर्यायसूचक शब्द नारायण के नाम से पुकारा गया है। उपनिषदों में रुद्र को ईश, महेश्वर, ईशान तथा शिव कहा गया। इस प्रकार (शतपथ ब्राह्मण, 3/2/19/14) विष्णु के नाम, रूप, गुण व उपासना का जो वर्तमान रूप हमें प्राप्त होता है। उसका पूर्ण विकास उत्तर वैदिककाल में हो गया था। 'वस्तुत: वैष्णवमत वेदप्रतिपादित, नितान्त विशुद्ध व्यापक, प्रभावशाली तथा प्राचीनतम मत है।[1]

प्रारम्भ से ही भारतीय संस्कृति में देव भावना की प्रतिष्ठा तथा उसके विशिष्ट रूप को प्रतिपादित करने के लिए साहित्य सृजन की परम्परा रही है अत: ज्यों-ज्यों विष्णु ने उच्च से उच्चतम पद प्राप्त किया त्यों-त्यों उनको आधार बनाकर प्रचुर मात्रा में साहित्य सृजन हुआ। उत्तर वैदिकाल में रचे गये विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, भागवत पुराण, पद्म पुराण और वराह पुराण, वैष्णव सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं।

वैष्णव कथा से संस्कृत रचनाओं को रामकथा तथा कृष्ण कथा की भांति विशेष प्रभावोत्पादक प्रतीत हुई हैं। वैष्णव के उदात्त, लोककल्याणकारी, आशुतोष रूप के अतिरिक्त वैष्णव के आख्यानों ने लोकसामान्य से सामाजिक धरातल पर तादात्म्य स्थापित कर लिया है। सती, साध्वी, राधा का बहुमुखी चरित्र भी लोक प्रेरणा का प्रमुख स्रोत रहा है।

पं. दवे विरचित राजलक्ष्मी स्वयंवर, भृत्याभरणम् एवं साकेतसङ्गरम् महाकाव्यों क कथानक की तुलना एवं उस पर अन्य समकालीन महाकाव्यों का प्रभाव किसो रूप में प्रतिबिम्बित होता है।

भारतीय इतिहास में राजस्थान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक ओर यहाँ की भूमि का कण-कण वीरता एवं शौर्य के लिए प्रसिद्ध रहा है तो दूसरी ओर भारतीय ज्ञान विज्ञान के गौरव, यहाँ पर्याप्त मात्रा में हुए हैं।

राजस्थान की भूमि पर जिस प्रकार संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी एवं राजस्थानी के सैंकड़ों मूर्धन्य विद्वान होते रहे हैं उसी प्रकार विगत 250 वर्षों में पं. टोडरमल प्रभृति सकड़ों विद्वानों को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त है। संस्कृत साहित्य में महाकाव्य, नाटक, गद्यसाहित्य, गीतिकाव्य, खण्डकाव्य, आख्यान साहित्य की जिस महनीय परम्परा का श्रीगणेश एवं पोषण महाकवि कालिदास, भास, भवभूति, भारवि एवं बाणभट्ट जैसे प्रख्यात कतिकारों की लेखनी से हुआ, वह परम्परा आज भी किसी न किसी रूप में जीवित है। वस्तुतः संस्कृत भाषा में विद्वानों द्वारा सतत् लेखन होता रहा है किसी सदी में कम तो किसी से अधिक।

संस्कृत भाषा में लिखित या लिखे जा रहे आधुनिक महाकाव्य उन्हीं मापदण्डों पर आधारित है जो कि आलंकारियों ने निर्धारित किए थे। इन महाकाव्यों में वही सर्गबद्धता कथा का क्रमिक विकास, रस योजना, छन्दयोजना तद्नुरूप ही भाषा शैली का प्रयोग किया जा रहा है। परिवर्तन जिन क्षेत्रों में हुआ है वे हैं विषय-वस्तु सम्बन्धी, पात्र सम्बन्धी और दृष्टि सम्बन्धी।

पं. दवेजी के द्वारा दृष्टिगत परिवर्तन में आधुनिक युग की समस्याओं को महाकाव्यों में उजागर किया है। मानव मूल्य एवं सामाजिक मूल्यों में जो परिवर्तन आया है उन्हें प्रस्तुत किया गया है। ये सम्पूर्ण परिवर्तन समाज व समय (देश-काल) के परिवर्तन के कारण से हुए हैं। अतः उचित ही कहा है कि 'वह साहित्य ही क्या जिसमें तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब न हो।'

समयानुसार भाषा के शब्दों का संस्कृतिकरण हुआ है। नवीन छन्द, उपमान एवं बिम्ब विधान भी काव्यों में प्रस्तुत किये गये हैं। यहाँ राजस्थान के प्रमुख प्राच्य एवं आधुनिक काव्य एवं काव्यकार जिनमें **महाकविमाघ** (650 से 700 श्रीमाल जनपद जालौर)। रचना शिशुपालम् वधम् , **पण्डित गोपीकृष्ण व्यास** (8 अगस्त सन् 1920, जैसलमेर), रचनाएँ - श्री जयमल्ल काव्य, **पं. विद्याधर शास्त्री**, (सन् 1901, चुरू), रचनाएँ - हरनामामृतम् महाकाव्य, विश्वमानवीयम् महाकाव्य, **पं. सत्यनारायण शास्त्री** (सन् 1929 चुरू), रचनायें - आचार्याभिनव, भारतदिग्दर्शन महाकार्व्य, गोपालभक्तारलक्ष्मी लहरी, नवोढ़ा-विलासम्, रामप्रिया खण्डकाव्यम्, रामाश्वमेघीय महाकाव्यम् , **पं. गुलाबचन्द्र चूलेट 'पाटलेन्दु'** (सन् 1921 जयपुर मण्डल) रचना - 'कर्णचरितामृतम्' महाकाव्य, **श्री मधुकर शास्त्री** (1921 रामपुरा-डाबड़ी जयपुर), रचनायें- श्री शास्त्रीजी द्वारा रचित कृतियाँ इस प्रकार हैं- पथिक खण्डकाव्य, धरात्मजा महाकाव्य, महावीर सौरभम्, गांधी-गाथा, मारुति लहरी, **श्री पूर्णचन्द्रशास्त्री कलावटियाँ** (1927 सीकर जिला) रचनायें- अपराजिता वधुः महाकाव्य, चेतनाशतपदी, **पं. श्री बालचन्द्र शास्त्री** (सन् 1871, उदयपुर) रचनायें- श्रीमल्ललितरामचरितम्, प्रेमपद्यावली, दौपदी-परित्राणम्, युगलविनय, रसिकसुधा, अलंकार तत्त्वम्, युगलमहिम्नः स्तोत्र, पंक्तिप्रकाशः, अनुभूतयोगरत्नमाला, कलङ्कमार्जनम्, रासपंचाध्यायी टीका, माधवनिदानस्य बालचन्द्री टीका, तार्किकोन्मूलिनी सिद्धान्त कौमुदी टीका, **श्री बदरी प्रसाद शास्त्री** (सन् 1916, खेतड़ी, राज.) रचनाऐं - मंजुनाथीयम् महाकाव्य- नवसर्गात्मिक, श्रीमदाचार्य परम्परास्तवः, माधुर्यशतकम्, प्रपत्तिपीयूषार्णव, सर्वेश्वरशतकम्, जगद्गुरुगौरव-शतकम्, केलाकेलि कुतूहलम्, राधापदपंचाशिका, श्रीव्रजवल्लभचरितम्, लिंगानुशासनम्, अनुबन्धविषयक निबन्ध, पाणिनि सूत्रों पर लघु टिप्पणी, गान्धिवादस्वरूपम्। **श्री रसिक बिहारी जोशी** (1927 ब्यावर अजमेर) रचनायें - मोहभंग महाकाव्य, तीन गीतिकाव्य हैं- करुणाकटाक्षलहरी, सारस्वतम्, श्रीगोवर्धनगौरवम्। **श्री जगज्जीवन भट्ट** (1706-1724, जयपुर) रचना - अजितादय महाकाव्य। **श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर** (1818-1834 ई., जयपुर) रचनायें - राघवचरित्रम् महाकाव्य, जयवंश महाकाव्य, नृपविलास महाकाव्य,

नलविलास महाकाव्य, लघुरघुकाव्य। **डॉ. श्री नारायण शास्त्री काङ्कर** (1930 जयपुर) रचनायें - रचनाभ्युदयम् महाकाव्य, सत्यार्थ प्रकाश, आर्तनिवेदनम्, श्री कृष्णार्पणमस्तु, स्वतन्त्रता पंचदशी, वासन्तीकम नवनीतामृतम्, भ्रातृ-भक्तो भरत। **कवि पंचानन पं. कुंजबिहारी शर्मा** (1929 नैनवा, बूंदी) रचनाएं- स्वागतशतकम्, विरहविंशतिः, दैन्याश्रयस्तोत्रं, गोपीशतकम्, श्री ब्रजबिहारीस्तोत्रंच। **विद्याभूषण पं. गणेशराम शर्मण** (1908 डूंगरपुर) रचनायें- गद्यकाव्य- संस्कृत कथा कुंजम्, उपन्यास- महामाया, मामकीनो जीवन संघर्ष, पद्यकाव्य- महामहिषमर्दिनी स्तुति, श्री लक्ष्मी प्रशस्ति, श्री मोहनाभिनन्दनम् , श्री लक्ष्मणाभ्युदयम् **कविरत्न पं. छत्रधर शर्मा** (1940, जयपुर) रचनायें - राजभूमि महाकाव्यम्, अम्बासागर वर्णनम, वराहीस्तवनम्, कुम्भरायचरितम, रायसिंह दिग्विजयम्, टोण्डाङ्गना शौर्यगीतिः, मण्डलविधानम्, वितानग्रन्थ, रामदेवचरित महाकाव्यम्। **डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा** (1923 गंगानगर) रचनायें -वस्त्वलंकार दर्शनम्, अभिनवरस मीमांसा, काव्यसत्यालोक रस आलोचनम्, गंगोदयश्च, तत्त्वशतकम् । **डॉ. हरिराम आचार्य** (1936 जैसलमेर) रचनायें- खुले किरण पाल, आगम तीर्थ, गाथासप्तशती, भावपुण्य पर्याम् गीत, गीत रचना - वयं राष्ट्रे जागृयाम्। **साहू रामदेव** (1958 टोंक) रचनायें - रामदेव चरित महाकाव्य, चित्तौड़चूड़ामणि महाकाव्य शिवलहरी, अभिनव - जयपुरम्, अभिनन्दन द्वासप्तति, अमृतस्तमद्वादशी, रामभरतस्तोत्रम्, श्रीदादूचरितामृतम्, कलहकौतुकम्, विवाहमंगलम्, रामदेवशतकावली, मुचकुन्दचम्पू, रूक्मणिहरणचम्पू , वैराग्योदयम्, शब्दतत्त्वालोक, प्रसादालोकः, इत्यादि हैं।

आधुनिक काव्य परम्परा-

आधुनिकता और परम्परा, ये दोनों शब्द लिखने में और पढ़ने में एक दूसरे से भिन्न दिखाई देने पर भी एक दूसरे पर आधारित है। एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। वस्तुतः दोनों शब्द अब कलात्मक न होकर मनोभाव वाचक हो गए हैं। आधुनिकता के शब्दार्थ पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि 'अधुना' या इस समय जो कुछ है वह आधुनिक है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी 'अधुना भव इत्यर्थे अधुना + ठञ् (प्रत्यय) इसका अर्थ होगा - वर्तमान काल का परन्तु 'आधुनिक' का केवल यही अर्थ नहीं है अपितु

इसका अर्थ अधिक व्यापक है उसके मूल में कुछ पुराने संस्कारों और कुछ नवीन अनुभवों का संगम होता है और परिणामस्वरूप एक नवीन कल्पना का जन्म होता है जिसे हम क्षणभर के लिए आधुनिक कह सकते हैं किन्तु क्षणभर पश्चात् ही आज हमारे लिए जो 'अधुनातन' या 'लेटेस्ट' है वह कट छंटकर परम्परा का रूप धारण कर लेता है। वस्तुत: कुछ भी स्थिर नहीं है। सब गतिशील है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित ही कहा है 'परम्परा आर आधुनिकता दोनों ही गतिशील प्रक्रियाएँ हैं। दोनों में विरोध केवल यह है कि परम्परा यात्रा के बीच पडा हुआ अन्तिम चरण है जबकि आधुनिकता आगे बढ़ा हुआ गतिशील कदम है।'[2]

आज से 1700 वर्ष पूर्व आचार्य भरत द्वारा प्रतिपादित काव्य की परिभाषा अधुना ज्यों की त्यों स्वीकृति नहीं है। उसमें समय-समय पर विभिन्न आचार्यों द्वारा परिवर्तन किया गया है। काव्य की परिभाषा लिखने वाले आचार्यों के लक्षण ग्रन्थों के नामकरणों, उनमें प्रतिपादित काव्य-विषय के समरूपों में क्रमश: विकास होता हुआ प्रतीत होता है। किसी पदार्थ के आन्तरिक तत्त्व के शोध करने में जैसे-जैसे उसकी ऊपरी परत को हटाया जाता है और निहित आन्तरिक सूक्ष्म पदार्थ का बोध होता जाता है, वैसे ही साहित्य की मान्यताओं में क्रमिक विकास होता हुआ दष्टिगोचर होता है। निश्चय ही किसी विचार या आचार का सदैव एक सा मूल्य नहीं होता। विगत दो शताब्दियों में हमारे देशवासियों ने अपने अनेक प्राचीन संस्कारों को भुला दिया है और शेष संस्कारों के साथ नवीन अनुभवों को मिलाकर नवीन मूल्यों की कल्पना की है। विभिन्न परिस्थितियोंवश चाहे वह राजनीतिक हो, सामाजिक हों, आर्थिक हो या वैज्ञानिक शोध के परिणामस्वरूप नवीन तथ्यों के परिचय से हो - निर्विवादरूप से हमारी प्राचीन मान्यताओं में बहुत अन्तर आता है। गत दो सौ वषा में संस्कृत रचनाओं की विचारधारा में जो बदलाव आता है, वह दर्शनीय है। इसकी पुष्टि दो उदाहरणों से हो सकती है। प्रथम यह कि 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से संस्कृत साहित्य का एक नवीन परिवर्तित रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। उसके रूप में काव्य की शैली विषय वस्तु और काव्यनिर्मित के प्रयोजन की दृष्टि से एक अभूतपूर्व परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इसकी लेखन पद्धति अधिक व्यापक और स्वाभाविकता की ओर उन्मुख हुई सी दिखाई देती है।

कथावस्तु के आधार पर अन्य महाकाव्यों से तुलना-

कवि अपने संस्कार, रूप, प्रतिभा के द्वारा रचना कर्म में प्रवृत्त होता है। व्युत्पत्ति से रचना को समृद्ध बनाता है तथा अभ्यास से उसे परिनिष्ठित करता है। अभ्यास के अन्तर्गत वह महाकवियों और उनकी रचनाओं का व्यापक अनुशीलन करता है और तद्नुसार रचनाकारो, आलोचकों के मार्गदर्शन में पुनः पुनः प्रवृत्त होता है। रससिद्ध महाकवियों का रचना कर्म प्रेरणास्पद, सरस और उत्साहवर्द्धक हुआ करता है। कवि अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन महाकवियों के रचना कौशल को ग्रहण करता है उसे परिमार्जित करता हुआ विशिष्टता प्रदान करता है।

आधुनिक संस्कृत कवियों एवं लेखकों ने अपनी पूर्ववर्ती परम्परा एवं प्राचीन उपजीव्य काव्यों के आदर्शों का संरक्षण अपने काव्यों में पूर्ण रूप से किया है। यथा 16 वीं शती के पूर्ववर्ती कवियों में से सुबन्धु, कविराज, संध्याकरनन्दी और धनंजय सदृश कवियों, लेखकों ने जिस प्रकार द्वयर्था, त्रयार्थी महाकाव्यों का निर्माण किया है उसी आदर्श और परम्परा में आधुनिक कवियों में 'यादवराघवीयम्' एवं 'पंचकल्याणचम्पू' के कवि चिदम्बर (17 वीं शती) 'राघवनैषधीय' के रचयिता हरदत्त (17 वीं शती) और 'कसेल भोसलीय' के लेखक शेषाचलपति (18 वीं शती) आदि कवियों ने अपने भाषा प्रभुत्व का प्रभाव श्लेष प्रधान काव्य निर्माण में उपन्यस्त किया है।

पं. श्रीराम दवे (20 वीं शती) द्वारा विरचित 'राजलक्ष्मी स्वंयवर' महाकाव्य भी इसी काव्य परम्परा में एक श्लेष प्रधान महाकाव्य है। इस श्लेषात्मक काव्य का निर्माण कर उन्होंने अपने बुद्धि कौशल एवं व्युत्पत्ति का परिचय देते हुए एक नवीन आदर्श स्थापित किया है। 18 सर्गो में निबद्ध समीक्ष्य महाकाव्य में कवि ने श्लेषात्मक श्लोकों की छटा बिखेर दी है।

निष्कर्ष

उक्त तुलना के आधार पर कहा जा सकता है कि पं. श्रीराम दवे का आधुनिक महाकाव्य श्लेषात्मक काव्य तो है ही तथा उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि इस

महाकाव्य में चित्रकाव्य के दोनों पक्षों (शब्द चित्र और अर्थ चित्र) का समान रूप स उल्लेख किया गया है। इसमें शब्दार्थ का प्रयोग अत्यन्त सामंजस्यपूर्ण है।

भृत्याभरणम् महाकाव्य- आधुनिकता की चकाचौंध तथा स्वार्थ लिप्सा के दृष्टिकोण ने जो देश की स्थिति बना रखी है। उससे उपजा कवि का क्षोभ-काव्य में व्यंग्य के माध्यम से प्रकट हुआ है। यह 37 सर्गों का महाकाव्य है।

'भृत्याभरणम्' युग प्रवृत्ति बोधक महाकाव्य है। इसके संक्षिप्त कथानक को कवि ने पौराणिक कल्पना से जोड़ा है। संस्कृत के प्राचीन महाकाव्य प्राय: पौराणिक अथवा ऐतिहासिक महापुरूषों के जीवन पर ही लिखे गये हैं। पं. श्री राम देव का यह युगप्रवृत्ति बोधक महाकाव्य अपनी अलग ही पहचान रखता है। कवि ने अपने काव्य की भूमिका में इस महाकाव्य के बीज का निरूपण करते हुए लिखा है कि ज्यों ही वे बैंक सेवा से निवृत्त होकर घर पर आये तो उन्हें सहसा सेवानिवृत्ति का सुख अनुभव हुआ जिस पर उन्होंने एक कविता लिखी जिसमें भृत्याकाल में बाबूओं के, बैंक अधिकारियों के तथा ग्राहकों के लेन देन के झंझट से छुटकारा पाने का वर्णन किया गया है।

निष्कर्ष- यह नायिका प्रधान काव्य है। भृत्या अर्थात् नौकरी इसकी प्रधान नायिका है। आधुनिक युग में नौकरी प्राप्त करना ही मानव मात्र का लक्ष्य बन गया है जिसे पाकर वह विविध लाभ अर्जित करना चाहता है। इस पर सटीक प्रहार करते हुए यह काव्य रूपकात्मक शैली में व्यंग्य का सहारा लेकर आधुनिक युग की विडम्बना को मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करता है। यह काव्य किसी विशिष्ट कथावस्तु को लेकर नहीं चला है अपितू भारत में नौकरी पेशा लोगों के लिए कवि ने एक सामान्य सा कथासूत्र बुना है।

साकेतसङ्गरम्- साकेतसंगरम् श्रीराम जन्मभूमि (अयोध्या) मुक्ति संघर्ष के आधार पर विरचित 15 सर्गों का विविध आयोजनों, कारसेवकों के साहस आदि का, विविध छन्दों में निबद्ध आधुनिक महाकाव्य है जिसमें लगभग 600 श्लोक हैं। महाकाव्य वीररस पूर्ण है। इस काव्य का आरम्भ श्रीराम जन्मभूमि पर 30 अक्टूबर 1990 को संघर्ष में वीरगति को प्राप्त हुए कवि

के अभिन्न मित्र, विश्वहिन्दु परिषद के प्रदेश मुख्य कार्यकर्त्ता प्रो. महेन्द्रनाथ अरोड़ा की पुण्य स्मृति में प्रारम्भ किया जिसकी पूर्णाहुति 6 दिसम्बर 1992 को श्रीराम जन्मभूमि स्थित विवादित बाबरी मस्जिद ढांचे के ध्वस्त होने पर की गई थी, जिसके कवि स्वंय प्रत्यक्षदर्शी थे। इस काव्य में देश के स्वतन्त्र होने पर भी देश की अस्मिता की अपेक्षा पर प्रबल आक्रोश की अभिव्यक्ति है। देश की स्वतन्त्रता के पूर्व इस देश से फिरंगियों की सत्ता समाप्त होने पर यह देश पुनः अखण्ड रूप से स्वतन्त्र होगा, ऐसा स्वप्न देखने वाले हिन्दु समाज के देखते-देखते इस भूमि के खण्डित होने की तीव्र वेदना है।

निष्कर्ष- पं. दवे जी ने इस काव्य में देश के स्वतन्त्र होने पर भी देश की अस्मिता की उपेक्षा पर प्रबल आक्रोश की अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख है। यह काव्य रीति, रस, छन्द, अलंकार, भाषा शैली से दृष्टिगोचर हुआ है।

20 वीं शती में मुख्यतः राजलक्ष्मीस्वंयवर महाकाव्य, भृत्याभरणम् महाकाव्य तथा साकेतसंगरम् महाकाव्य, रामकृष्णपरमहंस दिव्यचरितम् जयरामदासचरितम् जैसे विशालकाय महाकाव्यों की एक लम्बी परम्परा है, जो प्रकाशित हो चुके हैं और जो गुणवत्ता एवं शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इसी परम्परा में पं. दवे जी के महाकाव्य उपनिबद्ध है। जो महाकाव्यत्व के सभी गुणों से ओत-प्रोत है।

समीक्षा-

इस प्रकार पं. श्री राम दवे जी द्वारा रचित राजलक्ष्मी स्वयंवरम्, भृत्याभरणम् तथा साकेत संगरम् महाकाव्य का विस्तारपूर्वक काव्यशास्त्रीय आधार पर आलेड़न-विलोड़न करने पर यह महाकाव्य महाकाव्यत्वता की सभी दृष्टियों जैसे - स्रोतता, कथानक, रसप्रवणता, गुण, रीति, ध्वनि, छन्दबद्धता, अलंकारिता, संवादात्मकता, काव्यकला, चरित्र सृष्टिता, भाषा शैली, प्रकृति चित्रण, वस्तुवर्णन, रूपविधान, प्रयोजनता, ऐतिहासिकता, काव्यगत आदान-अवदान, मौलिक वैशिष्टता, साहित्यिकता, सांस्कृतिकता, दार्शनिकता, आध्यात्मिकता, चमत्कारिता इत्यादि से परिपूर्ण दृष्टिगोचर होता है।

वस्तुत: 20 वीं शती का यह महाकाव्य तत्कालीन समाज का चित्रण करता है। तथा इस महाकाव्य का प्रभाव उत्तरकालीन संस्कृत गद्य-पद्य साहित्य तथा नाटकों में, ब्रजभाषा के कवियों की वाणियों में तथा महाराष्ट्र के अभंगो में प्रत्यक्ष परिलक्षित है।

पं. श्री रामदवे ने अपनी आध्यात्मिक एवं सारस्वतधारा से जन जीवन को प्रभावित किया है। उनके साहित्यिक के चिन्तन मनन से उनका संस्कृत भाषा, साहित्य, व्याकरण और दर्शन के गहन अध्ययन तथा साधना का प्रौढ़त्व स्पष्ट झलकता है।

कवि प्रतिभा के धनी, अत्यन्त बुद्धिमान, व्याख्याकार, संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित, पूर्ण सन्तुष्ट महापुरूष, अप्रतिहत संस्कृत भाषी, ज्ञान के अगाध समुद्र, समाज सेवक, आदर्श संस्कृत अध्यापक, पं. श्री दवे जी जिस विषय के प्रति सहृदय भाव से परिपूरित हो जाते उसी पर तत्काल सुन्दर सरस और प्रभावपूर्ण छन्द रच दिया करते थे।

यशोगाथा, उदात्त चरित्र, शास्त्रों में गहरी पैठ और धार्मिक सदाचार पं. दवे जी के विशिष्ट गुण थ। पं. दवे जी ज्ञान तथा आनन्द की साकार मूर्ति थे। उन्होंने कभी भी अपने नाम तथा यश के लिए परवाह नहीं की। उनका व्यवहार सबके प्रति समान था। जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में एक बार भी आ जाता था वह हमेशा यही कहा करता था कि गुरुजी ने उसी के साथ सब से अधिक प्रेम किया था।

पं. दवे जी जब 6 वर्ष के थे, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया था। अत: इस गहरे आघात ने परिवार को झकझोर कर रख दिया। किन्तु इनकी माँ ने हिम्मत नहीं हारी और तात्कालिक परिस्थितियों से स्वयं जुझती रही। तब इन्होंने 5 वीं कक्षा अपने गाँव की पाठशाला से ही उत्तीर्ण की तत्पश्चात् आगे की शिक्षा ग्रहण करने हेतु इन्हें अपनी बड़ी बहिन के पास 'अमरकोट नगर' जाना पड़ा। किन्तु वहाँ भी बड़ी बहिन का असामयिक निधन हो जाने के कारण अधिक समय तक नहीं रह सके और वहां से संस्कृत प्रथमा परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर पुन: अपने गाँव में माँ के पास लौट आये।

परिस्थिति के वशीभूत होकर अब इन्हें शिक्षा ग्रहण करने हेतु अपने मामा के पास हैदराबाद सिन्ध (वर्तमान पाकिस्तान) जाना पड़ा, वहाँ इन्होंने प्रात: स्मरणीय एवं ज्ञानवृद्ध गुरु पं. श्री मणिशंकर आचार्य जी के श्री चरणों में बैठकर गिदुमल संस्कृत पाठशाला में संस्कृत का अध्ययन किया।

बैंक से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् पण्डित जी ने सर्वप्रथम 'भृत्याभरणम्' नामक महाकाव्य का सृजन किया। पं. श्रीराम दवे जी ने अनेक महाकाव्यों तथा खण्डकाव्यों की रचना की है। उन्होंने समसामयिक विषयों को अपने लेखन का विषय बनाया है। 'भृत्याभरणम्' में बेरोजगारी की समस्या नौकरी पाने के लिए जोड़-तोड़, चुनाव में धन-बल व बाहुबल का प्रयोग, ईराक-युद्ध, राममन्दिर निर्माण की घटना आदि विषयों पर पं. दवेजी ने लेखनी चलाई है।

'राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य' यह कल्पित कथावस्तु के आधार पर रचित एक युगप्रवृत्ति बोधक महाकाव्य है। प्रस्तुत महाकाव्य में लोकतन्त्र को विष्णुमाया कल्पित युगपरिवर्तन लक्षित किया गया है, जिसमें अर्थ और काम की प्रधानता मानी गई है। इस महाकाव्य में वर्णित किया गया है कि जो राजलक्ष्मी प्राचीनकाल में आठ लोकपालों के अंश राजा का वरण करती थी वहीं राजलक्ष्मी आज विष्णु की प्रेरणा से निर्वाचन स्वयंवर में वोट विजेता को अपना पति मानती है। यह लोकतन्त्र भी विष्णुमाया का ही खेल है जिसमें विष्णु की ही विभूतियाँ सहयोगी बनकर अपनी भूमिका निभा रही है।

'साकेतसंगरम्' महाकाव्य श्री रामजन्मभूमि संघर्ष का प्रत्यक्ष चित्रण करता है। इस महाकाव्य में देश के स्वतन्त्र होने पर भी देश की अस्मिता की उपेक्षा पर प्रबल आक्रोश की अभिव्यक्ति है। इस महाकाव्य में एकादशी से प्रारम्भ श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर के जीर्णोद्वार की कथा का विवेचन किया गया है।

'भारतीविलास' खण्डकाव्य में माया मातृकारूपधारिणी भारती को ही लीलाविलास का वर्णन किया गया है। आकार से क्षकार तक पचास संश्लिष्टात्मक वर्णों को ही भारती नाम से पुकारा जाता है। पचास वर्ण ही उस भारती के अंग और अलंकरण माने गये हैं।

'ललिता लहरी' खण्डकाव्य में पं. श्रीराम दवे जी के द्वारा अपनी आराध्य देवी शैलनिवासिनी माँ ललिता के प्रति समर्पित भक्तिभाव वर्णित किया गया है, जो भक्त की माँ के प्रति सच्ची भक्ति रूपी भेंट है।

'वियोगशतकम्' खण्डकाव्य मेघदूत के अनुरागी एवं अलका नामक आवास के निवासी मित्र आसूलाल संचेती की वियोग वेदना पर लिखा गया है। इस काव्य में मेघदूत के छन्द मन्दाक्रान्ता का ही प्रयोग किया गया है।

'कामधेनुशतकम्' में पं. दवे जी ने गायों की मानवीय जीवन में उपयोगिता एवं महत्ता पर प्रकाश डाला है।

'अपाङ्गलीला' खण्डकाव्य के दो अध्यायों में सृष्टिलीला, युगलीला, रासलीला एवं कृपाङ्गलीला का वर्णन पं. दवे जी के द्वारा किया गया है।

'कारुण्यकादम्बिनी' एक श्रेष्ठ खण्डकाव्य है जिसमें पं. श्रीराम दवे जी के द्वारा अपनी श्रद्धेया करुणामयी मूर्ति मां मथुरा के प्रति सच्ची कृतज्ञता ज्ञापित की गई है। जिनकी सद्प्रेरणा से ही इन्हें समय की विकट परिस्थितियों में अध्ययन एवं स्वावलम्बी बनने का मार्ग मिला। माँ के उसी करूणामय संघर्ष से इस कारूण्यकादम्बिनी का बीज प्रस्फुटित हुआ।

'परिखायुद्धम्' खण्डकाव्य में पं. दवे जी ने ईराक युद्ध एवं उससे उत्पन्न भयावह दशा का वर्णन किया है।

'सौन्दर्यलीलामृतम्' श्रेष्ठ खण्डकाव्य में ईश्वरकृत सृष्टि में प्राणियों की विविध सौन्दर्यलीलाओं का वर्णन पं. दवे जी ने किया है।

'काव्यमञ्जूषा' एक खण्डकाव्य जिसमें समय-समय पर विविध प्रसंगों पर लिखी गई 98 कविताओं का संग्रह है।

पं. श्रीराम दवे जी द्वारा अनुवादित कृतियों का विवरण व विवेचना निम्नलिखित है- 'निर्मला' हिन्दी उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द विरचित द्वारा तात्कालिक सामाजिक समस्याओं का वास्तविक चित्रण करने वाला 27 विरामों में निबद्ध सुप्रसिद्ध उपन्यास है, जिसका संस्कृत रूपान्तरण पं. दवे जी के द्वारा किया गया है।

‘ध्रुवस्वामिनी’ सुप्रसिद्ध नाटक हिन्दी के कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित है। इस नाटक का संस्कृत रूपान्तरण भी पं. दवे जी के द्वारा किया गया है।

‘गीताञ्जलि’ यह कृति बंगला भाषा के सुविख्यात एवं प्रथम भारतीय नोबल पुरस्कार विजेता कवि गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा प्रणीत है। इस कृति में गुरुवर टैगोर की 128 विविध भाव-प्रवण कविताओं का संकलन है, जिनका संस्कृत रूपान्तरण पं. दवे जी के द्वारा किया गया है।

‘ब्रह्मरसायनम्’ यह कृति भी पं. दवे जी के द्वारा सिन्धी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि शाह अब्दुल लतीफ के महाकाव्य शाह जो रिसालों के 300 पद्यों का संस्कृत रूपान्तरण है। इस महाकाव्य में परब्रह्म की महत्ता पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

‘अकिञ्चन् चैत्यम्’ यह ग्रन्थ आंग्ल भाषा के सुप्रसिद्ध कवि टॉमसग्रे की प्रसिद्ध कविता ‘ELEGY’ (एलिजी) शोक गीता है। इसके पद्यों का संस्कृतानुवाद पण्डित दवे जी के द्वारा किया गया है।

ब्रह्मविनय, ब्रह्मसमन्वय एवं अत्रिख्याति’ ये तीनों ही पं. मधुसूदन ओझा विरचित वेदविज्ञान से सम्बद्ध संस्कृत टीकायें हैं, जिनका हिन्दी अनुवाद राजस्थान पत्रिका प्रभारी गुलाबचन्द कोठारी जी के कहने पर पं. दवे जी के द्वारा किया गया।

सम्पूर्ण जगत् में साहित्य के सिद्धान्तकार विमर्श करते रहते हैं कि साहित्य जैसे कलात्मक माध्यम में स्वायत्तता महत्वपूर्ण है या सामाजिक परिवेश। अरस्तु से लेकर इलियट व मार्क्सवादी चिन्तकों ने इस विमर्श की परम्परा को आगे बढ़ाया। परन्तु यह तथ्य अब स्थापित हो चुका है कि कला और साहित्य, कला और समाज एक दूसरे से सम्बद्ध है। यदि समाज और साहित्य परस्पर प्रभावित न रहे होते तो 14 वीं शती में भक्ति आन्दोलन जैसे कथानक आन्दोलन कैसे सम्भव होते। उत्तर मध्यकालीन यूरोप में एक काल के अनन्तर दूसरे काल में चित्रकला की शैली बदलती रही, कभी अमर्तन तो कभी क्यूविज्यम का समय था।

आधुनिक संस्कृत साहित्यकार जीवन के बदलते सन्दर्भों आर आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढ़ालकर नव साहित्य का स्रजन कर रहे हैं। इन काव्यकारों ने समाज में प्रतिदिन अनभव होने वाली सामाजिक बुराईयों को व्यंग्यात्मक रीति से स्पष्टकर उन्हें दूर करने का प्रयास किया है। जयपुर के भट्ट मथुरानाथ शास्त्री का 'मंजु कविता निकुंज' काव्य संग्रह है जिसमें उन्होंने पाश्चात्य रंग में रंगे व्यक्ति के वर्तमान सामाजिक जीवन पर व्यंग्य किया है।

20 वीं सदी का कवि हृदय, समाज में व्याप्त विसंगतियों से आहत मानव समाज को देखकर द्रवीभूत हो गया है। उसकी वाणी ने श्रमिक के श्रम को, उसकी पीड़ा को स्पष्ट रूप से उद्घाटित किया है। आधुनिक रचनाओं में, परम्परागत शृंगार और अभिसार से हटकर मानवोय सुख-दुःख, आशा-निराशा, विशेषतः पुरुष प्रधान रूढीवादी भारतीय समाज में नारी एवं अनाथों की दयनीय दशा एवं जीवन संघर्ष का चित्रण किया गया है। पं. दवे जी भी इस परिवर्तन से अछूते नहीं रहे हैं।

राजलक्ष्मी स्वंयवर महाकाव्य इस अर्थ में अपनी समकालोन संस्कृत रचनाओं से भिन्न है, क्योंकि इसमें तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक घटनाओं के माध्यम से समकालीन जीवन की वास्तविक घटनाओं का मार्मिक चित्रण किया गया है। इस महाकाव्य में तत्कालीन घटनाओं के माध्यम से जीवन के गहरे और महत्त्वपूर्ण तथ्यों को लिया है। संस्कृत साहित्य में इस तरह के कथानक की परम्परा प्रायः नहीं है और संस्कृत साहित्य पर यह आरोप भी लगता रहा है कि यह समकालीन राजनैतिक, सामाजिक सच्चाईयों का वास्तविक चित्रण न करते हुए अतीत जीवित रहा। परम्परा का यह अतिक्रमण इस महाकाव्य की श्रेष्ठता है। सामान्यतः कला के प्रत्येक माध्यम उदाहरणस्वरूप, चित्रकला, मूर्तिकला, साहित्य, संगीत आदि समकालीन परिस्थितियों में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रभावित होते रहे हैं क्योंकि व्यक्ति या रचनाकार अपने अनुभवों को समकालीन राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अनुभवों से समृद्ध करते हुए रचनाकार्य में प्रवृत्त होता है, इसलिए सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों का किसी भी रचना पर प्रभाव स्वाभाविक है।

राजलक्ष्मी स्वंयवर महाकाव्य में 1984 के राजनैतिक परिदृश्य में कल्पना प्रतीक, (फेन्टेसी) कल्पना स्वरूप चित्रात्मकता के माध्यम से जीवन के काव्यातीत विषयों को या ऐसी समस्याओं को सामने प्रकट किया है जो प्रत्येक काल में मनुष्यों को प्रभावित करती रही हैं। इस महाकाव्य में यथार्थ और कल्पना का ऐसा अनुपम संयोग है कि महाकाव्य अत्यन्त गहरे यथार्थ को अभिव्यक्त करता है।

इसी आधुनिक परिपाटी पर पं. श्री राम दवे ने राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य की रचना की हैं, जिसमें उन्होंने काल्पनिक कथानक के माध्यम से जीवन के महत्वपूर्ण तथ्यों का चित्रण सहज रूप से, नैसर्गिक प्रतिभा के माध्यम से किया है। ''साहित्य समाज का दर्पण है'' इस उक्ति से स्वत: सिद्ध हो जाता है कि कवि का कथानक या तो काल्पनिक हो या वास्तविक परन्तु कवि का वातावरण, हृदयगत संस्कार स्वानुभूत मस्तिष्क पटल पर स्मृतियाँ स्वत: ही उसकी रचना का महत्त्वपूर्ण अंग हो जाती है, जिससे महाकाव्य को पढ़कर पाठक का मन पीड़ा से स्वत: ही द्रवित हो उठता है।

पं. श्री रामदवे जी ने लोक कल्याण की भावना को दृष्टिगत रखते हुए अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से सार्वभौम देन देकर अपने कवित्व जीवन को कृतार्थ किया। उनकी रचनाएँ स्वान्त: सुखाय मात्र न होकर परसुखाय अधिक हैं।

(1) संस्कृत संस्कृति के लिए समर्पित जीवन-

पं. श्री रामदवे जी बींसवी सदी के भारतीय संस्कृत विद्वानों में श्रेष्ठ विद्वान थे। उन्होंने अत्यन्त अल्पावस्था में असाधारण परिपक्व योग्यता को प्रकट किया था। संस्कृत भाषा पं. श्रीराम दवे जी के मुख से गंगा के प्रवाह के समान निकलती थी। उनकी संस्कृत भाषा में समास, व्याकरण के कठिन क्रियापद तथा शास्त्रीय शैली की प्रचुरता रहती थी। वे स्वभाव से ही संस्कृत विद्वानों तथा पण्डितों के प्रशंसक थे तथा उन्हीं का संग पसन्द करते थ। धीर-धीरे पं. दवे जी की विद्वत्ता की सुगन्ध सारे भारतवर्ष में फैल गई। संस्कृत के विद्वान संन्यासी तथा भक्त पं. श्री दवे जी को हमेशा घेरे रहते थे। जनता के झुण्ड के झुण्ड पं. दवे जी के दर्शनार्थ

सुबह से शाम तक आते रहते थे। पं. दवे जो हमेशा सबको साहित्य तथा संस्कृति के विषय में समझाते रहते थे। उनको कभी भी यह बात परेशान नहीं करती थी कि कितने श्रोता हैं। यदि कभी केवल एक ही पुरूष अथवा यदि कोई भी वृद्ध स्त्री कुछ समझना चाहती थी तो पं. दवे जी उसको दो तोन घण्टे समझाते रहते थे। पं. दवे जी ने अपना जीवन भारतीय धर्म, वेदान्त साहित्य, पांडित्य, भारतीय संस्कृत, भक्ति, न्यायशास्त्र, जनता की सहायता तथा जनता के आध्यात्मिक विकास के लिए समर्पित कर दिया। और अपना शेष जीवन आध्यात्मिक मार्ग में व्यतीत किया था। इस प्रकार पं. श्री दवे जी सभी व्यक्तियों को स्वस्थचित्त, आध्यात्मिक जीवन तथा सुन्दर चरित्र निर्माण के मार्ग के लिए प्रवृत्त कर देते थे।

इस प्रकार पं. दवे जी ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा संस्कृत-संस्कृति के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया था। इस समर्पित जीवन द्वारा कवि दवे जी का मुख्य योगदान कुछ इस प्रकार है-

(अ) साहित्यिक देन-

1980 में बैंक सेवा से निवृत्त होने के पश्चात् सामाजिक, धार्मिक कार्यों में संलग्न होते हुए भी उनकी साहित्य साधना अवरूद्ध नहीं हुई। उनके द्वारा सेवाकार्यो के सुख दुख का वर्णन करते हुए एक कविता की रचना की गई जो कि कवि सम्मेलन में पढ़ी। सहृदयों ने उसको सुनकर कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसके पश्चात् कवि ने नौकरी काल में जो-जो अनुभूत किया उसको संस्कृत भाषा का ज्ञान होने के कारण संस्कृत में सर्गबद्ध लिखना प्रारम्भ किया। इस प्रकार से ''भृत्याभरणम्'' नामक महाकाव्य की रचना की जिस पर राजस्थान संस्कृत अकादमी ने उन्हें ''माघ पुरस्कार'' से सम्मानित किया।

संस्कृत भारतो पत्रिका के सह सम्पादक एवं विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान में कार्य करते हुए राजस्थान के संस्कृत विद्वानों से परिचय हो गया। अत: जयपुर से प्रकाशित होने वाली भारती मासिक संस्कृत पत्रिका के सह सम्पादक का कार्य उनको सौंप दिया गया। इस प्रकार राजस्थान संस्कृत अकादमी की सदस्यता भी प्राप्त कर ली थी। अब संस्कृत सम्मेलनों में भी आना-जाना होन लगा। विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान के प्रचार के लिए राजस्थान प्रान्त के प्रतिनिधि

के रूप में भारतीय संस्कृत सम्मेलन वाराणसी भी गये। बैंक सेवा से निवृत्त होने पर उनका बहुत सा समय संस्कृत क्षेत्र में व्यतीत होने लगा।

धनागम के और अन्य स्रोत न होने के कारण से समय-समय पर उन्होंने कर्मकाण्ड के माध्यम से धनोपार्जन किया। इस प्रकार निरन्तर धनाभाव रहने से सम्पूर्ण जीवन में परिस्थिति विपरीत बनी रही परन्तु इस प्रकार की विषम परिस्थितियों में भी भगवती की उपासना एवं साहित्य की साधना को पं. दवे जी ने नहीं त्यागा।

भगवती के प्रभाव से अन्त में श्री विद्या की दीक्षा भी पं. दवे जी ने प्राप्त की। यह माघ पूर्णिमा को डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी की कृपा से प्राप्त की जिसमें पूर्णाभिषेक किया गया तथा कवि को ''धर्मानन्दनाथ'' यह नाम दिया गया।[3] ललिता देव की यह उपासना पद्धति जो कि अत्यन्त दुर्लभ थी कवि के जीवन में आ गई। इस श्री विद्या से सम्बन्धित कुछ साहित्य उन्होंने फलौदी में पढ़ा। जोधपुर में स्वामी प्रकाशनन्द महोदय ने बालिका को भी दीक्षा प्रदान की। पं. दवे जी साहित्यिक और धार्मिक गोष्ठियों में अपना सक्रिय सहयोग देते थे। अपनी ही रचनाओं के सस्वर पाठ से वे श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देते थे। इस प्रकार पं. राम दवे जी ने महाकाव्य लिखकर अपनी साहित्यिक रूचि का उत्कृष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया है, जिससे सुरभारती संस्कृत भाषा को उसका अपना चिर तपोऽर्जित गौरव प्राप्त हो सका है।

इस प्रकार अपने छात्र जीवन से लेकर साधनामय अन्तिम जीवन तक की दीर्घकालीन यात्रा में पं. दवे जी निरन्तर साहित्यिक सेवा करके संस्कृत वाङ्मय में वृद्धि करते रहे। श्री दवे जी के समृद्ध लेखन पर राजस्थान, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा दिल्ली की राज्य सरकारों द्वारा इन्हें अलग-अलग पुरस्कृत किया गया।

संस्कृत जगत् उनके इस प्रकार के सहयोग के लिए सर्वदा ऋणी रहेगा। और साहित्य रचना, स्तोत्र रचना की दृष्टि से पं दवे जी को सदैव स्मरण करता रहेगा।

(ब) सांस्कृतिक देन-

पं. श्री रामदवे जी भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे। श्रेष्ठ कवित्व जीवन को धारण करने वाले कवि मनीषी ने अपनी काव्य साधना से सांस्कृतिक मूल्यों में अभिवृद्धि की।

उन्होंने संस्कृति के दोनों आधार सामाजिक व्यवस्था एवं धार्मिक व्यवस्था पर अपने भौतिक विचार लिखे। स्वान्त: सुखाय रचनाएँ समाज एवं धर्म की दृष्टि से अद्वितीय है। उनके सिद्धान्त विश्वकल्याणकारी और सार्वजनीन थे। कवि परम्पराओं के जाज्वल्यमान नक्षत्र श्री दवे जी विश्वहित चिन्तक कवि थे। भारतीय संस्कृति की सुरक्षा और सम्वर्द्धन हेतु श्री दवे जी सतत जागरूक रहे। पं. दवे जी संगीत प्रेमी थे तथा एक अच्छे बांसुरी वादक थे।[4]

धार्मिक रचनाओं का बहुमूल्य साहित्य देकर भी पं. श्री दवे जी ने समाज की विशेष सेवा की है। स्तोत्र साहित्य के नित्य पठन मात्र से मानव मात्र का कल्याण हो सकता है। पं. श्री दवे जी हमशा यह बताते थे कि किस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं तथा शास्त्रीय विचार नियमों के साथ समन्वय करके जीवन व्यतीत करना चाहिए। किस प्रकार कोई व्यक्ति परिवार तथा समाज में सुख से जीवन व्यतीत कर सकता है। किस प्रकार भावात्मक जीवनयापन से अभावात्मक संवेदनाएँ नष्ट हो सकती हैं। किस प्रकार कोई व्यक्ति अपने परिवार तथा समाज में अपने कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ अध्यात्म मार्ग का भी पूर्ण रूप से पालन कर सकता है।

पं. दवे जी ने यह समझाया था कि अपने-अपने पूर्वजन्मों के पाप तथा पुण्य कर्मों के फलस्वरूप ही कोई पापी सांसारिक ऐश्वर्य के साथ धनवान तथा कोई पुण्यात्मा भी निर्धन हो जाता है। वर्तमान जीवन के अशुभ कर्म पूर्वजन्म के शुभ कर्मों को क्षीण कर देते हैं। अपवित्र वस्त्रों को पहनने से, मैले दाँतों से, मलिन नेत्रों से तथा कर्कश शब्दों के प्रयोग से लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। लक्ष्मी का निवास तो उस व्यक्ति में रहता है जो दीर्घकालीन तक स्नान करता है, जल्दी भाजन करता है, मधुर वाणी बोलता है और वृद्ध जनों की सेवा करता है।

इस प्रकार पं. श्री रामदवे जी ने इहलोक और परलोक दोनों के उद्धार के लिए अपनी रचनाएँ करके अपने कवि जीवन को सार्थक किया है।

(स) दार्शनिक देन-

माघ पुरस्कार सम्मानित पं. श्रीराम दवे जी के समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आलोड़न-विलोड़न करने के उपरान्त हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वे दार्शनिक

साहित्यकार थे उनकी प्राय: समस्त रचनाओं में हमें दार्शनिकता परिलक्षित हो जाती है। मेरा मानना ह कि दार्शनिक दृष्टि के बिना महान् साहित्यकार बनना नामुमकिन है। पं. श्री राम दवे जी के व्यक्तित्व का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि ये वैष्णव मतानुयायी थे।

(द) आध्यात्मिक देन-

पं. श्रीराम दवे जी केवल संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् ही नहीं थे बल्कि एक समर्थ गुरु भी थे। उनके हजारों शिष्य थे। वे एक सिद्ध राजयोगी भी थे। वे अपना अधिकतर समय माँ ललिता की भक्तिरूपी सेवा में समर्पित करते थे।[5] अत: पं. दवे जी परम वैष्णव थे। पं. दवे जी को राजयोग के अभ्यास तथा भगवान की कृपा से अनेक आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त थी। वे भूत, भविष्य तथा वर्तमान के प्रत्यक्ष दृष्टा थे। पं. दवे जी ने इस आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग कभी भी अपने भौतिक लाभ के लिए नहीं किया था। वे हमेशा इन आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग जनता की सहायता तथा जनता के आध्यात्मिक विकास के लिए करते रहे और अन्त में उन शक्तियों को भक्तिमार्ग में प्रवृत्त कर देते थे।

(य) राजनैतिक एवं सामाजिक देन-

राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य में वर्तमान युगीन राजनैतिक एवं सामाजिक घटनाओं, तथ्यों तथा स्थितियों को पूर्ण रूप से पं. श्रीराम दवे जी ने उद्घाटित किया है। भारत विश्व जगत गुरु के नाम से विश्व वाङ्मय में प्रसिद्ध है और जो प्रसिद्धि का कारण है, वह संस्कृत साहित्य में निहित ज्ञानराशि है, परन्तु आज संस्कृत भाषा की भी उपेक्षा की जा रही है। यह पीडा कवि हृदय के अन्तस्थल में विद्यमान थी, जो उन्होंने कतिपय पद्यों में चित्रित की है। राजलक्ष्मी स्वयंवर वर्ण्य विषय के आधार पर पूर्ण रूप से आधुनिक महाकाव्य है, जिसमें विभिन्न सामाजिक समस्याओं एवं बुराईयों का सचित्र एवं मार्मिक वर्णन किया है, जिससे महाकाव्य को पढ़कर पाठक का मन पीड़ा से स्वत: ही द्रवित हो उठता है इन्होंने समाज की पीड़ा व बुराईयों की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया है जो कवि का बहुत अच्छा योगदान है, क्योंकि बुराई को पहचान कर के ही उसे दूर करने के उपाय किये जा सकते हैं। अन्तत: हम कह सकते हैं कि श्री दवे एक समर्पित तपस्वी तथा मनीषी थे। उन्होंने अनेक महाकाव्यों तथा

खण्डकाव्यों की रचना करके संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान किया तथा अपनी रचनाओं द्वारा साहित्य, संस्कृति, अध्यात्म तथा समाज के विकास में गति प्रदान की। आधुनिक संस्कृत रचनाकारों में श्री दवे महोदय का अत्यन्त सम्मानित स्थान है तथा यह स्थान उन्होंने अपनी जीवन भर की तपस्या तथा अप्रतिम प्रतिभा से प्राप्त किया है। हम सौभाग्यशाली हैं कि ऐसे विद्वान महापुरुष से मिलने का व उनकी रचनाओं के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त कर सके।

संदर्भ सूची

1 बलदेव उपाध्याय, आर्य संस्कृति के मूलाधार, पृ. सं. 342

2 आचार्य हमारी प्रसाद द्विवेदी - धर्मयुग।

3 साक्षात्कार एवं दूरभाष : डॉ जयादवे, सन् 2016, श्री ललिताश्रम, वैशाली नगर, जयपुर (राज.)

4 साक्षात्कार एवं दूरभाष : पं. श्री रामदवे, 9.12.2007 श्रीनिकेतन 8C रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर (राज.)

5 साक्षात्कार : साध्वी प्रीति प्रियंवंदा श्री ललिताश्रम प्रन्यास, सन् 2016, वैशाली नगर, जयपुर (राज.)

परिशिष्टः

विवेच्य-कवि की कृतियाँ

1.	भृत्याभरणम् महाकाव्य	-	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर 1993
2.	राजलक्ष्मी स्वंयवरम् महाकाव्य	-	हंसा प्रकाशन, जयपुर 2001
3.	साकेतङ्गरम् महाकाव्य	-	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर 2003
4.	ललितालहरी खण्डकाव्य	-	पं. श्रीरामदवे, सरदारपुरा, जोधपुर, 1999
5.	अपाङ्गलीला खण्डकाव्य	-	हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2004
6.	परिखायुद्धम् खण्डकाव्य	-	हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2006
7.	भारतीविलास: खण्डकाव्य	-	राजस्थानी ग्रन्थाकार, जोधपुर, 2002
8.	कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य	-	प्रथम संस्करण, 1999, द्वितीय सं., 2016
9.	वियोगशतकम् खण्डकाव्य	-	सर्वभाषा कालिदासीयम्, जोधपुर 2000
10.	सौन्दर्यलीलामृतम् खण्डकाव्य	-	राजस्थानी ग्रन्थाकार, जोधपुर, 2000
11.	कारुण्यकादम्बिनी खण्डकाव्य	-	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, 2002
12.	विनोदकौस्तुभम्	-	अप्रकाशित
13.	कैलिभूकैतवम्	-	अप्रकाशित
14.	काव्यमञ्जूषा	-	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, 2008
15.	मेघोपालम्भनम्	-	अप्रकाशित
16.	साईंचरित्रम्	-	अप्रकाशित
17.	निर्मला	-	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर, 2004
18.	ध्रुवस्वामिनी	-	हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2007
19.	गीतान्जलि	-	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर, 2007
20.	ब्रह्मरसायनम्	-	हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2006
21.	अकिञ्चन् चैत्यम्	-	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1999
22.	अत्रिख्याति		-
23.	ब्रह्मविनय		-
24.	ब्रह्मसमन्वय		-

पत्र-पत्रिका सूची

1. गुरुकुल पत्रिका, हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)
2. दृक भारती, इलाहाबाद
3. दिव्य ज्योति, शिमला
4. परोपकारिणी सभा, अजमेर
5. प्राची ज्योति, (कुरुक्षेत्र वि.वि.) कुरुक्षेत्र
6. भारती मासिक, भारती भवन, बी-15 पू कालोनी, जयपुर।
7. विश्व ज्योति, होशियारपुर
8. विश्वम्भरा, बीकानेर
9. शोध पत्रिका, उदयपुर
10. संस्कृतामृतम, दिल्ली
11. सरस्वती सुषमा, वाराणसी
12. संभाषण संदेश - अक्षरम गिरिनगरम् बैंगलोर (कर्नाटक)
13. स्वरमंगला (त्रैमासिक), राज. संस्कृत अकादमी, जयपुर, 1998
14. सागरिका, सागर वि.वि. सागर (मध्यप्रदेश)
15. सुधाबिन्दु, अहमदाबाद (गुजरात)
16. सूर्योदय, वाराणसी (उत्तरप्रदेश)
17. 'संस्कृति सौरभम्' शोध पत्रिका, संस्कार भारती मानव कल्याण संस्थान, जयपुर (राज.)
18. रिसर्च एनालिसिस, मालवीय नगर, जयपुर (राज.)

सहायक ग्रन्थ सूची

1.	अग्निपुराण	-	महर्षि वेदव्यास, सं. बलदेव उपाध्याय	चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-1966
2.	अभिधावृतिमातृका	-	मुकुलभट्ट सं. डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी-1978
3.	अभिनव दर्पण	-	नंदिकेश्वर सं. वाचस्पति गैरोला	इलाहाबाद, संस्करण, 1960
4.	अभिनव भारती	-	अभिनवगुप्त व्याख्याकार डॉ. नगेन्द्र	दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1960
5.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	-	डॉ. श्याम शर्मा वशिष्ट	नितिन पब्लिकेशन, अलवर, 1999
6.	अमरुकशतम्	-	अमरू अनुवाद कमलेशदत्त त्रिपाठी	मित्र प्रकाशन प्रा.लि., इलाहाबाद, 1965
7.	अलंकार कौस्तुभम्	-	कर्णपुर गोस्वामी	-
8.	आर्यासप्तशती	-	गोवर्धनाचार्य	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-1965
9.	इत्सिंग की भारत यात्रा	-	सन्तराम द्वारा	1925
10.	उत्तररामरचितम्	-	भवभूति	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1963
11.	कठोपनिषद	-	व्या. बैजनाथपाण्डेय	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977
12.	कथासरित्सागर	-	सोमदेव भट्ट, सं.पं. जगदीशलाल शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1970
13.	कादम्बरी	-	बाणभट्ट	साहित्य भण्डार, मेरठ, 1976
14.	काव्य प्रकाश	-	मम्मट	टीका निवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ
15.	काव्यमीमांसा	-	राजशेखर	चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1934
16.	काव्यादर्श	-	दण्डी	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1992
17.	कामिनीविलास	-	पंडितराज जगन्नाथ	चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, 1966
18.	किरातार्जुनीयम्	-	भारवि	चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, 1952
19.	छन्द: समीक्षा	-	मधुसूदन ओझा, सं. स्वामी सूरजनदास	-

20.	छन्दोऽअनुशासनम्	-	हेमचन्द	-
21.	जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन	-	डॉ. प्रभाकर शास्त्री (1904-1934)	-
22.	ध्वन्यालोक	-	आनन्दवर्द्धन टीका	चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, 1991
23.	नाट्यशास्त्र	-	भरतमुनि	गायकवाड ओरियन्टल सीरिज, बडौदा, 1997
24.	नीतिशतकम्	-	भर्तृहरि	श्री रामप्रेस, मद्रास-1937
25.	पंचतन्त्र	-	विष्णु शर्मा सं. एम.आर. काले	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1962
26.	भारतीय संस्कृत साहित्य का इतिहास	-	आचार्य देवीशंकर मिश्र	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, 1979
27.	महाभारत	-	वेदव्यास	भण्डाकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, पूना, 1965
28.	मेघदूत	-	रामकृष्ण आचार्य	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1976
29.	राजस्थान के कवि	-	पं. पुरुषोत्तम शर्मा, लक्ष्मीनारायण पुरोहित	-
30.	राजस्थानी अभिनव संस्कृत साहित्यम्	-	सं. गंगाधर भट्ट (प्रथम-पंचम खण्ड)	-
31.	राजस्थानी की सारस्वत साधना	-	डॉ. प्रभाकर शास्त्री	-
32.	लघुसिद्धान्तकौमुदी	-	वरदराज	-
33.	वक्रोतिकाव्यजीवतम्	-	कुन्तक	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1988
34.	वेद विज्ञानम्	-	श्रीकर्पुरचन्द्र कुलिश	-
35.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	-	वाचस्पति गैरोला	चौखम्बा विद्या प्रकाशन, 1960
36.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	-	वेद वरदाचार्य	रामनारायण लाल वेणीप्रसाद, इलाहाबाद, 1962
37.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	-	कीथ, अनुवादक डॉ. मंगलदेव शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-1970
38.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	-	डॉ. बलदेव उपाध्याय	शारदा निकेतन, वाराणसी, 1978
39.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	-	परमानन्द गुप्त	सरस्वती हाऊस दिल्ली, 1980
40.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	-	डॉ. बाबूराम त्रिपाठी	महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1988

41.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	-	डॉ. श्याम शर्मा वशिष्ट	नितिन पब्लिकेशन, अलवर, 1995
42.	संस्कृत आलोचना	-	बलदेव उपाध्याय	प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग, वाराणसी, उत्तरप्रदेश, 1957
43.	संस्कृत साहित्य का नवीन विकास	-	कृष्ण चैतन्य, अनु. विनयकुमार राय	चौखम्बा विद्याप्रकाशन, वाराणसी, 1965
44.	संस्कृत साहित्य की प्रवृतियाँ	-	जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1969
45.	संस्कृत साहित्य का परिचय	-	कमलकान्त मिश्र	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 1985
46.	संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	-	चन्द्रशेखर पाण्डेय	साहित्य निकेतन, कानपुर, 1980
47.	संस्कृत गीति काव्य का विकास	-	डॉ. परमानन्द शास्त्री	प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ
48.	संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	-	सत्यनारायण पाण्डेय	साहित्य भण्डार, मेरठ, 1975
49.	संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास	-	युधिष्ठर, मीमांसक	फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर, 1950
50.	साहित्य दर्पण	-	आचार्य विश्वनाथ सं. शालिग्राम शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1975
51.	साहित्य वैभवम्	-	कवि शिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री	1930
52.	हर्ष चरितम्	-	बाणभट्ट	साहित्य भण्डार, मेरठ, 1989
53.	हिस्ट्री ऑफ क्लास्किल संस्कृत	-	लिटरेचर-एस. कृष्णाचार्यरियर	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1970
54.	हिस्ट्री ऑफ इण्यिन लिटरेचर	-	एम. विण्टरनित्स	तृतीय वाल्यूम मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1963
55.	हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर	-	एस.एन. दास गुप्त,	एस.के. वाल्यूम प्रथम यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1962
56.	ऋतुसंहार	-	कालिदास	प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 1993
57.	श्रृंगार शतकम्	-	भर्तृहरि सं. बाबू हरिदास वैद्य	हरिदास एण्ड कम्पनी प्रा.लि. मथुरा, 1985

प्राक्कथन

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणज भयम्।।

वस्तुत: कवि की तुलना प्रजापति से की गई है, जिसकी काव्य सृष्टि जगत की सृष्टि से हटकर होती है।

अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।

विश्व में संस्कृत वाङ्मय का एक गौरवपूर्ण स्थान है क्योंकि अनादिकाल से ही भारत देश ज्ञानोपासना का केन्द्र रहा है। इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य की विविधरूपता, गुणवत्ता की गरिमा, वैशिष्ट्य एवं काव्यात्मक सौष्ठव सभी कुछ अद्वितीय है। इसे देववाणी, सुरभारती आदि नामों से अभिहित किया गया है-

'संस्कृतं नाम दैवीवागन्वाख्याता महर्षिभिः।'

अत: भारतीय संस्कृति की संवाहिका तथा विश्वभर की मानवजाति एवं संस्कृति पर प्रभाव डालने वाली प्राचीनतम भाषा होते हुए भी यह आज की समृद्ध एवं जीवन्त भाषा है। इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य माधुर्य और सौन्दर्य के अक्षय स्रोत के साथ जीवन सरिता प्रवाहित करने वाला एक सरोवर है। इस साहित्य ने ही भारत देश की मूक जनता के भावों को प्रकटन का माध्यम प्रदान किया तथा हृदय को सरस बनाने के लिए कोमल भावमय कविता सिखलायी और समाज व्यवस्था के नियमों को बतलाकर उन्हें बर्बता से उन्मुक्त कर सभ्य और शिष्ट बनाया।

साहित्य संस्कृति का अग्रदूत है क्योंकि वह कितना भी आदर्शवादी हो, यथार्थता का चित्रण किये बिना नहीं रह सकता। संस्कृत काव्यधारा वैदिकाल से लेकर आधुनिक युग तक अजस्त्र रूप से प्रवाहमय रही है। अत: आधुनिक युग को संस्कृत के रचनाकाल की दृष्टि से स्वर्ण युग कहा जा सकता है। आज हम देखते हैं कि पौराणिक व ऐतिहासिक

कथावस्तु के साथ-साथ काव्यकारों द्वारा आधुनिक कथावस्तु का संयोजन किया जा रहा है, और समसामयिक विषयों को कवि अपने काव्यों में प्रस्तुत कर रहा है।

इसी संदर्भ में जब मेरे सम्मुख ऐसे विराट व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के धनी पं. दवे के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोधकार्य करने की रूचि जागृत हुई तो अतिशय पूज्या एवं सौम्यस्वरूपा डॉ. श्रीमती साधना कंसल जी ने अपनी सहमती प्रदान कर दी। अतः पिष्टपेषण से बच कर कुछ आधुनिक मौलिक कार्य प्रस्तुत किया जाय तभी शोध की सार्थकता है। यही सोचकर मैंने इस शोध विषय का चुनाव किया।

मैंने अपने शोध का विषय पं. श्री रामदवे : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (वर्ष 2010 तक की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन रखा है), जिसे प्राक्कथन एवं उपसंहार सहित कुल पाँच अध्यायों में विभाजित किया है और अन्त में परिशिष्ट के रूप में सारांश, सन्दर्भ ग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिका सूची आदि संलग्न की हैं।

प्रथम अध्यायः इसमें मैंने विश्व में भारत का विशेषतः राजस्थान का वैशिष्ट्य, राजस्थान का संस्कृत साहित्य, साहित्यभाषा की गौरव गरिमा, 20 वीं व 21 वीं शताब्दी में संस्कृत की विकास यात्रा, राजस्थान के साहित्यकार एवं पं. रामदवे जी तथा उनके रचनात्मक कार्यों की रूपरेखा को प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्यायः इसमें पं. श्रीरामदवे जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व है, जो दो भागों में विभक्त है- (i) व्यक्तित्व के अन्तर्गत विवेच्य कवि पं. श्री रामदवे जी का सम्पूण जीवन वृतान्त, यथा - वंश परम्परा, जन्म, बाल्यकाल, समय, शिक्षा, दीक्षा, व्यवसाय, गुरु परम्परा, पारीवारिक जीवन, स्थान प्रव्रजन, पाण्डित्य आध्यात्म, भगवद्भक्ति एवं देशप्रेम इत्यादि वर्णन है। (ii) कृतित्व के अन्तर्गत मैंने कवि की 2010 तक की समस्त रचनाओं का संकलन प्रस्तुत किया है, साथ ही रस निष्पत्ति के उपरान्त अलंकार योजना पर कवि के साहित्य को रखने का प्रयास किया है।

तृतीय अध्यायः इसमें पं. श्री रामदवे जी की रचनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन है, जिसमें कथावस्तु, उपजीव्यता, मौलिकता एवं काव्य कला आदि तत्वों की गवेषणा प्रस्तुत की गई है।

चतुर्थ अध्यायः इसके अन्तर्गत पं. रामदवे जी की सारस्वत साधना का समग्र मूल्यांकन समाविष्ट है जिसमें गुण, रीति, ध्वनि, पदलालित्य, छन्द, अलंकार एवं रसादि के माध्यम से काव्यशास्त्रीय समीक्षा प्रस्तुत की है।

पंचम अध्यायः इस अध्याय में पं. श्री रामदवे जी का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान निर्धारित करते हुए शोध से प्राप्त निर्देशों को भी रेखांकित किया गया है। इसके साथ ही दवे ही के कृतित्व का संस्कृत साहित्य को प्रदत्त योगदान संस्थापित किया गया है तथा उपसंहार रूप में पं. दवे जी की लोकल्याण की भावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए उनकी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से जनमानस को होने वाले लाभ व पभाव को उद्घाटित किया गया है।

प्रस्तुत शोध ग्रंथ को पूर्ण करने में मुझे जिन विद्वानों का प्रत्यक्ष व अप्रत्क्ष रूप से अपरिमित सहयोग मिला, उन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मेरे शोध प्रबंध के दु:साध्य कार्य को आद्योपान्त तैयार करवाने, त्रुटियों को सुधारने और इसे यथाशक्य उपादेय बनवाने में मेरी निर्देशिका महोदया डॉ. (श्रीमती) साधना कंसल जी का अमूल्य योगदान रहा है। जिन्होंने विकट से विकट परिस्थिति में भी नि:स्वार्थ भाव से मेरा उचित मार्गदर्शन कर शोध प्रबन्ध से सम्बन्धित हर उपयोगो सामग्री को उपलब्ध करवाने का पूर्ण प्रयास किया है। अत: मैं उनका हृदय की आन्तरिक गहराईयों से आभार प्रकट करता हूँ। मेरा यह प्रयास उनके लिए सूर्य को दीपक दिखाने के तुल्य है, फिर भी इस सम्बन्ध में मैं तो उनके लिए इतना ही कह सकता हूँ- **'भवत्पादाम्बुजे त्यत्वा नान्या में विद्यते गतिः।'**

मैं अपने इस शोध प्रबन्ध की सफलता के श्रेयस्कर राजकीय महाविद्यालय कोटा के प्राचार्य सहित समस्त ग़ुरुजनों के प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ कि जिन्होने समय-समय पर उचित मार्गदर्शन कर मेरा उत्साहवर्धन किया। इसके साथ ही कॉलेज पुस्तकालयाध्यक्ष एवं अन्य समस्त कर्मचारीगण के प्रति भी हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर विषय से सम्बन्धित पुस्तकें उपलब्ध करवाकर मेरे इस शोध कार्य की परिणति में महती भूमिका निभाई है।

यहाँ पर मैं वैदुष्य से परिपूर्ण एवं सम्मानीया पं. श्री रामदवे जी की आत्मजा डॉ. जया दवे (वर्तमान संस्कृत अकादमी अध्यक्षा, जयपुर) एवं उनकी पुत्री साध्वी प्रोतिप्रियवंदा (ललिताश्रम प्रन्यास, जयपुर) का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होने साक्षात्कार एवं दूरभाष के माध्यम से अपना अमूल्य समय देकर निस्वार्स्थ रूप से इस शोध ग्रंथ से सम्बन्धित सही व प्रमाणिक तथ्य उपलब्ध करवा कर मेरे इस कार्य को ओर स़गम बना दिया।

मैं अने मित्र डॉ. प्रकाशचन्द जाट का भी हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनका पूर्ण सानिध्य एवं सहयोग इस कार्य में रहा है। इसके अलावा पूज्यगुरु डॉ. हुकुम सिंह जी (निर्भय) प्रवक्ता कॉलेज शिक्षा, अलवर एवं डॉ. हरि सिंह शास्त्री जी (हरियाणा) का भी अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने शोध प्रबन्ध में अपना अमूल्य समय देकर मेरे उद्देश्य को एक नई दिशा प्रदान की।

मैं अपने श्रद्धेय अग्रज श्री महेन्द्र कुमार शर्मा (वरि.अध्यापक, राज. सेवा), श्री राजेन्द्र कुमार शर्मा (उपवैद्य राज. सेवा), भाभीजी श्रीमती कमलेश शर्मा एवं श्रीमती मन्जू शर्मा तथा भागिनी श्रीमती पुष्पा देवी एवं जीजाजी श्री भगवान सहाय शर्मा (प्रधानाध्यपक राज. सेवा) तथा मौसीजी, चाचीजी एवं चाचाजी श्री श्रवणलाल, श्री धन्नालाल, श्री कन्हैयालाल, श्री राधेश्याम एवं श्री बाबूलाल जी का भी विशेष सहयोग हेतु धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने शोधप्रबन्ध की परिणति में सदैव मुझे प्रेरणा प्रदान की।

कृतज्ञता ज्ञापन के अवसर पर मैं अपनी पत्नी श्रीमती ममता शर्मा, तथा स्नेहिल पुत्र, मधुर शर्मा एवं प्रिय पुत्री निहारिका शर्मा का धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने शोध प्रबन्ध की परिणति के दौरान अपने पारिवारिक क्रियाकलापों से मुझे बाधित नहीं होने दिया और आर्थिक एवं व्यावहारिक सभी प्रकार से कठिन परिस्थितियां में भी मेरा पूर्ण सहयोग किया।

आभार प्रकट करने की निरन्तरता को जारी रखते हुए मैं अपनी पूज्या सास श्रीमती तीजा देवी एवं Oद्धेय स्वसुर श्री प्रेम प्रकाश शर्मा (से.नि., निजी सचिव, महाप्रबंधक, दूरसंचार विभाग, जयपुर) का हृदय की गहराइयों से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनका योगदान इस शोध प्रबन्ध की परिणति में अमूल्य रहा। इसके अलावा श्री राजेश कुमार शर्मा (राज. सचिवालय, जयपुर) श्री शैलेन्द्र एवं श्री लल्लूराम जाँगिड़ (सहा. प्रबंधक बैंक सेवा) का भी उचित मार्गदर्शन एवं योगदान मेरे लिए सहयोग रूप में रहा है।

टंकण का कार्य अपेक्षाकृत कठिन है, क्योंकि संस्कृत में मात्राओं, विसर्ग, बिन्दुओं आदि का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है। प्रयत्न करने पर भी उसमें अशुद्धियाँ रह जाती हैं फिर भी मेरे टंकणकर्ता श्री अरुण कुमावत (जीनियस कम्प्यूटर, बापूनगर, जयपुर) को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने बड़े परिश्रम एवं सौम्यता का परिचय देते हुए इस कठिन कार्य को साकार रूप में परिणित किया।

अत: शोध प्रबन्ध की सम्पर्णता के सम्बन्ध में मैंने निम्न शब्दों में अपने भावों की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार प्रदान की है-

सन्त गुरुओं का आशीवाद, गुरुजनों का निर्देशन है,
शृद्धेयों का उत्साहवर्द्धन, साधु भाईयों का साथ है,
प्रियजनों का सामीप्य, मित्रमंडली का सहयोग है,
सबके सुखद संगम से आपके समक्ष मेरा यह शोध प्रस्तुत है।।

नि:सन्देह संस्कृत जगत के समक्ष पं. श्री रामदवे जी जैसे उच्च कोटि के विद्वान, लेखक एवं महाकाव्यकार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध प्रबंध प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि संस्कृत जगत एक ब्रह्मलीन साहित्यकार की सारस्वत साधना से परिचित

हो सकेगा। अत: यह शोध अध्ययन विश्लेषण व ज्ञान की अपेक्षा रखता है, तथापि विश्व में कोई भी पूर्ण ज्ञानी नहीं है जो कि प्रत्येक कार्य को सफल करने में पूर्ण समर्थ हो। अत: शोधार्थी होने के कारण मुझे इस सत्य को स्वीकार करने म किंचित मात्र भी संदेह नहीं है कि शोध प्रबन्ध में जो भी त्रुटियाँ रह गई है उनके लिए मेरी अज्ञानता एवं प्रमाद ही उत्तरदायी है। क्योंकि कहा भी गया है- '**अनृतं ही मनुष्या:**' अर्थात् त्रुटि करना मानव का स्वभाव है। इस स्वभावगत दोष के कारण मेरे शोध प्रबन्ध में जो त्रुटियाँ रह गई है, उनके लिए मैं विद्वान पाठकों से क्षमाप्रार्थी हूँ, और अपेक्षा करता हूँ कि विद्वज्जन अपने ज्ञानजन्य सुझावों से मुझे उपकृत करेंगें।

मेरे आदरणीय स्व. पिताजी श्री मोतीलाल शमा और स्नेहमयी माँ श्रीमती मथुरा देवी से प्राप्त संस्कार एवं शिक्षा के अभाव में ज्ञानार्जन के क्षेत्र में इस सीढ़ी तक पहुँच पाना मेर लिए दु:साध्य था किन्तु उनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद का अवलम्बन लेकर ही अनवरत यात्रा के दौरान इस सोपन तक पहुँच पाया हूँ। ऐसे माता-पिता के किये उपकारों से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता।

अन्त में मैं अपने माता-पिता के प्रति श्रद्धावनत हुआ, प्रस्तुत शोध प्रबंध को उनके श्रीचरणों में श्रद्धासुमन रूप में अर्पित करता हूँ। 'इति शुभम्।'

अनुसंधित्सु

रवीन्द्र कुमार शर्मा
राजकीय महाविद्यालय कोटा
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

Naiks of Punjab: An Ethnographic Study

— Dr. Deepak Kumar

The article tries to understand the community traits of Naik who form one of the backward communities of Punjab. The community is part of the OBC list as per the government of Punjab. The article is an anthropological inquiry into the ethnographic details of the community. It is based on extensive field work in different parts of Punjab and delineates some of the significant features of the community.

Naik in Punjab are also referred to as Horhi, Thori and Kori. The term naik in Hindi stands for a hero. Naiks were soldiers in the army of Rajput Kings. Owing to their martial tradition and crucial role in the success of the army they were referred to as naiks by the people. However, their name is synonymous with a few other names too. The name Horhi derives from the fact that the when their members used to do construction work on roads and rivers/canals, they had kept goats (herh) and buffaloes for trade and for the supply of basic necessities of life. The word Horhi derives from the term herh which means goat hence implying 'keepers of goat'. Thori are also from within Naik community but with the distinction that they are unlike other members of the community, they beg for food. They were also called Kadiliye in the past as some of their members resided in a village called Kadal.

In Rajasthan their community is also referred to as Bhils but not in Punjab. In Haryana the name for them is Aherhi. However, nowadays the blanket term used for them is Naik only. Basically, they consider themselves to be Rajput Thakurs of the past but now they complain for having been reduced to the status of Shudras in Hindu society. According to their oral tradition, the community used to fill the ranks of brave soldiers of warrior king Prithvi Raj Chauhan and they were renowned for their courage and commitment. Because of their heroic deeds they were called naiks. Belonging originally to Rajasthan about 100 years back, because of famine they migrated to surrounding regions in search of livelihood. Some of them believe that they were uprooted from Rajasthan during the reign of Aurangzeb when for their survival they took refuge/ they hid themselves in the caravans of traders along with goats etc and escaped from the prying eyes of their enemy. This anecdote is another explanation for the origin of their name herhi that stands for goat.

In Punjab their estimated population is around five to seven lakhs and they are scattered all over the state.[1] Their main concentration is found near Patiala, Bhawanigarh, Bahadurgarh, Sangrur, Balad Kothi, Dhuri, Jai Wala (near Patran), Badshahpur, Sunam, Bathinda, Sangrur, Balad Kothi (Bhawanigarh), Bathinda: Beirh Talb, Sahina, Bihman, etc. However, there are no active links between members of the community scattered over different parts of the state. There are few linkages active outside one's district.[2] Having migrated from another state with meager resources, their economic condition in Punjab is not so good. In fact, most of the Naiks are living under extreme poverty. Earlier their ancestors used to work for

construction of roads and canals in different parts of Punjab. Since they didn't have any owned land anywhere else most of them started staying along the roadside and on the shores of canals and rivers. Most of them built and lived in temporary hutments. Nowadays some of the members live in mud houses and some have managed pucca, bricked houses too. Though their population is scattered both in villages and towns, it is mainly in urban areas that one finds their settlements.

Their native language is Rajasthani and the dialect is known as baagdi bhasha. Some of the Baagdi equivalents for some common Punjabi words are as follows: Besides their native language they are also conversant with Hindi and Punjabi.

Punjabi	**Bagdi (A dialect of Rajasthani)**
Manja	Khaat
Chacha	Kaka
Taya	Tau
Sahura	Bawaji
Rajai	Sorh
Gharha	Garhiyo
Ladki	Chhori
Janani	Lugai
Barat	Janant
Jootey	Pagrakhey

The community tries to maintain its distinctive character from other poor communities of Punjab and often rue the fact that despite having a glorious past they suffer from acute poverty and live in misery. They are generally unhappy with their OBC status too and believe they deserve a much better status in society. They don't like being clubbed along with other backward castes of the state. This could be a typical case of sanskritization whereby the community members try to acquire a better status in the caste hierarchy but more historic facts need to be explored their journey from position of power to that of poverty.

Food habits

Both vegetarianism and non-vegetarianism is prevalent among Naiks in Punjab though vegetarians are more in numbers. One reason could be that very few women in the community eat non-vegetarian food. Among male members however incidence of non-vegetarianism is high. Their staple diet is dal[3] (lentil) and roti. Most frequently prepared dals are moongi and saabut moongi. However, almost all dals and vegetables are consumed otherwise by them. Cooked food is generally preferred and conventionally the medium of cooking is mustard oil. Use of refined oil in their cooking has also grown off late. Most of the households cook on chulah (earthen hearth) and use cow dung as fuel for cooking.

Drinking of alcohol is prevalent among male members of the community. Boys are allowed to booze only after attaining 25 years of age. Smoking is also allowed among members but generally it is the older members of the group who smoke. Women neither drink liquor nor smoke. Members of the community do not chew paan. Almost half the members though take zarda. In the past some women in the

community used to take naswar but not anymore. Among the proscribed food items beef is strictly prohibited owing to their strong allegiance with Hindu religion.

On special occasions goat, fish or murga (chicken) is also cooked. Being a poor community such treats are seldom seen. In most of the cases they make chhola-poori on such occasions and cook it in mustard oil. However, there is no restriction on having non-vegetarian. In last two decades there has been some influence of Radha Swami [4] sect on the community which has altered their food habits to a large extent and promoted vegetarianism. Many among them nowadays avoid non-vegetarian food and even deny the incidence of non-vegetarianism among other members of the community. However, it has been observed that non-vegetarian food is still prevalent among many. Due to extreme poverty some of them collect thrown away waste parts of goat meat or cock from the precincts of the meat shops. They remove the inedible parts from this waste and scrape the edible part meticulously before cooking it in boiling water. With a little bit of salt in this preparation their dish is ready. Their food choices seem to get determined by their poor economic conditions to a great extent.

Social Divisions

Among Naiks only Thoris are differentiated and considered low as they beg for their livelihood unlike rest of the members of Naik community. No marital relations are extended to Thoris. Rest of them mingle and extend relations with each other and consider themselves more or less equal. It is mainly along gotra lines that they make distinctions among the members. Naiks are divided into various gotras such as Sarhsar, Jajotad, Chahar, Gogliyan, Kadhooiyan, Sidhi, Kagrha, Chaaparwal, Sirsia, Chandaliya, Atwal, Jakharhiye, Jajiye, Lutte, Daisarwal, Chavariye, Malkhat, Dhohanwal, Jhajotal. The knowledge about gotras is taken care of during mate selection by the members of the community who have to observe gotra exogamy rules for marriage.

Traditional basis of division among Naiks is that of age and gender. Men in the community are considered superior than women. Women in general are less privileged than men, be it at home or outside. However, in old age women start having more say privileges in family matters. Elders in the community are widely respected and it is reflected in the position of primacy that the community accords to the elders on different occasions.

Though they do not believe to have elaborate social divisions among them as more emphasis is on cohesiveness of the community than competing among themselves, the community in itself is placed lowly in the larger society. The community believes to have descended from the heights of socially respected and idealized community of honest and courageous warriors in the army of Rajput kings of Rajasthan to the vagabond, homeless labourers.

Marriage and Family - Since they all believe in Hinduism, the rituals and ceremonies performed in Hindu marriages are followed. Accordingly they perform seven phera (circles) to solemnize marriage. Earlier the age of marriage was lower and muklawa used to be after 15 days but nowadays average marriageable

age of boys is 21 and that of girls is 18. Endogamy is strictly observed and there is no exchange marriage. Marriage is necessarily an arranged affair by the family with the help of some middle-men. The proposal is initiated from the groom's side. Love marriages or marriages without the prior permission of the family members are not sanctioned. Gotra exogamy is observed and while determining the field of mate selection marriage gotras of father, mother and paternal grad mother are avoided. Mate is selected from outside of these three gotras. Earlier four gotras instead of three were avoided. The gotra of maternal grandmother was also avoided but now by including it in the list of permitted gotras for search of mate the field of mate selection has been broadened.

In the past, the groom's family used to give some money to the bride's family to assure that the baratis (members of marriage procession) were entertained well. The amount given used to vary according to one's capacity and social status. Generally it would vary between Rs. 50 and Rs. 500. However, the practice is not followed anymore. With regard to dowry there is no acceptability of the practice in the community. Though the bride's parents may send anything along with their daughter as per their wish, dowry is never demanded. Patrilocal residence is the most preferred rule of residence but neolocal forms are also prevalent. Marriageable age has increased to 18 for girls and 21 for boys. Earlier groom's family used to offer some money to the bride's family during marriage but the practice has fallen out of use. Earlier the marriage party used to extend for three consecutive days but nowadays the marriage party returns home the same day.

The family system among Naiks is patriarchal in character. Eldest male is the head of the family. Elder members of the community are respected and their advice is adhered to. Elder members of the community and the family always have their say in matters of significance. However the male members of the community are given precedence over female members. Women are consulted only in matters of household and at times involved in issues concerned with family at large. The element of honour and shame is professed to be strong among the members of the community.

Relationships of avoidance are observed between a married woman and the male members of her in-laws. Daughter-in-law and mother-in-law use veil when in presence of their father or son-in-law. Daughter-in-law cannot sit at the same height as that of the father-in-law or elder brother-in-law in their presence. Married lady cannot even offer food to her elder brother-in-law directly. Some pranks can be played only on some social occasions like marriage etc. otherwise there is strict prohibition on interaction between them.

Whatever property they have is distributed equally among the sons in the family. Daughters are not given any share in the property. In the past when the community was involved in construction of roads and canals in Punjab, the womenfolk used to work as labourers along with their male counterparts. However, now their domain has become slightly separated. They tender family and take care of homes.

Relations are formal and intermittent with the members of other communities but more informal and strong within the community members. Members of the

community have cordial relations with each other. In the event of any social function of any family members of the community in that locality get together and celebrate in the spirit of togetherness.

Life Cycle Rituals - Birth: On the birth of a child a person gets on to the roof of the house and drums a plate to announce the arrival of a new member. The practice is performed whether it is male child or a girl child. Drumming of plate is also believed to ensure that the child doesn't get scared of anything and is born brave.

A lemon is hanged across the door. Two days after the delivery mother is taken out of her room and bows before her husband and touches his feet. Then boiled rice is served to the members of the family and relatives. For six days after the birth the new born child is not worn any clothes. Child's mother is offered wheat grains and gur (Jagri) along with ghee. The wheat grains are boiled and mixed with gur and ghee and then given to the mother to help her recuperate her strength and energy to resume her household chores. After giving birth to a child the mother is now allowed to attend to household tasks for a month and a quarter. Earlier the father was not allowed to see his new-born child for a month and a quarter but nowadays there is no such restriction.

After some time, child's first grown hair is shorn and offered at the Sitla Mata temple of Gurgaon. These are also called suchhe vaal or unshorn hair. Some members of the community make wishes at the temple and promise to sacrifice goat at the temple after the wish fulfillment. Sacrifice of the goat is often done in the temple. The practice is that before sacrificing the goat, the butcher wets its hands and moves over the goat. If it does not move it not sacrificed but if it does, it is sacrificed as halaal.

Marriage: Marriages are performed according to Hindu system only. After the selection of mate with everyone's consent, the parents of the groom and the bride decide upon a date with mutual agreement to convey the message to the relatives white rice is boiled and mixed with haldi (turmeric) and divided equally among the two families. Each of the families takes their share of rice mixture to their relatives and show it to them which conveys that the marriage has been fixed and the date has been finalized. Batna is anointed on the bride and the groom, seven days before the marriage in case of boy and five days in case of the girl. Batna is a traditional mixture of oil, besan, haldi (turmeric) and jaun. Batna is anointed daily to the bride and the groom till the day of marriage. From the first day when batna is applied, the bride and the groom are not allowed to change their dress till the day of marriage. During marriage only the clothes brought by the nanke (maternal kins) are worn by the bride and the groom and the dress is known as mame da chola meaning maternal uncle's dress. In bride's camp her maternal uncle gives her bangles, suit, sandoor, mangal sootra (wedding necklace) which together are known as teba.

Marriage is solemnized by taking seven rounds of the holy fire as per the Hindu tradition in the presence of the priest who invokes holy blessings with his incantations from the religious scripts. Besides the change in marriageable age of the boy and the girl some of the rituals associated with marriage system have also

changed. Earlier one coconut and a rupee used to be handed over while confirming the relationship for marriage. In the past on the marriage of the girl, cow used to be donated and in case there were no cow available, the amount of money equivalent to a cow used to be donated. Nowadays this practice is no more observed. Earlier in every house sweets weighing three quarters of a kilogram used to be sent from the house in which marriage has happened to the house of friends and relatives. Nowadays this practice too has vanished.

Death : The dead are offered 0 flames and the remains of the deceased are collected from the ashes, referred to as chugnar, after three days. However, collection of the remains is not done on Saturdays or Mondays. The collected remains are then taken to Haridwar and offered to river Ganga. On their way to Haridwar the members of the family carrying the remains take a ticket in the name of the deceased too. Not only that the seat is reserved for the deceased all through the journey and is kept vacant. After performing the ritual of submerging the collected remains in the Ganga, the members when return from Haridwar with water from Ganges, which is considered holy, wait at the bus stand or the railway station till they are received by someone from the home. The holy water brought by them is then sprinkled all over the house. In case of death of a married man or a widow, bhog ceremony is performed after 12 days but in case death of death of a married woman, the bhog ceremony is performed after 11 days. In the past, people from 12 villages used to be invited on the occasion of bhog but not so anymore.

Economic activities : The community doesn't own any resources and is dependent on its labour to earn livelihood. In rural areas some people do own goats and buffaloes but that is entirely for meeting their own basic needs rather than for business purposes. Traditionally, Naiks were warrior soldiers in the armed forces of Prithviraj Chauhan. Naiks in Punjab are nowadays working as labourers in urban areas at construction sites of buildings and roads while in rural areas as agricultural labourers at farms of the landlords. For last many years they have been working as labourers only. Off late some of the members of new generation have taken up jobs of welding mechanic and helper on roadside shops in urban areas and small towns. They are also found working in brick kilns in rural areas.

Political Organisation - Among Naiks of Punjab, stealing, demanding dowry, threatening the honour and dignity of women, cleaning drains and begging are considered highly objectionable inviting strong censure from the community at large. Among Naiks five men are elected from the community neighbourhood out of which one is elected as the head. Elections take place with emphasis on consensus. However, they do not have any state or national level organization.

Any grave case of deviance in the community is addressed by the elected members of the community and their verdict is final and binding on all. Various kinds of punishment are given depending on the kind of crime committed ranging from mild censure to severe punishment. Some severe forms of punishment are jike, beating and thrashing after tying up with the bed and social boycott. On the other hand in case the community wants to honour or reward someone for some

commendable work, they offer him/her prasad or patase (sugar bubbles). Earlier all the disputes used to be settled at the community level by the elected members but nowadays people have started taking recourse to courts and police stations for redressal of their grievances.

Religious attributes : They identify themselves as Hindus and subscribe to the tenets of Hinduism. They believe in ancestor worship and observe all rituals to propitiate their ancestors. They worship them during masyao. They perform shradhs which fall before navratras. On the day of masya in the name of forefathers wheat is offered on the leaves of Pipal tree. This wheat is then cooked and is offered to seven unmarried girls. A flame is burnt in the name of their ancestors and sweet rice is cooked and distributed. Some clothes, shoes and a turban etc are also offered to either the priest or the son-in-law in the name of ancestors. Jagratas are also performed in remembrance of their ancestors.

They worship Bhau Ji Maharaj and Gugga Pir. Bhau Ji Maharaj is their guru and his temple is located in Rajasthan near Bikaner. bhau Ji Maharaj is believed by them to be a Rajput Rathor and Gugga Zahir Pir a Chauhan. bhau Ji Maharaj's day is celebrated on the 10th of Magh, that is five days after the Basant Panchami. Offerings of sweet rice, sugar bubbles, a coconut and dhoop are made to Bhau Ji and afterwards the offerings are distributed among the followers. Roop Nath and Bhasa used to stay with Bhau Ji, so they also are revered and worshiped along with Bhau Ji by their followers. Daily prayers are performed.

Gugga Pir's festival is observed in Rajasthan during Bhadon. Besides these deities they worship all lords and deties of Hindu religion. They often visit temples and pilgrimages centres of Hindus. They celebrate and participate in all the festivals of Hindu religion. The members of the community are especially influenced by the epics of Ramayan and Mahabaharat.

An interesting change that has been observed about the community in the recent past is the conversation to Sikhism among some of the members. The trend can be attributed to their ability and attempt to assimilate in their surrounding culture. Moreover, Sikhism does not recognize caste system and holds an empowering and liberating promise for the one's victimized by the caste system.

Besides their rootedness in Hinduism and affinity towards Sikhism, they also show increasing influence of the Radha Swami sect of Beas on their life style. Unlike organized religions with elaborate rituals and customs, the simple, liberal and informal approach of Radha Swami sect attracts many amongst them. It has also led to some change in their life style and food habits as the sect asks its followers to abstain from intoxicants like liquor and smoking etc.

Intercommunity linkages : Naiks have been living along with other communities of the state and they claim to have had a cordial relation with them. Having lost their glorious past in which they were the warriors of a powerful kingdom, they also gradually lost their esteemed social position and have now been relegated to a lowly status owing to their poor social and economic condition. It was their vulnerability because of their adverse socio-economic and political circumstances

that led them to accept and adjust to new dispensation of statuses in society. They still consider themselves to have been wrongly clubbed with the lower caste groups and try to prove this by their existing relations with other caste communities. However, it has been found that their association with other caste communities is limited to certain services that they provide to them. Partly their familiarity with other communities is maintained by the fact that as chowkidars they have access to all parts of the village. Though allowed to roam in all parts of a village because of the nature of their occupation, they do not get invited inside the home of higher castes. Intercommunity linkages do no extend beyond the basic service for which they are hired. In urban areas their interaction with other communities is determined more by their economic and occupational status than anything else.

Development and Change in Community - Literacy rate among Naiks is very low. The reasons are mainly their poor economic condition. Illiteracy is more pronounced among the elders in the community but a growing awareness regarding the role of education in opening up opportunities in life has made them keener towards education for the new generation. It is only in subsidized govt schools that they can afford to enroll their children. However, their economic condition often leads to high drop-out before matriculation. Literacy among women is even lower than that of men. Access to public health facilities is there but the quality of health services that they get in public hospitals is not very satisfactory. However, because of paucity of resources they prefer public health centres over private ones. Private health services are also avoided of by many but many a times the low cost private service providers turn out to be quacks. Availability of drinking water is bit of a problem in slum areas where many of the community reside. At such places there is a common public tap which is shared by all the members. It is mainly the womenfolk who fetch water for home use and store it for daily usage. At other places where the members are properly settled in the villages there they have proper water connections and get tap water for which they pay tariff to.

They use public transport for travelling and depend on buses and tempos most of the time. Use of telephones for communication has grown in the last ten years. Earlier they used to use public phones but off late with decrease of public phones and lower costs of mobile phones there is an increasing trend towards owning cheaper mobile phones. Owning of personal vehicles is still very rare in the community.

Unemployment among Naiks is rampant. One major reason for this is the low educational level which in turn is the result of their poor economic conditions. There are very few members of the community who are employed in govt. sector. Most of these are working as class four employees. Most of them are employed in unorganised sector as labourers, construction workers and helpers in shops and workshops.

Naiks of Punjab trace their history to Prithvi Raj Chauhan. They were soldiers in his army. Their hereditary occupation was fighting. They were uprooted from their homelands after the defeat of their king. They largely work as construction workers, labourers and 'chowkidars'. In their glorious past they had homes, property,

honour and prestige they formed part of a well settled community. Though their political and economic condition worsened over the years, they were not socially and culturally isolated. Even the characteristic of distinctive culture appears to be doubtful. They are traditionally known for their valour and strength. They still get preference over others for guarding property, patrolling the streets at night as watchmen, etc. On various social and cultural occasions they largely follow traditional Hindu customs and rituals. They have tried to assimilate themselves in the mainstream Punjabi society but with limited success. They assert their warrior status to distinguish themselves from other deprived communities. Matrimonial alliances are followed strictly along caste lines. The sharp caste consciousness among Naiks indicates its deep roots in traditional caste system. The claims to higher caste status in the past with their claimed lineage tracing back to the warrior caste groups in the past, there are observed some elements of sanskritization too. However, it needs further investigations to establish whether the lineages claimed are factual of fictive.

Naiks are not geographical isolated in Punjab where they are settled both in villages and towns. In rural areas they live within the village providing services and labour to other communities. In urban areas too they mingle with other communities though due to poverty remain confined to slums. Many participate in political rallies and activities in their locality. Men work as labourers in agricultural fields, construction sites, shops etc. and women work as domestic maids. Shyness of contact is not observed. However, the community is educationally backward. Their social, political and economic deprivation is posing great hurdle in their educational and cultural development. They hardly own any resource and depend entirely on selling their labour. Their access to health, education and employment facilities is also very limited. The community still struggles to have access to basic resources in society. With a celebrated past and a pathetic present, their sense of dignity appear vanquished. Except their past narratives they hardly have anything much to bank upon. Being outsiders in Punjab they could never develop strong roots in the state. Their extreme poverty coupled with sense of hurt pride has affected their efforts to relate with larger Punjabi society. The community is now sufficiently dissociate from its place of origin and is gradually assimilating in Punjab but given their poverty the process is delayed. As society progresses further and further the challenge of assimilation becomes more and more challenging. State needs more sensitive approach to minimize the existing inequalities and produce newer opportunities for the community in order to integrate them effectively in society.

Bibliography :

1 The estimates are as per the assessment of the community leaders themselves as there are no separate census details about their population. It is only in context of scheduled castes that census collects caste-wise data.

2 Most of the members recall having migrated along with their families and property long back.

3 Local name for lentils

4. Radhasoami sect of Punjab with its headquarters in Beas is a highly popular sect among the masses. Part of its appeal to the downtrodden communities lies in its preaching and practice of egalitarian principles in social life. The sect strictly advocates vegetarianism and abstinence from alcoholic beverages.

- Bhatt, Sc and Gopal K Bhargava (Eds.) (2006) Land and People of India States and Union Territories: Punjab, Vol-22, Delhi: Kalpaz Publications
- Ibbetson, D. and H. A. Rose (1883) 1970. A Glossary of the Tribes and Castes of the Punjab and North-West Frontier Province- Volume-III, Language Department Punjab, Patiala.
- Kumar, Deepak (2009) 'Naik' in Birinder Pal Singh (Ed) (2008) An Ethnographic Study of the Denotified and Nomadic Tribes of Punjab. Report submitted to the Department of Social Welfare, Punjab Government, Chandigarh. 2009.
- Singh, Birinder Pal (2008) An Ethnographic Study of the Denotified and Nomadic Tribes of Punjab. Report submitted to the Department of Social Welfare, Punjab Government, Chandigarh. 2009.
- Singh, K.S. (2003) Punjab (People of India Series: Vol XXXVII), Delhi: Anthropological Survey of India.

Department of Sociology and Social Anthropology,
Punjabi University, Patiala.

Economic Impact of Structural Adjustment Programme : A Case Study of Sudan

— Hira Lal Gurjar

Sudan's government implemented the following IMF/World Bank Pragramme 'SAP' in 1978. This article Reviews SAP's impact on Sudan, in different ways. Some times SAP worked to improve the economy of a country while other times it had created many problems. The influence of neoliberalism on Sudan's SAP can not be ignored. This is because it reduce safty net of the society. The efficacy of orthodox IMF and World Bank's policy prescriptions (SAP) are than questioned in the light of this alternative prespective.

Structural adjustment is a term used to describe the policy changes implemented by the International Monetary Fund (IMF) and the World Bank (the Bretton woods institutions) in developing countries. These policy changes are conditions (conditionalities) for getting new loans from the IMF or World Bank, or for obtaining lower interest rates on existing loans. Conditionalities are implemented to ensure that the money lent will be spent in accordance with the overall goals of the loan.

The structural adjustment programs (SAPs) are created with the goal of reducing the borrowing country's receives its loan depends upon to type of necessity. In general, loans from both the World Bank and the IMF claimed to be designed to promote economic growth, to generate income, and to pay off the debt which the countries have accumulated.

Though conditionalities are generally implement "Free Market" programmes and policy that include internal changes (notably privatization and deregulation); as well as the reduction of trade barriers. Countries which fail to enact these programs may be subject to severe fiscal discipline.

SAP in historical perspective

SAP is a relatively recent phenomenon, in the decades following world war II, economic policy in the industrialized, Core reflected kenesion economic ideas that prescribed the taming of markets through macro economic interventions. By the end of 1970s, World Bank president Robert Mc. Namara first coined the term structural adjustment. The term SAP referred to a set of lending practices whereby governments would receive loans if they agreed to implement specific economic reform's. In 1970s the indebtedness of LDC (Least Developed Countries) traced back to International Banks to invest in developing world. When global interest rates rose dramatically at the end to 1970s these debts become unsustainable.

The debt crisis made persuading governments to implement policy reforms eaiser because such reforms could be required as preconditions to bailout funds. Privatization was attractive because it both satisfied multilateral lenders and provided much-needed revenues. The era of SAP has been associated with a number for fundamental and seemingly irreversible social transformation.

The Sudans Government Policy and Implementation of SAP : A Review

Here we review the Sudans government demand side policies for the period of 1956-2000. his period can be divided into five distinctive sub-periods, as following:

1. 1956-1970 : early expansionary policies to transform the backward economy and the ten year plan.
2. 1970-1978 : Massive expansionary policies and resulting fiscal and monetary imbalances.
3. 1978-1985 : IMF/WB involvement in the Sudanese economy and the Economic Recovery Programmes.
4. 1985-1992 : Period of Economic and Political Instability.
5. 1992-2000 : Liberalisation policies Implemented under SAP.

Economic Policies and SAP

The first long term planning experience of the Sudan was made in the content of the ten year plan (TYP) 1961-1971, which was a collection of capital projects without clearly defined objectives. In this period more than 68% of investment funds were allocated for infrastructure during the (TYP). Following the May 1969 military takeover, and a five year plan for the period 1971-1975 was drafted with a socialist orientation. The six year plan for the period of 1978-1983 emphasis on transport and social services. By the time (SYP) was approved by the government, Sudan was persuaded by the IMF and WB to adopt Economic Recovery Program (ECRP) under the auspices of IMF.

Economic Recovery Program began in June 1978 with the first IMF administered devaluation of the Sudanese Pound (LS). Thus over the period of 1978-1984 the Sudanese economy was practically managed by the IMF in collaboration with the WB, and as far as agricultural sector is concerned the policy actions included: (1) exchange rate adjustment for export crops; (2) elimination of export taxes; (4) cost recovery and reform of pricing system to eliminate subsidies; (4) institutional reforms of parastatals (public enterprises). Similar policy actions were prescribed for manufacturing sector; the government sector; and the external sector, under what was known as structural adjustment programs. (SAP's).

During the 1980s, the programmes of reforms were implemented with the IMF/World Bank support. However, Sudan's economic performance deteriorated sharply and the average current account deficit was about 10 percent of GDP in

this decade. In the 1990s the government adopted the reforms without external assistance. The economic performance improved and the current account deficit has been reduced to less than 2 percent of GDP by the end of the 1990s (IMF, 2000; World Bank, 1992).

Table - 1 : Performance of the Sudan's Economy before SAP

Year	GDP Share of Agriculture (%)	GDP Share of Industry (%)	GDP Share of Services (%)
1971	44.57	13.71	41.72
1972	44.16	13.51	42.33
1973	44.88	13.62	41.49
1974	44.42	13.76	41.82
1975	40.57	13.99	45.44
1976	38.84	13.50	47.66
1977	39.89	12.36	47.74
Mean	42.48	13.49	44.03

Source : World Bank and IMF Statistics

Table -2 : Performance of Sudan's Economy after SAPs

Year	GDP Share of Agriculture (%)	GDP Share of Industry (%)	GDP Share of Services (%)
1978	38.95	12.41	48.64
1979	35.58	13.27	51.15
1980	32.86	14.13	53.01
1981	36.37	14.29	49.35
1982	36.90	14.65	48.45
1983	33.73	15.31	50.96
1984	30.75	15.98	53.27
Mean	35.02	14.29	50.69

Table -3 : Performance of Sudan's Economy 1985-1989

Year	GDP Share of Agriculture (%)	GDP Share of Industry (%)	GDP Share of Services (%)
1985	27.45	9.17	63.38
1986	31.12	7.99	60.89
1987	37.73	5.85	56.42
1988	38.2	7.33	54.47
1989	40.29	6.94	52.77
1970	35.44	6.79	57.59
Mean	35.03	7.34	57.58

Source : World Bank and IMF Statistics

From table 1, 2, 3 it is very clear that there was a big shift from the Agricultural Sector to the service sector with statistically significant decline in the share of agriculture. A modest changes occure in the share of industry during the period of 1985-1990. thus it can be said that the SAP deterioration of the commodity sector.

Table - 4 : Indicators of Sudan Economy 1970-1986

Indicator	**70/71**	**73/74**	**76/77**	**77/78**	**78/79**	**79/80**	**80/81**	**81/82**	**83/84**	**84/85**	**85/86**
GDP 81,82 prices	5239	5191	6871	6764	6062	6116	6248	6721	6681	5716	6248
GDP growth rate	-	10	15	-2	-10	1	2	8	-4	-14	9
% Exports of GDP	16	13	11	8	10	12	9	9	13	11	9
Import % of GDP	18	17	17	16	19	24	23	27	23	19	17
Trade deficit % of GDP	-2	-4	-6	-8	-9	-12	-14	-18	-10	-8	-8
Foreign debt Mill. US $	337	602	1809	1952	2330	5008	6169	6885	8466	8929	9568
Debt Service ratio	8	14	22	29	33	53	70	95	137	162	244

Source : World Bank 1983, 1985, 1987; Reports

Table 4 Shows that GDP growth rates are not stable and it reflects that the productivity in Sudan economy was very low during the SAP programme. External trade imbalances also seen in sluggish export performance and escalating import growth. It also idicates a clear problem with Sudanese export competitiveness. In general, a country experiencing a current account deficit may not necessarily be indicative of structural or policy problem. But on the case of sudan, taking risk of running a large current account deficit indicates a weak economic structure, undeveloped banking system and a large external liabilities.

Conclusion

The structural adjustment programme in Sudan did not improve the current account position; rather the external debt increased rapidly. The large persistent

trade deficit was a clear indicator of a problem with Sudan's export competitiveness. The IMF and World Bank programmes of the 1980s has limited success in solving these problems. It is fair to conclude, that SAP in Sudan had significantly risen the cost of living, had resulted in massive privatization, has failed to improve social safety net.

References

- Abdel Gadir Ali, A.(1987) "How wrong can the World Bank Be? A note on capital flight" Sudan University of Gezira.
- Cronije, S. (1987) "Sudan", the African Review, 225-228.
- Calderton, C.A. chang and L. Zanforlin (2001) "Are African current account deficits different? IMF working paper, WP/01/04, IMF, Washington, DC.
- Connors. T. (1979) 'The Apparent Effects of Recent IMF Stabalisation programmes' International finance discussion paper, No. 135, April.
- World Bank, Development Reports, Various Issues. Washington, D.C. World Bank.
- World Bank (1998) Assessing Aid : What works, what does not and why. Oxford university Press.
- World Bank (1990) "Sudan Reversing the Economic Decline - Country Economic Memorandum", Report No. 8414-SU, July.

Research Scholar
Department of Political Science
University of Rajasthan
Jaipur

Rural Tourism in Rajasthan : Oppertunities and challenges

— Somendra Kumar Meena

***"I can't think of anything that excites a greater sense of childlike wonder than to be in a country where you are ignorant of almost everything."* - Bill Bryson**

Introduction

In the time of globalization this quote of Anglo-American author really goes well with the rural tourism. Because after the globalization big cities in every country developing very similar culture. Every city has MNCS brand Showrooms, theaters, Bars etc. Even every city has its own cultural in some way but it cannot match the uniqueness and surprising element which rural areas have. Rural areas still has such unique culture and traditions which gives the feeling of great excitement and create sense of wonder.

Rural tourism is type of tourism which allows the tourists to involve in the rural activities and to observe rural lifestyle closely. According to the Tourism ministry of India, Rural tourism is any form of tourism that showcases the rural life, art, culture and heritage at rural locations, thereby benefiting the local community economically and socially as well as enabling interaction between the tourists and the locals for a more enriching tourism experience can be termed as rural tourism. Rural tourism gives unique experience to tourists as locations are sparsely populated and it is predominantly in natural environment, it meshes with seasonality and local events and is based on preservation of cultural, heritage and traditions.

Rajasthan, which is known for its Great culture and glorious history, has been globally famous tourism destination with lots of tourist attractions and fabulous tourist facilities. This historical state of India attracts tourists and vacationers with its rich culture, tradition, heritage, and monuments. But Rajasthan has failed to exploit its potential in rural tourism. 75.13% of the total population of Rajasthan resides in rural areas and agriculture is big source of GDP where it contribution in GDP is one-third. These data shows the potential of Rajasthan in rural tourism.

Opportunities

It is one of the most easily connected and strategically located for the purpose of tourism. Rajasthan is located in Northwestern India and has boundaries with the States of Punjab, Haryana, Uttar Pradesh, Madhya Pradesh, and Gujarat as well as a long international boundary with Pakistan. It is the second largest Indian state. It is primarily an agrarian economy with agriculture accounting for one-third of Rajasthan's GDP as earlier mentioned and almost ¾ of the population resides in rural areas. Rajasthan Famous for its culture and traditions not in Rajasthan but in

the whole world. As part of the golden Triangle of the north, Jaipur is easily connected with both New Delhi and Agra. As part of the cultural circuit, its major cities are linked with both Mumbai and New Delhi and connected to Aurangabad, Agra, Khajuraho, Banaras and Calcutta. Jaipur its capital is linked by air, rail and road and Mumbai and New Delhi.

A thriving handicrafts industry makes shopping particularly exciting. Local bazaars specialize in textiles, jewellery, miniature paintings, pottery, statuary, carpets and dhurries and a huge range of souvenirs and crafts. Government approved shops; government emporia as well as craftsperson's at crafts centers enrich the shopping encounter.

There are airports with services at Jaipur, Jodhpur and Udaipur. At other centers, there are airports though scheduled services have still to take off. However, private aircraft can be chartered for corporate and tourism purposes and helicopters are also available in season.

Accommodation comes in a democratic range with palaces and forts providing an unusual experience while modern hotels, resort, state-run hotels, dormitories and budget hostelries bring up the low-end segment. During the state's many fairs, luxury tented camps are set up.

A large number of fairs and pilgrimages are especially geared for tourists with such tented cities, a thriving souvenir and entertainment industry, and a number of activities in which they can participate. Traditional entertainment remains popular and is part and parcel of every visitor experience. Local cuisines are widely available in addition a number of theme restaurants combine these with a rich cultural experience. Experience chefs also provide food from around the world for the international visitor.

The already well established tourism industry in other areas of tourism can really help in fast development of rural tourism in Rajasthan. Rural tourism should be developed through diversified options like agro tourism, Tribal tourism, eco tourism, and cultural tourism. Rajasthan has huge opportunities in these fields.

In Agro tourism, because of its agriculture based economy Rajasthan has huge scope. Agro tourism includes the practice of touring agricultural areas to see farms and often to participate in farm activities. Opportunity holds immense potential due to its cost effective nature, demand for family-oriented recreation environment, growing curiosity about farming, and increased focus on promoting environmental consciousness. Rajasthan has long history of agriculture practice form the time of Indus valley civilization as the evidences found on Kalibanga site in Hnaumangargh District . Even after modernization there some agriculture practice and traditions which are followed in the Rajasthan which can really amaze the tourist for example there gods related to agriculture practices like 'Khetrpal', 'Bharooji' etc. Tribal

tourism also has huge potential in Rajasthan as Tribal population consists 30.2% of total population. Tribal tourism refers to a new form of travel in which tribes allow tourists to visit their villages in order to be "exposed to a culture completely different from their own. Main tribes of Rajasthan include Bhils, Sahariyas, Gadiya Loharas, Garasiyas, Banjara nomadic tribe, Minas etc. close observation of life of Banajaras and Gadiya Loharas may very fascinating for any person as they live life on travelling. Other tribes also has interesting things like their folk music, dances, jewelry and other unique things which makes them interesting.

Ecotourism is also has a great potential in Rajasthan as it has 5 National parks and 25 wildlife sanctuary including the famous Keoladeo, Sarsika, Ranthambor and such others. It has huge diversity in its ecological system from hill station in Mount Abu to famous Thar Desert in the Rajasthan. According to international ecotourism society ecotourism is a responsible travel to natural areas that conserves the environment, sustains the well-being of the local people, and involves interpretation and education

Thus we have seen that there is lot of opportunities in the diverse fields of rural tourism in Rajasthan. But these opportunities can only be harnessed with a strategically planned scheme of governments and with the help of other institutions and individuals. First of all villages should be identified on the basis of the pre-determined criteria. Villages which has unique cultural and nearby any famous tourism site should be given preferences.

Conclusion

"If villages will perish, India will perish too". — M.K. Gandhi

This statement shows the importance of rural tourism because as rural tourism

is one option which can help in saving the villages of India without changing their social and cultural fabric.

Rural tourism can lead to the solution of many problems like rural to urban economic migration can be restrained, poverty alleviation, development of rural infrastructure and such others. Tourism industry known as environmental friendly industry as it generates revenue without creating any pollution. But there are some serious concern about rural tourism which should be addressed carefully otherwise it may lead adverse impacts. These concerns includes balance between Way of life of tribal and tourism, balance between ecological sustainability and tourism and balance between cultural integrity of local region and tourism.

Bibliography:

Reference

1. Dr. Rajesh Kumar Vyas, 'Pyratan udhbha and Vikash' Rajasthan Hindi Granth Acedamy, Jaipur , ISBN:978-81-7137-877-7
2. Dharmendra Kanwar, Rajasthan, Prakash Book Depo, New Delhi, 1997
3. Dr. Chandramani Singh, Rajasthan ki Sanskritik Prampara, Rajasthan Patrika, 2000
4. K.C. Malu, Swar Sarita, Jaipur
5. Danik Bhaskar, Jaipur
6. Rajasthan Patrika, Jaipur
7. www.rajasthantourism.gov.in

Research Scholar
Department of Geography,
University of Rajasthan
Jaipur

बालश्रम : एक विश्लेषण

- डॉ. ज्योतिशंकर भट्टाचार्य

बालश्रम किसी बालक या बालिका द्वारा किया गया कोई भी ऐसा कार्य, जिसे सीधे तौर पर स्वयं बालक/बालिका को या फिर उनके परिवारजनों को आर्थिक लाभ पहुंचाने के प्रयोजन से दिया जाए और जिससे उसके स्वयं के शारीरिक, मानसिक या सामाजिक विकास में बाधा पहुंचे। भारत सरकार द्वारा नियुक्त बालश्रम समिति के अनुसार बालकों की जनसंख्या की वह भाग आता है, जो या तो वैतनिक या अवैतनिक कार्यों पर नियुक्त हो। बाल मजदूरी निम्न क्षेत्रों में अधिक रूप में पाये जाते हैं–

संगठित क्षेत्र – होटल, ढाबा, फैक्टरी व दुकान, ऑटो वर्कशाप, अखबार बेचना, कोयला, अभ्रक चुनना, कचरा चुनना, खेती बाड़ी, घर में नौकर का काम करना आदि।

असंगठित क्षेत्र – कालीन बुनाई, दिया सलाई, आतिशबाजी, हथकरघा, चमड़ा, कांच, भवन निर्माण, पत्थर खदान, रत्न उद्योग, ताला उद्योग आदि। यूनीसेफ ने बाल मजदूरी को 3 श्रेणी में विभाजित किया है–

- परिवार के साथ – इस प्रकार के बाल श्रमिक अपने परिवार के सदस्यों के साथ बिना वेतन के घर के कार्यों में, कृषि में हस्तकला एवं गृह उद्योग में कार्य करते हैं।
- परिवार के साथ पर घर के बाहर – इस प्रकार के बाल श्रमिक प्रायः न्यूनतम वेतन पर घर से बाहर अपने परिवार के साथ स्थानीय खेती का कार्य, घर का कार्य, निर्माण कार्य इत्यादि करते हैं।
- परिवार से बाहर – इस श्रेणी में बालक विभिन्न कार्यों के लिए अनुबंधित किए जाते हैं जैसे कि गलीचा उद्योग, जरी का काम, तांबा तथा अन्य कार्य।
- बालश्रम एक बुराई
- बालक भविष्य की मानव पूंजी है इसका संरक्षण एवं संवर्धन करना अनिवार्य है।
- औसत बालक के संरक्षण के लिए उपयुक्त सेवाएँ प्रदान की जानी चाहिए।
- शून्य आयु से 16 वर्ष तक के प्रत्येक बालक को ये सेवाएं मिलनी चाहिए।
- ये सेवाएं निम्न क्षेत्रों में होनी चाहिए।
- स्वास्थ्य एवं पोषण

बाल मजदूरी के बढ़ने के कारण

- अत्यधिक जनसंख्या, अशिक्षा, गरीबी, ऋण जाल आदि सामान्य कारण हैं जो इस मुद्दे के प्रमुख यंत्र है।
- अत्यधिक ऋण जाल से ग्रस्त माता–पिता, सामान्य बचपन के महत्व को अपनी परेशानियों के दबाव के कारण समझने में असफल होते हैं और इस प्रकार ये बच्चों के मस्तिष्क का घटिया भावनात्मक और मानसिक संतुलन को नेतृत्व करता है जो कठिन क्षेत्रों या घरेलू कार्यों को करने के लिये तैयार नहीं होते।

- राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी कपड़ों के उद्योग में अधिक काम और कम वेतन के भुगतान के लिये बच्चों को भर्ती करती है जो बिल्कुल अनैतिक है।

भारत में बाल श्रम कानून

भारत में बाल मजदूरी की समस्या सभी के लिये स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही एक चिन्ता का विषय बन गयी है। भारत के संविधान की प्रारुप समिति इस संबंध में बिना किसी अन्य देश की सिफारिशों के आधार पर, अपने दम पर कानून तैयार करना चाहती थी। जिस समय भारत ब्रिटिश साम्राज्य के शोषण के अधीन था, उसने केवल यही बोध कराया कि प्रावधान शोषणकारी मजदूरी के रुप को ध्यान में रखकर बनाये गये है और भारत शोषणकारी नृशंस शासन व्यवस्था के बीच है।

भारत में बाल मजदूरी को रोकने के लिये बनाये गये प्रारम्भिक कानून जब बना तब बाल रोजगार अधिनियम 1938 पारित हुआ। ये अधिनियम बड़े दुखान्त अंत के साथ असफल हुआ। इसके असफल होने का सबसे बड़ा कारण गरीबी का होना था क्योंकि निर्धनता बच्चों को मजदूरी करने के लिये मजबूर करती है।

भारतीय संसद ने बाल श्रम या मजदूरी से बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिये समय–समय पर कानून और अधिनियम पारित किये हैं। 14 साल की आयु से कम के बच्चों को किसी फैक्ट्री या खदानों में या खतरनाक रोजगारों (जहाँ जान जाने का ज्यादा जोखिम हो) में बाल मजदूरी को निषेध करने के लिये हमारे संविधान में अनुच्छेद 24 के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों को स्थापित किया गया है। इसके अलावा, अनुच्छेद 21 को अन्तर्गत, ये भी प्रावधान किया गया है कि, एक राज्य 6 से 14 साल तक के बच्चे के लिए मुत शिक्षा के लिये सभी आधारिक संरचना और संसाधन उपलब्ध करायेगा।

संविधान के तहत बच्चों की बाल श्रम से सुरक्षा का नियमन करने के वाले कानूनों का एक समूह मौजूद है। कारखाना अधिनियम 1948, 14 साल तक की आयु वाले बच्चों को कारखाने में काम करने से रोकता है। खदान अधिनियम 1986, 18 साल से कम आयु वाले बच्चों का खदानों में काम करना निषेध करता है। बाल श्रम अधिनियम (निषेध एवं नियमन) 1986, 14 साल से कम आयु वाले बच्चों को जीवन को जोखिम में डालने वाले व्यवसायों में, जिन्हें कानून द्वारा निर्धारित की गयी सूची में शामिल किया गया है, में काम करना निषेध करता है। इसके अलावा, बच्चों का किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2000 ने बच्चों के रोजगार को एक दंडनीय अपराध बना दिया है।

आलोचनात्मक दृष्टि से, कानूनों की विशाल सारणी के बावजूद, बाल मजदूरों और नियोक्ताओं की कार्यकारी स्थितियों में कोई सुधार नहीं दिखायी देता है साथ ही बाल श्रम को निषेध करने वाले अधिनियम के प्रावधानों का स्वतंत्र रुप से उल्लंघन किया जा रहा है।

इस पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है कि, इन प्रवाधनों का अतिक्रमण का अर्थ बुनियादी मानव अधिकारों का अभाव और बच्चों के बचपन को अर्थरहित करना है। बच्चे कहाँ और किस प्रकार के रोजगार के अन्तर्गत कार्य कर सकते हैं, के रुप में ये कानून अधिक स्पष्ट

नहीं है। ये अधिनियम केवल 10 प्रतिशत कार्यशील बच्चों को सुरक्षित करता है और इस प्रकार गैर–संगठित क्षेत्रों में लागू नहीं होता। ये अधिनियम बाल मजदूर के परिवार को इस आधार पर भी छूट देता है यदि वो सभी बच्चों के रूप में एक ही कर्मचारी के साथ काम कर रहे हैं। यद्यपि, ये अधिनियम कुछ निश्चित जोखिम वाले उद्योगो और कारखानों में बच्चों के काम करने को निषेध करता है, लेकिन साथ ही ये खतरनाक कार्यों की व्याख्या नहीं करता। ये केवल खतरनाक रोजगारों की एक सूची प्रदान करता है।

बाल मजदूरी से लड़ने में अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका

बाल मजदूरा के उन्मूलन पर अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम (आई.पी.ई.सी.एल.), अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन के अन्तर्गत 1991 में, बाल मजदूरी के बारे में जागरुकता का निर्माण एक वैश्विक मुद्दे के रुप में राष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग करके, बाल मजदूरी के उन्मूलन के लिये शुरु किया गया था। भारत बाल श्रम का मुकाबला करने में मदद करने के लिए आई.पी.ई.सी.एल. के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वाला पहला राष्ट्र था।

राष्ट्रीय स्तर कार्यक्रम (एन.सी.एल.पी.), उन मुख्य कार्यक्रमों में से एक है जो पूरे देश में शुरु किया गया था जिसमें वर्ष 1988 में, सात बाल श्रम कार्यक्रम शुरु किये गये थे। पुर्नवास, भारत सरकार द्वारा, भारत में बाल श्रम की घटनाओं को कम करने के लिये अपनायी गयी प्रमुख नीतियों में से एक है।

हमारे देश में स्वतंत्रता से पूर्व ही इस कलंक को मिटाने के लिए अनवरत प्रयास किये जा रहे हैं। सर्वप्रथम कारखाना अधिनियम, 1881 के अंतर्गत सात वर्ष से कम आयु के बच्चे से कार्य करवाना अवैधानिक घोषित किया गया। तत्पश्चात् 1901 में खदान अधिनियम, 1911 में फैक्ट्री अधिनियम, 1926 में संशोधित फैक्ट्री अधिनियम, 1931 में भारतीय बन्दरगाह अधिनियम (संशोधित), 1933 में बाल बंधुआ श्रम अधिनियम, 1934 में फैक्ट्री अधिनियम, 1938 में बाल रोजगार अधिनियम, 1948 में फैक्ट्री अधिनियम, 1951 में बाल रोजगार (संशोधित) अधिनियम व बालश्रम अधिनियम, 1952 में खदान अधिनियम, 1978 में बाल रोजगार अधिनियम (संशोधित) एवं 1986 में बाल श्रम (नियमन एवं उन्मूलन) अधिनियम पारित किये गये। स्वतंत्रता के पश्चात सरकार ने संविधान में संशोधनों के माध्यम से बच्चों के विकास हेतु संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान किये हैं।

संविधान के अनुच्छेद 24 में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे को किसी भी कारखाने, खान या खतरनाक व्यवसाय में नियोजित नहीं किया जा सकता है। बच्चों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से संविधान के अनुच्छेद 45 में 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए सरकार द्वारा निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था का प्रावधान किया गया है। इसी भांति, संविधान के 86वें संशोधन, 2002 के माध्यम से बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है। संविधान के नीति निर्देशक तत्वों के अंतर्गत भी बाल श्रम पर रोक लगाते हुये यह प्रावधान किया गया है कि सरकार बच्चों के बचपन की रक्षा करे तथा स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अनुचित कार्यों में उनको संलग्न नहीं करें। निसंदेह रूप से,

संविधान में उल्लेखित इन सब प्रावधानों का मुख्य उद्देश्य बच्चों के सर्वांगीण, स्वतंत्र एवं गरिमायुक्त विकास को सुनिश्चित करना है।

बाल श्रम निषेध एवं नियमन अधिनियम 1986 के माध्यम से श्रमिक के रूप में कार्यरत बच्चों का नैसर्गिक, मानसिक व शारीरिक विकास अवरुद्ध हो जाता है जो देश के विकास में बाधक है। विचारणीय प्रश्न यह भी है कि बाल श्रमिकों को जिन कार्यस्थलों पर, जिन परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है, वे भयावह एवं चिंताजनक हैं। फिरोजाबाद के चूड़ी उद्योग एवं मेघालय की कांच की खानों में उच्च तापमानयुक्त भट्टियों पर कार्य करते हुए बच्चों का कोमल शरीर झुलस जाता है, दरियों, गलीचों व कालीनों की बुनाई करते हुए बच्चों की नाजुक अंगुलियां जकड़ जाती हैं। कारखानों में कार्य करते हुये बच्चे घातक रासायनिक तत्वों की मौजूदगी के कारण अस्थमा, चर्मरोग, टी.बी. व कैंसर जैसे जानलेवा रोगों के शिकार बन जाते हैं। यही नहीं, माचिस व आतिश उद्योगों में कार्यरत बच्चों के जीवन पर हमेशा मौत की काली छाया मंडराती रहती है। कार्यस्थलों पर आधारभूत सुविधाओं की कमी, हवा, रोशनी की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होने के दुष्परिणाम बच्चों को ही उठाने पड़ते हैं। ऐसी विकट परिस्थितियों में कार्यरत ये अबोध बच्चे किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त होकर अपना स्वास्थ्य चौपट करते हुए अपने भविष्य को गर्त में धकेलने के लिए बाध्य हैं।

14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खतरनाक उद्योगों तथा भारी उद्योगों में कार्य करने को प्रतिबंधित किया गया है। इसी भांति राष्ट्रीय बाल श्रम नीति, 1986 का मूलभूत उद्देश्य खतरनाक उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों के पुनर्वास की व्यवस्था करना है। यही नहीं विपत्तिग्रस्त, अनाथ, बेसहारा बालकों को सहायता उपलब्ध कराने के लिए 'चाइल्ड लाइन' की स्थापना की गई है। वर्तमान में यह चाइल्ड लाइन सेवा निशुल्क टेलीफोन नंबर 1098 पर चौबीस घंटे उपलब्ध है। देश में अनेक बाल श्रमिक परियोजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं जिनका उद्देश्य बाल मजदूरों की शिक्षा एवं रोजगारपरक प्रशिक्षण की व्यवस्था करते हुए उनको पुनर्वासित करना है। ज्ञातव्य है कि वर्ष 1994 में कालीन बुनाई, पत्थर खनन, माचिस निर्माण व पटाखा उद्योग में संलग्न 20 लाख श्रमिकों को वहां से हटाकर उनके लिए स्कूलों की व्यवस्था करने हेतु 850 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। हाल ही में, सरकार ने 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को घरों, ढाबों, रेस्टोरेंट, होटलों, चाय की थड़ियों, रिसोर्टों, हेल्थ क्लबों, मनोरंजन केंद्रों व अन्य हानिकारक कार्यों पर रखने के लिए रोक लगाई है। इस अधिनियम का उल्लंघन करने पर तीन माह से लेकर एक वर्ष तक की कैद तथा 20 हजार रुपये जुर्माना लगाये जाने का प्रावधान है।

बाल श्रमिकों के पुनर्वास हेतु 'इंडस' (इण्डोयूएस) नामक एक संयुक्त परियोजना का श्री गणेश भारत व अमेरिका के श्रम विभाग द्वारा किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य जोखिम परिपूर्ण उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों को कार्यमुक्त करके उनके पुनर्वास की व्यवस्था करना है। इस योजना से 80,000 बच्चे लाभान्वित हो चुके हैं। संकटग्रस्त बच्चों एवं गैर–कानूनी कृत्यों में संलग्न बच्चों को संरक्षण देने के लिए आश्रयगृहों की स्थापना की गई है। बाल श्रमिकों

के अभिभावकों को रोजगार प्रदान करने, उनके आय स्तर में वृद्धि करने के उद्देश्य से 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना' एवं स्वंसहायता समूह का क्रियान्वयन प्राथमिकता के आधार पर किया जा रहा है। सरकार द्वारा वृहद् स्तर पर संचालित मध्याह्न भोजन व्यवस्था भी कुछ सीमा तक बाल श्रम की समस्या को नियंत्रित कर रही है। इसी भांति सर्वशिक्षा अभियान जैसा कार्यक्रम भी बच्चों की शिक्षा को सुनिश्चित करते हुए बाल श्रम उन्मूलन की दिशा में कदम बढ़ा रहा है। बाल मजदूरी उन्मूलन प्राधिकरण भी बाल श्रम की प्रथा को रोकने एवं उनकी शिक्षा व विकास हेतु प्रयासरत है। सरकार ने बाल श्रमिकों की शिक्षा व्यवस्था हेतु विशेष विद्यालयों की स्थापना भी की है। 'बाल श्रम' की समस्या से निजात पाने हेतु केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय चार्टर 2003 बनाया जिसका उद्देश्य बच्चों में अपने संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरुकता उत्पन्न करना है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग भी बाल श्रम समस्या के समाधान हेतु सतत प्रयासरत है।

देश में गठित 'राष्ट्रीय बाल आयोग' भी बच्चों के विकास और उनसे संबंधित समस्याओं के निराकरण में प्रभावी भूमिका निभा रहा है। 'बाल श्रम' जैसी वैश्विक समस्या के समाधान हेतु किए गए सक्रिय व प्रभावी प्रयासों के फलस्वरूप ही विश्व में व देश में इस समस्या को कुछ सीमा तक नियंत्रित किया जाना संभव हो पाया है। इसी सुखद तथ्य की ओर संकेत करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने वर्ष 2005 में अपनी रिपोर्ट में बताया है कि संपूर्ण विश्व में पहली बार इस समस्या में कमी आई है। इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि वर्ष 2000 से वर्ष 2004 के दौरान विश्व में बाल श्रमिकों की संख्या में 11 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई है। यही नहीं, खतरनाक कार्यों में संलग्न 5 से 17 आयु वर्ग के बच्चों की संख्या में 20 प्रतिशत की कमी आई है। उपर्युक्त संपूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट है कि बाल श्रम की समस्या के निराकरण में सरकार, स्वयंसेवी संगठनों एवं समाज के प्रत्येक नागरिक का योगदान अपेक्षित है। केवल कानून, अधिनियम या समितियों की सहायता से इस जटिल समस्या का समाधान संभव नहीं है।

'बाल श्रमिकों की फौज' न केवल देश की अर्थव्यवस्था पर कलंक है, अपितु विकास के मार्ग में भी अवरोधक है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए इस समस्या के लिए उत्तरदायी मूलभूत कारणों–गरीबी, बेरोजगारी व जनसंख्या वृद्धि पर एक साथ कड़ा प्रहार करने की नितान्त आवश्यकता है। जब तक बाल श्रमिकों के परिवारों के भरण–पोषण का स्थायी समाधान नहीं होता है तब तक बाल श्रम से संबंधित सभी कानून, अधिनियम व आयोगों की सार्थकता संदिग्ध है। ऐसी स्थिति में रोजगार संवर्द्धन से संबंधित सभी योजनाओं व ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के प्रभावी क्रियान्वयन की दिशा में कठोर कदम उठाये जाने चाहिए। इसी भांति, जनसंख्या वृद्धि के नियंत्रण हेतु परिवार नियोजन कार्यक्रम, साक्षरता एवं जागरुकता जैसे अभियान को युद्धस्तर पर क्रियान्वित करने की महत्ती आवश्यकता है। कार्य करने के घंटे, कार्यस्थल पर उचित वातावरण एवं न्यूनतम मजदूरी जैसे प्रावधानों को भी व्यावहारिक रूप से अपनाने पर जोर देना चाहिये। 'बाल श्रम' की समस्या मानवीय संवेदना, सहानुभूति व सहभागिता के बल पर ही सुलझाई जा सकती है। अतः समाज के प्रत्येक सदस्य में बाल श्रमिकों

के प्रति संवेदना जागृत कर दी जाए तो निश्चित रूप से इस समस्या का समाधान शीघ्र एवं स्थायी रूप से हो जायेगा।

संदर्भ

1. कपाडिया, कामिनी, आर. एवं नायडू, उषा, चाइल्ड लेबर एण्ड हेल्थ : प्राब्लम्स एण्ड प्रोस्पेक्ट्स, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साईंसेज, मुम्बई, 1985
2. खातू, के.के., वार्किंग चिल्ड्रेन इन इण्डिया, ऑपरेशन रिसर्च ग्रुप, बड़ौदा, 1983
3. जुयाल, बी.एन. चाईल्ड लेबर : द ट्वाईस एक्सप्लायटेड, गांधीयन इंस्टीट्यूट ऑफ स्टडीज, वाराणसी, 1992
4. यूनिसेफ, चिल्ड्रेन एण्ड वीमेन इन इंडिया, नई दिल्ली, 1991
5. यूनिसेफ, एन एनालिसिस ऑफ द सिचुएशन ऑफ चिल्ड्रेन इन इंडिया, नई दिल्ली, 1994
6. महिला एवं बाल विकास विभाग, भारत सरकार प्रगति प्रतिवेदन, 2016
7. महिला एवं बाल विकास विभाग, राजस्थान सरकार, प्रगति प्रतिवेदन, 2016
8. मिश्रा, जी.पी.एवं पाण्डेय, पी.एन., सप्लाई ऑफ चाइल्ड लेबर : एन इन्वेस्टीगेशन, लेख लेबर एण्ड डेवलपमेंट खण्ड–1, सं. 1, जुलाई–दिसम्बर, 1995
9. बुर्रा, नीरा, बॉर्न टू वर्क : चाइल्ड लेबर इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1997
10. नायडू, उषा एवं एस., हेल्थ सिचुएशन ऑफ वर्किंग चिल्ड्रेन इन ग्रेटर बॉम्बे, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साईंसेज, मुम्बई, 1985

प्राचार्य,

महात्मा गाँधी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,

महुआ (दौसा)

प्रधानमंत्री जन-धन योजना से जन सुरक्षा : एक पहल

*डॉ. अरविन्द चौधरी
**डॉ. मनीष श्रीवास्तव

प्रधानमंत्री जनधन योजना (पीएमजेडीवाई) मोदी सरकार की महत्वाकांक्षी योजना है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 28 अगस्त, 2014 को वित्तीय समावेशन वाली इस महत्वाकांक्षी योजना की शुरुआत की। वित्त मंत्रालय इस योजना की प्रगति की देखरेख कर रहा है। अब तक इसके तहत 5.29 करोड़ खाते खोले गए हैं। साथ ही, 1.78 करोड़ रुपे डेबिट कार्ड जारी किए जा चुके हैं। सरकार ने 26 जनवरी, 2015 तक 7.5 करोड़ खाते खोलने का लक्ष्य रखा है। इस आलोक में ग्रामीण क्षेत्र में 3.12 करोड़ और शहरी क्षेत्रों में खोले गए 2.17 करोड़ खातों को ग्राहक के बायोमैट्रिक ब्योरे के साथ जोड़े जाने की योजना है, ताकि धोखे से जुड़े जोखिमों को कम किया जा सके।

प्रधानमंत्री जन–धन योजना के सहारे वित्तीय समावेशन एक जून से नए दौर में प्रवेश कर रहा है। पहले दौर में जहां जोर हर किसी को बैंक तक पहुंचाने का था, वहीं अब इस दौर में कोशिश बैंक पहुंचे लोगों के आने वाले दिन बेहतर बनाने की है। यही नहीं पहले दौर में जहां दुर्घटना और जीवन बीमा को नए खाते के साथ बगैर किसी शुल्क के मुहैया कराया गया, वहीं अब बहुत ही मामूली शुल्क पर जीवन बीमा, दुर्घटना बीमा और पेंशन की सुविधा मिलेगी।

''भारत की जनसंख्या का बड़ा भाग–स्वास्थ्य, दुर्घटना अथवा जीवन–किसी प्रकार के बीमा के बगैर ही है। दुखद है कि जब हमारी युवा पीढ़ी बूढ़ी होगी तो उसके पास कोई पेंशन नहीं होगी। प्रधानमंत्री जन धन योजना की सफलता से प्रोत्साहित होकर, मैं सभी भारतीयों, विशेषकर गरीबों और वंचितों के लिए कार्यशील सामाजिक नेटवर्क सृजित करने के कार्य का प्रस्ताव करता हूं।'' वित्तमंत्री की इस घोषणा के साथ ही प्रधानमंत्री जन–धन योजना के सहारे वित्तीय समावेशन एक जून से नए दौर में प्रवेश कर रहा है। यह सब कुछ उस भारत के लिए है जहां आबादी का 65 प्रतिशत तो 35 वर्ष से कम उम्र का है ही, वहीं 60 फीसदी से भी ज्यादा आबादी कृषि पर निर्भर है। कृषि में जहां अनिश्चितता चरम पर है, वहीं कृषि पर निर्भर रहने वालों के लिए भी दुर्घटना कहीं भी और कभी भी हो सकती है। वैसे तो किसान कभी सेवानिवृत्त नहीं होता, फिर भी किसानी करने वाले उम्र के एक ऐसी पड़ाव पर पहुंचते हैं जहां उन्हे नौकरीपेशा लोगों की तरह पेंशन जैसी सुविधा की दरकार होती है। ऐसी ही कुछ सोच के साथ प्रधानमंत्री जन–धन योजना के प्लेटफॉर्म पर सामाजिक सुरक्षा की तीन नई योजनाएं लोगों के सामने हैं। और हां, ये तीनों योजनाएं, गांव और शहर में रहने वाले हर किसी के लिए उपलब्ध हैं। पहली दो योजनाएं बीमा से जुड़ी हैं जबकि तीसरी पेंशन से। पहले बात बीमा की।

बीमा का दायरा बढाने से मुख्य रूप से दो फायदे होंग। पहला तो बीमित व्यक्ति या उसके परिवार का भविष्य सुरक्षित होगा, वहीं दूसरी ओर घरेलू बचत में बढ़ोतरी होगी जिससे विभिन्न परियोजनाओं में निवेश के लिए पैसा उपलब्ध हो सकेगा। आज की तारीख में हमारी घरेलू बचत,

सकल घरेलू उत्पाद के करीब 30 प्रतिशत के बराबर है। सरकार को उम्मीद है कि सामाजिक सुरक्षा का दायरा बढ़ाने के साथ–साथ सार्वजनिक निवेश में भी बढ़ोतरी होगी जिससे पूरी अर्थव्यवस्था को फायदा होगा।

एक बात और। देश में बीमा निवेश की दर, दुनिया के दूसरे देशों के मुकाबले कम है। राज्यसभा में वित्त राज्यमंत्री जयंत सिन्हा के एक जवाब से पता चलता है कि 2013 के दौरान 6.3 प्रतिशत के विश्व औसत के मुकाबले देश में यह आंकड़ा 3.9 प्रतिशत था। इसमें जीवन बीमा की हिस्सेदारी 3.1 प्रतिशत और साधारण बीमा की हिस्सेदारी 0.8 प्रतिशत थी। साधारण बीमा से मतलब दुर्घटना बीमा और स्वास्थ्य बीमा से है। बीमा निवेश की दर दरअसल सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में प्रीमियम का अनुपात होता है और ये संकेत देता है कि किस तरह से लोगों को बीमा सुरक्षा मिली हुई है। बीमा क्षेत्र में निवेश का स्तर वस्तुतः अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के स्तर, वित्तीय लिखतों में बचत की मात्रा एवं बीमा क्षेत्र के आकार एवं पहुंच जैसे पहलुओं पर अधिक मात्रा में निर्भर करता है।

जन–जन के लिए जीवन बीमा

जरा सोचिए एक रुपये से भी कम प्रतिदिन की लागत पर दो लाख रुपये की जीवन बीमा सुरक्षा क्या संभव है? जी हां, सामाजिक सुरक्षा की तीन योजनाएं प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना और अटल पेंशन योजना प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की दूरदर्शिता का परिणाम हैं जो गरीबों के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए प्रतिबद्ध हैं। ये अनूठी योजनाएं देश के लाखों गरीब लोगों को सस्ती दरों पर सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने में मील का पत्थर साबित होंगी। 9 मई, 2015 को कोलकाता से प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने इन योजनाओं की शुरुआत की। इन योजनाओं को देश भर में एक साथ 115 स्थानों पर आयोजित समारोह में शुरू किया गया। प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना के अंतर्गत सिर्फ 12 रुपये सालाना देकर किसी भी व्यक्ति को 2 लाख रुपये का बीमा प्रदान किया जाएगा। योजना का लाभ 18 से 70 आयु वर्ग के सभी बचत खाताधारक उठा सकते हैं। इस योजना को बैंकों द्वारा जिसमें क्षेत्रीय ग्रामीण और सहकारी बैंक भी शामिल हैं, लागू किया जाएगा।

'प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना' को भी काफी सोच–समझ कर तैयार किया गया है। इसके तहत 18–50 साल के आयु वर्ग के किसी भी बचत बैंक खाताधारक को 2 लाख रुपये के जीवन बीमा कवर की पेशकश की जा रही है। इसके लिए प्रति वर्ष महज 330 रुपये का भुगतान करना होगा। इस योजना की पेशकश भारतीय जीवन बीमा निगम (एलआईसी) अथवा उन जीवन बीमा कंपनियों के जरिए की जा रही है, जो समान शर्तों पर जीवन बीमा की पेशकश करने की इच्छुक हैं।

जहां तक 'अटल पेंशन योजना' का सवाल है, इसके तहत असंगठित क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है जिसमें तकरीबन 40 करोड़ कर्मचारी कार्यरत हैं और जो सभी तरह के कर्मचारियों के 80 फीसदी से भी ज्यादा का प्रतिनिधित्व करते हैं। अटल पेंशन योजना के तहत प्रति माह 1000 रुपये से लेकर 5000 रुपये की तय न्यूनतम पेंशन दी जाएगी, जिसकी शुरुआत

60 साल की उम्र से होगी। पेंशन की राशि इस बात पर निर्भर करेगी कि संबंधित कर्मचारी द्वारा मासिक योगदान कितना किया जा रहा है और उसने किस उम्र में यह बीमा खरीदा है। किसी भी स्थिति में संबंधित व्यक्ति को अटल पेंशन योजना के तहत न्यूनतम 20 साल के लिए इसकी खरीदारी करनी होगी। इस योजना के तहत सर्वाधिक अहम बात यह है कि इसमें सरकार की ओर से प्रथम पांच वर्षों तक हर साल 1000 रुपये अथवा कुल अंशदान का 50 फीसदी, इसमें से जो भी कम हो, का सह–योगदान किया जाएगा। सरकार की ओर से यह योगदान तभी किया जाएगा जब कोई व्यक्ति इस योजना को इस साल की समाप्ति से पहले यानी 31 दिसंबर, 2015 तक खरीदेगा। किसी भी वैधानिक सामाजिक सुरक्षा योजना के सदस्य और आयकरदाता इस योजना के लाभार्थी नहीं बन सकेंगे।

अंशदाता की मृत्यु होने की स्थिति में उसकी पत्नी–पति को पेंशन मिल पायेगी और उसके बाद पेंशन निधि नामित व्यक्ति को लौटा दी जाएगी। अटल पेंशन योजना में शामिल होने के लिए न्यूनतम आयु 18 वर्ष और अधिकतम आयु 40 वर्ष होगी। सरकार न्यनूतम नियत पेंशन लाभ की गारंटी प्रदान करेगी। पारिवारिक और सामाजिक ढंाचे में बदलावों के कारण हमारे समाज में स्वाभाविक सुरक्षा धीरे–धीरे कमजोर पड़ती जा रही है। इसके कारण बड़ी संख्या में लोग अपरिहार्य कारणों के चलते असहाय और असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। इन तीन योजनाओं से निर्धन और जरूरतमंद लोगों के बीच बढ़ती असुरक्षा को दूर करने में मदद मिलेगी।

जन–धन योजना की उपलब्धियां

10 करोड़ खाते खोलने के लक्ष्य से आगे बढ़कर 22 अप्रैल 2015 तक 15.15 करोड़ खाते खोले गए जिसमें से 9.07 करोड़ खाते ग्रामीण क्षेत्रों में और 6.08 करोड़ खाते शहरी क्षेत्रों में खोले गए। इस योजना के तहत अब 22 अपैल, 2015 तक 15,965.38 करोड़ रुपये जमा हो चुके हैं और 13.58 करोड़ रुपये कार्ड जारी किए जा चुके हैं।

जन–धन योजना के तहत खोले गए कुल खातों में से 51 प्रतिशत महिलाओं के हैं जिसमें 60.53 प्रतिशत खाते ग्रामीण महिलाओं के हैं। इससे पता चलता है कि वित्तीय समावेशन पहल से समाज में आर्थिक रूप से कमजोर ग्रामीण महिलाओं को फायदा पहुंचा है। करीब 60 प्रतिशत खाते ग्रामीण भारत में खोले गए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या कृषकों की है जोकि इस योजना से लाभान्वित होंगे। ये खाते 1.25 लाख बैंक मित्रों के बड़े नेटवर्क से जुड़े होंगे जोकि पूरे देश में बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे।

बजट में घोषित प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना के जरिए आप यदि दो शर्तें किसी भी बैंक में खाता और 18–50 साल की उम्र पूरी करते हैं तो जीवन बीमा की सुरक्षा हासिल कर सकते हैं। सालाना प्रीमियम की रकम 330 रुपये होगी जो एकमुश्त दिया जाना है। ये रकम आपके बैंक खाते से सीधे जमा होगी। उपरोक्त दो शर्तें पूरी करने वाले परिवार के हर सदस्य को ये सुविधा मिलेगी। एक बात और, चाहे आपके जितने भी बचत खाते हो, लेकिन रियायती प्रीमियम वाली बीमा सुरक्षा योजना में सिर्फ एक ही बचत खाते के माध्यम से शामिल हुआ जा सकता है। अब योजना के सूक्ष्म बिंदुओं पर ध्यान देना जरूरी होगा। लल योजना के तहत 330

रुपये के प्रीमियम पर जीवन बीमा सुरक्षा एक वर्ष के लिए है। दूसरे शब्दों में, 1 जून, 2015 से 31 मई, 2016 (दोनों तारीख शामिल) के बीच यदि योजना में शामिल व्यक्ति की किसी वजह से मृत्यु हो जाए तो उसके परिवार को दो लाख रुपये मिलेंगे।

- बीमित व्यक्ति, बीमा सुरक्षा की अंतिम तारीख तक जीवित रहता है तो उसे ना तो प्रीमियम की रकम वापस मिलेगी और ना ही कोई और रकम।
- बीमा सुरक्षा का हर साल नवीकरण करना होगा। दूसरे शब्दों में, हर वर्ष 31 मई तक या उसके पहले आगे के एक वर्ष के लिए सालाना प्रीमियम का भुगतान एकमुश्त कर देना होगा। मसलन, 31 मई 2016 तक प्रीमियम चुकाकर, 1 जून 2016 से 31 मई 2017 तक के लिए बीमा सुरक्षा ली जा सकती है।
- देरी से भुगतान का विकल्प है, लेकिन इसके लिए अच्छे स्वास्थ्य का स्व प्रमाणपत्र भी देना होगा।
- इस योजना से बाहर निकलने वाला व्यक्ति किसी भी समय, भविष्य के वर्षों में निर्धारित प्रोफार्मा में अच्छे स्वास्थ्य की घोषणा प्रस्तुत कर योजना में दोबारा शामिल हो सकता है।
- यदि 50 वर्ष की उम्र तक सालाना नवीकरण कराया जाता रहा है तो बीमा सुरक्षा 55 वर्ष की उम्र तक संभव है।

इस वर्ष योजना के लिए प्रारम्भिक नामांकन की तारीख 31 अगस्त या 30 नवम्बर तक बढ़ायी जा सकती है। इसके बाद भी यदि कोई योजना में शामिल होना चाहे तो उसे एक स्व–प्रमाणीकरण देना आवश्यक होगा कि उनका स्वास्थ्य अच्छा है और किसी भी 'गंभीर बीमारी' से ग्रस्त नहीं हैं। यहां इस बात पर गौर करना जरूरी है कि आप किसी भी बीमा कम्पनी से सीधे जाकर यह बीमा सुरक्षा नहीं ले सकते। आप अपने बैंक के जरिए ही योजना में शामिल होने और स्वतः नामे की सहमति का फॉर्म देकर ही ये सुविधा ले सकते हैं। कोई भी व्यक्ति 2016 या उसके बाद के वर्ष में भी योजना में शामिल हो सकता है। बस प्रक्रिया बैंक के जरिए ही पूरी करनी होगी। एक बात और, वैसे तो सरकार ने कहा है कि वार्षिक दावा अनुभव के आधार पर प्रीमियम की दर की समीक्षा की जाएगी, लेकिन कोशिश यही है कि बहुत ही ज्यादा दावे का निपटारा नहीं हो तो पहले तीन वर्षों में प्रीमियम की दर नहीं बढ़ेगी। इस प्रीमियम को सेवा कर से मुक्त रखा गया है।

जन–जन के लिए दुर्घटना सुरक्षा

अब बात प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना की सिर्फ 12 रुपये के सालाना प्रीमियम (यानी 1 रुपये हर महीने) की लागत पर यह बीमा सुरक्षा मिलेगी। इसके तहत दुर्घटना में मुत्यु होने या फिर अपंग हो जाने की सूरत में मुआवजा मिलेगा। मृत्यु हो जाने की स्थिति में योजना में शामिल व्यक्ति के आश्रितों को 2 लाख रुपये का मुआवजा मिलेगा। इसके अतिरिक्त दुर्घटना से अपंगता की निम्न परिस्थितियो में 2 लाख रुपये का मुआवजा मिल सकता है।

- यदि दुर्घटना की वजह से दोनों आंखें पूरी तरह से खराब हो जाए और सुधार की कोई गुंजाइश नहीं हो,

- दोनों पैर बेकार हो जाए,
- एक आंख बेकार हो जाए, या
- एक हाथ अथवा एक पैर काम करने में अक्षम हो जाए।

इसके अतिरिक्त एक आंख की नजर पूरी तरह से चली जाए और वहां सुधार की कोई गुंजाइश नहीं हो या फिर एक पैर पूरी तरह से बेकार हो जाए तो एक लाख रुपये का मुआवजा मिल सकता है।

इस योजना में भाग लेने के लिए आपको अपने बैंक से सम्पर्क कर सहमति और अपने नाम का फॉर्म जमा करना होगा। सालाना प्रीमियम की रकम यानी 12 रुपये एकमुश्त सीधे आपके खाते से जमा होगी। यदि यह रकम 1 जून को या उससे पहले काटी गयी है तो बीमा सुरक्षा का फायदा 1 जून से 31 मई के बीच मिलेगा। यदि 1 जून के बाद रकम काटी गयी है तो बीमा सुरक्षा अगले माह की पहली तारीख से मिलेगी। यहां भी सरकार की कोशिश है कि पहले तीन वर्षों तक प्रीमियम की दर में कोई बढ़ोतरी नहीं की जाए, लेकिन दावा भुगतान बहुत ही ज्यादा हो जाए तो ये रकम बढ़ सकती है।

अब आइए नजर डालते हैं इस योजना के सूक्ष्म बिंदुओं पर–

- योजना में शामिल होने वाले की कम से कम उम्र 18 वर्ष और ज्यादा से ज्यादा 70 वर्ष होनी चाहिए।
- यदि एक से ज्यादा बैंक में बचत खाता है तो इसका मतलब ये नहीं कि हर खाते से नयी बीमा योजना में जुड़ा जा सकता है।
- यदि अलग–अलग बैंक के अलग–अलग बचत खाते से प्रीमियम अदा करने को आवेदन दिया जाता है और प्रीमियम जमा भी हो जाए तो एक को छोड़ बाकी सभी जगह से अदा प्रीमियम जब्त हो सकता है।
- सबसे अहम बात है कि एक बार में चुकाया प्रीमियम एक साल के लिए बीमा सुरक्षा देगा। लम्बे समय तक सुविधा पाने के लिए हर साल प्रीमियम जमा करवाना सुनिश्चित करना होगा।
- और हां, किसी तरह का दावा नहीं करने की सूरत में जमा प्रीमियम वापस नहीं होगा या फिर उसी जमा पर आगे के लिए नवीकरण नहीं कराया जा सकता।

जन–धन योजना की बीमा सुरक्षा से इतर प्रधानमंत्री जन–धन योजना में भी जीवन बीमा और दुर्घटना बीमा की सुविधा मिली हुई है। लेकिन ये प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना और प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना से बिल्कुल अलग है। और जिन लोगों को जन–धन योजना में बीमा सुरक्षा मिली वो भी नयी योजनाओं में शामिल हो सकते हैं।

प्रधानमंत्री जन–धन योजना के तहत जीवन बीमा की सुविधा उन सभी को बगैर प्रीमियम चुका दी गई जिन्होंने 15 अगस्त, 2014 से लेकर 26 जनवरी, 2015 के बीच पहली बार बैंक खाता खुलवाया। इसके मुताबिक खाताधारी परिवार में मुखिया या फिर मुखिया की उम्र 60 वर्ष से ज्यादा होने पर किसी दूसरे व्यक्ति को बीमा सुरक्षा मिलेगी। दूसरे शब्दों में, परिवार में कमाई

करने वाले की मृत्यु होने की सूरत में 30 हजार रुपये बतौर बीमा की रकम दी जाएगी। लेकिन यहां शर्त ये है कि खाते में आधार नम्बर जुड़ा होना चाहिए या आधार जोड़ने की प्रक्रिया शुरू कर दी गयी हो और रुपे डेबिट–सह–एटीएम कार्ड को इस्तेमाल किया गया हो। यह बीमा सुरक्षा पांच वर्षों यानी 31 मार्च 2020 तक के लिए उपलब्ध है। उसके बाद प्रीमियम चुका कर बीमा सुरक्षा की सुविधा दी जा सकती है।

इसी तरह योजना में खोले गए हरेक खाते पर रुपे डेबिट–सह–एटीएम कार्ड दिया गया। इस कार्ड के जरिए एक लाख रुपये तक की दुर्घटना बीमा सुरक्षा का प्रावधान है। इसके लिए अलग से प्रीमियम नहीं चुकाने की शर्त है। बस शर्त ये है कि दुर्घटना की तारीख से 45 दिन पहले तक कम से कम एक बार कार्ड का इस्तेमाल किया गया हो। दुर्घटना में मौत होने पर कानूनी वारिस को मुआवजा मिलेगा जबकि स्थायी अपंगता की सूरत में प्रभावित व्यक्ति को मुआवजा मिलेगा। खास बात ये है अगर दुर्घटना विदेश में हो जाए तो भी राहत राशि मिलेगी, लेकिन विदेशी मुद्रा में नहीं, बल्कि भारतीय रुपये में ही।

अटल पेंशन योजना

बीमा सुरक्षा का फायदा उम्र के एक पड़ाव तक ही मिल पाता है, लेकिन जिंदगी अगर उसके आगे चली तो कुछ अलग ही उपाय करने होंगे। क्योंकि उम्र ढलने के साथ श्रम कर पैसा कमाने का सामर्थ्य तो नहीं रह पाता, लेकिन आवश्यकताएं बनी ही रहती हैं, या यूं कह ले कि बढ़ भी जाती हैं। इस सिलसिले में सरकारी नौकरी या कुछ हद तक संगठित क्षेत्र में नौकरी करने वालों को पेंशन यानी हर महीने एक निश्चित रकम ताउम्र मिलती है। अगर सेवानिवृत्त व्यक्ति की मृत्यु हो जाए तो उसकी पत्नी को ताउम्र और कुछ विशेष परिस्थितियों में बच्चों को भी पेंशन मिलती है। इसके अलावा नयी पेंशन योजना में पैसा लगाकर पेंशन की सुविधा दी जा सकती है। लेकिन इन सभी का विस्तार मूल रूप से संगठित क्षेत्र में काम करने वाले समाज के एक छोटे तबकों तक ही हो पाया है।

इसी को ध्यान में रखते हुए जन–जन की पेंशन योजना अटल पेंशन योजना का ऐलान किया गया है। अटल पेंशन योजना का जोर असंगठित क्षेत्र पर होगा। नेशनल सैम्पल सर्वे ऑर्गेनाइजेशन यानी एनएसएसओ के एक सर्वेक्षण (66वां दौर, वर्ष 2011–12) के मुताबिक देश में श्रमिकों की कुल तादाद 47.29 करोड़ है। इनमे से करीब 88 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में हैं, जहां पेंशन को लेकर कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं है। वैसे तो इन श्रमिकों के लिए स्वावलम्बन योजना शुरू की गई, लेकिन स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया कि 60 वर्ष की उम्र के बाद किस तरह से पेंशन लाभ मिलेगा। इसी को ध्यान में रखते हुए नई योजना का खाका बना।

नई योजना के तहत 60 वर्ष की आयु होने पर 1,000 रुपये, 2,000 रुपये, 4,000 रुपये, 5,000 रुपये प्रति माह निर्धारित न्यूनतम पेंशन मिलेगी। यह 18 और 40 वर्ष के बीच दिए गए अभिदान विकल्प पर निर्भर होगा। इस तरह योजना के तहत कम से कम 20 वर्ष या उससे ज्यादा पैसा जमा कराना होगा। कम उम्र में शुरू करने पर हर महीने जमा की जाने वाली राशि कम होगी जबकि ज्यादा उम्र पर ये रकम ज्यादा हो जाएगी। सरकार योजना के तहत कम से कम एक निश्चित पेंशन की गारंटी देगी।

यद्यपि यह योजना निर्धारित आयु समूह में बैंक खाताधारकों के लिए है लेकिन 31 दिसम्बर, 2015 से पहले इस योजना में शामिल होने वाले लोगों तथा वैसे लोगों के लिए जो किसी वैधानिक सामाजिक सुरक्षा योजना के सदस्य नहीं हैं या जो आयकरदाता नहीं हैं, पांच वर्षों तक केन्द्र सरकार कुल अभिदान का 50 प्रतिशत या प्रतिवर्ष 1,000 रुपये, जो भी कम हो, देगी। अब इस योजना के सूक्ष्म बिंदुओं पर नजर–

- सबसे पहले बैंक में खाता होना चाहिए।
- योजना में कोई भी बैंक खाताधारक स्वतः नामे सुविधा के जरिए हर महीने की रकम जमा करा सकता है।
- स्वावलम्बन योजना में शामिल लोग भी नयी योजना में शामिल हो सकते हैं।
- स्वावलम्बन योजना में शामिल व्यक्ति यदि 40 वर्ष की उम्र पूरी कर चुका हो तो कुल जमा पैसा एकमुश्त ले सकता है, या फिर आवेदन देकर 60 वर्ष की उम्र के बाद मासिक पेंशन के रूप में देने का आग्रह कर सकता है।
- भुगतान में देरी होने पर 1 रुपये से 10 रुपये प्रति माह तक दंड लगेगा।
- 40 वर्ष की उम्र के पहले मासिक अंशदान बंद करने की सूरत मे 6 महीने बाद पहले खाता फ्रिज होगा। फिर भी अगर अंशदान नहीं हो तो साल भर बाद खाता निष्क्रिय कर दिया जाएगा और दो साल बाद ऐसे खातों को पूरी तरह से बंद कर दिया जाएगा।
- 60 वर्ष की आयु के पहले योजना छोड़ने की अनुमति नहींहै लेकिन योजना में शामिल व्यक्ति की मृत्यु या लाइलाज बीमारी की सूरत में योजना से बाहर होने की सुविधा मिल सकती है।

कुल मिलाकर बीमा की दो और पेंशन की ये सहूलियतें प्रधानमंत्री जन–धन योजना लांच करते वक्त की गई घोषणा के मुताबिक ही हैं जिसमें कहा गया था कि योजना के दूसरे चरण में जोर लोगों को सूक्ष्म बीमा उपलब्ध कराने और व्यवसाय प्रतिनिधियों के जरिए स्वावलम्बन जैसी असंगठित क्षेत्र की पेंशन योजना शुरू करने पर होगा। इस सिलसिले में वित्तमंत्री अरुण जेटली ने अपने बजट भाषण में भी कहा–"ये सामाजिक सुरक्षा स्कीमें जन–धन प्लेटफार्म का उपयोग करने में हमारी वचनबद्धता यह सुनिश्चित करने के लिए दर्शाती हैं कि किसी भारतीय नागरिक को बीमारी, दुर्घटना अथवा वृद्धावस्था में अभाव की चिन्ता न करनी पड़े।"

जन–धन योजना के तहत 15.15 करोड़ से भी ज्यादा बैंक खाते खोले जा चुके हैं। इसी के साथ यह भी कि करीब–करीब हर भारतीय परिवार के पास कम से कम एक बैंक खाता जरूर है। हर बैंक खाते को आधार से जोड़ा जा रहा है। इससे सरकारी योजनाओं के तहत मिलने वाली रकम और सब्सिडी सही लोगों तक पहुंच सकेगी जिससे अनावश्यक खर्च पर लगाम लगेगी। दूसरी ओर, इन्हीं खातों के जरिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था आने वाले दिनों को बेहतर बनाएगी।

इसमें दो मत नहीं है कि यह एक कल्याणकारी योजना है, जिसका लाभ आम आदमी एवं सरकार दोनों को मिलना निश्चित है। साथ ही, इसकी मदद से समाज में व्याप्त बहुत सारी

विसंगतियों को भी दूर किया जा सकेगा। मौजूदा समय में सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान योजना का बढ़ा हिस्सा भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाता है। चूंकि, इस योजना को आधार कार्ड से जोड़ा जा रहा है, जिसका आधार बायोमेट्रिक है। इसलिए इससे धोखेबाजी की संभावना भी कम होगी। अनेक खूबियों से युक्त होने के बावजूद योजना में अंतर्निहित कमियों से इंकार नहीं किया जा सकता है। पहली समस्या तो खुल रहे खातों के दोहरीकरण की है। भले ही प्रधानमंत्री जनधन योजना के तहत खोले जाने वाले खातों हेतु केवाईसी के नियम को सरल बनाया गया है। फिर भी, बैंककर्मियों द्वारा इस संबंध में सावधानी बरते जाने की जरुरत है। ग्राहक की सही पहचान के अभाव में हवाला को बढ़ावा मिल सकता है। बैंक–स्तर पर हुई लापरवाही कालेधन को सफेद करने का साधन बन सकती है। ऐसा माहौल, आतंकवादियों के लिए भी मुफीद हो सकता है। रिज़र्व बैंक के गवर्नर रघुराम राजन ने भी इस संबंध में अपनी चिंता जताई है।

चुनौती खुले खातों में नियमित लेन–देन सुनिश्चित करने की भी है। गौरतलब है कि वित्तीय समावेशन के तहत खोले गए बहुत सारे खातों में आज परिचालन नहीं हो रहा है। अधिकांश खाते निष्क्रिय हो चुके हैं। बैंकों के लिए इन खातों में परिचालन सुनिश्चित करना एक बड़ी समस्या है। इसके अलावा, शून्य बैलेंस के साथ खोले खातों में सुचारु सेवा को सुनिश्चित करना, बैंकों के परिचालन खर्च में हुए इजाफे की प्रतिपूर्ति, कारोबारी प्रतिनिधियों के वेतन की व्यवस्था, बैंक की तकनीकी क्षमता में बढ़ोतरी एवं समय–समय पर उसका नवीनीकरण, मानव संसाधन की किल्लत, जॉब नॉलेज को अद्यतन करने के लिए निरंतर प्रशिक्षण की व्यवस्था आदि ऐसे कार्य हैं, जिन पर विजय प्राप्त करना सरकारी बैंकों के लिए आसान नहीं होगा। फिर भी यह मानने में किसी को गुरेज नहीं होगा कि तमाम खामियों के बाद भी प्रधानमंत्री जनधन योजना की प्रासंगिकता को दरकिनार नहीं किया जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस योजना के लागू होने से देश की आबादी का एक बडा़ तबका, जिसमें किसान भी शामिल हैं, लाभान्वित होंगे, लेकिन इसके साथ यह भी सच है कि इस योजना को लागू कराने में प्रमुख भूमिका निभाने वाला सबसे बडा़ तंत्र (सरकारी बैंक) आज भी कई बुनियादी समस्याओं से जूझ रहा है। वर्तमान में जिस अनुपात में सरकारी बैंकों से अधिकारी सेवानिवृत्त हो रहे हैं, उस अनुपात में नये अधिकारियों की भर्ती नहीं की जा रही है। इस योजना को लागू करने में कारोबारी प्रतिनिधि सबसे प्रभावशाली भूमिका निभाने वाले हैं। एक अनुमान के मुताबिक इस योजना को सफलतापूर्वक लागू कराने के लिए लगभग 5 लाख कारोबारी प्रतिनिधियों की आवश्यकता है, जिन्हें वेतन देने की व्यवस्था, बढ़े परिचालन खर्च का इंतजाम आदि की व्यवस्था कहां से की जाएगी, का खुलासा अभी तक नहीं किया गया है। बता दें कि बैंकों का एनपीए स्तर मार्च, 2014 में 2.63 लाख करोड़ था। इसके अलावा, सरकारी बैंकों को बासेल तृतीय के मानकों को पूरा करने के लिए भी भारी–भरकम पूजी की जरूरत है, जिसका इतं जाम करने में सरकारी बैंक एवं सरकार दोनों असमर्थ हैं। इस बाबत सरकारी बैंकों में अपनी हिस्सेदारी बेचकर सरकार पूंजी इकठ्ठा करना चाहती है, लेकिन इस कवायद से बैंकों

की पूंजी की समस्या का समाधान होगा, संदहे है। इस पड़ताल से स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री जनधन याजे ना के फायदे अनके हैं, लेकिन कुछ कमियां भी हैं, जिसमें सबसे बड़ी कमी पूंजी की है, को दूर करने की आवश्यकता है, तभी इस योजना को सफलतापूर्वक अमलीजामा पहनाया जा सकता है। इस योजना को अमलीजामा पहनाने से देश का आर्थिक एवं सामाजिक परि.श्य बेहतर होगा, जिससे रोजगार सृजन, महंगाई व मंदी पर नियंत्रण एवं विकास को गति मिलेगी।

संदर्भ

- वार्षिक रिपोर्ट 2015–16, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
- रिर्जव बैंक ऑफ इंडिया वार्षिक प्रतिवेदन 2014–15
- कुरूक्षेत्र, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
- योजना, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
- बिजनेस स्टैंडर्ड, नई दिल्ली
- बिजनेस टुडे, नई दिल्ली
- इकॉनोमिक टाइम्स, नई दिल्ली
- प्रतियोगिता दृष्टि, जयपुर
- जनसत्ता, नई दिल्ली
- राजस्थान पत्रिका, जयपुर
- दैनिक भास्कर, जयपुर
- टाइम्स ऑफ इंडिया, जयपुर

*व्याख्याता, आर्थिक प्रशासन वित्तीय विभाग,
एस.एस जैन सुबोध पी.जी. कॉलेज,
जयपुर (राजस्थान)

**व्याख्याता, आर्थिक प्रशासन वित्तीय विभाग,
एस.एस जैन सुबोध पी.जी. कॉलेज,
जयपुर (राजस्थान)

भारत की पड़ौसी विदेश नीति : आशाएँ और अपेक्षाएँ

– डॉ. मेहरा राम

उदारीकरण एवं विश्व व्यापार में तेजी से बदलते रूझानों ने भारत के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में वैश्विक परिवर्तन किया है। स्वयं पर बहुत अधिक केन्द्रित रहने वाली अर्थव्यवस्था से इसे वैश्विक रूप से एकीकृत अर्थव्यवस्था से बदलने के सफल प्रयासों ने अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारत की छवि पर सकारात्मक प्रभाव डाला है। पिछला वर्ष भारत द्वारा अपने पड़ोसी और उनके पड़ौसीयों को प्राथमिकता दिए जाने का साक्षी बना। हमने विश्व की सभी प्रमुख शक्तियों के साथ अपने रणनीतिक संबंध, सांस्कृतिक संबंध और राजनीतिक संबंध मजबूत किए है जो वैश्विक मंच पर भारत की महत्वपूर्ण स्थिति दर्शाता है।

2014 के संसदीय चुनावों के बाद नई दिल्ली में सशक्त और स्थिर सरकार के उदय ने पड़ोसी देशों सहित अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को यह संकेत दिया कि भारत को गंभीरता से लेने का वक्त अब आ चुका है। अंतर्राष्ट्रीय मामलों के प्रति अपनी व्यक्तिगत प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए प्रधानमंत्री ने पिछले दो साल में दिल्ली में कई महत्वपूर्ण नेताओं की मेजबानी करने के अलावा, करीब डेढ़ दर्जन देशों की यात्राएं भी कीं। इस प्रक्रिया में, उन्होंने द्विपक्षीय या क्षेत्रीय अथवा बहुपक्षीय प्रारूप में दुनिया भर के सभी महत्वपूर्ण नेताओं से मुलाकात की और उनके साथ विचार–विमर्श किया।

सरकार के राजनयिक प्रयासों से यह अब तक बिल्कुल स्पष्ट हो चुका है कि वर्तमान सरकार की विदेश नीति संबंधी प्राथमिकताओं में 'सबसे पहले पड़ोस' को बहुत ज्यादा अहमियत दी गई है। पड़ोसी देशों तक पहुंच बनाने की दिशा में पहला कदम तो प्रधानमंत्री के औपचारिक तौर पर पदासीन होने से पहले ही उठा लिया गया था। 26 मई 2014 को प्रधानमंत्री के शपथ ग्रहण समारोह में भाग लेने के लिए दक्षेस के सदस्य देशों के राष्ट्राध्यक्षों एवं शासनाध्यक्षों को आमंत्रित किया गया। इस निमंत्रण को उपयुक्त रूप से मास्टरस्ट्रोक और साहसी कदम करार दिया गया और इससे एक स्पष्ट संकेत गया कि भारत की नई सरकार दक्षिण एशिया में अपने पड़ोसियों के साथ संबंधों एवं क्षेत्र की अखंडता को बेहद महत्व देती है।[1] शपथ ग्रहण समारोह में क्षेत्र के सभी राष्ट्राध्यक्षों एवं शासनाध्यक्षों की उपस्थिति ने इस बात की पुष्टि की कि वे भी भारत की भावना का उसी के अंदाज में प्रत्युत्तर देने की मंशा रखते हैं। इस अवसर ने शुरूआती संपर्क स्थापित करने का बेहतरीन मौका दिया, इसके बाद यात्राओं के आदान प्रदान अथवा क्षेत्रीय एवं अंतराष्ट्रीय सम्मेलनों से इतर बैठकों का दौर प्रारंभ हो गया। कार्यकाल के प्रथम वर्ष के दौरान प्रधानमंत्री की विदेश यात्राओं में सात सदस्यीय दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (दक्षेस) के चार देशों (भूटान, नेपाल, श्रीलंका और बांग्लादेश) और चीन की यात्रा शामिल रही। राजनीतिक, सुरक्षा और सामरिक परिस्थितियों की वजह से दक्षेस के शेष तीन सदस्य देशों (अफगानिस्तान, पाकिस्तान और मालदीव) की यात्राओं का कार्यक्रम वर्ष 2016

में बना। अफगान राष्ट्रपति अप्रैल 2015 में भारत की यात्रा पर आए थे और भारतीय प्रधानमंत्री ने अपने शपथ ग्रहण समारोह के दौरान नई दिल्ली में पाकिस्तान और मालदीव के प्रधानमंत्रियों से मुलाकात की थी। संक्षेप में कहें, तो एक वर्ष के दौरान, प्रधानमंत्री ने पास–पड़ोस के समस्त नेताओं के साथ कम से कम एक बार मुलाकात की और कुछ के साथ तो एक से ज्यादा बार भी मुलाकात की। यही स्थिति वर्ष 2016 के शुरूआत में भी नजर आयी। अफगानिस्तान ने तो भारतीय प्रधानमंत्री को अपने सर्वाच्च नागरिक सम्मान से नवाजा।

दक्षिण एशिया क्षेत्र में भारत कि विशिष्ट भूमिका रही है। दक्षिण एशिया एक जटिल क्षेत्र है। इस क्षेत्र के देशों की साझा विरासत और ऐतिहासिक रिश्ते हैं। इसके साथ ही इन देशों के धार्मिक, जातीय, भाषायी एवं राजनीतिक ताने–बाने में विविधाएं भी परिलक्षित होती हैं। दक्षिण एशिया रक्तरंजित अंतर्राज्यीय युद्धों और गुह युद्धों का रणक्षेत्र रहा है, यह मुक्ति आंदोलनों, परमाणु प्रतिद्वंद्विता, सैन्य तानाशाहियों का साक्षी रहा है और मादक पदार्थो की तस्करी और मानव तस्करी से जुड़ी गंभीर समस्याओं के अलावा उग्रवाद, धार्मिक कट्टरपंथ एवं आतंकवाद से ग्रसित रहा है। दक्षिण एशिया को दुनिया का सबसे कम समानताओं वाला क्षेत्र माना जाता है। तीस वर्ष के अस्तित्व के बावजूद, दक्षेस ने बहुत ही धीमी और सुस्त प्रगति दर्ज की है। क्षेत्र में बहुत अर्से बाद सरकारों के लोकतांत्रिक स्वरूप ने कुछ जमीन हासिल करना शुरू किया है और कुछ देशों की आर्थिक वृद्धि दर में भविष्य के लिए कुछ सकारात्मक संकेत दिखाई दिए है।[2]

इस क्षेत्र में भारत की स्थिति क्या है? भारत आकार और आबादी में सबसे विशाले है, प्रभावशाली लोकतंत्र के रूप में इसका रिकॉर्ड स्वच्छ रहा है, इसकी अर्थव्यस्था अपेक्षाकष्त सुदष्ढ़ है, और इसकी अंतराष्ट्रीय छवि में व्यापक सुधार हुआ है और इसे एक ऐसे देश के रूप में देखा जाने लगा है, जिसका वैश्विक रंगमंच पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाना निश्चित है। परिणामस्वरूप, दक्षिण एशिया के सभी अन्य देश भारत के सामने बौना महसूस करने लगे हैं। दुर्भाग्यवश, भारत की इसी बढ़ते कद की बदौलत, ऐसे हालात भी उत्पन्न हुए हैं, जिनमें छोटे पड़ोसी देश उसे गलत नजरिए से "बड़े भाई" जैसा व्यवहार करने वाले देश के रूप में देखने लगे हैं।[3] कभी–कभी तो कुछ पड़ोसियों को लगने लगा है कि भारत से रियायतें प्राप्त करने के लिए तथाकथित "चीन कॉर्ड" खेलना मुनासिब होगा।

इस क्षेत्र के लिए भारत का विज़न काठमांडु में (26 नवंबर, 2014 को) दक्षेस शिखर सम्मेलन के दौरान प्रधानमंत्री द्वारा व्यक्त किया गया। उन्होंने कहा, "भारत के लिए, क्षेत्र के लिए हमारा विज़न पांच स्तंभोंः व्यापार, निवेश, सहायता, प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग, हमारी जनता के बीच सुव्यवस्थित संपर्क के माध्यम से मेल–जोल पर टिका है।" प्रगति की राह में रोड़ा अटकाने वालों का अप्रत्यक्ष रूप से हवाला देते हुए उन्होंने कहा, "नई चेतना" का प्रादुर्भाव हो चुका है और दक्षेस सदस्य देशों के बीच रिश्तों का परवान चढ़ना निश्चित है, उन्होंने आगे कहा, "यह दक्षेस के माध्यम से या उसके बाहर हो सकता है, दक्षेस के

सभी सदस्यों के बीच, या उनमें से कुछ के बीच हो सकता है। हम देखते हैं कि पड़ोस के कुछ प्रमुख देशों के साथ हमारे रिश्ते कैसा आकार ले रहे हैं।

भूटान

हिमालयी राज्य, भूटान के साथ हमारे रिश्ते सावधानीपूर्वक विकसित हुए है और उन्हें अनुकरणीय कहा जा सकता है। प्रधानमंत्री अपनी पहली विदेश यात्रा (15–16 जून 2014) के दौरान भूटान गए थे। इस यात्रा का उद्देश्य भारत द्वारा भूटान को भरोसेमंद और विश्वसनीय मित्र के रूप में प्रदत्त महत्व को दोहराना था। इस यात्रा के दौरान सहयोग और आर्थिक संबंधों के विकास को बल मिला। भूटान, भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यान्वयन के दौरान खुद को प्राप्त होने वाली सहायता की बेहद सराहना करता आया है, जिनका सिलसिला 1951में प्रथम पंचवर्षीय योजना से प्रारंभ हुआ था। पनबिजली क्षेत्र में भूटान को मिला भारत का सहयोग, दोनों देशों के लिए लाभकारी रहा है और यह अन्य देशों विशेषकर नेपाल के लिए तो अनुकरणीय मॉडल की तरह है।

बांग्लादेश

बांग्लादेश के 1971 के मुक्ति संग्राम के दौरान भारत द्वारा निभाई गई भूमिका की व्यापक स्वीकषति और सराहना के बावजूद बांग्लादेश के साथ संबंधों ने कई उतार–चढ़ावों के दौर देखे हैं। शेख हसीना की अगुवाई वाली आवामी लीग पार्टी को जहां भारत के प्रति नरम रवैया रखने वाली समझा जाता है, वहीं बेगम खालिदा जिया के नेतष्त्व वाली बांग्लादेश नेशनल पार्टी (बीएनपी) और बांग्लादेश जमात–ए–इस्लामी का प्रतिनिधित्व करने वाली राजनीतिक ताकतें भारत के प्रति कड़ा रूख अख्तियार करने वाली समझी जाती हैं। बांग्लादेश की धरती से भारत विरोधी गतिविधियां चलाने वाले भारतीय उग्रवादियों, बांग्लादेश से भारत में होने वाला अवैध प्रवसन, पुर्वोत्तर में सामाजिक तनाव, अनसुलझी सीमाओं के पार होने वाली तस्करी, साझा नदियों विशेषकर तीस्ता नदी के पानी के बंटवारे आदि की वजह से समय–समय पर, बांग्लादेश के साथ हमारे संबंधों में विघ्न उत्पन्न होते रहे है।

भारतीय प्रधानमंत्री की आधिकारिक यात्रा (6–7 जून 2015) के दौरान भूमि सीमा समझौता चर्चा का केंन्द्र बना रहा जिस पर हस्ताक्षर तो 1974 में हो गए थे, लेकिन भारत में बाद की सरकारें, राज्य सरकारों विशेषकर पश्चिम बंगाल और असम की आपत्तियों सहित विविध कारणों से संसद में इसका अनुमोदन नहीं करा सकीं थीं। प्रधानमंत्री ने जिस अंदाज से केंन्द्र और राज्यों के अभिमत को संघटित कर सर्वसम्मति से 100वां संविधान संशोधन पारित कराना सुगम बनाया और संसद के दोनों सदनों में 1974 के इस समझौते और इससे संबंधित 2011 के प्रोटोकॉल के अनुमोदन का मार्ग प्रशस्त किया, वह प्रशसंनीय है। भूमि सीमा समझौते से न सिर्फ दोनों देशों के बीच 4096 किलोमीटर सीमा का मामला हल हुआ और भारत और बांग्लादेश की बस्तियों में रहने वाले 50000 से अधिक लोगों को नई पहचान मिली, बल्कि इसके कई अन्य सकारात्मक परिणाम भी हुए, जिनमें उग्रवादियों की गतिविधियों, मानव तस्करी, अवैध प्रवसन और तस्करी आदि पर अंकुश लगाने के लिए प्रभावी सीमा प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण हैं।[4]

इस यात्रा से ढाका–शिलागं–गुवाहाटी तथा कोलकाता–ढाका–अगरतला बस सेवाएं क्षेत्र के भीतर भू–संपर्क के क्षेत्र में नए अध्याय की शुरूआत है। इसी तरह तटीय जहाजरानी (शिपिंग) समझौते से समस्त अपरिहार्य फायदों के साथ जहाज पर माल की ढलाई पर लगने वाले समय में महत्वपूर्ण कमी आएगी। बांग्लादेश के चटगांव और मोंगला बंदरगाहों के भारत द्वारा इस्तेमाल संबंधी समझौता ज्ञापन भी इतना ही महत्वपूर्ण है। भारत और बांग्लादेश के बीच संबंध अब तर्कसाध्य रूप से नए गुणात्मक दौर में प्रवेश कर चुके हैं। संबंधों में स्थायित्व पुख्ता हो चुका है। प्रधानमंत्री की यात्रा ने भी जल संसाधन के बंटवारे, बिजली क्षेत्र, (असैन्य परमाणु ऊर्जा सहित), अंतरिक्ष, द्विपक्षीय व्यापार की बांधाए समाप्त करने और बांग्लादेश में भारत के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्रों के संचालन सहित व्यापार एवं निवेश, उचित मल्टी–मॉडल संपर्क और प्रभावी सीमा प्रबंधन आदि सहित भविष्य के द्विपक्षीय और उप–क्षेत्रिय सहयोग के लिए व्यापक एजेंडा तय कर दिया है।

अफगानिस्तान

पिछले कई वर्षों से, अफगानिस्तान मुश्किल दौर से गुजर रहा हैं। अफगानिस्तान की वर्तमान स्थिति भारत के लिए गंभीर चिंता का विषय बनी हुई है, क्योंकि यह उसके सुरक्षा हितों से टकरा रही है। उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नेटो) सेनाएं वहां से हटना प्रारंभ कर चुकी हैं। अफगानिस्तान में हाल का राजनीतिक बदलाव भी ज्यादा सरल नहीं रहा है। भारत, तालिबान की वापसी जैसी स्थिति के लिए तैयार नहीं है। अफगानिस्तान में इस प्रकार के शासन का उदय भारत के हित में नहीं होगा, जो पाकिस्तान का प्रतिनिधि हो और जिसमें कट्टरपंथियों का वर्चस्व हो।[5]

अफगानिस्तान के नए राष्ट्रपति मोहम्मद अशरफ घानी ने ऐसी धारणा बनाने के पर्याप्त कारण दिए कि उनकी विदेश नीति की प्राथमिकताओं की सूची में भारत का स्थान काफी नीचे है। उन्होंने कार्यभार संभालने के कई महीने बाद (28–29 अप्रैल 2015) भारत की यात्रा की, इससे पहले उन्होंने ब्रिटेन और सऊदी अरब के अलावा क्षेत्र के दो देशों– चीन और पाकिस्तान का दौरा किया। इस कदम से भारत में चिंता हुई और ये सवाल पूछा गया कि क्या इस कदम से यह जाहिर होता है कि अफगानिस्तान की नीति में पाकिस्तान के पक्ष में बदलाव आया है, और वह भी भारत की कीमत पर।

द्विपक्षीय रूप से भारत, अफगानिस्तान के साथ सामरिक भागीदारी समझौता कर चुका है और अफगानिस्तान के स्थायित्व में योगदान के अंश के रूप में, उसके बुनियादी ढांचे के विकास, लोकतांत्रित संस्थाओं को मजबूत बनाने, अफगान सशस्त्र बलों के प्रशिक्षण सहित क्षमता निर्माण के लिए दो अरब डॉलर की सहायता देने की प्रतिबद्धता व्यक्त कर चुका है, क्योंकि अफगानिस्तान में स्थायित्व भारत की प्राथमिकताओं वाली सूची में प्रमुख स्थान रखता है। हाल ही में भारतीय प्रधानमंत्री की अफगानिस्तान यात्रा से भारत–अफगानिस्तान संबंधों में निवेश, व्यापार के अलावा सांस्कषतिक संबंधों का नया अध्याय शुरू हुआ है।

पाकिस्तान

भारत और पाकिस्तान के बीच रिश्ते 1947 में देश के विभाजन के बाद से ही सामान्य नहीं रहे हैं। भारत के ख़िलाफ आतंक का युद्ध सरहद पार से बदस्तूर जारी हैं। दोनों देशों के बीच संबंध सामान्य बनाने की छिटपुट कोशिशें होती रही हैं, लेकिन हर बार नतीजा ढाक के तीन पात वाला रहा है।

जिस समय नई सरकार ने कार्यभार संभाला तब पाकिस्तान के साथ संबंध बेहद नाजुक दौर में थे। पाकिस्तान सहित दक्षेस के सदस्य देशों के शासनाध्यक्षों या राष्ट्राध्यक्षों को मई 2015 में प्रधानमंत्री के शपथ ग्रहण समारोह में शामिल होने के निमंत्रण ने तनाव मिटाने का अवसर प्रदान किया, शुरूआती हिचकिचाहट के बाद, पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज़ शरीफ इस मौके पर आए और दोनों पक्षों ने विदेश सचिव स्तरीय वार्ता बहाल करने पर सहमति व्यक्त की।

सयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन में एक बार फिर से कश्मीर मामले का अंतर्राष्ट्रीयकरण करने का प्रयास किया, जिसने माहौल और ज्यादा बिगड़ गया। यहां इस बात उल्लेख करना उचित है कि 1972 के शिमला समझौते के अंतर्गत पाकिस्तान ने कश्मीर मामले को, द्विपक्षीय मामला समझने पर सहमति व्यक्त की थी।

भारत–पाकिस्तान के बीच में समग्र वार्ता को बढ़ावा देने के अलावा शांति स्थापना के कई सिद्धात विकसित हुए है, जैसे–पहला सिद्धांत यह है कि सभी मामले शांतिपूर्ण वार्ता के जरिए सुलझाए जाने चाहिए, दूसरा, वार्ता भारत और पाकिस्तान के बीच होनी चाहिए और किसी तीसरे देश को शामिल नहीं किया जाना चाहिए तथा आखिरी, चर्चा या संवाद शांतिपूर्ण माहौल में और शिमला समझौते तथा लाहौर घोषणा के अनुरूप होना चाहिए।[6]

पाकिस्तान के साथ समस्या की जड़ कश्मीर में नहीं, बल्कि पाकिस्तान के भीतर मौजूद विविध शक्ति केंद्रों में हैं: ताकतवर सेना, प्रभावशाली आईएसआई, कट्टरपंथी ताकतें, और गुट तथा पाकिस्तान में लोकतांत्रिक तरीके से निर्वाचित लेकिन कमजोर सरकार। जब तक इन शक्ति केंद्रों के बीच भारत से रिश्ते सुधारने पर सर्वसम्मति नहीं बनेगी, इस बारे में कोई भी ठोस प्रगति महज़ ख्याली पुलाव ही रहेगी। भारत द्वारा आंतकवादी शिविरों पर की गई सर्जिकल्स स्ट्राइक और इस्लामाबाद में होने वाले सार्क सम्मेलन के बहिष्कार से दोनों के बीच तनाव चरम पर है लेकिन परमाणु बम की भयावहता के कारण युद्ध की स्थिति नहीं है।

श्रीलंका

सन् 2009 में एलटीटीई के सफाए के बाद, भारत ने श्रीलंका के प्रति बहुआयामी नीति अपनाई। इस नीति के कई संघटक रहे हैं : 1) श्रीलंका सरकार को श्रीलंकाई तमिलों से किए वायदे विशेषकर शक्तियों के सार्थक हस्तांतरण और 13वें संशोधन के समयबद्व कार्यान्वयन का वायदा पूरा करने के लिए समझाना। 2) श्रीलंकाई तमिलों को समय–समय पर यह भरोसा दिलाना कि 13वें संशोधन को कमजोर बनाने के रोकने और भविष्य में समुदाय के लिए समानता, न्याय और आत्मसम्मान सुनिश्चित लिए वह हरसंभव कदम

उठाएगा। 3) लंबे अर्से तक चले गृह युद्ध से बुरी तरह प्रभावित उत्तरी श्रीलंका के पुनर्निर्माण के लिए निवेश करना, 4) जहां तक संभव हो भारत के तमिल नेताओं की मांगों को पूरा करना लेकिन अंत में, संकुचित क्षेत्रीय पार्टियों के दबाव में न आकर, व्यापक राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए विदेश नीति के निरूपण में केंद्र का विशेषाधिकार का उपयोग करना 5) श्रीलंका में चीन की बढ़ती उपस्थिति पर सावधानी से नजर रखना और श्रीलंका के चीन की ओर झूकाव पर नियंत्रण रखना। 6) मछुआरों का मसला हल करना।

दुर्भाग्यवश, श्रीलंका के पूर्व राष्ट्रपति महिंदा राजपक्षे, ने बार बार भरोसा दिलाने के बाद भी श्रीलंकाई तमिल अल्पसंख्यकों से किया शक्तियों के हस्तांतरण का वादा नहीं निभाया और साथ ही साथ चीन कॉर्ड भी खेला।[7] उनकी निश्चित चीन समर्थक नीति ने, चीन को श्रीलंका में महत्वपूर्ण सामरिक जगह पर नियंत्रण करने का अनुमति दे दी। एलटीटीई से युद्ध के दौरान, श्रीलंका सरकार द्वारा किए गए मानवाधिकार उल्लंघन से संबंधित संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद के प्रस्ताव पर सन् 2012 और 2013 में भारत द्वारा श्रीलंका के खिलाफ मत देना भी जाहिर तौर पर श्रीलंकाईयों का पसंद नहीं आया : वर्ष 2014 में मतदान में भाग न लेने के फैसले को महज सांत्वना के रूप में देखा गया।[8]

अब भारत और श्रीलंका दोनों जगह नई सरकार हैं। श्रीलंका में जनवरी 2015 में नेतष्त्व परिवर्तन की अल्पावधि के भीतर और बहुत कम अंतराल पर चार उच्च्व स्तरीय यात्राएं (श्रीलंका के विदेश मंत्री की भारत यात्रा, विदेश मंत्री की श्रीलंका यात्रा, श्रीलंका के राष्ट्रपति की भारत यात्रा और भारत के प्रधानमंत्री की श्रीलंका यात्रा) की गई हैं, इससे जाहिर होता है कि दोनों देशों के नेतष्त्व अपने संबंधों को दोबारा दुरूस्त करने की मंशा रखते हैं। श्रीलंकाई संविधान के 13वें संसोधन के पूर्ण कार्यान्वयन के जरिए श्रीलंकाई तमिलों को शक्तियों के हस्तांतरण के अलावा, श्रीलंका में सार्थक सामंजस्य, मछुआरों की रक्षा एवं सुरक्षा, भारत की सुरक्षा चिंताओं के प्रति संवेदनशीलता, व्यापार और वाणिज्य, समुद्रीय सुरक्षा और महासागरीय अर्थव्यवस्था आदि को बढ़ावा देने पर नए सिरे से बल दिया गया है।

नेपाल

नेपाल में राष्ट्रवादी तत्व 1950 की भारत–नेपाल शांति एवं मैत्री संधि के पुनरीक्षण की मांग कर रहे हैं, जो भारत और नेपाल के विशिष्ट रिश्तों का आधार रही है। इस संधि ने नेपाल को बंदरगाह विहीन देश होने के नुकसान से उबारा है। नेपाल में निहित स्वार्थों वाले लोग भारत–भूटान मॉडल की तर्ज पर भारत–नेपाल पनबिजली सहयोग को अवरूद्ध करने में सफल रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप नेपाल प्रचुर पन–बिजली संसाधनों से सम्पन्न होने के बावजूद बिजली का शुद्ध आयातक बना हुआ है और भारत के सीमावर्ती राज्य नेपाल में आने वाली बाढ़ की विभीषिका झेलते आ रहे हैं। साथ ही, नेपाल को शिकायत है कि भारत ने जिन परियोजनाओं को वायदा किया था, उनके कार्यान्वयन में अत्यंत देरी हो रही है। इतना ही नहीं, दशक भर तक, नेपाल राजनीतिक बदलाव के कठिन दौर से गुजरता रहा है, वह राजशाही के अंत, माओवादी आतंकवाद के उत्थान एवं

पतन, माओवादियों के मुख्य धारा में लौटने, लोकतंत्र के जन्म का गवाह बना और अब वह देश के लिए नया संविधान लिखने की प्रक्रिया से गुजर रहा है।[9] अगस्त 2015 में मोदी ने नेपाल की यात्रा की जो 17 वर्षों बाद किसी भारतीय प्रधानमंत्री की यात्रा थी। श्री नरेन्द्र मोदी अकेले ऐसे विदेशी हैं, जिन्हें नेपाल की संविधान सभा और संसद को संबोधित करने का सौभाग्य प्रदान किया गया। नेपाल में भरोसे की कमी को मिटाने के लिए प्रधानमंत्री ने नेपाल की जनता को भरोसा दिलाया कि भारत की, नेपाल के अंदरूनी मामलों में दखल देने की कोई मंशा नहीं है और वह द्विपक्षीय एवं उप–क्षेत्रीय प्रारूपों में नेपाल के साथ सहयोग करने का इच्छुक है। नेपाल के नए संविधान बनाने और उसकी प्रक्रिया में भारत का लगातार सहयोग रहा है।[10]

निष्कर्षतः, दक्षिण एशिया में पिछले दो वर्षों में व्यापक एवं ऊर्जा से भरपूर कूटनीति कई मायनों में फलदायी रही है। इसने विश्वास की कमी काफी हद तक दूर की है, वायदे पूरे करने की भारत की क्षमता के प्रति भरोसा बढ़ाया है, मौजूदा रिश्तों को और ज्यादा प्रगाढ़ बनाया है, कुछ मामलों में रिश्तों को नए सिरे से निर्धारित किया है, वर्तमान चुनौतियों को दूर किया है और दीर्घकालिक संबंध के लिए एजेंडा निर्धारित किया है, विकास एवं समृद्धि तथा जमीनी, सामुद्रिक एवं हवाई संपर्क के जरिए आर्थिक एकीकरण सहित, क्षेत्र के एकीकरण की पहली शर्त के रूप में शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व की जरूरत सशक्त ढंग से दोहराई है। इससे सब तरफ एक गूढ़ संदेश गया है कि जिन क्षेत्रों में सभी सदस्यों के मिलकर काम करने में कठिनाइयां हैं, वहां द्विपक्षीय अथवा उप–क्षेत्रीय प्रारूपों को अपनाया जाए, ताकि इच्छुक सदस्य साथ आ सकें और आगे बढ़ सकें।

संदर्भ

1. द हिन्दु, 24 दिसम्बर 2015.
2. फ्रंटलाइन, मार्च 2016.
3. एंड्रय् हेवुड, ग्लोबल पॉलिटिक्स, प्लेग्रेव पब्लिशर्स, लन्दन.
4. द हिन्दु, 28 नवम्बर 2015.
5. इंडियन एक्प्रेस, 14 जनवरी 2016.
6. बी.बी.सी. हिन्दी रेडियों, विशेष रिपोर्ट सितम्बर 2015.
7. मेसन फिलिप, रेनबो रिवोल्यूशन इन श्रीलंका. साउथ एशियन पब्लिशर्स, नई दिल्ली.
8. युएनएचआरसी रिपोर्ट, सितम्बर 2015, जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड)
9. प्रो० बी. एम. जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
10. वर्ल्ड फोकस पत्रिका, मई–जून 2016.

शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राज. विश्वविद्यालय, जयपुर

प्राचीन सभ्यताओं में पुरोहितवाद का उद्भव व विकास : एक तुलनात्मक अध्ययन

- संदीप कुमार

इस पृथ्वी नामक ग्रह के सबसे तर्कशील प्राणी अर्थात् मनुष्य का पहले–पहल सामना इहलौकिक या प्राकृतिक शक्तियों से ही हुआ। मानव सभ्यता के इतिहास को प्रकृति ने ही सबसे ज्यादा प्रभावित किया है। कालान्तर में उसने इन पर पारलौकिक शक्तियों को आरोपित कर दिया। उसे लगा कोई शक्ति है, जो वर्षा कराती है, आँधी–तूफान लाती है, कृषि उपज देती है, रात–दिन बनाती है, नदी–पहाड़ बनाती है, जन्म–मृत्यु आदि का नियमन या नियन्त्रण करती है। मनुष्य ने इन तत्वों का मानवीयकरण कर दिया।

असल में समाज का निर्माण सहकारिता की भावना से हुआ। खानाबदोश मानव ने जब कृषि कर्म अपनाया तो उसे स्थायीत्व की भावना या आवश्यकता का अनुभव हुआ तथा इसी कारण आवास निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। इन कार्यों में कई लोगों की एक साथ जरूरत होती थी। डोलमेन, पाषाण ताबूत, कृत्रिम व प्राकृतिक गुफायें सम्भवतः सम्पूर्ण कबीले की समाधियाँ होती थी।[1] कृषि उत्पादन में अधिशेष की स्थिति ने नागरिक जीवन को बढ़ावा दिया। अब वह वर्ग उत्पन्न हो गया, जो अधिशेष पर तो निर्भर था, किन्तु कृषि कर्म से सीधे तौर पर जुड़ा हुआ नहीं था। इस वर्ग में राजा, पुरोहित, प्रशासनिक अधिकारी, शिल्पकार मुख्य रूप से शामिल थे। आरम्भिक अन्न संग्राहक समाज बड़ी कठिनाईयों से घिरा हुआ था।[2] एक भाग उपज का उसे शासक वर्ग को देना पड़ता था। जब कि कई बार प्राकृतिक आपदाओं में उसकी फसल व पशु नष्ट हो जाते थे। इस भय ने उसे पारलौकिक शक्तियों की शरण में जाने को बाध्य कर दिया। वह सभी के समक्ष नतमस्तक हो गया। उसने सभी से प्रार्थना की दया–दान और प्रसाद वितरण की और सभी उसके देवता बन गये। मानवीकरण के सिद्धान्त ने देव कल्पना सुगम कर दी।[3]

भारतीय सन्दर्भ में हम धातुकाल में ही पुरोहित वर्ग के उपस्थित होने का कयास लगा सकते है। हड़प्पा सभ्यता में ऐसा कोई भवन नहीं मिला, जिसे असंदिग्ध रूप से मन्दिर कहा जा सके। जबकि समकालीन मेसोपोटामिया सभ्यता में मन्दिर व पुरोहित वर्ग के स्पष्ट प्रमाण मिले है।[4] मार्टिमर व्हीलर का मत है कि मोहनजोदड़ो के उत्खनित क्षेत्र से दो या तीन भवन ऐसे मिले हैं, जो मन्दिर हो सकते हैं। एच आर क्षेत्र में एक आयताकार घर, जो छोटा किन्तु सुदृढ़ तथा विशेष है, में प्रवेश के लिए द्वार व दो सीढ़ियाँ है। इस भवन में दो पत्थर की मूर्तियाँ मिली है। उन्होंने उसी क्षेत्र में स्थित एक भवन को पुरोहितों का 'कॉलेज' होने की सम्भावना व्यक्त की है।[5] सुमेर और अक्काद के पुरोहित राजा ;चतपमेज ापदहद्धके समान ही हड़प्पा के स्वामी अपने नगरों का शासन चलाते होंगे। यह देवता पुरोहित राजा कहलाता होगा। मोहनजोदड़ो से एक मूर्ति मिली है जो कमर से ऊपर

का भाग ही है। बाल पीछे मुड़े हुये हैं जो फीते से बन्धे हुये हैं। मूछें साफ व दाढ़ी कटी हुई है। बायां कन्धा चादर से ढ़का है तथा इस पर '' तिनपतियाँ'' फूल बना हुआ है।[6]

ऋग्वेद में पुरोहित, सेनानी तथा ग्रामणी तीनों अधिकारियों का उल्लेख मिलता है। युद्ध के समय पुरोहित राजा के साथ जाता था तथा देवताओं से जीत के लिये प्रार्थना करते थे। शिक्षक, पथ–प्रदर्शक तथा मित्र के रूप में पुरोहित राजा का मुख्य साथी होता था। ऋग्वेद में वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि पुरोहितों के नाम मिलते है। आरम्भ में सोलह प्रकार के पुरोहित होते थे, जिनमें ब्राह्मण भी एक पुरोहित था। कालान्तर में ब्राह्मण ने प्रमुखता प्राप्त कर ली तथा शासक को प्रभावित करने में विशेष भूमिका निभायी। ऋग्वेदिक देवता वृहस्पति को देवताओं का पुरोहित माना गया हे। प्रो. रामशरण शर्मा वेदकालीन भारत के अथर्वन पुरोहित तथा ईरानी अथर्वन में काफी समानता मानते हैं।[7] राजसूय, अवश्मेघ, वाजपेय, अग्निओष्टम आदि यज्ञ होते थे। जिनको पुरोहितों की देश रेख में पूरा किया जाता था। ऋग्वेद का होतृ, यजुर्वेद का अध्वर्यु तथा सामवेद का उद्‌गाता नामक पुरोहित होता था। आर.एस.शर्मा पुरोहितवाद संस्था को आर्यो से पूर्व की संस्था मानते हैं। उनका मानना है कि यद्यपि ब्राह्मणवाद भारोपीय संस्था थी, फिर भी आर्य विजेताओं के पुरोहित वर्ग में अधिकांश विजित जाति के ही लोग रहे होंगे। उनका अनुपात क्या रहा होगा यह बताने के लिये कोई सामग्री नहीं है। यह सोचना गलत होगा कि सभी काले लोगों को शूद्र बना लिया गया था, क्योंकि ऐसे प्रसंग आये हैं जिनमें काले ऋषियों की चर्चा है।[8] ऋग्वैदिक काल के अन्तिम चरण में नवगठित आर्य समुदाय में कुछ काले ऋषियों और दास पुरोहितों का प्रवेश हो रहा था। इस काल के बाद पुरोहित का पद ब्रह्मण वर्ग को मिलने लगा तबसे वह पुरोहित का पर्याय ही मान लिया गया। इसके बाद स्मृतियाँ व पौराणिक आख्यान लिखे गये, जिनमें अन्य वर्गो पर अपात्रतायें लाद दी गई तथा समाज संकीर्ण कक्षों में बंट गया। जिन्हें असुर कहा गया वह वर्ग जातिविहिन समाज था।[9] उनके अपने पुरोहित होते थे।

सुमेरियन सभ्यता में देवताओं के लिये पर्वताकार भवनों का निर्माण किया गया, जिन्हें 'जिगुरत' कहा गया है। यहाँ आमतौर पर 'लूगल' शब्द 'राजा' और 'पटेसी' शब्द देवता के प्रतिनिधि के रूप में प्रयुक्त किया जाता था।[10] बाद में पटेसी शब्द में पराधीनता का भाव आ गया। अब लूगल शब्द उन पटेसियों के लिये प्रयुक्त होनें लगा जो दो–चार नगरों को अपने अधीन करने में सफल हो जाते थे। अगर बाद में कोई अन्य पटेसी अधिक शक्तिशाली हो जाता था तो वह लूगल कहलाने लगता था और पहला लूगल पटेसी हो जाता था। उदाहरणार्थ लगश का शासक इयन्नातुम अपने को पहले पटेसी और लूगल दोनों कहता है परन्तु कुछ समय बाद केवल पटेसी।[11]

परन्तु पटेसी पद में पुजारीपन का भाव निहित होने के कारण लूगल बनने के बाद भी बहुत से शासक पटेसी पदवी धारण किये रहते थे। आरम्भ में लूगल पद अस्थायी होता

था। और संकट की परिस्थितियॉ गुजर जाने पर सत्ता पुनः जन सभा को मिल जाती थी। परन्तु कालान्तर में, नगरों की संख्या बढ़ने पर उनके आपसी झगड़े प्रायः बने रहे। इसलिए व्यवहार में कम से कम कुछ नगरों में लूगल पर स्थायी हो गया। शेष नगरों में वहाँ के मुख्य मन्दिरों के प्रधान पुजारी लूगलों के समान राजनीतिक नेता बन बैठे। परन्तु उन्होंने लूगल के स्थान पर 'एनसी' पद धारण किया जिसका अर्थ था– राजा का वायसराय। ये पद वंशानुगत नहीं थे। जबकि भारत में जाति का नेतृत्व ब्राह्मणों ने किया और पुरोहित की अनुमति के बिना जाति बदलना कठिन था।[12] बैबिलोनियन धर्म में पुजारियों पर नियन्त्रण स्थापित किया गया। बैबिलोनियन धर्म में भूत–प्रेतादि का अत्यधिक महत्व था अतः पुजारियों का अत्यधिक प्रतिष्ठित स्थान था। भूत–प्रेतादि से बचने के लिये जादू–टोने के अलावा कोई उपाय नहीं था और जादू–टोने की सहायता केवल पुजारियों की कृपा से प्राप्त हो सकती थी। अतः प्रत्येक बैबिलोनियन नागरिक पुजारियों की कृपा प्राप्त करने की चेष्टा करता था। सुमेरियन युग में पुजारी राजा बनते थे परन्तु इस युग में पुजारियों पर नियन्त्रण रखा गया। इस काल में समाज तीन वर्गों में विभक्त था– आमेलू (स्वतन्त्र व्यक्ति), मश्कीनू (मध्यम वर्ग) तथा दास। स्वतन्त्र व्यक्ति में सबसे प्रमुख पुरोहित थे।[13] पुरोहित तीन प्रकार के होते थे– (1) पहले तो वे जो जादू द्वारा दानवों को भगाकर देवताओं को प्रसन्न किया करते थे (2) भविष्यवाणी करने वाले (3) गायन–संगीत द्वारा मन्दिरों में देवताओं को प्रार्थनाएँ व मन्त्र अर्पित करने वाले। एक वर्ग का कार्य शकुनों का अध्ययन करके यह बताना था कि किसी कार्य का फल अच्छा होगा या नहीं। इसके लिए ये यकृत विधि (लिवर डिविनेशन) का प्रयोग करते थे, जो प्राचीन विश्व में बहुत प्रचलित थी।

हित्ती धर्म की पूजा–विधि और कर्मकाण्डीय अंग हिन्दू धर्म से मिलते–जुलते हैं। हित्ती धर्म में भी मन्दिर के देवता की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना पुजारियों का कर्त्तव्य माना जाता था। एक अभिलेख के अनुसार इन कर्त्तव्यों को पूरा करते समय पुजारियों को शारीरिक स्वच्छता और पवित्रता का ध्यान रखना पड़ता था। वे रात में मन्दिर के बाहर नहीं रह सकते थे। देवार्पित भोजन कोई अन्य मनुष्य न खा ले इसका ध्यान रखा जाता था। फसल तैयार हो जाने पर उसकी भेंट पहले मन्दिर में चढ़ाई जाती थी तथा सर्वोत्तम पशुओं, विशेषतः भेड़ें और बकरियों को बलि के लिये अर्पित करना पुण्यकर्म समझा जाता था। युद्ध में पकड़े गये दास मन्दिरों के खेतों में काम करते थे।[14]

मिस्र की प्राचीन सभ्यता में लोग बहुदेववादी थे तथा उनके अधिकांश देवता प्राकृतिक शक्तियों का दैवीकरण थे। नील नदी में बाढ़ आती थी, जो उर्वर मिट्टी जमा करती थी अतः इसे ओसिरिस देवी माना गया। भयंकर तुफानों को देवताओं का रूष्ट होना माना गया।[15] सूर्य देवता एमन–रे था। मिस्रियों के विश्वास के अनुसार सबसे पहले उसी ने फेराओं के रूप में शासन किया। मिस्रि अपने मन्दिरों को देवगृह मानते थे, इसलिए उनको उसी प्रकार बनाते थे जिस प्रकार अपने रहने के मकान। यह अक्सर पिरेमिड और

मस्तबे के सामने वाले स्थान पर बनाया जाता था। मिस्र में देवता का एकमात्र अधिकृत (ऑफीशियल) सेवक फेराओ था। सिद्धान्तः सब देवताओं की उपासना करने का सकमात्र अधिकार उसी का था। लेकिन वह सब मन्दिरों में एक साथ उपस्थित नहीं हो सकता था, अतः व्यवहार में उसे यह कर्त्तव्य अपने सहायक पुजारियों को सौंपना होता था। यहाँ प्रत्येक मन्दिर में एक से अधिक पुजारी रहते थे। उनका प्रधान न केवल विधिवत पूजा कराने के लिये उत्तरदायी था वरन् मन्दिर की सम्पत्ति की देखभाल और युद्ध के समय सेना का संचालन भी करता था। बहुत–से मन्दिरों में देवदासियाँ भी रहती थी। उनका कार्य देवता के सम्मुख गायन, वादन व नृत्य था। मन्दिरों में एकत्र अतुल सम्पत्ति, स्वतन्त्र सैनिक–शक्ति एवं अपने विशेषाधिकारों के कारण उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई थी। मेम्फिस और हेलियोपोलिस के पुजारी विशेष रूप से शक्तिशाली थे।

प्राचीन चीन का धर्म सर्वचेतनवादी और बहुदेववादी था। वे यह मानते थे कि समस्त विश्व छोटी–छोटी दैवी शक्तियों द्वारा परिपूर्ण है। इनके धर्म में न केवल टीलों, पर्वतों,नदियों वृक्षों और नक्षत्रों के देवताओं की उपासना होती थी वरन् चूल्हे भट्टी आदि वस्तुओं के देवताओं को भी मान्यता प्राप्त थी। अपने देवताओं को सन्तुष्ट करने और उनकी कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिये चीनी उन्हें अन्न, माँस व अन्य प्रदार्थ भेंट चढ़ाते थे। इस कार्य को पुरोहित के माध्यम से सम्पन्न किया जाता था। प्राचीनतर युग में वहाँ नरबलि देने का भी प्रावधान था, किन्तु कालान्तर में सदाचार का धर्म से धनिष्ठ सम्बन्ध माना जाने लगा। बौद्ध धर्म के पहुँचने पर मठ व विहार बने। जैसे भारतवर्ष में निहंगम साधुओं के मठ की जागीरे थी और वे कृषिकर्म करते हैं उसी प्रकार चीन देश में भी विहारों व संधारामों की जागीरें लगी हुई थी तथा वे खेती करते थे।[16] वैसे चीन में पुजारियों का अलग वर्ग नहीं था, परन्तु कर्मचारियों की सहायता करने वाले अनुष्ठान–विशेषज्ञ, ज्योतिषी ओर दैवज्ञ आदि अस्तित्व में आ चुके थे। अनुष्ठान खुद सामन्तों की देखरेख में और सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुष्ठान ''वांग'' की देख रेख में सम्पन्न होते थे।

<u>सन्दर्भ</u>

1. से. तोकारेव, ए हिस्ट्री ऑफ रिलिजन (1986), प्रगति प्रकाशन (मास्को), पृ. 17
2. कोसंबी दामोदर धर्मानन्द, प्राचीन भारत की संस्कृति व सभ्यता (1964) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 46
3. पाण्डेय विमल चन्द्रः– प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास भाग–I (1995), सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, पृ. 129
4. थपल्याल डॉ. किरण कुमार, सिन्धु सभ्यता (1976), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 173
5. व्हीलर मार्टिमरः, आर्कियोलॉजी टु द अर्थ, हि. मा. का. नि., दिल्ली, पृ. 67
6. दुबे डॉ. सत्यनारायण, भारतीय कला (2007), शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ. 3

7. शर्मा प्रो.रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहार (1992), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 24
8. शर्मा प्रो. रामशरण, वही, पृ. 25
9. आनन्द नीलकंठन, असुर पराजितों की गाथा, मन्जुल पब्लिसिंग हाऊस, भोपाल, 2012, पृ. 27
10. गोयल श्रीराम, विश्व की प्राचीन सभ्यताएॅं, द्वितीय संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2014, पृ. 47
11. गोयल श्रीराम, वही, पृ. 47,48
12. दिनकर रामधारीसिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1956, पृ. 60
13. पंत डॉ. रजनीकान्त, प्राचीन सभ्यताओं में विज्ञान एवं तकनीक तृतीय संस्करण–2015, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 90
14. पंत डॉ. रजनीकान्त, वही, पृ. 91
15. सांकृत्यायन राहुल, विस्मृति के गर्भ में (उपन्यास के रूप में 1956 में लिखी गई कृति) ,किताब महल, इलाहाबाद, पृ. 135
16. फाहियान का यात्रा विवरण, अनुवाद–जगमोहन वर्मा, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 2001, पृ. 2

✦✦✦✦

सीनियर रिसर्च फैलो,
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

आदिवासी मानवाधिकार संरक्षण में सरकार का योगदान

- मुकेश कुमार

वर्तमान समय में प्राकृतिक संसाधनों की भरपुर आवश्यकता ने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को प्रेरित किया है और वैश्वीकरण जैसी प्रक्रिया ने इसे ओर अधिक किया है। जहां जक आदिवासियों के मानवाधिकारों की बात आती है तो सबसे पहले आदिवासी मानव है और मानव होने के नाते उन्हें मूलभूत मानवीय गरिमा स्थापित करने हेतु उन्हें मानवाधिकार प्राप्त होने चाहिए। जिससे वे अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकें।

एमनेस्टी इंटरनेशनल की रिपोर्ट में कहा गया है कि केन्द्र सरकार की कोयला उत्पादन को 2020 में दोगुना करने की योजना है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक केन्द्र सरकार खनन करने वाली कम्पनियां और राज्य सरकारें

कमजोर आदिवासी समुदायों से न तो बातचीत करना चाहती है और न ही उनकी बात सुनने को तैयार है।[1] इस रिपोर्ट से स्पष्ट होता है कि आदिवासियों के मानवाधिकारों के उल्लंघन के साथ–साथ सवंधिान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का भी उल्लंघन हुआ है। जो वैश्विक स्तर पर भारत की छवि को धूमिल करता है। साथी ही, मानवीय मूल्यों को क्षति पहुंचाता है। मानवाधिकारों के विविध आयाम होते है और ये आयाम विभिन्न रूपों, मानवीय गरिमा एवं मानवाधिकारों के संरक्षण की नीति को प्रभावित करते है–

* आत्म सिद्वि का अधिकार
* सांस्कृतिक अधिकार
* स्थानीय अधिकार
* सामुदायिक अधिकार

उपरोक्त मानवाधिकार कार्यपालिका के कानून क्रियान्वयन एवं व्यवस्थापिका के कानून निर्माण से प्रभावित होते है क्योंकि जब आदिवासियों को उनके मूल स्थान से विस्थापित किया जाता है तो सबसे बड़ा खतरा उनकी संस्कृति एवं तृतीय पीढ़ी के मानवाधिकार आत्मसिद्वी को होता है। उपरोक्त समस्याओं से निपटने के प्रावधान भारतीय संविधान की पांचवी अनुसूची एवं छठी अनुसूची में जनजातिय प्रशासन के बारे में वर्णन मिलता है। भूमि सुधारों से सम्बंधित कानून शुरूआत में अनुसूची 9 में जोड़े गये लेकिन न्यायपालिका वामन राव वाद इस अनुसूची को न्यायिक पुनरावलोकन के दायरे में दिया जो कहीं न कहीं आदिवासियों के मानवाधिकारों के संरक्षण में सहायक सिद्व होगा।[2]

आदिवासियों के मानवाधिकारों के सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विभिन्न प्रसंविदाओं का निर्माण किया गया है जो राष्ट्र राज्य अपनी क्षमताओं के अनुसार ये प्रसंविदाएं अपनाते हैं–

* देशज व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा, 2007
* सिविल व राजनीतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966
* मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948

उपरोक्त अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाएं राष्ट्र राज्य सरकारों पर बाध्यकारी नहीं होती है क्योंकि विश्व में आर्थिक विकास की असमानता के कारण उन्हें ये प्रसंविदाएं लागू करने में आर्थिक एवं प्रशासनिक रूप में समस्याओं का सामना करना पड़ता है।[3]

भारतीय संविधान में भी आदिवासियों के मानवाधिकारों के संवर्द्धन हेतु प्रावधान किये गये है –

* भारतीय संविधान अनुच्छेद–46
* भारतीय संविधान अनुच्छेद–244

जनजातियों के अधिकारों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन संविधान के अनुच्छेद 338(1) के तहत किया गया है और कहा गया है कि अनुसूचित जातियों औ जनजातियों के लिए एक आयोग होगा जो अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के राष्ट्रीय आयोग के नाम से जाना जाएगा। आयोग का गठन निम्न प्रकार से होगा–

* राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा 5 सदस्य होते है।
* केन्द्र सरकार ने प्रशासकीय निर्णय के तहत गृह विभाग के 21 जुलाई 1978 के एक प्रस्ताव द्वारा बहुसदस्यीय राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग का अगस्त, 1978 में गठन किया गया।
* 89 वां संविधान संशोधन के द्वारा अनुसूचित जनजातियों के लिए अलग से एक स्वतंत्र राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन किया गया। इसका गठन अनुच्छेद 338 में 338(1) जोड़कर किया गया।

अनुसूचित जनजाति आयोग के प्रमुख कार्य –

* अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के संरक्षण के कार्यों पर प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को रिपोर्ट देना।
* संविधान के 5 वीं और 6 वीं अनुसूची के प्रावधानों के क्रियान्वयन की दिशा में कार्य करना।
* अनुसूचित जनजाति के शिकायतों की जांच करना तथा इस वर्ग के लिए जितने भी संवैधानिक प्रावधान है उनका परीक्षण करना।
* अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक और आर्थिक प्रगति का मुल्यांकन करना तथा इसके लिए जागरूक करना और विकास की प्रक्रिया में शामिल करना।

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 : इस अधिनियम के अधीन उन अपराधों का वर्णन किया गया है जो, एस.सी. तथा एस.टी. सदस्यों के विरूद्ध किए जाते है और जिन्हें अत्याचार का अपराध कहा जाता है। इस अधिनियम में अपराध के लिए निर्धारित दंड न्यूनतम 6 माह कारावास से मृत्यु दंड तक का है। इस अधिनियम के अधीन अपराध केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जो एस. सी. या एस.टी. समुदाय से नहीं है। अपराध के लिए विचारण विशेष न्यायालय द्वारा किया जाता है।

मानव अधिकारों का उल्लंघन आर्थिक और भावनात्मक समस्याएं खड़ी करता है। मानव अधिकारों का उल्लंघन मानव की प्रकृति एवं लोककल्याण को भी प्रभावित करता है। अगर जनजातियों के सन्दर्भ में मानवाधिकारों के उल्लंघन के तथ्यों को देखा जाए तो यह स्थिति और भी भयावह हो सकती है क्योंकि जनजातियां अन्य समाजों से अलग पहचान बनाकर रखती है लेकिन जब उन्हें विस्थापित किया जाता है तो सबसे पहले उनके अस्तित्व का संकट सामने आता है क्योंकि अन्य समाज के साथ उनका तालमेल हो पाना या ना हो पाना उनकी संस्कृति की उत्तरजीविता को प्रभावित करता है। अतः पूनर्वास सही ढंग से हो इसके लिए कार्यपालिका कानूनों का क्रियान्वयन सही ढंग से करे। लेकिन कई बार देखा गया है कि क्रियान्वयन हेतु न्यायपालिका ने हस्तक्षेप किया है।

भारत में 8.6 प्रतिशत जनसंख्या जनजातियों की है। सबसे पहले इन जनजातियों को इनकी संस्कृति, भाषा आदि प्रोत्साहन देने के लिए कुछ प्रावधान किये जाने चाहिए जिससे वे अपने हितों का संरक्षण कर सके।[4] नीजिकरण एवं उदारीकरण के बाद में जनजातियों के वन अधिकारों में कटौती से उनके वहां पर निवास करने के संकट खड़े हो गये। जनजातियों को अगर राष्ट्र राज्य विकास के लिए कहीं विस्थापित किया जाता है पूनर्वास के उचित कदम सरकार को पहले से उठाने चाहिए।[5] जैसा कि तेलंगाना में आदिवासियों के पुनर्वास हेतु उचित कदम नहीं उठाए गये जिसके कारण आदिवासियों ने हथियार उठा लिए। इस प्रकार विकास मानवाधिकारों के उल्लंघन का प्रयाय नहीं हो सकता है विकास के नाम पर मानवाधिकारों का उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

विश्व श्रम संगठन के द्वारा सम्मेलन संख्या एन 69 बुलाया गया जिसमें आदिवासियों के मानवाधिकारों के बारे में विस्तृत रूप में व्यवस्था की गई जो निम्न है –

* घर, सामाजिक सेवाएं, स्वास्थ्य एवं रोजगार प्राप्त करने की स्वतंत्रता
* विधि के समक्ष समानता, न्यायालय में विभेद का अभाव तथा विधि का समान संरक्षण
* अस्तित्व का मानवाधिकार
* आजीविका का मानवाधिकार जो आदिवासी चुनते है।
* आदिवासियों के आध्यात्मिक एवं पारिवारिक सांस्कृतिक, व्यक्तिगत एवं सामुहिक मानवाधिकार सुरक्षित किए जाये।
* संघ बनाने का अधिकार
* अपनी संस्कृति को जीने और विकसित करने का मानवाधिकार
* शैक्षणिक संस्थाएं एवं सांस्कृतिक एवं भाषा सम्बंधी संस्थाएं स्थापित करने का मानवाधिकार
* स्थानीय स्वशासन स्थापित करने का मानवाधिकार

उपरोक्त आदिवासियों के मानवाधिकारों का विवेचन विश्व श्रम संगठन ने किया है जिसके कुछ बिन्दु भारतीय संविधान के भाग–3 मूल अधिकारों के रूप में, तो कुछ भाग–4 राज्य नीति के निदेशक तत्वों के रूप में उल्लेखित है। इन मानव अधिकारों के संरक्षण

हेतु भारत में संविधान सर्वोच्च है, जिसका मार्गदर्शन न्यायापालिका, व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका प्राप्त करती है। राज्य नीति के निदेशक में निर्देश दिया गया है कि वे देश के पर्यावरण को बचाएगी तथा उसमें विकास करेगी तथा जंगल एवं वन्य जीवन की रक्षा करेगी।[6]

भारत में जनजातियों के विकास हेतु निम्न कार्यक्रम चलाये जा रहे है–

* आदिवासी लड़के–लड़कियों के लिए छात्रावासों का निर्माण
* आश्रम विद्यालयों की स्थापना (आदिवासी क्षेत्रों में)
* उत्तर मैट्रिक छात्रवृति
* पूर्व मैट्रिक छात्रवृति
* शब्दावली प्रशिक्षण कार्यक्रम
* आदिवासियों के लिए कोचिंग की व्यवस्था
* अनुच्छेद 275 (2) के तहत अनुदान
* विशिष्ट सहायता केन्द्रीय कार्यक्रम
* वन बंधु कल्याण योजना

उपरोक्त योजनाएं भारत सरकार द्वारा आदिवासियों के विकास हेतु चलाई जा रही है जिससे आदिवासियों के मानवाधिकारों का संरक्षण हो सके और मानवीय मूल्यों की गरिमा स्थापित हो सके।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में राष्ट्र राज्य निर्माण की संस्थाएं मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु प्रयासरत है साथ ही, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा स्थापित मानक जो मानवाधिकारों के संरक्षण को प्रेरित करते है, को भी ध्यान रखते हुए भारतीय सरकार ने समय–समय पर उनका अनुसमर्थन कर आदिवासियों के मानवाधिकारों की गरिमा को बढाया है और भारत में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका ंके समन्वय ने आदिवासियों के मानवाधिकारों के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना जहां मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल देती है वहीं भारत एक विकासशील देश है जो आधारभूत ढांचे के साथ मानवाधिकारों के संरक्षण की दिशा में कार्य कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाएं एवं संगठन है जिनका अनुमोदनकर्ता एवं सदस्य है जैसे विश्व विरासत कन्वेंशन।

मानवाधिकारों की रिपोर्ट 2013 में यह बताया गया है कि भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए सराहनीय प्रयास किये गए है। इसमें मुख्य रूप से नक्सलवादी क्षेत्रों में पुनर्वास, आधारभूत सुविधाओं का विकास किया जा रहा है साथ ही, 2001 में सर्वोच्च न्यायालय के भोजन के अधिकार के निर्देश का क्रियान्वयन भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम था।[7] भारत जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों वाले देश में मानवाधिकारों के संरक्षण में सिविल समाज की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है। क्योंकि यही सिविल समाज आदिवासियों और सरकार के मध्य नैराश्य की स्थिति को कम कर सकता है। अतः किसी भी लोकतांत्रिक देश में देश आदिवासियों के संरक्षण हेतु सिविल समाज के व्यक्ति गैर सरकारी संगठन

चलाकर उनके मानवाधिकारों की सुरक्षा कर सकती है। साथ ही, सरकार के ध्येय को पूरा करने में अपना अहम योगदान दे सकती है। सबसे महत्वपूर्ण यह भी है कि आदिवासियों को शिक्षित किया जाये और उनके अधिकारों के बारे में उन्हें जागरूक किया जाये जिससे मानवीय गरिमा स्थापित हो सके।

अन्य स्वरूपों में अगर हम जनजातियों के मानवाधिकारों की बात करे तो प्राथमिक रूप में ये स्वास्थ्य से प्रारम्भ होते है इसमें सबसे महत्वपूर्ण यह है कि जनजातियों का प्राथमिक उपचार प्रारम्भिक चरण में किया जाए। भारत में अगर समाज और सरकार समावेशी विकास चाहती है तो जनजातियों के स्वास्थ्य एवं भोजन जैसी मूलभूत सुविधाओं का प्रबंध करना आवश्यक होगा। इसके लिए स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने 1981 में अलग से जनजाति विकास योजना सेल बनाया है। इसके अलावा राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 1983 के अन्तर्गत जनजातियों के लिए खासतौर पर नीतिगत घोषणाएं की गयी।8

इसके अलावा आदिवासियों को उनके मानवाधिकारों का ज्ञान ही उनके अपने मानवाधिकारों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन कर सकता है और यह ज्ञान उनकों सरकार द्वारा एवं सिविल समाज द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए जिससे कि वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहे। इससे महत्वपूर्ण लाभ यह होगा कि आदिवासियों के निम्न मानवाधिकार सुरक्षित हो सकेंगे–

* मानवीय गरिमा का अधिकार
* न्याय एंव क्षतिपूर्ति का अधिकार
* सुरक्षित एवं स्वस्थ वातावरण का अधिकार
* विकास परियोजनाओं से लाभान्वित होने का अधिकार
* परम्परागत रीति रिवाज व संस्कृति संरक्षण का अधिकार

उपरोक्त मानवाधिकारों का संरक्षण जागरूकता एवं शिक्षा के माध्यम से ही हो सकता है। 21 वीं सदी ज्ञान की सदी है। ज्ञान के बिना अंधेरा है। अतः मानव विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है।[9] जिसके लिए सरकार ने भी योजनाएं चलाई है।

Reference

1. rajasthanpatrika.com, July 14, 2016
2. Mins, n. (1993). Cultural Identity of Tribes in India.Social Action, Vol.43, Jan-March. pp32.
3. Revathi, E (2013, August). Adivasis and Telangana the Hans India.p4
4. www.iosrjournals.org
5. Rahi, Javes, The Gwar Tribe of Jammu and Kashmir, Gulsan Books, Shrinagar, 2011.
6. Indian Constitution, Nov. 1949.
7. http://en.m.wikipedia.org
8. http://forest.org/articles/reader.asp?linkid=41626
9. http://www.achrweb.org/DFRB/Forest bill.htm

जुनियर रिसर्च फैलो,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

मनरेगा परियोजनाओं का पर्यावरण पर प्रभाव

- सरोज चन्देल

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 अर्थात् नरेगा के क्रियान्वयन के लिए बनी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना नरेगा जिसे 2 अक्टूबर, 2009 से "महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना" नाम दिया गया है, एक ऐसा क्रांतिकारी एवं सामयिक सरकारी कार्यक्रम है जिसने न केवल ग्रामीण निर्धनों एवं मजदूरी पर अश्रित व्यक्तियों को सम्बल प्रदान किया है बल्कि वैश्विक मंदी के इस दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था को सहारा भी दिया है। ग्रामीण भारत के विकास के लिए सरकार द्वारा समय–समय पर कई विकास तथा रोजगारपरक योजनाएं चलाई गई। इन कार्यक्रमों का मूल उद्देश्य आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना था। नरेगा भी इसी क्रम में एक प्रयास है । अकुशल श्रमिकों के लिए रोजगार सुनिश्चित करने हेतु राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 (नरेगा) पारित किया गया। आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले से 2 फरवरी, 2006 को इस योजना की शुरूआत की गई। 2 अक्तूबर, 2009 को बापू की 140वीं जयंती पर प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने इसका नया नामकरण किया। अब नरेगा को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नाम पर महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम से पुकारा जाएगा।

नरेगा से जहां ग्रामीण बेरोजगारों को रोजगार मिला है वहीं पैसा हाथ में आने से गांवों के लोगों की क्रयशक्ति भी बढ़ी है जिससे ग्रामीण इलाकों में विभिन्न उत्पादों की खपत को बढ़ावा मिला है। यही नहीं नरेगा के तहत गांवों में ऐसी परियोजनाएं चलाई जा रही हैं जिससे ग्रामीणों को घर के पास ही रोजगार तो मिल ही रहा है, साथ ही गांवों का विकास भी हो रहा है। नरेगा के अंतर्गत भूमि सुधार पर जोर दिया गया है जिसके अंतर्गत भूमि की उर्वरता को बनाए रखते हुए कृषि कार्य करना है। सूखे से बचाव के लिए नरेगा के अंतर्गत वृक्षारोपण तथा वन संरक्षण परियोजनाओं को भी शामिल किया गया है जिससे पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में भी मदद मिलेगी।

मनरेगा के अंतर्गत पर्यावरण को बिना क्षति पहुंचाए तथा पर्यावरण संतुलन में सुधार लाते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों के सृजन पर बल दिया गया है। अतः नरेगा विकास नहीं अपितु स्थाई विकास की धारणा पर आधारित है। नरेगा का उद्देश्य पर्यावरण को बिना क्षति पहुंचाए ग्रामीण विकास करना है जिससे स्वच्छ तथा शुद्ध वातावरण प्राप्त किया जा सके तथा पर्यावरण असंतुलन के कारण उत्पन्न समस्याओं को दूर किया जा सके।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, अतः भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान है। देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा अभी भी गांवों में निवास

करता है जो मुख्यतः कृषि पर निर्भर है। कृषि के अलावा रोजगार के अन्य अवसर प्राप्त नहीं हो पाते हैं। अधिकांश श्रमिक शून्य सीमान्त उत्पादकता के साथ कृषि कार्यों में संलग्न हैं और प्रत्यक्ष रूप से बेरोजगार रहते हैं। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में मौसमी बेरोजगारी भी पायी जाती है। अतः ग्रामीण लोगों का सामाजिक–आर्थिक जीवन अभावग्रस्त रहता है। ग्रामीण भारत के उत्थान के लिए सरकार द्वारा समय–समय पर विभिन्न विकास तथा रोजगारपरक योजनाओं का शुभारंभ किया गया। इन कार्यक्रमों का मौलिक उद्देश्य आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना था। नरेगा इसी क्रम में एक प्रयास है। अकुशल श्रमिकों को रोजगार सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार ने वर्ष 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) लागू किया। यह अधिनियम प्रारंभिक चरण में देश के 200 जिलों में लागू किया गया, जिसमें उत्तर प्रदेश के 22 जिले शामिल किए गए। 5 वर्ष के अंदर इसे संपूर्ण देश में लागू करने की व्यवस्था की गई। इस अधिनियम के अनुसार यदि किसी ग्रामीण परिवार का कोई वयस्क अकुशल श्रम करने को तैयार हो तो एक वित्त वर्ष में उस परिवार को कम से कम 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जाए।

मनरेगा को जनता का कानून कहा जा सकता है, क्योंकि पहला, इस अधिनियम की रूपरेखा तैयार करते समय विभिन्न मुद्दों पर जन संगठनों के साथ परामर्श की लंबी प्रक्रिया चलाई गई। दूसरी बात, यह एक ऐसा कानून है जिसमें कामकाजी लोगों की जरूरतों को संबोधित करना और प्रतिष्ठापूर्ण जीवन को उनके मूलभूत अधिकार के साथ साकार करने की कोशिश की जा रही है। तीसरे, यह कानून ग्रामसभाओं, सामाजिक आडिट, सहभागी नियोजन और अन्य माध्यमों से आम लोगों को भी रोजगार गारंटी योजनाओं के क्रियान्वयन में सक्रिय भूमिका अदा करने का मौका देता है। बाकी अन्य कानूनों की तुलना में मनरेगा सचमुच ही जनता द्वारा, जनता के लिए और जनता का कानून है।

अधिनियम के उद्देश्य इस अधिनियम का मूल उद्देश्य ग्रामीण इलाकों के ऐसे प्रत्येक परिवार को एक वित्त वर्ष के दौरान कम से कम 100 दिन का गारंटीशुदा रोजगार उपलब्ध कराना है जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार हैं ताकि ग्रामीण भारत में रोजगार सुरक्षा की स्थिति को और बेहतर बनाया जा सके। रोजगार गारंटी से उत्पादक संपदाओं का निर्माण करने, पर्यावरण की रक्षा करने, ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण, ग्राम से शहरों की ओर होने वाले पलायन पर अंकुश लगने और सामाजिक समानता सुनिश्चित करने में सहायता मिलेगी।

नरेगा के अंतर्गत स्वीकार्य परियोजनाएं

नरेगा का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत रोजगार गारंटी सुनिश्चित करना है। इस

अधिनियम में इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आवश्यक परियोजनाएं चलाई गई हैं। ये परियोजनाएं ग्रामीण विकास, रोजगार सृजन के साथ–साथ पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगी। अधिनियम की अनुसूची के अनुसार नरेगा के अंतर्गत किए जाने वाले कार्य निम्न हैं–

- जल संरक्षण तथा जल संचय।
- सूखे से बचाव के लिए वृक्षारोपण और वन संरक्षण।
- सिंचाई के लिए सूक्ष्म एवं लघु परियोजनाओं सहित नहरों का निर्माण।
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति परिवारों या भूमि सुधारों के लाभान्वितों या इंदिरा आवास योजना के लाभान्वितों को जमीन तक सिंचाई की सुविधा पहुंचाना।
- परंपरागत जलस्रोतों के नवीकरण हेतु जलाश्यों से गाद की निकासी।
- भूमि विकास।
- बाढ़ नियंत्रण एवं सुरक्षा परियोजनाएं, जिनमें जलभराव से
- ग्रस्त इलाकों से जल की निकासी।
- सहज आवाजाही हेतु गांवों में सड़कों का व्यापक जाल बिछाना, सड़क निर्माण परियोजनाओं में आवश्यकतानुसार पुलिया का निर्माण कराना एवं गांवों के भीतर सड़कों के साथ–साथ नालियां भी बनवाना।
- राज्य सरकार के साथ परामर्श पर केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित कोई भी अन्य कार्य।

मनरेगा तथा पर्यावरण संतुलन

मनरेगा का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण इलाकों में रोजगार सुनिश्चित करना है परंतु इसके अंतर्गत स्वीकार्य परियोजनाओं के भलीभांति क्रियान्वयन से विकास तथा रोजगार के सृजन के साथ–साथ पर्यावरण की क्षति को भी रोका जा सकता है। बढ़ती हुई जनसंख्या की प्रमुख आवश्यकता खाद्यान्न के उत्पादन, औद्योगिक विकास तथा घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जल की मांग दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। जल की आपूर्ति के बिना उत्पादन कार्य असंभव है। परंतु विकास के साथ–साथ जल के अधिक मात्रा में प्रयोग से पेयजल की भीषण समस्या पैदा हो गई है। भूमिगत जल के लगातार विदोहन तथा वर्षा के जल के भूमि में पर्याप्त मात्रा में अवशोषित न होने के कारण भूमि में जलस्तर घटता जा रहा है जिससे जल संबंधी असंतुलन पैदा हो गया है। वर्षा के जल का लगभग 52 प्रतिशत समुद्र में जा व्यर्थ हो जाता है। जल संसाधन पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारक है।

जलवायु, मृदा, कृषि वनस्पति तथा जीव–जन्तु सभी इससे प्रभावित होते हैं। अतः

जल संसाधन का संरक्षण अपरिहार्य है। नरेगा के अंतर्गत जल संरक्षण परियोजना को शामिल किया गया है। इसके साथ वर्षाकाल में बिना प्रयोग व्यर्थ में बह जाने वाले आवश्यक जल के संचय पर भी जोर दिया गया है। इसके लिए बांधों, तालाबों, नहरों आदि का निर्माण कराया जा रहा है जिससे जल संचय होगा तथा जल की कमी द्वारा पर्यावरण को होने वाली क्षति को रोकने में भी मदद मिलेगी और पर्यावरण संतुलित रखा जा सकेगा।

मनरेगा के अंतर्गत जल संरक्षण के साथ–साथ परंपरागत जल स्रोतों के पुनर्नवीकरण हेतु जलाशयों से गाद की निकासी पर भी जोर दिया गया है। इस कार्य से न केवल ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को रोजगार मिल रहा है बल्कि जल संरक्षण के द्वारा ग्रामीण लोगों को साफ तथा स्वच्छ पेयजल भी उपलब्ध हो रहा है। अतः नरेगा के माध्यम से ग्रामीण जनों के स्वास्थ्य की दशा में भी सुधार आएगा; फलस्वरूप उनकी उत्पादकता में बढ़ोतरी होगी। नरेगा के अंतर्गत बाढ़ नियंत्रण तथा जलभराव से ग्रस्त इलाकों से पानी निकासी की व्यवस्था पर भी जोर दिया गया है। जलभराव के कारण भूमि में लवणों का सकेंद्रण बढ़ जाता है और भूमि क्षारीय हो जाती है और भूमि की उत्पादकता कम हो जाती है। जलभराव उत्पन्न होने का मुख्य कारण बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के कारण किसानों द्वारा अति सिंचाई करना है। इसके अतिरिक्त नालियों आदि का अभाव भी जलभराव की समस्या उत्पन्न करता है। नरेगा के अंतर्गत बड़ी सिंचाई परियोजनाओं पर जोर दिया गया है तथा गांवों में भी सड़कों के किनारे–किनारे नाली निर्माण का प्रावधान है। बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के विकास तथा संचालन के लिए वनों की कटाई की जाती है जिससे पर्यावरण असंतुलन पैदा हो जाता है। नरेगा में स्वीकार्य सूक्ष्म तथा लघु सिंचाई परियोजनाएं पर्यावरण को क्षति पहुंचाए बिना सिंचाई कार्य में सहयोग दे कृषि उत्पादन में वृद्धि संभव करेंगी।

मनरेगा के अंतर्गत भूमि विकास पर जोर दिया गया है। इसके अंतर्गत भूमि की उर्वरता को बनाए रखते हुए कृषि कार्य करना है। भूमि की उर्वरता इसमें उपस्थित पोषक तत्वों से होती है। इसकी मौलिक संरचना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। अनुपयुक्त कृषि पद्धति से खेती करने में भूमि की उर्वरता कम होने लगती है। दोषपूर्ण जल प्रबंधन के द्वारा जलभराव की समस्या बढ़ जाती है जिससे भूमि की उर्वराशक्ति प्रभावित होती है। इसका दुष्प्रभाव खेती के साथ–साथ अन्य वनस्पति पर भी पड़ता है एवं पर्यावरण असंतुलन पैदा होता है। कृषि कार्य में लगातार रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक आदि के प्रयोग से भी भूमि की उर्वरता प्रभावित होती है। अतः भूमि विकास के लिए नरेगा के अंतर्गत उपयुक्त कृषि प्रणाली पर जोर दिया जा रहा है। रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैव–उर्वरकों के प्रयोग पर जोर दिया जा रहा है जिससे भूमि की उर्वरता को अक्षत बनाए रखने के

साथ–साथ भूमि के भौतिक गुणों में भी सुधार किया जा सकेगा एवं पर्यावरण में आए असंतुलन तथा प्रदूषण को दूर कर स्वस्थ पर्यावरण प्राप्त किया जा सकेगा।

सूखे से बचाव के लिए नरेगा के अंतर्गत वृक्षारोपण तथा वन संरक्षण परियोजना को शामिल किया गया है। वृक्षों का वर्षा से सीधा संबंध है। अगर वृक्ष नहीं तो सूखा अवश्यंभावी है। लगातार सूखा मरू स्थलीकरण की पूर्व चेतावनी है। अतः वनों के संरक्षण द्वारा सूखा तथा बाढ़ की परेशानियों को कम किया जा सकता है। वन पर्यावरणीय पूर्ति हेतु तथा विकास के नाम पर लगातार वनों का कटाव जारी है। वनों के विनाश से परिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन पैदा हो जाता है। इसलिए वनों का ह्रास भयानक पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देता है।

वन वर्षा एवं भूमिगत जलस्तर के लिए उत्तरदायी होते हैं। वनों के कारण आद्रता रहती है, तापमान कम रहता है तथा बादलों का संघनन होकर बरसने में मदद करती है। वृक्षों की जड़ें भूमि की ऊपरी परत को पकड़े रहती हैं जो भूमि कटाव तथा भूक्षरण को रोकती हैं। वृक्ष के पत्ते सड़–गल कर मिट्टी में जीवांश तथा नमी प्रदान करते हैं जिससे भूमि की उर्वरता बढ़ती है। वन हवाओं की गति में अवरोधक होते हैं जिससे तेज हवाओं द्वारा उर्वर मिट्टी की क्षति नहीं हो पाती है। अति वर्षा का अतिरिक्त जल वन की वृक्ष भूमि में अवशोषित कर बाढ़ रोकने के साथ–साथ भूजल स्तर भी बढ़ाते हैं। इसके अलावा वृक्ष कार्बन–डाई–ऑक्साइड अवशोषित कर पर्यावरण शुद्ध करते हैं।

एक वृक्ष अपने संपूर्ण जीवनकाल में 12 टन कार्बन डाई–ऑक्साइड अवशोषित कर 0.04 टन ऑक्सीजन पर्यावरण को देता है। वनों के कटाव से पर्यावरण संबंधित अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। जैव विविधता को खतरा उत्पन्न हो गया है, कई प्रजातियां विलुप्त हो रही हैं तथा जलवायु परिवर्तन एक उल्लेखनीय समस्या के रूप में उभरा है। नरेगा के वृक्षारोपण तथा वनसंरक्षण से जुड़े होने के कारण पर्यावरण क्षय को कम करके पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में मदद मिलेगी।

निष्कर्ष

मनरेगा का मूल उद्देश्य गांवों में रोजगार की व्यवस्था करना है। लेकिन इसका प्रभाव केवल रोज़गार के अवसर सृजित करने तक सीमित नहीं है। यह कार्यक्रम असल में ग्रामीण जीवन में क्रांति का अग्रदूत सिद्ध हो रहा है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि नरेगा हरित क्रांति तथा बैंकों के राष्ट्रीयकरण जैसे उपायों के समान सामाजिक परिवर्तनकारी कार्यक्रम सिद्ध होने जा रहा है। बेरोज़गारी और गरीबी दूर करने के साथ–साथ यह गांवों में बुनियादी सोच में भी बदलाव ला रहा है। इससे ग्रामीणों में नए तरह का विश्वास व आत्मबल पैदा हो रहा है। यह बात इस तथ्य के रूप में प्रमुखता से उजागर हुई है कि जिन राज्यों में इसे कुशलता और ईमानदारी से लागू किया गया है, वहां गांवों से शहरों

को पलायन की प्रवृत्ति पर काफी हद तक रोक लग गई है और इससे समाज के गरीब और कमज़ोर वर्गों के लिए सामाजिक सुरक्षा का पुख्ता ढांचा विकसित हुआ है। साथ ही इसके अंतर्गत मुख्य रूप से सूखा, वनों के विनाश, भूमि कटाव जैसी उन समस्याओं को भी संबंधित किया गया है जिसके कारण बड़े पैमाने पर गरीबी फैल रही है। इस कानून के उचित क्रियान्वयन से रोजगार द्वारा गरीबी के भौगोलिक नक्शे को बदला जा सकता है।

संदर्भ

1. डॉ. नैन्सी परनामी, राजस्थान में मनरेगा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2013
2. अरोडा वेद प्रकाश 'पंचायती राज कार्यशाला – एक लेखा जोखा' कुरूक्षेत्र, दिल्ली, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, अगस्त 2006
3. मनरेगा दिशा निर्देश, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 2013
4. गुप्ता शिवभूषण 'ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी निवारण के कार्यक्रम' कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार, फरवरी 2001
5. जैन एल. सी., 'एम्पलाइमेंट क्राइंग फार पंचायती राज' जनरल ऑफ रूरल डवलपमेंट वाल्यूम 10 नं. हैदराबाद, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, सितम्बर, 1991
6. द रूरल लैंडलेस इम्प्लाईमेंट गारंटी प्रोग्राम, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, अगस्त 1983
7. बिश्नोई राधाकृष्ण 'स्वर्ण जयन्ती स्वरोजगार योजना आवश्यकता व प्रगति' कुरूक्षेत्र, दिल्ली, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, जनवरी, 2004
8. अग्रवाल उमेश चन्द्र 'ग्रामीण भारत में आधारभूत ढॅाचे के विकास हेतु संचालित प्रमुख नए विकास कार्यक्रम एंव योजनाएं' कुरूक्षेत्र, दिल्ली, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, अगस्त, 2006
9. कोठारी रजनी 'परस्पेक्टिव ऑन डिसेन्ट्रलाइजेशन' जर्नल ऑफ रूरल डवलपमेंट वोल्यूम 10 नं. 5 हैदराबाद राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, सितम्बर 1991
10. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, जनवरी 2005

शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

खादी वस्त्र नहीं विचार : गाँधी जी

- मोहिनी शर्मा

बापू ने चर्खा दिया, समझ–बूझकर कात,
चक्र सुदर्शन सा चले, आये नया प्रभात।।
तन ढ़कने को वस्त्र दे, चर्खा ऐसा यंत्र।
जो काते पहिनें सभी, यह गाँधी का मंत्र।।[1]

कातो, समझ–बूझकर कातों। जो काते, वे खद्दर पहनें और जो पहने, वे जरूर कातें,[2] बापू के इस छोटे–से मंत्र में खादी का समग्र जीवन–दर्शन समाया हुआ है। खादी के विकास में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है, किन्तु अभी तक हमने बापू के इस मंत्र को विधिवत् अपने जीवन में लागू नहीं किया है। खादी के कार्य की असली बुनियाद है, विचार–परिवर्तन। जब तक यह 'विचार क्रांति' हमारे जीवन में अपना प्रभावशाली स्थान नहीं बनाती, तब तक खादी के माध्यम से समाज और देश को वैचारिक क्रांति की, और सर्वोदय के महान लक्ष्य की पूर्ति की ओर ले जाना संभव नहीं है।

खादी का काम अहिंसात्मक सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए है। गरीबों को रोजी मिले, वस्त्र–स्वावलम्बन हो, खादी हमारी राष्ट्रीय वर्दी बने, ये सब बाते गौण है। असली लक्ष्य है, खादी के माध्यम से अहिंसक समाज की रचना और शासन–मुक्ति और शोषण–मुक्ति की दिशा में समाज को ले जाना।[3]

संघ अपने और अपने नियन्त्रण के केन्द्रों की संख्या बढ़ा कर खादी और संरजाम की उत्पत्ति और बिक्री का काम बढ़ावे, ऐसी एक विचारधारा पायी जाती है। इस तरीके से काम करने की जिनकी वृत्ति हो, उस पर विशेष जोर दें यह स्वाभाविक है। आज विशेष परिस्थिति और प्रतिष्ठा के कारण लोग ज्यादा पैसा देकर थोड़ी बहुत खादी खरीद लेते है। संभव है कि खादी भण्डारों की संख्या थोड़ी बढ़ायी जाय तो खादी थोड़ी ज्यादा बने और बिके; मगर खादी का असली हेतु अगर लोगों की समझ में न आया तो आखिर केवल गजों से खादी बढ़ नहीं सकती; क्योंकि खादी केवल कपड़ा नहीं। खादी एक खास विचार है। कई लोग ''खादी कपड़े'' को मानते है, ''खादी विचार'' को नहीं मानते। आज काँग्रेस भी खादी की इतनी ही व्याख्या से सन्तुष्ट है कि ''खादी याने हाथ से कते सूत का हाथ–बुना कपड़ा।''[4] जीवन वेतन, व्यक्तिगत स्वार्थ का नियंत्रण, स्वावलम्बन के जरिये शोषण–निवाण, श्रम–प्रतिष्ठा की जरूरत आदि विचार के बिना खादी आखिर कितनी बढ़ सकती है; और कितनी जी सकती है ? बिना विचार की खादी तो हमारे यहाँ थी ही। विचार का बल न होने से वह नहीं रह सकी। अब उसे जिलाना है तो विचार का पूरा बल हो, तभी वह जी सकती है। विचार तो उसी वक्त पनप सकते है जब उनके पीछे आचरण का बल हो। इस लिये अगर संघ को अपने केन्द्र बढाने है तो वह ऐसा चाहिए जिनमें खादी की नींव पक्की हो, जहाँ आचार और विचार का आधार हो यह कबूल करना

चाहिए कि आज के हमारे केन्द्र लोगों को खादी का कपड़ा देते है, लेकिन उसके साथ विचार नहीं दे पाते है। हमें यह सोचना चाहिए कि संख्या पैसे के और नियन्त्रण के बल बढ़ानी है या विचार के बल ? हम अपने खादी केन्द्रों का परीक्षण करें तो मालूम पड़ेगा कि वे हमारे तंत्र के अड्डे है, मगर मंत्र के अड्ढ़े नहीं और अगर विचार का बल बढ़ा तो यह जरूरी नहीं रहता कि अपने ही नियन्त्रण और अपने ही तन्त्र का संघ आग्रह रखे। लोग इस तरह की व्यवस्था जैसे खुद करते जायेंगे, वैसे–वैसे खादी–विचार की ताकत प्रगट होती जायेगी।[5]

इसी संदर्भ में यदि कतवारी के सम्बन्ध में विचार करें तो पायेंगे कि कतवारी व खादी संस्था परस्पर पूरक है। जहाँ खादी संस्था कतवारी को उदरपोषण का अवसर देती है, वही कतवारी संस्था को पनपने का अवसर देती है। बेवा, बूढ़ी, असहाय, गरीब, कतवारियों के लिए खादी एक वरदान है। आज भी उन गाँवों, जहाँ पहुँचने के लिए यातायात के साधन उपलब्ध नहीं है, जहाँ सभी के अभावों में गाँव जी रहा है, वहां गाँधी का चर्खा ही बहनों में आत्मविश्वास जगा रहा है, उन्हें आर्थिक स्वावलम्बन की ओर ले जा रहा है। कतवारियों का सूत खादी पहनने वालों के काम में ही आ रहा है। कतवारियों को खादी के तत्व के साथ न जोड़ने से उनमें इस विषय की चेतना नहीं जागृत हुई है। फलतः उनके तन पर खादी–वस्त्र नहीं आया है। 'जो काते सो पहने' यह विचार उनको कब जमेगा, प्रश्न चिन्ह है।

दूसरी बात, कतवारी तथा संस्था का आपसी सम्बन्ध परिवार का नहीं बन कर नौकर व मालिक का बना है। इसी कारण कतवारी संस्था के साथ एकरस नहीं हो पा रही है व संस्था भी उनके कल्याण का पूरा ध्यान नहीं रख पा रही है। यह जिम्मेदारी की भावना व आत्मीयता कैसे पनपे, दोनों के आपसी व्यवहार अधिक विश्वासपूर्ण व सौहार्दमय कैसे हों, यह भी सोचने की बात है। इतनी बड़ी महिला शक्ति गाँवों में है जिनसे हमारा कताई के माध्यम से सम्बन्ध है परन्तु उनमें चेतना जागृति का शंक फूंकने का काम अभी भी बाकी है। इस अलख को जगाना है इस चुनौती को पूरा करना है।[6]

इसी सम्बन्ध में गांधीजी ने कहा भी है कि :– ''खादी का एक युग समाप्त हुआ है। खादी ने शायद गरीबों का एक काम कर लिया है। अब तो गरीब स्वावलम्बी कैसे बनें, खादी कैसे अहिंसा की मूर्ति बन सकती है, यह बताना रहा है। वही सच्चा काम है। उसी में श्रद्धा बतानी है।''[7]

खादी वस्त्र नहीं विचार है यह नारा आज ''उपासना वस्त्र नहीं विचार है'' की ओर मोड़ना समय की आवश्यकता बन गया है। अन्यथा आज जो आन्दोलन चल रहे है वे ऐसे गायब हो जायेंगे जैसे ऐसे कोई आन्दोलन चले ही नहीं हों अथवा मृत–प्रायः हो जायेंगे कि हम लकीर पीटते रह जायेंगे। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि सरकार की गुलामी छोड़ दी जाये। जनता के सहयोग से स्वदेशी वस्त्र समता साड़ी, दया दुपट्टा,

करूणा कम्बल, धीरज धोती बनाने का कार्य प्रारम्भ करें तो एक नया आन्दोलन जन्म लेगा और आज देश की जो दुर्गति हो रही है, वह भी इससे रूक जायेगी। देश आगे बढ़ेगा, स्वावलम्बी बनेगा और दुनिया का सिरमौर होगा।[8]

खादी विचार के परिप्रेक्ष्य में ही गांधी जी ने खादी का मकसद यूँ बया किया कि : ''खादी का मतलब है, ऐसा रहन–सहन जिसकी नींव अहिंसा पर हो। यही मतलब खादी का आजादी से पहले था, यह आज भी है। मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि अगर हमें वह आजादी हासिल करनी है, जिसे हिन्दुस्तान के करोड़ों गाँव वाले अपने आप समझने और महसूस करने लगे, तो चरखा कातना और खादी पहनना आज पहले से भी ज्यादा जरूरी है।

खादी जरिये हम यह कोशिश कर रहे थे कि बिजली या भाप से चलाने वाली मशीन आदमी पर चढ़ बैठने की बजाय आदमी मशीन के ऊपर रहे। खादी के जरिये हम कोशिश कर रहे थे कि आज आदमी–आदमी के बीच जो गरीब, अमीर और छोटे–बड़े का जबदस्त फर्क दिखाई दे रहा है; उसकी जगह आदमी–आदमी में और सब मर्दों व औरतों में बराबरी कायम हो। हम यह कोशिश कर रहे थे कि सरमायादार मजदूरों पर हावी होकर न रहे और उन पर बेजा शाम न जमावें, हम चाहते है कि मजदूर सरमायादारों पर हावी बन कर रहें। इसलिए अगर पिछले तीस वर्षों में हमने हिन्दुस्तान में जो कुछ किया, वह उल्टी के साथ चरखे की कताई और उसके साथ के सब कामों को जारी रखना चाहिए।''[9]

स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में खादी गांधी जी ने नेतृत्व के विचार के रूप में बड़ी तीव्र गति से प्रगति कर रही थी। तब खादी मोटी थी, भोंड़ी थी, आरजू–मिन्नतों से बिकने वाली थी; भंडारों और भवनों में नहीं, कंधों पर उठाकर घर–घर ले जाकर बेची जाती थी। जो उस बोझ को लेकर चलते थे, उनमें कितनी स्फूर्ति, कितना तेज था ? खादी क्या बेचते थे एक दर्शन बेचते थे। एक जीवन प्रणाली को देशभर में प्रवेश कराना था, एक आदर्श को आलोकित करना था। दिन बदले कि झोंपड़ी से निकल कर खादी भवन में आ बैठी है। अब उसमें आकर्षण है, वह सहज बिक रही है। कोई ले न ले पर सरकार ले रही है। एक दिन वह अहिंसा मूलक विकेन्द्रीकृत अर्थ–व्यवस्था का प्रतीक थी; आज केन्द्रीकरण की और दौड़ती हुई, वैज्ञानिक विधि–विधानों से सुसज्जित, सैन्याधारित सरकार की ऊपर में मंत्री की और नीचे में चपरासियों की वर्दी है।

वर्तमान समय में खादी का विचार मरणासन्न स्थिति में है। अब सरकार के रूपयों की ओर दौड़ लग रही है। कंधों पर रखी खादी की फेरियाँ नहीं होती, करोड़ों की खादी बेचने की योजनाएँ लिए मोटरें दौड़ रही है। मिले चल रही है और वे अपनी कमाई में से खादी को पोषण दे रही है। विकेन्द्रीकरण के देवता को भोग चढ़ाकर केन्द्रीकरण के महन्त और यजमान मोटे हो रहे है। पूंजी के पथीकृतों के दान से समाजवाद के बाग सींचे जा रहे है।

खादी विचार थी, जीवन का समग्र दर्शन थी; नपुंसक समर्पण नहीं, प्रतिकार का अस्त्र थी, लाठियों–गोलियों को झेलने वाला फौलादी अहिंसा कवच थी। उसे छूने में

बिजली का सा संचार होता था। उस खादी को बेचना आसान नहीं था। सचमुच उसे बेचना एक बड़ी साधना थी। उसके ताने–बाने में समाज को नया दर्शन देने का दावा था। अब खादी बिक रही है, भवन जगमगा रहे है; उनके उद्‌घाटन के दीप जल रहे है। तन की खादी बोल रही है, मन की खादी शर्मा रही है। चपरासियों की खादी का मोटा सूत मंत्रीजी की ढ़ाकाई खादी से टकरा रहा है। अब खादी का मन्त्री यह है, खादी का चपरासी वह है। खादी पर मशीनें भी चल रही है, रंग बिरंगे छापे उतारने के लिए खादी में नये रंग आ गये है परन्तु उसका अपना रंग चला गया; जा रहा है। खादी की सलामी हो रही है, पर उसका सलाम निकल गया। झण्डा फहरा रहा है, पर उसकी निशानियाँ खो रही हैं। अब खादी बिक तो रही है परन्तु पुरानी खादी का विचार मर रहा है।[10]

एक सौ दस करोड़ की आबादी वाले देश में जहाँ तीस करोड़ गरीबी से नीचे है और पन्द्रह करोड़ दो जून की रोटी के लिए त्रस्त है, चर्खा वह यंत्र है, जो मन को अनर्गल वासनाओं से मुक्त रखने का न केवल मंत्र देता है, वरन् एक सशक्त अभ्यास क्रम भी है। बुद्ध, महावीर से लेकर ईसा, पैगम्बर साहब आदि सभी धर्मों के शीर्षस्थ महापुरूषों ने अपने–अपने तरीके से कामना, घृणा और अनाभिज्ञता इन तीन भावनाओं को व्यक्ति में सभी बुराईयों की जड़ बताया है।

चर्खा न केवल रूई से सूत बनाता है, वरन् साथ ही सदविचारों के सूत की भी कताई करता है। गांधीजी ने 'चर्खा संघ' की स्थापना की थी, अर्थात् कतिनों का संघ यह काम आज भी अधूरा है। आज जरूरत कतिनों को संगठित करने की है। जब व्यक्ति के अन्दर सद्‌विचार नहीं होते है, तो उसके भीतर कुविचार भर ही जाता है। सद्‌विचार अर्थात् सत्य, प्रेम, करूण, अहिंसा का अभ्यासक्रम है चर्खा। रचनात्मक दृष्टि और वृति का सृजन करता है चर्खा। अहंमय अस्मिता, विवाद, वैमनस्य आदि संघर्ष का कारण है। जहाँ अहं भाव है, वहाँ मिलन नहीं मात्र दुख है। चर्खा खादी व्यक्ति को अहंकार के भार से मुक्त करने का माध्यम है।

उत्साह से किए गए काम में बल और गति दोनों होते है। निरूत्साही मन से, मजबूरी में और रोते–रोते किए गए काम का फल कभी अच्छा नहीं होता। हताश न होकर उत्साह बनाए रखना ही मूल सम्पत्ति है। उत्साह ही परम सुख का हेतु है। चर्खा इसी का न केवल जीवन दर्शन है, वरन् अभ्यास का एक कार्यक्रम भी है। कपास से सूत कातना, पत्थर से भगवान की मूर्ति गढ़ने के समान है। कला की पूजा है। दरिद्र नारायण की सेवा का कार्य है। यह भी किसी मन्दिर निर्माण के कार्य से कम नहीं है। खादी क्षेत्र को निश्चित ही पूँजीपतियों के संरक्षक की भूमिका से न केवल बचना होगा, वरन् हटना भी होगा। अश्वघोष की सूक्ति है कि नियम में स्थिर रह कर मर जाना अच्छा है; न कि नियम से फिसल कर जीवन धारण करना। जीवन अन्नत है, और मनुष्य की सामर्थ्य भी अन्नत है। कभी न लौटने वाला समय जा रहा है, खादी जगत को यह ध्यान में रखना है। सबला से अबला की स्थिति में पहुंच चुकी खादी मसालेबाजी से अपनी साख नहीं बना सकती। उसके लिए जरूरी है ज्यादा बुनियादी एजेंडे की।[11]

गांधी जी ने चरखे को खादी को एक नई संवदेना खोलने का माध्यम बनाया। जिन्दगी की पर्तों को नई संवेदना के साथ खोलने की शक्ति की पहचान गांधी ने चर्खे और खादी में की। इसकी मास अपील को खंगाला, उसका समुद्र मंथन हिम्मते मर्दा–मददे खुदा की आभा थी, एक महान सन्देश था भाई–चारे की तरफ रचनात्मक कदम था, जातिवाद में बगावत थी, यहां तक कि साइंस तथा टेक्नोलॉजी भी थे। मानवीय मूल्यों के लिए छटपटाहट थी, साम्प्रदायिक सद्भाव था, संग्राम और संघर्ष होते हुए भी परम्परागत तरीकों से सीधे मुठभेड़ नहीं थी। चिन्ता की बात है कि आज गाँधी, गाँधीवाद, आजादी, देशभक्ति, बलिदान जैसे शब्द आज के खादी जगत के लिए अजनबी और हास्यास्पद होते जा रहे है। यही कारण है कि खादी ग्रामोद्योगों की अवधारणा का जन्म जिस बाजारवाद्, बड़े उद्योगों से मुकाबले के लिए हुआ, आज वह उसी के सामने नतमस्तक, हाथ पसारे संरक्षण की भिक्षावृति हेतु साष्टांग दण्डवत् करते नजर आ रही है। इतिहास को तो हम अपने में लौटाने की भरसक कोशिश कर ही सकते है।[12]

खादी विचार वह विचार है जो भूख से आजादी दिलाता है। यह समानता, सद्भावना, बन्धुता, स्वतन्त्रता व न्याय का विचार है। यह मन, वचन व कर्म से श्रम के प्रति समर्पित विचार है। यह विश्व–शान्ति का विचार है। गाँवों के विकास, महिलाओं के स्वाभाविक, भारतीय सभ्यता व संस्कृति को पुनर्जिवित रखने व रक्षा करने, तथा रोजगार उत्पादन करने का विचार है। यह एक ऐसा विचार है जो आधुनिक भारत की सम्पूर्ण समस्याओं से निजात दिलाता है।

खादी और चरखा दोनों गाँधीजी की एक विशिष्ट कल्पना है। खादी एक जीवन–विचार है। एक जीवन–पद्धति स्वरूप है। वह अहिंसा का मूर्तिमान स्वरूप है। गांधीजी ने अहिंसा का विचार हमारे सामने न रखा होता तो यह विचार दूसरे किसी व्यक्ति को भी सूझ सकता था। क्योंकि अहिंसा एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी किन्तु यदि गांधीजी ने खादी का विचार न रखा होता, तो हमें नहीं लगता कि हममें से किसी और के मन में इसकी कल्पना जागी होती। गांधीजी की प्रतिभा तथा उसकी पुरुषार्थ शक्ति ने अहिंसा के विचार को एक व्यावहारिक रूप दिया। खादी की कल्पना के द्वारा गांधीजी ने अहिंसक समाज–रचना की नींव दुनिया के सामने रखी। खादी के जरिए नए अहिंसक समाज को खड़ा करने की एक शक्ति का निर्माण होता है।

खादी की कल्पना विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था को और स्वदेशी धर्म को प्रस्थापित करने की कल्पना है, और वह अहिंसक समाज–रचना की बुनियाद है। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का मतलब यह नहीं है कि सब उद्योग विकेन्द्रित रीति से चलें। विकेन्द्रीकरण में विकेन्द्रित उद्योगों के साथ समग्र दृष्टिवाली एक व्यापक योजना का भी समावेश होता है। ऐसी केई योजना न हो तो विकेन्द्रित उद्योगों का अर्थ होगा, ''अलग–थलक और बिखर कर चलने वाले उद्योग।'' ऐसे उद्योग तो यंत्र युग के आने से पहले भी चल रहे थे। पर वे यंत्र युग के पहले ही प्रहार से स्वाभाविक रूप से टूट–फूट गये। इसके विपरीत विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था इस तरह स्वयं छिन्न–भिन्न होने के बदले यंत्र युग को ही छिन्न–भिन्न करने

वाली है। आज का तंत्र युग नाममात्र का यंत्र–युग है। असल में तो वह बहुत ही अयंत्रित है।

इसी का दूसरा पहलू है, स्वदेशी धर्म। खादी की कल्पना स्वदेशी धर्म के साथ भी जुड़ी हुई है। गांधीजी ने कहा था कि जिस तरह सत्य एक धर्म है, अहिंसा एक धर्म है, उसी तरह अपने पास–पड़ोस के लोगों द्वारा तैयार किये माल का उपयोग प्रेमपूर्वक करना भी हमारा धर्म है। क्योंकि जब हम पास की चोज को छोड़कर दूर की चीज लेते हैं, तो उसमें करूणा की दृष्टि नहीं रहती लाभ लूटने की दृष्टि रहती है। पास–पड़ौस के लोगों द्वारा बनाई गई चीजों का उपयोग करने में दूर के लोगों का द्वेष नहीं रहता। गांधीजी बराबर कहा करते थे कि स्वदेशी जीवन एक धर्म है।

बहुतेरे लोग इसका विरोध करते हैं। वे मानते हैं कि स्वदेशी का प्रचार एक बहुत संकुचित वस्तु है। चूंकि सारी दुनिया एक है, इसलिए कहीं भी चीज का प्रयोग किया जा सकता है। अगर कोई ऐसा मानते हैं, तो इसमें उनका कोई दोष नहीं है। जब तक विचार स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आता, तब तक ऐसी गलतफहमी और गुत्थी का बना रहना स्वाभाविक ही है। स्वदेशी के विचार को एक जीवन–विचार के रूप में समझने का काम अभी बाकी है। यदि हम अहिंसक समाज रचना खड़ी करना चाहते हैं, तो हमको कुछ मूलभूत बातें समझ लेनी होगी उनमें से एक बात यह है कि हर जगह के लोग अपना बोझ दूसरों पर न डालें। अपनाबोझ वे खुद ही उठा लिया करें। हम इसको स्वावलंबन का सिद्धान्त कहते हैं।

यद्यपि कई लोगों को इस स्वावलंबन शब्द से ही नफरतज है। और सच पूछा जाए, तो हम भी स्वावलम्बन नहीं, परस्परावलंबन ही चाहते हैं। किन्तु परस्परावलंबन समर्थ के बीच होना चाहिए। आप भी समर्थ हैं, हम भी समर्थ हैं, ऐसा मान यदि हम परस्पर सहयोगपूर्वक काम करते हैं, तो वह रागार्थों का परपरावलम्बन माना जायेगा।

स्वदेशी का यह मतलब नहीं है कि बाहरवालें लोगों के साथ कोई व्यापार–व्यवहार चलेगा ही नहीं। स्वदेशी में आपस का व्यवहार अच्छीतरह चल सकता है। जिस चीज को हम अच्छी तरह पैदा कर सकते हैं, उस चीज के लिएदूसरों पर निर्भर रहने का क्या अर्थ है ? कपड़े शहर की मिलों में तैयार हों, और कपास गांवों में पैदा हो। अगर कपास शहरों में पैदा हुई होती, तो गांवों में खादी पैदा करने का अग्रह न रखते । लेकिन ऐसी बात है नहीं। ऐसी हालत में गांव के कपास को शहर में भेजने और शहर का कपड़ा गांव में लाने में न्याय क्या है ?

आज हमने सारी दुनिया की रचना की ऐसे ढंग से की है कि यहां का माल वहां भेजना होता है, और वहां का माल वहां मंगवाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में कुछ कहा नहीं जा सकता कि दुनिया के सारे व्यवहारों का संतुलन कब गड़बड़ा जाएगा। इसलिए रोज–रोज के काम में आनेवाली चीजों का उत्पादन तो स्थानीय रूप से ही किया जाना चाहिए।

स्वदेशी में किसी प्रकार का कोई मानसिक संकोच नहीं होता। विचारों के क्षेत्र में हमको अत्यन्त व्यापक बनना चाहिए। दुनियां में जितने भी मनुष्य हैं, वे सब हमारे भाई हैं। लेकिन अपने भाई को भी हमें यह तो कहना ही चाहिए कि ''तुम पंगु नहीं हो। तुमको अपना काम खुद करना चाहिए। मैं भी पंगु नहीं हूं। इसलिए मुझको भी अपना काम खुद ही करना चाहिए फिर भले ही हम एक–दूसरे की थोड़ी बहुत मदद करते रहें।''

ऋग्वेद में अग्नि का वर्णन है : दूरे दृशं गृहपमिध्वर्युम्। अग्नि दूर से दिखाई पड़ती है और वह अपने घर का पालन करती है । अग्नि को जहां रखा होगा, तो वह दूर से दिखाई देगी, पर उसकी गरमी तो पास वाले को ही मिलेगी। इसी तरह हम हृदयपूर्वक सबसे प्रेम करें। लेकिन प्रत्यक्ष सेवा तो अपने पास पड़ोस के लोगों की ही करते रहें। हाथ से सेवा, दिल से प्रेम और दिमाग से विचार। प्रेम और विचार बहुत व्यापक हो सकते हैं, लेकिन हाथ तो पास वाले की ही सेवा कर सकता है।

स्वदेशी धर्म का अर्थ है, सेवा के लिए निकट का क्षेत्र और प्रेम चिन्तन के लिए सारे संसार पर दृष्टि। इसलिए स्वदेशी–धर्म में जाति–गांव, प्रांत, देश या धर्म के अभिमान आदि का समावेश नहीं होता । यह स्वदेशी धर्म हमको सिखाता है कि रोज–रोज के उपयोग की चीजें जैसे, भोजन और कपड़े वगैरह गांव में ही उत्पन्न हों, छोटे–छोटे उद्योगों की मदद से लोग स्वावलंबी बनें। घर में करने लायक काम जैसे–तेल पेरना, जूते बनाना आदि गांव में ही होते रहें।

खादी की कल्पना के मूल में इस प्रकार का एक जीवन–विचार है। ऐसी एक अनोखी जीवन–पद्धति है। यदि अंहिसा को प्रत्यक्ष में व्यवहार में उतारना है और अंहिसा के आधार पर नई समाज रचना खड़ी करनी हैं, तो खादी की इस जीवन–पद्धति को अपनाना ही होगा। अब तक की खादी में अहिंसा का बहुत कम अंग है। अब तक की खादी का स्वरूप अधिकतर दया धर्म का रहा है। जब तक मजदूरों को दूसरी मजदूरी नहीं मिलेगी तब तक वे चरखा चलायेंगे। लेकिन जैसे ही उनको मजदूरी मिल जाएगी, वैसे ही वे चरखे को छोड़ देंगे। जो लोग बेकारी दूर करने के उपाय के रूप में खादी को चलना चाहते है, उनको समझ लेना चाहिए कि इस रूप में तो अपने देश में ही नहीं, दूसरे किसी भी देश में खादी चल सकेगी, जब हम अपने जीवन के एक आधार के रूप में अहिंसा को अपनाएंगे, और अहिंसा की इस जीवन – पद्धति को भी स्वीकार करेंगे। अतएव यदि हम गांधीजी के काम को पूरी तरह सार्थक बनाना चाहते हैं, तो हमको इस बात के लिए प्रयत्न करना होगा कि समाज में अहिंसा की और खादी की जीवन–पद्धति किस प्रकार से प्रस्थापित की जा सकती है। खादी की योजना के मूल में एक ऋषि का यह दर्शन रहा है।[13]

चरखे व खादी के सम्बन्ध सबसे बड़ा लाभ यह है कि आज सभी वस्तुएँ पैसे से मिलती है और इसलिए समाज के निर्धन, वंचित तथा तेजी से बढ़ते हुए बेकार वर्ग को जो तकलीफ उठानी पड़ती है उससे उन्हें मुक्ति मिलती है। क्योंकि गांवों में पैसे के बदले कपड़े को विनिमय या आदान–प्रदान का माध्यम बनाकर चरखा इस विशाल वर्ग को पैसे के बन्धन से मुक्त कर सकता है। इस वर्ग के पास पैसा नहीं है और उसका समय बेकार

जाता रहता है। चरखा और उससे सम्बद्ध उद्योग इस प्रश्न को हल कर सकते है। चरखा पैसे की अधीनता हटाकर समय का सदुपयोग कर सकता है। फलतः गाँव के लोगों को रोटी प्राप्त करने के लिए अपना कच्चा माल दूसरी जगह ले लाकर बेचने की आवश्यकता नहीं होगी। ऐसा करने से पर्यावरण की भी रक्षा होगी।

अतः आज के वक्त इस ज्ञान को फिर से आत्मसात् करने की अवश्यकता है कि पैसा छोड़ दो, चरखा, करघा लाओं और खुशहाली तथा समृद्धि प्राप्त करों। गांवों में चरखें की आवश्कता केवल कपड़े के लिए ही नहीं है। बल्कि समकालीन समाज की पीडादायक समस्याओं का हल करने हेतु भी है। चरखा–शास्त्र उपयोगी है इतना कहना ही पर्याप्त नहीं है। यह स्वीकार करना भी आवश्यक है कि यह एक मात्र ऐसा उद्योग है जो हमारा सम्पूर्ण ध्यान आकर्षित कर लेता है। चरखे की वैचारिक शक्ति पर गांधीजी ने विभिन्न प्रकार से विचार रखें।

''राष्ट्र के सभी औद्योगिक विभाग चरखे को केन्द्र में रखकर उसके इर्द–गिर्द चलने चाहिए।''

''मेरा केवल एक ही संदेश है और वह खादी है। आप मेरे हाथ में खादी रखिये और मैं आपने हाथ में स्वराजय रख दूगाँ, खादी में ही अन्त्यजो का उद्वार भी समाविष्ट हो जाता हैं हिन्दु–मुसलमान की एकता भी खादी से ही टिकी रहेगी । खादी शान्ति का भी बड़ा हथियार है।''

फिर उन्होंने कहा – तलवार के बल पर शायद विजय मिल भी जाय किन्तु मुझे उस पर गर्व नहीं होगा। एक राष्ट्र के नाते हिन्दुस्तान चरखे के लिए ही जीवित रहा सकता है।[14]

अतः निष्कर्ष के रूप हम कह सकते है कि खादी एक धार्मिक विचार है। इसमें फिरकापरस्ती नहीं है। खादी धर्म सबके लिए है। खादी विचार मानवता का धर्म है। जीवन धर्म है। दीन–दुखियों को अपनाने का विचार है। खादी धर्म कहता है कि हम सबके हैं, सब हमारे है। सबको मिलाकर हम खायेंगे। सबके भले का ख्याल रखेंगे। सभी का जो भला, वही हमारा भला है, खादी का राज स्वराज होगा यानि सर्वराज्य होगा। ''साम्राज्य नहीं लेकिन सर्व राज्य''– यही खादी की कल्याणमयी घोषणा है। खादी एक जीवन दृष्टि है। यह अछूतों को अपनाने का विचार है। महिलाओं की इज्जत करने का, आदिवासियों को अपनाने का, चोरी न करने का, हरिजनों की सेवा करने का, गांवों की हाथ से बनी हुई वस्तुओं का अहमियत देने का, व गांवों को मजबूत बनाने का विचार है। खादी को हम केवल वस्त्र समझे यह हमारी भूल होगी। यह कपड़ा तो है ही साथ ही साथ यह सम्पूर्ण मानव समाज, सभ्यता, संस्कृति, राष्ट्र व विश्व को बुराईयों से मुक्त करने का विचार है। जिसे सभी मनुष्यों को अपनाना वर्तमान समय की महत्ती आवश्यकता है। अन्त में यह मानवीय सभ्यता के कल्याण का विचार है।

खादी–मंत्र – ''मैं आपको एक ताबीज दूंगा। जब कभी आपको संदेह होया जब आप बहुत स्वार्थी हो जाये तो ऐसा करें कि आप उस गरीबतम और निर्बलतम व्यक्ति के

चेहरने का स्मरण करें जिसे आपने देखा हो और अपने–आप से पूछें कि जो करने का विचार आप कर रहे हैं क्या वह उसके किसी काम आयेगा? क्या इससे कुछ लाभ मिलेगा? क्या यह उसे इस योग्य बनायेगा कि वह अपने जीवन और भाग्य पर नियंत्रण कर सके। अन्य शब्दों में, क्या वह भूखे और आध्यात्मिक रूप से लाखों भूखों को स्वराज का मार्ग दिखा सकेगा?''

संदर्भ

1. टोंक जिला खादी ग्रामोदय समिति, टोंक स्वर्ण जयन्ती स्मारिका, 2009, पृष्ठ–17
2. बापू की खादी–धीरेन्द्र भाई मजूमदार, 1950, चरखा संघ, सेवाग्राम पृष्ठ–21
3. आगे का कदम (खादी ग्रामोद्योग के नये मोड के सन्दर्भ में) अ.भा.सर्व–सेवा–संघ सन–1960, पृष्ठ– 1
4. खादीः एक ऐतिहासिक समग्र दृष्टि–प्रदीप दीक्षित, गांधी सेवा संघ– सेवाग्राम, 2010, पृष्ठ–22
5. चरखा आन्दोलन की दृष्टि और योजना– धीरेन्द्र मजूमदार .ष्णदास गांधी सन–1950, चरखा संघ सेवाग्राम, पृष्ठ–21
6. रजत जयन्ती स्मारिका वर्ष 1984, ग्रामोद्योग विकास मण्डल देवगढ़ पृष्ट–37
7. खादी मिशन की ओर –नरेन्द्र प्रकाश कौशिक, संयोजक, खादी मिशन–आश्रम पवनार, जनवरी 1983, पृष्ट–42
8. राजस्थान खादी ग्रामोद्योग संस्था संघ, स्वर्ण जयन्ती स्मारिका, सितम्बर– 1957–2007, पृष्ठ – 146
9. खादी मिशन की और– नरेन्द्र प्रकाश कौशिक, संयोजक, खादी मिशन आश्रम–पवनार, जनवरी 1983, पृष्ठ–81
10. राजस्थान खादी पत्रिका – जवाहिर लाल जैन, वर्ष–2, पौष माघ–1980 (शक) अंक–10–11, पृष्ठ–22
11. वहाँ मानव महात्मा गाँधी : एक विमर्श, ज्ञानेन्द्र रावत, श्री नटराज प्रकाशन, 2008, पृष्ठ– 203
12. व्यथा और विकल्प : नन्दिनी जोशी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट वर्ष – 1993, पृष्ठ–48
13. अखिल भारत चरखा संघ हीरक जयन्ती स्मारिका, 24 सितम्बर, 2001, रामदास शर्मा, खादी मिशन की ओर से, जय–जगत फाउन्डेशन, पृष्ठ–38–39
14. व्यथा और विकल्प : नन्दिनी जोशी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वर्ष–1993, पृष्ठ–82

शोधार्थी
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

जयपुर जिले में पर्यावरण अवनयन एवं सतत् विकास का मूल्यांकन

* डॉ. पूर्णिमा मिश्रा
** आदित्य कुमार

परिचय

जयपुर जिला अरावली पर्वतमाला की तलहटी में स्थित है, जिले का भौगोलिक क्षेत्रफल 11,151 कि.मी. है। यह जिला राजस्थान के पूर्वी भाग में $26^{0}23$, से $27^{0}51$ उत्तरी अक्षांश एवं $74^{0}55$ से 76055 पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है।

पर्यावरण की रचना भौतिक व जैविक घटकों के सम्मिलित रूप से हुई है। इन घटकों का पर्यावरण तंत्र में सदैव सन्तुलन बना रहता है यदि किसी तत्व का अनुपात अधिक मात्रा में परिवर्तित हो जाए तो सम्पूर्ण पर्यावरण की प्रकृति बदल जाती है। पर्यावरणीय तत्वों के अनुपात में इस परिवर्तन को पर्यावरणीय अवनयन कहते है।

आज संसाधनों के संचय की होड़ पूरी दुनिया में लगी हुई है। इसके लिए हम किसी भी चीज की बली चढ़ाने को आमादा है। चूंकि संसाधन हमें प्रकृति से मिलते है इसलिए बलि भी प्रकृति की चढ़ाई जा रही है। इसका परिणाम यह है कि समृद्धि तो बढ़ रही है परन्तु वास्तविक तौर पर हम गरीब हो रहे है। यह गरीबी पर्यावरण एवं परिस्थितिकी की है आज हमारी धरती एवं पर्यावरण खतरे में है हमारा पेयजल खतरे में है, हमारी शुद्ध हवा और उपजाऊ जमीन खतरे में है। यही कारण है कि आज हमारे सामने ऐसे सवाल खड़े हो गए है जिनके बारे में कल्पना तक भी नहीं की गयी थी।

"माटी कहे कुम्हार से तू क्यों रोंधे माये।
इक दिन ऐसा आएगा मैं रोंधूगी तोय।।"

मनुष्य आदिकाल से ही पर्यावरण का उपभोग कर, विकास करता आ रहा है। इस प्रकार पर्यावरण एवं विकास में एक घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य अपने प्राकृतिक पर्यावरण का उपभोग कर धीरे–धीरे पाषाण युग, कृषि युग से गुजरते हुए वर्तमान औद्योगिक युग में प्रवेश कर चुका है। औद्योगिकरण, नगरीकरण, बढ़ते मशीनों के प्रयोग तथा मानव की उपभोगवादी प्रवृत्ति ने प्राकृतिक पर्यावरण को और भी घातक एवं विनाशकारी रूप में पहुंचा दिया है। इस व्यवस्था में मानवीय तथा प्राकृतिक कारणों में व्यवधान के कारण ही अवनयन का प्रादुर्भाव हुआ है। मृदा अपरदन भू–स्खलन, ज्वालामुखी, भूकम्प, मरूस्थलीय, बाढ़, सूखा व अकाल आदि प्राकृतिक कारकों के फलस्वरूप अवनयन प्रारम्भ होता है।

सतत् विकास ऐसा विकास है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति क्षमता के साथ समझौता किये बिना पूरा करें। (UNCED) सतत् विकास की प्रक्रिया वर्तमान विकास की प्रक्रिया से पृथक है। सतत् विकास को निम्न उदाहरण से समझाया जा सकता है जैसे – फल विक्रेता, जो फलों के वृक्ष लगाता, उनका

संरक्षण एवं पोषण करता है और वृक्षों से प्राप्त फलों से अपनी आजीविका प्राप्त करता है वही विकास की तुलना उस बढ़ई से की जाती है जो अपनी आजीविका के लिए वृक्षों को काटता है तथा घरेलू सज्जो सामान बनाता है और आजीविका प्राप्त करता है अर्थात् पर्यावरण के अस्तित्व को क्षति पहुंचाकर विकास करते है जो सतत् विकास से भिन्न है। UNCED के प्रतिवेदन "Our Common Future" जिसे ब्रुटलैण्ड प्रतिवेदन के नाम से ही जानते है जिसमें धारणीय विकास की व्याख्या सभी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति और एक अच्छे जीवन की आकांक्षाओं की संतुष्टि के लिए सभी को अवसर प्रदान करने के रूप में की है। सतत् विकास के संदर्भ में वर्तमान पीढ़ी का दायित्व है कि कि ऐसे विकास संवर्द्धन कर प्राकृतिक एवं निर्मित पर्यावरण का सामंजस्य स्थापित करें जो :

(क) प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण

(ख) प्राकृतिक पारिस्थितिक व्यवस्था की पुनर्जनन क्षमता की सुरक्षा और

(ग) भविष्य की पीढ़ियों के ऊपर अतिरिक्त खर्चे या जोखिम के हटाने के अनुकूल हो।

शोध पद्धति

शोध क्षेत्र के लिए क्षेत्र की सूचनाएँ तहसील एवं ग्राम स्तर पर एकत्रित कर विश्लेषित की गई है। शोध–पत्र का निष्कर्ष आनुभाविक एवं सांख्यिकीय विधियाँ के प्रयोग तथा सूचनादाता तथा क्षेत्रों का चयन निर्देशन प्रणाली के तहत् किये गये निष्कर्षों पर आधारित है।

अध्ययन के उद्देश्य – प्रस्तुत शोध–पत्र के उद्देश्य निम्नलिखित है :

1. क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों के नियोजन विकास हेतु सुझाव देना ताकि क्षेत्र के विकास कोई नई दिशा प्रदान की जा सकें।
2. पर्यावरण अवनयन की समस्या के समाधान की जानकारी देना ताकि क्षेत्र का समग्र विकास किया जा सकें।
3. परिस्थितिकीय अवयन वाले क्षेत्रों की पहचान करना एवं उसे रोकने के लिए कार्य योजना तैयार करना।
4. अनियंत्रित पशुचारण, तीव्र गति से वनों का ह्रास होना, औद्योगिकरण, नगरीकरण एवं अविवेकपूर्ण तरीके को खान आदि क्षेत्र में पर्यावरण अवनयन के मुख्य कारण है, के बारे में स्थानीय लोगों को जागरूक करना।
5. क्षेत्र के विकास मार्ग की प्रमुख बाधाओं को उद्धृत करना ताकि उनका समाधान खोजा जा सकें।
6. क्षेत्र में पर्यावरण अवनयन के कारण फसलों के उत्पादन में आई अनिश्चितता का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ– प्रस्तुत शोध–पत्र की परिकल्पनाएँ निम्नांकित है।

1. घटते वनावरण के कारण प्रवाही जल में वृद्धि हो रही है।

2. घटते जल स्तर के कारण सिंचित क्षेत्र में कमी होती जा रही है।
3. जनसंख्या वृद्धि के कारण वन क्षेत्र, चारागाह क्षेत्र में कमी हो रही है।
4. अत्यधिक उर्वरकों के उपयोग के कारण मिट्‌टी की उत्पादन क्षमता में कमी हो रही है।
5. बढ़ते औद्योगिकरण तथा प्रदूषकों के कारण निरन्तर पर्यावरण अवनयन हो रहा है।

समस्याएँ

जयपुर जिलें में वर्तमान समय की प्रमुख समस्या पर्यावरण अवनयन एवं जनसंख्या की तीव्र वृद्धि की है। साथ ही कृषि के विस्तार के कारण पेड़ों की अंधाधुंध कटाई से वन क्षेत्र में कमी एवं औद्योगिक क्षेत्र के विकास के कारण पर्यावरण में भी अवांछित तत्वों का समावेश हो रहा है जिसके कारण मनुष्य एवं अन्य जैविक घटकों की जैविक क्रियाओं के संचालन में पर्यावरणीय अवनयन की समस्या वर्ष–प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। जयपुर जिले में भूमिगत जल का सिंचाई के रूप में अत्यधिक उपयोग करने से भू–गर्भिक जल स्तर तीव्र गति से घटता जा रहा है। वायु एवं जल द्वारा मृदा अपरदन निरन्तर बढ़ता जा रहा है तथा साथ ही मृदा की उत्पादकता में तेजी से ह्रास हो रहा है।

निष्कर्ष

सतत् विकास एक संयमित प्रक्रिया है। इसका भारतीय संस्कृति में स्वीकृत त्याग, संयम एवं अपरिग्रह से सामंजस्य है हमें प्रकृति के प्रति अनुग्रहशील होना चाहिए तथा प्रकृति से उतना ही ग्रहण करें जितनी आवश्यकता हो तथा जिसे हम पुनः वापस कर सके क्योंकि "प्रकृति आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है परन्तु किसी एक के लालच को नहीं।"

सतत् विकास की प्रक्रिया के लिए सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को एक इकाई के रूप में स्वीकृत करने की आवश्यकता है। क्योंकि वर्तमान में जलवायु परिवर्तन किसी एक देश की समस्या न होकर वैश्विक समस्या है अतः इसका समाधान भी वैश्विक हो सकता है।

वर्तमान में परिपेक्ष में विकास की प्रक्रिया में ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्थान है। परम्परागत ऊर्जा के स्रोत समिति है ऐसी स्थिति में नवीन वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोतों का पता लगाना तथा शोध एवं अनुसंधान पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि पर्यावरण को संरक्षित रखते हुए दूरगामी विकास की सोच को साकार किया जा सकें।

किसी भी परियोजना एवं औद्योगिक इकाई के क्रियान्वयन का निर्णय लेने से पूर्व उससे पर्यावरण व पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों का सैद्धान्तिक व व्यवहारिक आकंलन करना आवश्यक है।

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु इसके प्रति जन चेतना का निरन्तर प्रसार ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपाय है। लोगों में पर्यावरणीय चेतना जितनी अधि

ाक होगी विकास उतना ही स्थिर एवं सतत् होगा। यह चेतना प्रत्येक स्तर घर, विद्यालय, ग्राम पंचायत इत्यादि पर होनी चाहिए ताकि पर्यावरण के अवनयन को रोका जा सकें तथा सतत् विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकें।

संदर्भ

1. गुर्जर, आर.के. एण्ड जाट, वी.सी. – मानव एवं पर्यावरण – पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
2. योजना : पब्लिकेशन डिवीजन, नई दिल्ली।
3. ब्रेटलैण्ड, पर्यावरण एवं विकास के लिए विश्व आयोग रिपोर्ट ;व्नत ब्वउउवद थ्नजनतमद्ध, 1987
4. डॉ. हरिमोहन सक्सैना, पर्यावरण एवं प्रदूषण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

✦✦✦✦

* एसोसिएट प्रोफेसर,
भूगोल विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
** आदित्य कुमार
(शोधार्थी), भूगोल विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

शब्दशक्तिषु व्यञ्जना-विमर्शः

— अरुण शर्मा

सच्चिदानन्दस्वरूपिणः ब्रह्मणः मायाशक्तिरिव शब्दब्रह्मणः शक्तित्रयमङ्गीक्रियते। शक्तित्रयाणां नामानि अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जनाश्च। एते त्रयोऽपि व्यापरत्वेन अभिधीयते। आभिः शक्तिभिः यथाक्रमम् वाचक-वाच्यार्थः, लक्षक-लक्ष्यार्थः, व्यञ्जक-व्यङ्ग्यार्थश्च इत्येतेषां ज्ञानं भवति। प्रथमतः अभिधा विषये आलोचयामः।

शब्दः यदा साक्षात्सङ्केतितमर्थमभिधत्ते तदा तस्य साक्षात्सङ्केतितार्थस्य प्रतीतिः यथा शक्त्या भवति, सा शक्तिः अभिधा इत्युच्यते। यथोच्यते मम्मटेन-

''**स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यव्यापारोऽस्याभिधोच्यते।**''[1] इति अर्थात् वाचकशब्दस्यार्थः वाच्यार्थमुख्यः। उच्यते पुनः विश्वनाथेन- ''**तत्र सङ्केतितार्थस्य बोधनादग्रिमाऽभिधा।**''[2]

सङ्केतिताः भवन्ति जाति-द्रव्य-गुण-क्रियाः। तदेवोच्यते विश्वनाथेन- ''**सङ्केतो गृह्यते जातौ गुणद्रव्यक्रियासु च।**''[3]

वैयाकरणानां मतानुसारं जातिगुणक्रियायदृच्छादिषु व्यक्तेश्चतुर्षु उपाधिषु सङ्केतग्रहः गृह्यते। तद्धि- ''**चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः, जातिशब्दाः गुणशब्दाः क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दाश्चतुर्थाः**''[4]। मिमांसकाः केवलजातौ एव सङ्केतग्रहं गृह्यते मम्मटमतेन- ''**सङ्केतितश्चतुर्भेदो जात्यादिर्जातिरेव वा**''[5]। मम्मटः वैयाकरणमिमांसकानां मतानुकरणं करोतीति अवगम्यते। नैयायिकानुसारं '**क्रिया एवैका प्रवृत्तिः**' इति। मुकुलभट्टानुसारम्- ''**तत्र मुख्यश्चतुर्भेदः ज्ञेयो जात्यादिभेदतः।**''

अनेन मुख्यसङ्केतितवाच्यार्थस्य अवगमः यया शक्त्या भवति, सा शक्तिः अभिधा इत्युच्यते। अभिधा शक्त्या बोध्यः अर्थश्च अभिधेयार्थः भवति।

शब्दस्य शक्तिषु लक्षणायाः महदस्ति महत्वम्। यत्र शब्दस्य मुख्यार्थः साक्षात्सङ्केतितोऽर्थः वाध्यते सङ्गतिम् अन्वयं वा न लभते, तत्र तेन सम्बन्धितोऽपरोऽर्थः रूढ़िवशात् प्रयोजनवशाद् वा गृह्यते। एतादृशस्यार्थस्य बोधयित्री शक्तिः लक्षणोच्यते। यथोऽच्यते-

''**मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथ प्रयोजनात्।**

अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया।।''[6]

मुख्यार्थवाधः, रूढ़ि, प्रयोजनं वा लक्षणायां त्रिणि तत्वानि निरपवादमिष्यन्ते। लक्षार्थः शब्दस्य आरोपितार्थत्वेन ज्ञायते। '**कर्मणि कुशलः**' इत्यादौ कुशलशब्दस्य मुख्यार्थोऽस्ति '**कुशान् लाति**' इति। अत्र वाच्यार्थस्य प्रकरणे असङ्गतित्वात् मुख्यार्थवाधः भवति। अतः कुशलशब्दः रुढ्यर्थः 'दक्षः' इति लक्षणाशक्त्या ज्ञायते। एषा एव रूढ़िमूला लक्षणा। '**गङ्गायां घोषः**' इत्यत्र गङ्गा शब्दस्य मुख्यार्थोऽस्ति प्रवाहमानजलस्रोतविशेषः। जलप्रवाहे कदापि घोषः न सम्भवति। अतः मुख्यार्थबाधः सामीप्यसम्बन्धात् लक्षणाशक्त्या गङ्गातटे घोषः इति लक्ष्यार्थ

ज्ञायते। अत्र शीतत्वपावनत्वं प्रयोजनं भवति। तस्मात् एषा प्रयोजनामूला लक्षणा इत्युच्यते। मम्मटः उद्घोषयति यत्- **''लक्षणा तेन षड्विधा''**[7] इति।

प्रथमतः लक्षणायाः भेदद्वयं शुद्धागौणीभेदन। अत्र उपचाररहिता लक्षणा शुद्धा इत्युच्यते। उपचारसहिता लक्षणा गौणी इत्युच्यते। एतयोर्मध्ये शुद्धालक्षणा पुनः उपादानलक्षणा लक्षणलक्षणाभेदाभ्यां द्विधा इति। तदेव-

''स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थं स्वसमर्पणम्।

उपादानं लक्षणं चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा।।''[8]

पुनश्च

''सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषयीविषयस्तथा।

विषय्यन्तःकृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात् साध्यवसानिका।।''[9]

एवं प्रकारेण शुद्धागौणीभेदेन लक्षणायाः अशीतिभेदाः मम्मटेन प्रकाशिताः। अन्विताभिधानवादिनां मतं प्रकाश्य मम्मटेन कथयति- **''वाच्य एव वाक्यार्थ इति अन्विताभिधानवादिनः।''**[10] कुन्तकः अपि काव्यमार्गे शब्दार्थयोः अपूर्वता प्रतिपाद्य कथयति-

''शब्दो विवक्षितार्थैकवाचकोऽन्येषु सत्स्वपि।

अर्थः सहृदयाह्लादकारिस्वस्पन्दसुन्दरः।।''[11]

अभिधा-लक्षणा-तात्पर्याख्यभिस्तिसृभिः शक्तिभिः सङ्केतितारोपितान्वय-बोधमात्ररूपान् अर्थान् बोधयित्वा वाच्यलक्ष्यतात्पर्यार्थेषु विश्रान्तेषु तदपरार्थप्रत्यायनहेतुभूता शक्तिरेव व्यञ्जना।

'शब्दबुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभावः' इति न्यायादुपरतानां तासां पुनरुत्थानाभावात् वस्त्वलङ्कारसादिव्यङ्ग्यबोधने न तासाम् अभिधालक्षणातात्पर्यवृत्तिनां क्षमत्वमिति व्यञ्जनाशक्तेरङ्गीकारः। व्यञ्जनायाः लक्षणा सन्दर्भे प्रतिपादितं यत्-

''विरतास्वभिधाद्यासु ययाऽर्थो बोध्यतेऽपरः।

सा वृत्तिर्व्यञ्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।

अभिधालक्षणामूला शब्दस्य व्यञ्जना द्विधा।।''[12]

अभिधालक्षणाख्याः वृत्तयः यदा स्व स्वमर्थं बोधयित्वा उपक्षिणाः भवन्ति, तदा काऽपि अपरा शक्ति अन्यमर्थं बोधयति। सा शक्ति शब्दस्यार्थस्य प्रकृतिप्रत्ययादेश्च व्यञ्जन-ध्वनन-गमन-प्रत्यायनादि व्यपदेशविषयाः व्यञ्जना इत्युच्यते। व्यञ्जना शाब्दी-आर्थी भेदेन द्विविधा। शब्दात् यत्रार्थस्य प्रतीतिः भवति, सा शाब्दीव्यञ्जना। सा अपि द्विविधा अभिधामूला, लक्षणामूला च इति। अभिधामूला विषये मम्मटेन कथ्यते-

''अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।

संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद् व्यापृतिरञ्जनम्।।''[13]

अर्थात् यत्र अनेकार्थस्य शब्दस्य वाच्यार्थः असङ्गतिकारणेन नियन्त्रितः सन् भिन्नार्थस्य प्रतीति कारयति, तत्र अभिधामूला व्यञ्जनाव्यापारः इति स्वीक्रियते। अनेन व्यापारेण व्यङ्ग्यार्थस्य प्रतीतिरेव भवति। अत्र संयोगाद्यभिधानियामकतत्त्वानि सन्ति। तदुक्तञ्च–

''संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।

अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः।।

सामर्थ्यमौचितिः देशः कालो व्यक्तिःस्वरादयः।

शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः।।''[14]

पुनश्च लक्षणामूलाव्यञ्जनायाः लक्षणं परिप्रकाशयति यत्–

''लक्षणोपास्यते यस्य कृते तत्तु प्रयोजनम्।

यया प्रत्याय्यते सा स्याद्व्यञ्जना लक्षणाश्रया।।''[15]

अर्थात् यया शक्त्या प्रयोजनस्य प्रत्यायनं क्रियते, प्रयोजनप्रतिपादनार्थं च लक्षार्थस्य व्यवहारः यत्र क्रियते, तत्र सा शक्तिः लक्षणामूला व्यञ्जना इत्युच्यते। आर्थीव्यञ्जना अर्थसम्भवा भवति, यत्र अधोलिखितेषु एकं कारणं शब्दस्य वाच्यार्थभिन्नान्यस्यार्थस्य प्रतिपादनं करोति। कारणानि यथा–

''वक्तृबोद्धव्यकाकूनां वाक्यवाच्यान्यसन्निधेः।।

प्रस्तावदेशकालादेवैशिष्ट्यात्प्रतिभाजुषाम्।

योऽर्थस्यान्यार्थधीर्हेतुव्यापारो व्यक्तिरेव सा।।''[16]

पुनश्च आर्थीव्यञ्जनायाः प्रकारविषये कथितः–

''त्रैविध्यादियमर्थानां प्रत्येकं त्रिविधा मता।''[17]

अर्थात् वाच्यलक्ष्यव्यङ्ग्यत्वेन त्रिरुपतया सर्वा अप्यनन्तरोक्ता व्यञ्जना स्त्रिविधा। ताः वाच्यार्थस्य व्यञ्जना, लक्ष्यार्थस्य व्यञ्जना, व्यङ्ग्यार्थस्य व्यञ्जनाश्च।

ननु अभिधायां लक्षणायां च स्व स्वमर्थं बोधयित्वा विरतायां पदार्थानाम् अन्वयबोधिकावृत्तिः भाट्टमीमांसकाश्च, तेषामयमभिप्रायः लाघवात् पदानां पदार्थमात्रे शक्तिः नत्वन्वयांशेऽपि गौरवादन्यलभ्यत्वाञ्च। तदंशो हि तात्पर्यार्थो वाच्याद्यर्थविलक्षणशरीर आकाङ्क्षा योग्यता सन्निधिवशात् अपदार्थोऽपि प्रतीयते। न चापदार्थविषयस्यापि शब्दबोधविषयत्वे कथं चिदुपस्थितस्य गगनादेरपि तद्विषयत्वापत्तिरिति वाच्यम् अपदार्थविषयत्वस्य शाब्दबोधविषयतायां प्रयोजकत्वात्। एतदेव अभिहितान्वयवादीनः प्रतिपादयन्ति। अतएव साहित्यदर्पणे केवलं तात्पर्याख्यायाः वृत्तेः स्वरूपं प्रदर्श्य तत्र किमपि नोक्तं ग्रन्थकर्त्ता। विषयेऽस्मिन् विश्वनाथेनोक्तम्–

''तात्पर्यख्यां वृत्तिमाहुः पदार्थान्वयबोधने।

तात्पर्यार्थं तदर्थं च वाक्यं तद्बोधकं परे।।''[18]

संदर्भ

1. काव्यप्रकाशः, 2/8
2. साहित्यदर्पणम् 2/4
3. साहित्यदर्पणम् 2/4
4. महाभाष्य, आह्निक, 2
5. काव्यप्रकाशः 2/7
6. काव्यप्रकाशः 2/9
7. काव्यप्रकाशः 2/12
8. काव्यप्रकाशः 2/10
9. काव्यप्रकाशः 2/11
10. काव्यप्रकाशः, द्वितीय उल्लासः, ज्ञानमण्ड़ल लिमिटेड, वाराणसी, पृ. 37
11. वक्रोक्तिकाव्यजीवितम्, 1/9
12. साहित्यदर्पणम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2/12,13
13. काव्यप्रकाशः, 2/19
14. काव्यप्रकाशः द्वितीय उल्लासः, ज्ञानमण्ड़ल लिमिटेड, वाराणसी, पृ. 77 (मूल- भर्तृहरि प्रणीत वाक्यपदीयम्)
15. साहित्यदर्पणम् 2/15
16. काव्यप्रकाशः, ज्ञानमण्ड़ल लिमिटेड, वाराणसी, 3/21-22
17. साहित्यदर्पणम्, 2/17
18. साहित्यदर्पणम्, 2/20

शोधच्छात्रः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित विश्वविद्यालयः)

जयपुर परिसरः, जयपुरम्

भारत में महिला सशक्तीकरण की बदलती तस्वीर

– डॉ. रवि प्रकाश शर्मा

भारतीय संस्कृति एवं परंपरा में नारी **"नारायणी"** एवं **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"** कहकर नारी को विशेष सम्मान दिया गया है और उसके महत्व को रेखांकित किया गया है। महिलाओं को दिए जाने वाले सम्मान व स्त्रियों के प्रति हमारी संस्कृति की आस्था व समर्पण भाव से हम सभी अवगत है। लेकिन इन आदर्शात्मक बातों से दूर धरातल की सच्चाई कुछ और ही स्थिति को बयां करती है। जन्म लेने के पूर्व से लेकर जन्म लेने, किशोरावस्था, व प्रौढ़ावस्था तक हर कदम पर भिन्न प्रकार की चुनौतियों से दो–चार होती इस देश की महिला आबादी अपने सह–अस्तित्व को लेकर संघर्षरत है। अतः हमें भी चाहिए कि कर्णप्रिय आदर्शात्मक पंक्तियों की दुनिया से बाहर निकल वास्तव में समाज में जो बालिकाओं व महिलाओं की दयनीय स्थिति है, उसे स्वीकार किया जाए तथा इससे मुक्ति पाने के रास्ते तलाशे जाएं।

गणतंत्र दिवस यानी वर्ष 2015 में दिल्ली के राजपथ पर हुई गणतंत्र दिवस परेड के मौके पर आयोजित परेड की थीम थी नारी शक्ति। एक महिला और महिला मार्चिंग दस्ते के नेतृत्व में ही परेड की शुरुआत हुई। गणतंत्र दिवस का यह पहला मौका था जब थलसेना, नौसेना और वायुसेना के महिला सैन्य दल भी परेड में शामिल हुए। ये संकेत था कि देश में स्त्री सशक्तीकरण के आगे बढ़ते कदमों की उजली तस्वीर का। उसके तुरंत बाद जब हमने पूरी दुनिया में अपने मंगल मिशन की कामयाबी के झंडे गाड़े तो हमारी भारतीय महिला वैज्ञानिकों की वैश्विक स्तर पर खूब तारीफ हुई। आजादी के इतने वर्षों बाद अब देश की आधी आबादी अपनी सफलता की नई इबारत बड़ी कुशलता से लिख रही है।

भारतीय महिलाएं आज हर क्षेत्र में हर बाधा को पार करते हुए आगे बढ़ रही हैं। आज निजी क्षेत्र की कंपनियों में कुल वर्कफोर्स की 24.5 फीसदी भागीदारी महिलाओं की है। सार्वजानिक क्षेत्र की कम्पनियों में महिलाओं की ये हिस्सेदारी तकरीबन 17.9 प्रतिशत है। कई ऐसे क्षेत्र जिनमें केवल पुरुषों का एकाधिकार था, वहां महिलाएं अपनी क्षमता का लोहा मनवा रही हैं। नई पीढ़ी की कामकाजी महिलाएं महत्वाकांक्षी भी हैं और साहसी भी। यही वजह है कि अब कोई भी क्षेत्र महिलाओं के लिए अछूता नहीं है।

देश की प्रत्यक्ष श्रमशक्ति में 40 प्रतिशत तथा अप्रत्यक्ष श्रमशक्ति में 90 प्रतिशत योगदान महिलाओं का ही है। एक अनुमान के मुताबिक वर्ष 2025 तक भारत पूरी दुनिया को 13 करोड़ कर्मचारी प्रदान कर सकेगा। इस श्रमशक्ति का बड़ा हिस्सा महिलाएं होंगी। विशेषकर युवा महिलाएं जो शिक्षा, बैंकिंग, आई टी और यहां तक कि सैन्य बलों में भी अपना स्थान बना चुकी हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में गांवों और कृषि कार्यों में भी महिलाओं की हिस्सेदारी कम नहीं। ये बात भी सही है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को जब तक ताकत नहीं मिलती तब तक देश का स्त्री सशक्तीकरण का सपना अधूरा रहेगा। लेकिन वहां भी हाल के बरसों में उल्लेखनीय बदलाव तो दिखे हैं और साथ ही भविष्य में कहीं ज्यादा बदलावों की आहट भी।

राजस्थान के पाली की शांति देवी मजदूरी करके परिवार का पेट पालती थी। घर में रोजगार का कोई साधन नहीं था। पति को हार्ट की बीमारी थी। इसी दौरान उन्हें स्वयंसहायता समूह की जानकारी मिली। फिर कुछ साल पहले उन्होंने गांव की दस महिलाओं का ग्रुप बनाया। सबसे सौ–सौ रुपये इकट्ठा करके काम शुरू किया। उनका समूह हैंडमेड ज्वैलरी और खाद्य सामग्री तैयार करने लगा। आज शांति पूरे राजस्थान की महिलाओं के लिए रोल मॉडल हैं। उनकी संस्था ओमगुरु स्वयंसहायता समूह में अब 90 महिलाएं काम करती हैं। पांच लाख रुपये बैंक अकाउंट में हैं तो छह लाख रुपये से ज्यादा के सामान का स्टॉक उनके पास रहता है। सभी महिलाओं की जिंदगी बदल चुकी है। सभी आत्मनिर्भर हो चुकी हैं और उनका आत्मविश्वास देखते बनता है।

खेलों में छोटे–छोटे गांवों से किस तरह से महिलाएं निकलकर सशक्तीकरण की अवधारणा को मजबूत कर रही हैं, ये किसी से छिपा नहीं है। ज्यादातर खेलों में अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत का परचम पुरुषों से ज्यादा महिलाएं फहरा रही हैं। विज्ञान के वर्तमान दौर में ई.के.जानकी अमल, असीमा चक्रवर्ती, अर्चना शर्मा, इंदिरा नाथ, कस्तूरी दत्ता, आशा कोल्टे आदि भारतीय महिला वैज्ञानिकों ने सराहनीय काम किया है। कल्पना चावला देश में सबसे ज्यादा लकड़ियों की आदर्श हैं और स्पेस साइंस या एयरो–स्पेस इंजीनियरिंग विधा में पढ़ाई कर रही हैं। अनुसंधान का क्षेत्र हो या प्रौद्योगिकी का–हर तरफ महिलाओं के योगदान को देख सकते हैं। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन यानी डीआरडीओ में 20 प्रतिशत महिला वैज्ञानिक हैं जिनकी संख्या निरंतर बढ़ रही है। अन्य वैज्ञानिक संगठनों में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है।

राजस्थान का ही एक और उदाहरण है। सोनिया कई साल से कठपुतलियां बना रही थीं। लेकिन अकेले उनके सामने चुनौतियां ज्यादा थीं और बाधाएं भी। उन्होंने महज चार–पांच साल पहले 15 महिलाओं के साथ मिलकर शुरुआत की। आज उनकी हालत बदली हुई है। उन्हें बाजार का साथ मिल चुका है। हर महिला सम्मान के साथ पैसा भी कमा रही है और संतुष्ट है। उन सभी को लगता है कि वो अपनी बनाई मजबूत जमीन पर खड़ी हैं।

उत्तराखण्ड दुग्ध विकास विभाग राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को गंगा गाय योजना के माध्यम से दुग्ध व्यवसाय से जोड़ रहा है। राज्य में महिलाओं को दुग्ध व्यवसाय के माध्यम से आत्मनिर्भर और आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने की दिशा में ये कदम उठाया गया है। ग्राम पंचायत स्तर पर महिलाओं को दुग्ध व्यवसाय के लिए लगातार प्रेरित किया जा रहा है। उन्हें बैंकों से अनुदान मिल रहा है। बढ़िया नस्ल के दुधारू पशु उपलब्ध कराए जा रहे हैं। हल्द्वानी और नैनीताल मिलाकर आसपास में करीब –करीब 500 दुग्ध समितियां हैं जिसमें करीब 26 हजार महिलाएं काम कर रही हैं और अपने परिवार का भरण–पोषण कर रही हैं। सामाजिक विकास में लद्दाखी महिलाएं पुरुषों के साथ समान रूप से कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती हैं। पुरुष जहां खेती और अन्य कार्य करते हैं वहीं महिलाएं भी खाली वक्त का पूर्ण रूप से उपयोग करती हैं। यहां के अधिकतर गांवों में महिलाओं के स्वयंसहायता समूह सक्रिय रूप से कार्यरत हैं।

देशभर में ऐसी मिसालों की कमी नहीं। सरकार द्वारा स्त्री सशक्तीकरण के लिए चलाए जा रहे तमाम कार्यक्रमों से दूरदराज की अशिक्षित और गैरसंगठित महिलाओं में जागरुकता आई है। उन्हें दिशा मिली है। खुद के पैरों पर खड़ा होने के लिए सरकार की योजनाएं उनके लिए

मददगार बन रही हैं। सरकारी संस्थाएं धीरे–धीरे ही सही लेकिन अब उनके हुनर के लिए बाजार का दरवाजा खोलने का काम कर रही हैं। मदद के लिए सभी संभव प्लेटफार्म उपलब्ध कराए जा रहे हैं। ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए प्रशिक्षण और रोजगार योजना शुरू की गई है। इसमें गरीब महिलाओं को खाद्य प्रसंस्करण, सूचना एवं प्रौद्योगिकी, बागवानी, हथकरघा, सिलाई–कढ़ाई, जरी, .षि, हस्तशिल्प, रत्न एवं आभूषण क्षेत्र में कौशल विकास के लिए सहायता दी जाती है। ग्रामीण विकास मंत्रालय ने देश भर में ग्रामीण स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना चला रखी है जिसकी जिम्मेदारी शहर के लीडिंग बैंकों को सौंपी गई है। बैंकों ने शहरों में अपने प्रशिक्षण संस्थान खोल रखे हैं जिसमें गांवों और शहरों की छोटी बस्तियों की गरीब महिलाओं को खुद के रोजगार के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण पूरा होने के बाद महिलाओं का खुद का काम शुरू करवाया जाता है। खुद के काम के लिए आवश्यक धनराशि के लिए क्षेत्र के संबंधित बैंक से उन महिलाओं को बिना किसी गारंटी के लोन दिलवाया जाता है।

नाबार्ड के अधिकारियों के अनुसार देशभर में करीब 75 लाख स्वयंसहायता समूह विभिन्न बैंकों से जुड़े हैं। इनमे से करीब 48 लाख को बैंकों से सीधे ऋण की सुविधा हासिल है। इनमें से लगभग 82 फीसदी समूह महिलाओं के हैं। नाबार्ड के आंकड़ों से पता चलता है कि स्वयंसहायता समूह आंदोलन दक्षिण भारत के राज्यों में अधिक लोकप्रिय है।

व्यावसायिक संस्थानों में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। एक सर्वे के अनुसार भारतीय महिलाओं की भागीदारी कुल उद्योगों में दस प्रतिशत हैं और यह भागीदारी निरंतर गतिशील हो रही है। बैंकिग, केंद्र सरकार, राज्य सरकार, कॉर्पोरेट जगत, स्वयंसेवी संस्थाओं, तकनीकी क्षेत्र आदि में स्किल से लैस महिलाएं भारतीय अर्थव्यवस्था को बढ़ा रही हैं। महिलाओं के काम करने की क्षमता जैसे, नेटवर्किंग की क्षमता, काम के प्रति समर्पण, सहयोगियों के साथ मधुर व्यवहार, सीखने की जिज्ञासा, सकारात्मक सोच के इन्हीं गुणों के कारण महिलाएं आज इन क्षेत्रों में सफल नेतृत्व भी कर रही हैं।

दूसरे सर्वे के अनुसार भारत में कुल 9 लाख 95144 लघु उद्योग उद्यमशील महिलाओं द्बारा संचालित हैं। स्वयंसहायता 24 जनवरी का दिन 'राष्ट्रीय बालिका दिवस' के रूप में मनाया जाता है। इस दिन इंदिरा गांधी को नारी शक्ति के रूप में याद किया जाता है। इस दिन इंदिरा गांधी पहली बार प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठी थी इसलिए इस दिन को राष्ट्रीय बालिका दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया। यह निर्णय राष्ट्रीय स्तर पर लिया गया। राष्ट्रीय बालिका दिवस मनाने का उद्देश्य लड़कियों के बारे में व्याप्त भ्रांतियां दूर करना, जागरुकता फैलाना, और लोगों को कन्या भ्रूण हत्या के प्रतिकूल प्रभावों को बताना है। समूह बनाकर महिलाएं दूसरी सैकड़ों महिलाओं को आत्मनिर्भर बना रही हैं। जैसा उल्लेख शुरू में भी किया जा चुका है। केरल में ऐसे स्वयंसहायता समूहों के कारण आज वहां सौ प्रतिशत महिलाएं साक्षर हैं। अपने अधिकारों के लिए सजग हैं। बिहार जैसे पिछड़े राज्यों में ग्रामीण महिलाएं आज स्वयंसहायता समूहों से अपने पैरों पर खड़ी हो रही हैं।

रिसर्च से ये बात भी सामने आई है कि महिलाओं के आत्मनिर्भर बनने से परिवार में खुशहाली और आर्थिक तंगी भी दूर होती है, क्योंकि उस परिवार में अभी तक पुरुष ही कमाते थे और परिवार की बढ़ती जरूरतों को बमुश्किल से पूरा कर पाते हैं। ऐसे में महिलाओं का

आत्मनिर्भर बनना, बच्चों को अच्छी शिक्षा और अच्छा पोषण दोनों उपलब्ध होता है। मध्य–प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में ये तथ्य सामने आए हैं।

महिला सशक्तीकरण की दिशा में पिछले दिनों अनेक प्रत्यक्ष तथा परोक्ष कदम उठाए गए। इसमें स्कूलों, गांवों तथा अन्य स्थानों पर महिला शौचालयों के निर्माण पर विशेष बल दिया जा रहा है। यह महिला सशक्तीकरण तथा उन्हें स्वाभिमान एवं सुरक्षा प्रदान करने की दिशा में बहुत बड़ा कदम है। इससे उन्हें न केवल शारीरिक तथा सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध होगी बल्कि यौन शोषण कम करने में भी मदद मिलेगी। वित्तमंत्री ने अपने बजट भाषण में बताया कि देश में कुल 6 करोड़ शौचालयों के निर्माण का लक्ष्य भी प्राप्त कर लिया जाएगा। इसी तरह 2022 तक गांवों में 4 करोड़ तथा शहरों में 2 करोड़ मकान बनाने की महत्वाकांक्षी योजना से भी महिलाएं लाभान्वित होंगी क्योंकि एक स्थायी छत हर गृहिणी का सपना होता है। सामाजिक सुरक्षा की अन्य अनेक योजनाएं विशेषकर बीमा सुरक्षा योजना भी महिलाओं के सशक्तीकरण में सहायक होंगी।

बजट में महिला कल्याण की योजनाओं के लिए 79,258 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। सरकारी योजनाओं में महिलाओं के लिए धन का प्रावधान सुधारने की .ष्टि से 2005 में लिंग आधारित बजट व्यवस्था यानी जेंडर रिस्पॉन्सिव बजटिंग शुरू की गई। वित्तमंत्री ने 2015–16 के बजट में महिला सुरक्षा को मजबूत बनाने तथा इस सम्बन्ध में समाज में जागरुकता लाने के लिए 16 दिसम्बर, 2012 की घटना के बाद पिछली सरकार द्वारा बनाए गए निर्भया कोष में 1,000 करोड़ रुपये की और अतिरिक्त राशि आवंटित की है। इसी तरह रेलमंत्री ने भी अपने बजट में महिला रेल यात्रियों की सुरक्षा के लिए निर्भया कोष का इस्तेमाल करने का संकेत दिया था। रेलमंत्री ने महिलाओं के लिए एक अलग हेल्पलाइन नम्बर 182 शुरू करने की बात भी कही। बजट में सरकार के एक प्रमुख कार्यक्रम 'बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ' योजना के लिए आवंटन बढ़ाकर 97 करोड़ रुपये कर दिया गया है। इसमें अगले दो–ढाई वर्षों तक 200 करोड़ के निवेश का लक्ष्य है।

'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' जैसी योजना की शुरुआत हरियाणा के शहर पानीपत से की गई क्योंकि हरियाणा में लड़कों के मुकाबले लड़कियों का अनुपात देश में सबसे कम है। हरियाणा में 1,000 लड़कों पर केवल 834 लड़कियां हैं। यह योजना इस मायने में अनूठी है कि इसमें लड़कियों की संख्या में संतुलन लाने के साथ–साथ उनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। शुरू में इसे देश के ऐसे 100 जिलों में लागू किया जा रहा है, जो लिंग अनुपात के मामले में अपेक्षा.त अधिक पिछड़े हुए हैं। इस मामले में प्रधानमंत्री का ये तर्क बहुत सार्थक है कि लोग बेटी को तो पढ़ाते नहीं और बहू पढ़ी–लिखी चाहते हैं। जब बेटी नहीं पढ़ेगी तो बहू शिक्षित कहां से आएंगी। बेटियों की उच्च शिक्षा और शादी–ब्याह को लेकर अभिभावक निश्चिंत रहें–इसलिए हाल ही में सरकार ने बेटियों के लिए 'सुकन्या समृद्धि योजना' की शुरुआत की है।

किसी भी देश के विकास संबंधी सूचकांक को निर्धारित करने के लिए उद्योग, व्यापार, खाद्यान्न, उत्पादन, शिक्षा इत्यादि के साथ–साथ उस देश की महिलाओं की स्थिति का भी अध्ययन किया जाता है। आज महिलाएं देश की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में समान रूप से सहभागी बन रही हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा सेवाओं, आर्किटेक्चर, इंजीनियरिंग जैसे अनेक क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता अप्रत्याशित तौर पर बढ़ रही है। कॉरपोरेट सेक्टर में जहां दो दशक

पहले तक पुरुषों का ही वर्चस्व था वहां आज महिलाएं न केवल अपनी उच्च प्रबंधकीय क्षमता का प्रदर्शन कर रही हैं बल्कि नेतृत्व भी कर रही हैं। सशक्तीकरण की दिशा में भारतीय महिलाओं का कदम अब पुरुषों की बैसाखी का मोहताज नहीं रहा है। देश के पांच बड़ें बैंकों में तीन में शीर्ष पद पर महिलाएं हैं। उन्होंने जिस तरह से अपने बैंकों के कारोबार को आगे बढ़ाते हुए बैंकों को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा है, वो वाकई सराहनीय है। वो तेजी से बेहतर फैसले ले रही हैं। एक जमाने में आर्थिक और कारोबारी क्षेत्र में महिलाओं की क्षमता पर शक किया जाता था। लेकिन अब जब महिलाएं यहां सफलता की नई कहानियां लिख रही हैं, तो पूर्वधारणाओं की सारी तस्वीर बदल रही है।

1985 में नैराबी में सम्पन्न अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में पहली बार महिला सशक्तीकरण शब्द का प्रयोग किया गया। 1993 में बीजिंग में अंतरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसी दिशा में अपने देश में भी महिलाओं के उत्थान तथा सशक्तिकरण के लिए कई दिशा–निर्देश तथा मानक तय किए गए, जिनमें महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा सामाजिक सुरक्षा हेतु आधारभूत ढांचा तैयार करना तथा सभी प्रकार की सामाजिक गतिविधियों (सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और यांत्रिक) में समान रूप से भागीदारी बनाना शामिल है। साथ ही जरूरी है कि महिलाओं के प्रति किसी भी प्रकार के यौन उत्पीड़न, भेदभाव, घरेलू हिंसा को रोकने के लिए समुचित कानून बनाए जाएं। ये 1920 के दशक के आसपास की बात है जब भारत में लड़कियों के लिए पहली बार स्कूल खोले गए। रुढ़िवादियों ने इसका जबर्दस्त विरोध किया। जो परिवार अपनी बेटियों को स्कूल भेजते थे उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था। सोचिए, समय की प्रतिकूल धारा से संघर्ष करते हुए महिलाओं ने किस तरह आज अपनी एक खास जगह बना ली है। आजादी के बाद जब हिन्दू कोड बिल के जरिए महिलाओं को समानता का असली अधिकार मिल पाया, तब राजनीति से लेकर नौकरियों तक में अपने कदम बाहर निकाले। हालांकि ये सब बहुत मुश्किल था। ये हमारे समाज की रुढ़ियां ही थीं कि जब 1952 में पहले आम चुनाव हुए तो केवल दिल्ली में ढाई लाख महिलाओं ने अपने नाम इसलिए मतदाता सूची में दर्ज नहीं कराए, क्योंकि उनके परिवार या समाज के लोग इसके विरोध में थे।

अब तो हालांकि हालात बहुत बदल गए हैं। हाल में उत्तरप्रदेश में ही ग्राम प्रधानों के चुनाव में 40 फीसदी से ज्यादा महिलाओं ने जीत हासिल की। ये स्त्री सशक्तीकरण की ओर बढ़ रहे कदम की एक स्वाभाविक परिणति है। शायद उसी दिशा में मजबूत प्रयास की राजनीति में महिलाओं को कम से कम 50 फीसदी के अनुपात में दिखना चाहिए। आंकड़े बताते हैं कि संघ लोकसेवा आयोग की परीक्षाओं में अब लड़कियां पहले से कहीं ज्यादा संख्या में चयनित हो रही हैं, वो कहीं ज्यादा प्रशासनिक पदों पर आसीन हो रही हैं। फिल्मों और टीवी के जरिए महिलाएं एक सशक्त छवि बना रही हैं। साथ ही महिलाओं के बीच खास तरह की चेतना और जागरुकता विकसित कर रही हैं। इसी के तहत मीडिया और तमाम न्यूज चैनल की महिला एंकर को भी रखना चाहिए, जिनकी उपस्थिति के चलते महिलाओं के मुद्दों को और संजीदगी के साथ सामने लाया जा रहा है। खेलों में छोटे–छोटे गांवों से किस तरह से महिलाएं निकलकर सशक्तीकरण की अवधारणा को मजबूत कर रही हैं, ये किसी से छिपा नहीं है। ज्यादातर खेलों में अंतर्राष्ट्रीय

जगत में भारत का परचम पुरुषों से ज्यादा महिलाएं फहरा रही हैं। विज्ञान के वर्तमान दौर में ईके. जानकी अमल, असीमा चक्रवर्ती, अर्चना शर्मा, इंद्रिरा नाथ, कस्तूरी दत्ता, आशा कोल्टे आदि भारतीय महिला वैज्ञानिकों ने सराहनीय काम किया है। कल्पना चावला देश में सबसे ज्यादा लकड़ियों की आदर्श हैं और स्पेस साइंस या एयरो–स्पेस इंजीनियरिंग विधा में पढ़ाई कर रही हैं। अनुसंधान का क्षेत्र हो या प्रौद्योगिकी का–हर तरफ महिलाओं के योगदान को देख सकते हैं। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन यानी डीआडीओ में 20 प्रतिशत महिला वैज्ञानिक हैं जिनकी संख्या निरंतर बढ़ रही है। अन्य वैज्ञानिक संगठनों में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए इस साल प्रधानमंत्री की सलाह से भारतीय विज्ञान कांग्रेस के दौरान पहली महिला वैज्ञानिक कांग्रेस का आयोजन किया गया था। आंकड़ों की बात करें तो 1971 में महिला साक्षरता दर 22 प्रतिशत थी जो बढ़ते–बढ़ते 2001 में 54.16 प्रतिशत यानी ढाई गुना हो गई। 2020 में इसके 80 फीसदी से ज्यादा हो जाने की उम्मीद है। शिक्षा और साक्षरता का सीधा रिश्ता सशक्तीकरण से होता है। केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के तहत 2017 तक देश की 80 प्रतिशत महिलाओं को साक्षर बनाने का लक्ष्य है। महिलाओं में शिक्षा प्रसार के सुखद परिणाम दिखने भी लगे हैं।

ग्रामीण भारत ने हाल के बरसों में महिलाओं के आगे बढ़ने की ललक और प्रतिभा की छाप छोड़ने की कई मिसालें कायम की हैं। तमाम ऐसी महिलाएं उभर कर सामने आई हैं, जो गांव की दूसरी महिलाओं के लिए रोल मॉडल बनीं और स्त्री सशक्तीकरण की अवधारणा को सही मायनों में आगे बढ़ाया।

सत्यमंगल की ग्रामीण महिलाएं – तमिलनाडु के इस गांव की महिलाएं लंबे समय से उपेक्षित थीं। लेकिन अब मास मीडिया और तकनीक के इस युग में उन्होंने अपने सशक्तीकरण का नया हथियार पा लिया है। वो वीडियो कैमरे के लिए गांव की तमाम समस्याओं और दिक्कतों की फिल्म तैयार करती हैं। इसे अधिकारियों को भेजती हैं। इसका बहुत सकारात्मक असर पड़ा है। गांवों में इसके जरिए कई काम हुए हैं। कुछ साल पहले एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था ने गांव में इसके लिए वर्कशाप की थी जिसमें उन्हें फिल्म मेकिंग के बारे में बताया गया था। ये बताया गया कि किस तरह इसके जरिए वो मजबूत ढंग से उत्पीड़न और अत्याचारों से लड़ सकती हैं और जब वो इन बातों की फिल्म तैयार करेंगी तो इसे अनदेखा करना किसी के लिए भी आसान नहीं होगा। इसके बाद सत्यमंगल की महिलाओं से फिल्म मेकिंग को ढंग से सीखा। उन्होंने तमाम फिल्में बनाईं, जो सराही गईं, जिनका असर हुआ। अब ये महिलाएं इतनी प्रसिद्ध हो चुकी हैं कि उन्हें आसपास के इलाकों में बुलाकर लोग अपनी समस्याएं बताते हैं। वो उसकी फिल्म तैयार करती हैं। केवल यही नहीं वो आसपास के इलाकों की महिलाओं को भी दक्ष कर रही हैं।

अमेरिका में सीईओ बनी भारत की खेतीहर मजदूर – श्रीमती डी ज्योति रेड्डी की कहानी महिला सशक्तीकरण का एक और जबरदस्त उदाहरण है। हैदराबाद के वारंगल में रहने वाली ज्योति ने अपनी सीमाओं का जिस कदर विस्तार किया, वो वाकई अविश्वसनीय लगता है। वो खेतीहर मजदूर के रूप में वर्ष 1989 में महज पांच रुपये की दिहाड़ी पर मजदूरी करती थी। साथ ही पढ़ाई भी। वह अब अमेरिका के केज साटवेयर साल्यूशंस में सीईओ है। वह अब कंपनी के लिए अरबों रुपये कमा रही हैं। लेकिन ज्योति को कभी नहीं भूलता सशक्तीकरण की

प्रतीक ग्रामीण महिलाएं कि वह कहां से ताल्लुक रखती हैं। कैसे वह आगे बढ़कर यहां तक पहुंची हैं। वह ग्रामीण भारत में महिलाओं की सहायता करती हैं और कोशिश करती हैं कि उनके द्वारा किए जा रहे कल्याण कार्यों से महिलाएं अपने पैरों पर खड़ी हो सकें।

कल्पना सरोज – कल्पना भी महाराष्ट्र के रुपेखेड़ा गांव के दलित परिवार में पैदा हुईं। उन्होंने कम उम्र में आत्महत्या का भी प्रयास किया। उनकी शादी महज 12 साल की उम्र में कर दी गई थी। पति के परिवार में उन्हें शारीरिक यातनाएं दी गईं। उन्होंने पति के साथ घर छोड़ दिया। फिर वह स्लम्स में रहने लगीं। यहीं उन्होंने अपना जीवन बदला। स्लम्स की महिलाओं को जोड़ा। पहले एक टेलरिंग बिजनेस शुरू किया। फिर एक छोटी गारमेंट फैक्ट्री। इसके बाद एक फर्नीचर स्टोर। अब वह सफल महिला व्यावसायी हैं। ढेर सारी महिलाओं को रोजगार देती हैं। उन्होंने स्लम्स की तमाम महिलाओं और परिवारों की स्थिति बदल दी। कुछ समय पहले उनकी सेवाओं को देखते हुए उन्हें राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने पद्मश्री अवार्ड से सम्मानित किया। इसके बाद वो दुगुने जोश से महिला सशक्तीकरण की अलख जगाने में जुट गईं।

हरदामा की सरपंच नौरोती – नौरोती बचपन से ही न्याय की लड़ाई लड़ रही हैं। राजस्थान के किशनगढ़ जिले के हरदामा गांव में नौरोती का जन्म एक दलित परिवार में हुआ। अब वह उसी गांव की सरपंच हैं। पहले तो उन्होंने गांव की महिला मजदूरों के लिए उचित मेहनताने की लड़ाई लड़ी। वह खुद भी पत्थर काटने का काम करती थीं। उनके संघर्ष और जीवट ने साबित कर दिया कि महिलाओं की शक्ति किसी से कम नहीं होती। नौरोती पढ़ी–लिखी नहीं थीं। बाद में उन्होंने हल्का–फुल्का पढ़ना सीखा। अब सरपंच बनने के बाद वह कंप्यूटर पर भी अपना काम खुद करती हैं। साथ ही अपने गांव की तमाम महिलाओं के लिए रोल मॉडल भी हैं।

शेखावटी की लड़कियां – राजस्थान के शेखावटी इलाके के गांवों में जाएंगे तो वहां एक नहीं तमाम उदाहरण ऐसे मिल जाएंगे कि वहां की लड़कियां सेना में तैनाती पा रही हैं। उनमें से कुछ अफसर भी बनी हैं। कुछ जहाज खेतीहर मजदूर (वारंगल) से अमेरिकी कम्पनी में सी.ई.ओ. के पद पर पहुंची सुश्री ज्योती रेड्डी भी उड़ा रही हैं। कुछ साल पहले जब इंडिया गेट स्थित राजपथ पर गणतंत्र दिवस की परेड हुई तो स्नेहा शेखावत ने वायुसेना की टुकड़ी का नेतृत्व किया था। इस खास मौके पर सेना की किसी टुकड़ी की अगुआई करने वाली वह देश की पहली महिला सैन्य अधिकारी थीं। उनके परिवार की जड़ें शेखावटी के गांवों में हैं। उनकी इस सफलता ने शेखावटी के गांवों की तमाम लड़कियों को सेना में आने के लिए प्रेरित किया। इन्हीं में एक वीणा सहारण भी हैं। वह आज आइएल–76 नाम का जहाज उड़ा रही हैं। इस विमान को उड़ाने वाली वे देश की पहली महिला पायलट हैं। पहले इस जहाज को पुरुष पायलट ही उड़ाया करते थे। इसकी वजह भी हैः आइएल–76 का वजन 190 टन होता है और यातायात के हिसाब से यह देश का सबसे बड़ा जहाज है। वह शेखावाटी के चूरू जिले के रतनपुरा गांव से ताल्लुक रखती हैं। उनके परिवार के कई लोग पहले से सेना में हैं। वीणा कहती हैं, लड़कियां चाहे शहर की हों या गांव की, प्रतिभा सब में होती है। जरूरत बस परिजनों से थोड़ा–सा प्रोत्साहन मिलने की होती है। शेखावटी की देखादेखी में पड़ोसी जिले में जागरुकता फैल रही है। सीकर से सटे नागौर जिले के डीडवाना के छोटे गांव भवादिया की

27 वर्षीया दीपिका राठौड़ ने माउंट एवरेस्ट पर चढ़ाई की। वह एनसीसी अव्वल कैडेट थीं। अब सेना में अधिकारी हैं। राजस्थान के तमाम ऐसे गांव हैं, जहां कई महिलाओं ने स्त्री सशक्तीकरण की सही मायने में मिसाल कायम की है।

तरनतारन की लड़कियां – पंजाब के जिला तरनतारन के गांव पंडोरी सिधवां को सैनिकों का गांव कहा जाता है। यहां के कई युवक सेना, बीएसएफ, सीआरपीएफ और पंजाब पुलिस में बड़े पदों पर तैनात हैं। महज 3500 की आबादी वाले इस गांव में अब लड़कियां भी सेना और पुलिस में भर्ती होने की तैयारी में जुटी हैं। कुछ सेलेक्ट हो चुकी हैं और गांव व आसपास के इलाकों के लिए रोल मॉडल का काम कर रही हैं।

अंजुम की कहानी भी कुछ कम नहीं आईपीएस अंजुम आरा का जन्म लखनऊ के आजमगढ़ के छोटे से गांव कम्हरिया में हुआ। अब वह देश की दूसरी मुस्लिम महिला आईपीएस हैं। जब पढ़ाई पूरी करने के बाद आईपीएस बनने की इच्छा पिता को बताई तो उन्होंने हौंसला–अफजाई की। लेकिन परिवार के बाकी सदस्य इससे खुश नहीं थे। रिश्तेदारों को तो उसका घर से निकलना तक गंवारा नहीं था। अंजुम कहती हैं कि उनके परिवार में आज भी पर्दाप्रथा जारी है। कड़ी मेहनत और लगन से 2011 में उनका चयन आईपीएस के लिए हो गया।

पुष्पा मैत्रेई – साहित्य जगत में पुष्पा मैत्रेई का नाम किसी के लिए भी अनजाना नहीं है। उनका जन्म बुंदेलखंड के एक गांव में हुआ था। शुरुआती शिक्षा भी गांव में हुई। जब उन्होंने हाईस्कूल कर लिया तो इंटर के लिए पास के कस्बे में जाना पड़ा। वह रोज 15–20 किलोमीटर जाती आती थीं। इसी तरह जब उन्होंने कॉलेज की पढ़ाई शुरू की तो भी ये उनके लिए आसान नहीं थी। लेकिन उन्होंने अपनी .ढ इच्छा शक्ति से यह कर दिखाया। उनका साहित्य जहां आमतौर पर ग्रामीण जिंदगी के इर्द–गिर्द घूमता है वहीं वह महिलाओं के सशक्तीकरण की चेतना भी जागृत करता है। बल्कि उनके पात्र आमतौर गांव से ही लिए गए ऐसे पात्र होते हैं, जो बदलाव के वाहक बन रहे हैं। वह कहती हैं कि मौजूदा सालों में गैस के चूल्हों और मोबाइल फोन ने महिलाओं की तस्वीर बदलने में सबसे बड़ी भूमिका अदा की है।

तीजन बाई – तीजन बाई को अब कौन नहीं जानता। वह भिलाई के गांव गनियारी में पैदा हुईं। वह बचपन में महाभारत की कहानियां सुनतीं और इस पर आधारित गाने सुनतीं। कम उम्र में वह मंच पर इसका प्रदर्शन करने लगीं। उन्होंने पंडवानी गायकी की अपनी शैली विकसित की जो बहुत लोकप्रिय हुई। पंडवानी लोक गीत–नाट्य की पहली महिला कलाकार हैं। देश–विदेश में अपनी कला का प्रदर्शन करने वाली तीजनबाई को बिलासपुर विश्वविद्यालय द्वारा डी लिट की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया है। वह 1988 में पद्मश्री और 2003 में कला के क्षेत्र में पद्मभूषण से अलं.त की गईं। तमाम और भी राष्ट्रीय अवार्ड से उन्हें सम्मानित किया जा चुका है। वह छत्तीसगढ में नए तरह की जागरुकता पैदा कर रही हैं। ढेर सारी लड़कियां उनसे पंडवानी सीखती हैं और देश–विदेश में उसका प्रदर्शन करती हैं। कहा जा सकता है कि छत्तीसगढ की आदिवासी लड़कियों को उन्होंने नई ताकत दी है और उनकी पहचान के रूप में उभरी हैं।

निष्कर्षतः ऐसा नहीं है कि महिलााओं के लिए स्थितियां बदली नहीं हैं, लेकिन अभी भी इस दिशा में बहुत कुछ किया जाना शेष है। यूं तो ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत तेजी से बदलाव हो

रहा है। आज एक तिहाई महिलाएं पंचायत प्रतिनिधि हैं जो महिला सशक्तीकरण के लिए 'परिवर्तन एजेंट' के रूप में काम कर सकती हैं। आज ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की स्कूलों में नामांकन–दर तेजी से बढ़ रही है। लोगों की सोच में भी धीरे–धीरे बदलाव आ रहा है, जोकि एक सकारात्मक संकेत है। सवाल यह उठता है कि हम एक सशक्त ग्रामीण महिला को किस रूप में देखना चाहते हैं? जाहिर तौर पर "शिक्षित, आत्मनिर्भर और अपने निर्णय खुद लेने में समर्थ महिला के रूप में"। महिला शिक्षा के द्वारा ही सामाजिक व्यवस्था की जड़ों में जाकर उसमें निहित गड़बड़ी को दूर किया जा सकता है। सामाजिक न्याय व समानता के आदर्श का भी यह तकाजा है कि महिलाओं को इस योग्य बनाया जाए कि वह अपनी समस्याओं का समाधान खुद ढूंढ सकें और अपनी पसन्द की जिन्दगी जी सकें।

यह सब कुछ महिला शिक्षा को बढ़ावा देकर ही संभव है क्योंकि शिक्षित महिला ही ऑनर–किलिंग, दहेज, यौन हिंसा, घरेलू हिंसा, कन्या भ्रूण हत्या आदि लैंगिक समस्याओं के खिलाफ संगठित होकर मुकाबला करने में सक्षम हो सकती है। महिला शिक्षा का सकारात्मक प्रभाव देश की सकल राष्ट्रीय आय पर भी पड़ता है। एक शिक्षित महिला बखूबी जानती है कि धार्मिक धर्मकाण्डों, अंधविश्वासों व अन्य अनुत्पादक गतिविधियों पर व्यय की जगह बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य व परिवार आय उर्पाजन पर निवेश उचित है। स्पष्ट है कि महिलाओं के लिए शिक्षा हरेक तरह से फायदे की चीज है। देश में बालिका शिक्षा को बढ़ावा मिलने से उनके स्वास्थ्य, पोषण एवं जीवन–स्तर में भी वृद्धि आई है।

संदर्भ

- गोयल, प्रीतिप्रभा, ''भारतीय नारी विकास की ओर'', राजस्थानी ग्रन्थसागर,जोधपुर, 2009
- हरीमाथ, आर.सी., ''वूमन इन चेन्जिंग वर्ल्ड'', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2012
- कुमार विपिन, ''वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तीकरण'', रीगल पब्लिकेशन्स, 2009
- कौशिक, आशा, ''महिला सशक्तीकरण : विमर्श एवं यथार्थ'', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2011
- बॉबेल, बसन्ती लाल, ''पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास योजनाएँ'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010
- गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, ''वूमन इन इण्डिया : ए स्टेटिकल प्रोफाइल डिपार्टमेंट ऑफ वूमन एण्ड चाइल्ड डवलपमेन्ट'' मिनिस्टरी ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डवलपमेन्ट, न्यू दिल्ली, 2015
- प्रशासनिक प्रतिवेदन (2015–16), महिला एवं बाल विकास विभाग, राजस्थान, जयपुर
- राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति, 2016, महिला एवं बाल कल्याण विभाग, भारत सरकार

व्याख्याता,

राजनीति विज्ञान,

एस.एस.जी. पी.जी. पारीक गर्ल्स कॉलेज, चौमू

महात्मा गाँधीजी के जीवन में सत्य का स्वरूप

- ऋतु आर्य

गांधी ने सभी साधनों में सत्य व्रत को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। सत्य व्रत के अनुपालन को सामान्यतः सत्य बोलने मात्र तक सीमित मान लिया जाता है। लेकिन गांधी के अनुसार इसका वास्तविकत अर्थ है विचार, कथन और कार्य तीनों में सात्विकता (सत्यता) का अनुपालन। इसलिए सत्य के अनुपालन के दौरान, दुराव–छिपाव, चालाकी, धोखेबाजी तथा कपट को पूर्णतः परे रखा जाता है। सत्य का अनुपालन अनवरत प्रयास तथा जीवन के अन्य निहित स्वार्थों के प्रति उदासी के भाव के साथ किया जाना चाहिए। इसका अर्थ है सतत् चाह तथा पूर्ण अनासक्ति। गांधी के सत्य के दर्शन का अनुभव पूर्ण अनासक्ति से ही संभव है। क्रोध, लोभ डर, दंभ आदि ऐसी बुराइयां हैं जो साधनों को भटकाने का कार्य करती हैं।[1]

महात्मा गाँधी के अनुसार दर्शन एक जीवन पथ है। उन्होंने 'सत्य' को जीवन का आधार एवं प्रयोजन तथा सर्वश्रेष्ठ मूल के रूप में स्वीकार किया है। गाँधी जी ने दो महत्वपूर्ण तत्वों की खोज की है – "प्रथम यह कि 'अहिंसा' ही सर्वोच्च माध्यम है, अथवा धर्म है तथा द्वितीय तत्व 'सत्य' है। इससे इतर अन्य कोई धर्म नहीं है।"[2] गाँधीजी की यह धारणा पुराणों के इस विचार पर आधारित प्रतीत होती है, जिसमें यह कहा गया है कि सत्य से महान अन्य कोई धर्म नहीं है। 'नाहि सत्यात् परो धर्मः' अर्थात् सत्य ही धर्म है, जब हम धर्म को महाभारत के इस अर्थ में लेते हैं कि धर्म का उद्देश्य ब्रह्माण्ड को धारण करना है, अथवा जब हम धर्म को वेदों में निहित 'ऋत्' अर्थात् ब्रह्माण्डीय नियम या व्यवस्था के रूप में लेते हैं तो सत्य को उसी अर्थ में महात्मा गाँधी ने जगत् का, जीवन का नियम या आधार माना है। बैरियर एलविन ने गाँधी दर्शन में सत्य का निरूपण करते हुए बड़े ही सटीक ढंग से कहा है कि "प्लेटो की शब्दावली में सर्वोच्च मूल्य की व्याख्या में तो तीन मूल्य प्राप्त होते हैं – शुभ, सत्य एवं सुन्दर। किन्तु इसमें सत्य वह मूल्य है, जिसमें अन्य दोनों मूल्य समाहित हैं। गाँधी जी उन दुर्लभ महापुरुषों में से एक हैं, जिन्होंने सत्य को सर्वोच्च प्रत्यय के रूप में स्वीकार किया है।"[3]

सत्य शब्द सत् से बना है। सत् का अर्थ है होना, अस्ति या अस्तित्व। सत्य का अस्तित्व ही वास्तविक है। गाँधी जी ने स्पष्ट किया है कि "सामान्यतः सत्य का अर्थ केवल सच बोलना ही समझा जाता है, लेकिन हमने सत्य शब्द का प्रयोग विशाल अर्थ में किया है। विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है।"[4] सारा ज्ञान सत्य में ही समाया हुआ है। विचार में, वाणी में और आचरण में सत्य का समावेश होना आवश्यक है। यदि सत्य इसमें न समा सका तो वह सत्य नहीं बल्कि असत्य के अनुसार आचरण होगा। जहाँ सत्य नहीं होगा, वहाँ ज्ञान नहीं होगा और जहाँ ज्ञान नहीं होगा, वहाँ आनन्द नहीं होगा। बिना आनन्द के व्यक्ति का जीवन नीरस हो जायेगा। सत्य को उन्होंने सच्चिदानन्द के रूप में प्रतिपादित किया है। मन, विचार और कर्म से सत्य का साक्षात्कार करना ही जीवन है।

"सत्य आचरण मनोवृत्ति को अंकुश में रखने का सर्वोपरि साधन है। उसमें मनोवृत्ति पर नियंत्रण रखने की अपार अमोध शक्ति है। जिसमें सत्य नहीं है, वह सच्चाई के साथ मनोवृत्ति पर नियंत्रण नहीं पा सकेगा।"[5] सत्य की यह विशेषता है कि वह प्रवृत्तियों पर नियंत्रण या काबू

रखता है। यह मन, वचन और कर्मों पर नियंत्रण रखने का साधन है। जो व्यक्ति सत्य का अनुगामी है, वह अपनी प्रवृत्तियों पर आसानी से नियंत्रण रखने में सफल ज्ञान है, वहाँ आनन्द ही होगा, शोक होगा ही नहीं और सत्य शाश्वत है।[6] इसीलिए आनन्द भी शाश्वत होता है। सत्य ज्ञान पर निर्भर है और ज्ञान पर आनन्द निर्भर है। यदि सत्य शाश्वत है तो आनन्द भी शाश्वत है और मनुष्य को परम सुख की प्राप्ति सत्य के माध्यम से ही हो सकती है।

सत्य को जीवन में सहजता या स्वाभाविक रूप से स्वीकार करना चाहिए। जब तक सहजता नहीं आयेगी, जीवन में नीरसता ही मालूम होगी। सहजता प्राप्त होते ही निराशा दूर हो जायेगी और सारे जीवन को उज्ज्वल बना देगी। "जो व्यक्ति पूर्ण सत्यमय हो जाता है, उसके लिए निराशा जैसी कोई चीज ही नहीं। फिर तो उसमें सत्य प्रकाशित होता है और उसके सारे जीवन को उज्जवल करता है।"[7] इसीलिए यह आवश्यक है कि मानवजीवन का मार्गदर्शक सत्य को ही होना चाहिए।

सत्य को प्राप्त करने के लिए बड़ी कठिन परीक्षा से गुजरना पड़ता है। अपने और से कोई असत्य या अप्रिय वचन न बोलें जिससे दूसरों को कष्ट पहुँचे। आंख से कोई ऐसी वस्तु का दर्शन न करें, जिससे कि हमारी इन्द्रियाँ हमारे वश में न रहें, कान से किसी की निन्दा न सुनें। सत्य के निकट पहुँचने का यही मार्ग है। आवश्यक यही है कि हम सत्य बोले सत्य सुनें और सत्य के अनुसार ही आचरण करें। यही कार्य हमें सत्य के निकट ले जा सकता है। अन्यथा सारे प्रयत्न व्यर्थ साबित होंगे। इन आदर्शों का पूरी तरह पालन अनिवार्य है।

सत्य प्राप्ति के साधन जितने कठिन हैं, उतने सरल भी हैं। प्रौढ़ व्यक्ति हो या बच्चा, सबके लिए समान रूप से महत्व रखता है। हो सकता है कि एक बड़े व्यक्ति को जो कठिन लगे वह एक बालक को बिल्कुल आसान दिखाई दे। वे रास्ते हैं नम्रता के। गाँधी जी ने भी कहा है कि "सत्य के शोधक को रज कण से भी नम्र होना चाहिए। दुनियां धूल को पैरों तले रौंदती है परन्तु सत्य के शोधक को इतना नम्र बन जाना चाहिए कि धूल भी उसे कुचल सके।"[8] नम्रता की इस हद तक जब व्यक्ति पहुँचता है तब जाकर उसे सत्य के दर्शन होते हैं।

"सत्य का आग्रही रूढ़ि से चिपक कर ही कोई काम न करें, वह अपने विचारों पर हठ पूर्वक डटा न रहे। हमेशा यह मान कर चले कि उसमें दोष हो सकता है।"[9] इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्य और हठवादिता दोनों एक साथ नहीं चल सकते हैं। सत्य के पालक को आग्रहों, पूर्वाग्रहों से हमेशा दूर रहना होगा। अपने विचारों को अनावश्यक रूप से नहीं थोपना होगा। जहाँ कहीं भी यदि पता चल जाय कि उसके विचारों में कहीं दोष है, वहीं उसे गलती की क्षमा मांगना अनिवार्य है। इसके लिए चाहे उसे कितनी भी बड़ी हानि क्यों न उठानी पड़े और उसे अपनी गलती के लिए प्रायश्चित भी करना चाहिए।

"सत्य के उपासक को बोल कर अपना काम करने या विचार बताने की आवश्यकता नहीं है। उसका तो आचरण ही संसार के लिए उपदेश रूप होना चाहिए।"[10] सत्य को वाणी की आवश्यकता नहीं है, सत्य तो स्वयं सिद्ध है। सत्य कहने या बोलने की चीज नहीं है, वह तो अनुभव की चीज है। सत्य की उपासना करने वाले के लिए कम बोलना ही हितकारी है। "राग, द्वेष से भरा मनुष्य सरल हो सकता है, वह वाचिक सत्य भले ही पा ले पर शुद्ध सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। शुद्ध सत्य का शोध करने के माने हैं, राग–द्वेषादि द्वन्द्व से सर्वथा मुक्ति प्राप्त

कर लेना।"[11] इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस शक्ति को प्राप्त करने की इच्छा होती है, उसे राग–द्वेष और परस्पर प्रतिद्वन्द्विता से दूर रहना आवश्यक है। उसे अन्तःकरण से शुद्ध होना अनिवार्य है अन्यथा वह सत्य की खोज नहीं कर सकेगा, सिर्फ वचन की सत्यता से ही काम न चलेगा। उसे बल्कि राग–द्वेषादि से भी मुक्त होना अनिवार्य है।

असत्य हमें अनेक प्रकार से आकर्षित करता है। वह हमें आकर्षक, लुभवने प्रलोभन देता है। इसका यह नहीं कि हम सत्य के कठिन मार्ग से विचलित हो जाये। सत्य का मार्ग कठिन होते हुए भी आनन्ददायक है। "सत्य का मार्ग छोड़ने में कोई आनन्द नहीं, किन्तु मनुष्य स्वभावतः कठिनाइयों का सामना नहीं करता, वह सरल मार्ग की खोज में रहता है। सरल मार्ग नीचे ले जाता है और कठिन मार्ग ऊपर चढ़ाता है।"[12]

सत्य ही ईश्वर है – गाँधी जी सत्य को सर्वोच्च स्थान देते हैं। उन्होंने ईश्वर को सत्य माना और सत्य को ईश्वर माना। गाँधी जी से किसी ने पूछा कि आप ईश्वर को जैसा समझते हैं, वर्णन कीजिए। गाँधी जी ने इस प्रश्न का उत्तर दिया – "ईश्वर सत्य है। परन्तु दो वर्ष हुए, मैं एक कदम आगे बढ़ गया हूँ, अब मैं कहता हूँ कि सत्य ही ईश्वर है। नास्तिकों को भी सत्य की शक्ति में शंका नहीं है।"[13] सत्य की तरफ तो चाहे वह आस्तिक हो चाहे नास्तिक हो, सभी आकर्षित होते हैं। सत्य के अस्तित्व से कोई इनकार नहीं कर सकता है। सत्य की वास्तविकता में कोई सन्देह नहीं। सत्य स्वयं सिद्ध है, इसीलिए गाँधी जी ने सत्य को ही ईश्वर माना है और कहा है कि "ईश्वर का मतलब है सत्य।"[14] सत्य के आधार पर ही वह परमेश्वर की व्याख्या करते हैं।

"परमेश्वर की व्याख्याएँ अगणित हैं, क्योंकि इनकी विभूतियाँ भी अगणित हैं। विभूतियाँ मुझे आश्चर्यचकित तो करती हैं, मुझे क्षण भर के लिए मुग्ध भी करती हैं, पर मैं तो पुजारी हूँ सत्य रूपी परमेश्वर का। मेरी दृष्टि में वही एक मात्र सत्य है। दूसरा सब कुछ मिथ्या है।"[15] इस प्रकार हम देखते हैं कि परमेश्वर के अनेक रूप हो सकते हैं, परन्तु उसमें सत्य भी एक रूप है। उसी सत्य के माध्यम से गाँधी जी परमेश्वर की तरफ आकर्षित होते हैं। सत्य को ही वह सब कुछ मानते हैं, सत्य के सिवा वह सब कुछ मिथ्या मानते हैं।

गाँधी जी का सत्य पर दृढ़ विश्वास है और इसी आधार पर कहते हैं कि "मेरे हर बार के अनुभव ने जो सदा एक सा रहा है, मुझे विश्वास करा दिया है कि सत्य के सिवा और कोई ईश्वर नहीं है। सत्य की जो उजड़ी हुई छोटी–छोटी झांकियाँ मुझे हो पाई हैं, उनसे सत्य के उस अवर्णनीय तेज की कल्पना नहीं हो सकती। सच तो यह है कि जो कुछ हमने देखा है, वह उस महान् प्रकाश की हल्की सी झलक मात्र है।"[16] इस प्रकार हम देखते हैं कि ईश्वर की झलक हमें सिर्फ सत्य के नियमपूर्णक पालन करने के पश्चात् ही मिल सकती है।

गाँधी जी सत्य की पूजा करते हैं, उसी को ईश्वर मानते हैं और कहते हैं कि "मेरे पास सिवा सत्य के कोई दूसरा ईश्वर पूजा के लिए नहीं है।"[17] जिसने सत्य की पूजा की वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ईश्वर की पूजा करता है। यह आवश्यक नहीं है कि जिसने ईश्वर की पूजा की वह सत्य की भी पूजा करता हो।

परमेश्वर ही सत्य है या सत्य ही परमेश्वर है। इस वाक्य की व्याख्या करते हुए गाँधी जी ने कहा कि "परमेश्वर ही सत्य है, ऐसा कहने में दोष यह आता है कि परमेश्वर और कुछ भी है, लेकिन सत्य ही परमेश्वर है ऐसा कहने में दूसरे सब नाम छूट जाते हैं। केवल सत्य का ही

ध्यान रहता है।"[18] यहाँ परमेश्वर और सत्य दोनों को एकाकार कर दिया गया है। यहाँ गाँधी जी के दर्शन में अद्वैत का पुट है। चूँकि सत्य का अर्थ होना है और नास्तिक भी अस्तित्व में विश्वास करते हैं, यहीं नहीं सत्य में भी विश्वास करते हैं।

"ईश्वर और उसका सादृश्य नाम सत्य है।"[19] सत्य और ईश्वर दोनों पर्यायवाची हैं। जो सत्य है वही ईश्वर है, जिसमें सत्य का अंश नहीं, जो असत्य है, उसमें ईश्वर का अंश नहीं है, या यों कहें कि ईश्वर से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। हम सब को सत्य का केवल एक अंश भर मालूम है और "संपूर्ण सत्य केवल ईश्वर को मालूम है।"[20] सिर्फ एक अंश का इतना महत्व है तो फिर सम्पूर्ण सत्य का जिसे ज्ञान होगा, वह कितना महान् होगा। जितना उज्ज्वल सम्पूर्ण सत्य है, उतना ही उज्ज्वल ईश्वर है।

गाँधी जी अक्सर कहा करते थे "सत्य ही ईश्वर है, अथवा खुदा ही सच है। इस प्रकार के वचन प्रत्येक धर्म में मिल जाते हैं, उस सत्य का, इस खुदा का जो मनुष्य सेवन करता है, वह कभी हारता नहीं, यह खुदाई कानून है।"[21] परन्तु कभी–कभी ऐसा कहते हुए सुना जाता है कि जिसने सत्य का पालन किया, उसे दुःख ही प्राप्त होता है। धर्मात्मा दुःख पाता है और पापात्मा सुख भोगता है। ऐसी बात नहीं कि सत्य की सदैव विजय होती है, जो व्यक्ति सत्य का पालन करता है, वह कभी नहीं हारता। जिसे सब हार मानते हैं, वह वास्तव में जीत हुआ करती है। सिर्फ धीरज और धैर्य की आवश्यकता है, उस परमेश्वर पर विश्वास करने की आवश्यकता है, जिसने हमें सत्य के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया है।

"मेरा दावा है कि मैं बचपन से ही सत्य का पुजारी हूँ। मेरे लिए यह सबसे सहज और स्वाभाविक वस्तु थी। मेरी भक्तिपूर्ण खोज ने मुझे 'ईश्वर सत्य है' के प्रचलित मन्त्र के बजाय 'सत्य ही ईश्वर है' का अधिक गहरा मन्त्र दिया। यह मन्त्र मुझे ईश्वर को मानो अपनी आंखों के सामने देखने की क्षमता प्रदान करता है। मैं अनुभव करता हूँ कि वह मेरे रग–रग में समाया हुआ है।"[22] महात्मा गाँधी की बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने 'ईश्वर सत्य है' के बजाय 'सत्य ही ईश्वर है' को अधिक महत्वपूर्ण माना। इससे लाभ यह हुआ कि सत्य के प्रति लोगों में अपार श्रद्धा उत्पन्न हुई और सत्य के पालन करने वाले लोगों के सामने ईश्वर का साक्षात् रूप आने लगा। अब ईश्वर के अस्तित्व के बारे में लोगों की शंका का समाधान हुआ और लोग सत्य को ही ईश्वर मान कर सत्य की आराधना और अनुगमनकर अपने जीवन में उतारने लगे।

सत्य ही सर्वोच्च सिद्धान्त है और सारे सिद्धान्त, नियम इसी सत्य में समा जाते हैं। सत्य को पाना जितना आसान है, उतना ही कठिन भी है। यह रास्ता जितना संकरा है, उतना ही चौड़ा भी है, सिर्फ आवश्यकता है विश्वास की। जिसने सत्य पर विश्वास किया, वही सत्य को पा सका और जो सत्य के जितने भी निकट गया, उतना ही ईश्वर के करीब जाने का उसे मौका मिला। जिस अंश में सत्य मनुष्य के अन्दर होगा उसी अंश तक उसे ईश्वर के दर्शन होंगे। सत्य ही एक मात्र सत्य है। गाँधी जी ने भी कहा कि "मैं ईश्वर की पूजा सत्य के रूप में ही करता हूँ, इस मार्ग ने मुझे विनाश से बचाया है और अपने ज्ञान के अनुसार आगे बढ़ता रहा हूँ। अपनी प्रगति में मुझ केवल सत्य की, ईश्वर की हल्की–हल्की झांकियाँ मिलती रहीं और मेरा यह विश्वास दिन–ब–दिन बढ़ रहा है कि वही सत्य है और सब कुछ असत्य है।"[23]

चूँकि सत्य ही ईश्वर है, इसीलिए मनुष्य को जो भी सत्य लगे, उसे मन, वचन और कर्म

से उसका पालन करे, यही उसका कर्तव्य है। इसी सत्य के माध्यम से वह सुखी हो सकेगा। गाँधी जी ने आशीर्वाद देते हुए कहा है कि "सब बालक और वृद्ध, स्त्री और पुरुष उठते बैठते, खाते–पीते, खेलते और काम करते हुए प्रतिदिन अपना सम्पूर्ण ध्यान सत्य की ही खोज में लगायें और जब तक शरीर के नाश के साथ हम सत्य से तद्रूप न हो जायं तब तक ऐसा ही करते रहें तो कितना अच्छा हो। यह सत्य रूप परमेश्वर मेरे लिए रत्नचिन्तामणि सिद्ध हुआ है। सब के लिए ऐसा ही सिद्ध हो।"[24] इस प्रकार गाँधी जी ने सबको यह सलाह दी है कि अधिक से अधिक समय सत्य की खोज में लगायें और सत्य के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करें।

प्रो. जिम्मर ने अपनी पुस्तक "फिलासफिज ऑफ इण्डिया' में गाँधी द्वारा प्रस्तुत सत्य को ही ईश्वर स्वीकार करने के पक्ष में उनके ही तर्कों पर प्रकाश डाला है।"[25] प्रथम तर्क यह है कि चूँकि ईश्वर का प्रत्यय अत्यन्त गूढ़ एवं अस्पष्ट है। प्रत्येक धर्म में इसके अलग–अलग पर्याय हैं। इसीलिए गाँधी ने सत्य को सर्वोच्च माना है। उनका दूसरा तर्क यह है कि गाँधी ने ईश्वर को चरम नियम या सर्वोच्च प्रत्यय कहा है, किन्तु दर्शन की दृष्टि में ईश्वर को व्यक्तित्वपूर्ण सत्ता मानना विरोधपूर्ण विचार होगा। अतः गाँधी जी ने इस दोष से वंचित रहने के लिए ही सत्य को स्वीकार किया है। सत्य एक अलौकिक सत्ता है। तीसरा तर्क यह है कि ईश्वर की सत्ता मान लेने पर हम अनेक ऐसे सिद्धान्तों की अवहेलना कर जाते हैं, साथ ही कुछ ऐसे मनुष्यों की भी अवहेलना कर जाते हैं, जिन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं होता। अनेक धर्म भी ऐसे हैं, जो बिना ईश्वर की सत्ता माने पूर्ण रूप से धर्म के रूप में विकसित हैं। जैसे जैन धर्म, बौद्ध धर्म। ये सभी सिद्धान्त या धर्म सत्य को परम आदर्श मानने में कोई सन्देह नहीं करते। चौथा तर्क यह है कि ईश्वर के विविध रूपों के कारण विभिन्न धर्मों में विषमता देखी जाती है, किन्तु यदि ईश्वर के स्थान पर सत्य को स्वीकार कर लिया जाय तो किसी प्रकार का भेदभाव या द्वन्द्व नहीं प्रतीत होता। इन्हीं कारणों से गाँधी जी ने ईश्वर के रूप में सत्य को स्वीकार किया, सत्य की उपासना की और उन्होंने सत्य को सर्वोच्च माना।

ईश्वर या सत्य तक पहुँचने के लिए हमें किसी न किसी मार्ग की तलाश करनी ही पड़ेगी। गाँधी जी ने मार्ग का सुझाव देते हुए कहा है कि "सत्यमय बनने के लिए अहिंसा ही एक राजमार्ग है। सत्य का सम्पूर्ण दर्शन सम्पूर्ण अहिंसा के अभाव में असत्य है।"[26] यदि सत्य का दर्शन करने की इच्छा है तो मनुष्य मात्र के प्राप्त आत्मवत प्रेम की और शुद्ध आत्मा की आवश्यकता है, आत्मशुद्धि के बिना तो अहिंसा धर्म का पालन अशक्य ही हो जायेगा। शुद्ध होने का अर्थ है – मन से, वचन से और काया से निर्विकार होना और राग–द्वेषादि से रहित होना। इस तरह से शुद्ध होकर अहिंसक माध्यम से सत्य तक पहुँचा जा सकता है। इसीलिए डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने कहा है कि "गाँधी जी अनुचित साधन को सदैव ही घृणा की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि उससे एक तो कभी भी कार्य की सिद्धि नहीं हो पाती और दूसरे यदि कार्यसिद्धि जैसी कुछ लगे भी तो वह उस ध्येय की सिद्धि नहीं कर सकती, क्योंकि साधन की अपवित्रता के कारण साध्य भी अपवित्र हो जाता है।"[27]

सत्य ही वह आधार है, प्रथम तत्व है, जिस पर जगत का अस्तित्व टिका है। अहिंसा वह शक्ति है जो जगत को धारण किए हुए हैं। अहिंसा एवं सत्य दोनों हमारे अस्तित्व का नियम व व्यवस्था है। हमारा अस्तित्व सत्य व अहिंसा के प्रेम रूपी बन्धन से बंधा हुआ है। सत्य और

अहिंसा ही वे केन्द्र हैं, जहाँ अस्तित्व की शक्तियाँ केन्द्रीभूत रूप में विद्यमान हैं तथा जीवन को नियमित कर रही हैं। इसीलिए महात्मा गाँधी ने सत्य और अहिंसा को ही सब कुछ माना है, वही उनका ईश्वर है। सत्य को वह अहिंसा के द्वारा खोजते हैं और अहिंसा को सत्य के द्वारा समझने की चेष्टा करते हैं। उनके लिए सत्य ही अहिंसा और अहिंसा ही सत्य है। इसी संदर्भ में उन्होंने कहा है कि "अहिंसा मेरा ईश्वर है और सत्य मेरा ईश्वर है। जब मैं अहिंसा को ढूँढ़ता हूँ, तो सत्य कहता है मेरे द्वारा उसे खोजो; जब मैं सत्य की तलाश करता हूँ तो अहिंसा कहता है कि मेरे जरिये उसे खोजो।"[28]

"सत्य स्वयं सिद्ध है, अहिंसा उसका सम्पूर्ण फल है। वह सत्य में छिपी हुई है, वह सत्य की तरह व्यक्त नहीं है, इसलिए उसको मान्यता दिये बिना मनुष्य भले ही शास्त्र की शोध करे, उसका सत्य उसे आखिर अहिंसा ही सिखायेगा।" सत्य में अहिंसा पूर्ण रूप से विद्यमान है। सत्य ही अहिंसा का आधार है और उसका परिणाम है। सत्य को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं; वह तो सूर्य की तरह सत्य है, वह स्वयं सिद्ध है। सत्य में अहिंसा मिली हुई है। जिसने सत्य का पालन किया उसने अहिंसा का पालन किया क्योंकि अहिंसा के माध्यम से ही सत्य तक पहुँचा जा सकता है। गाँधी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि "मैं अहिंसा मार्ग से सत्य की शोध करता हूँ। मैंने अनुभव किया है कि दूसरे मार्ग से सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता।"[29] अहिंसा की नीति के द्वारा ही उन्होंने सत्य के शोध का बीड़ा उठाया। उनके सामने सत्य को सिद्ध करने का प्रश्न नहीं था, सत्य तो स्वयं सिद्ध है। प्रश्न है कि अहिंसा के द्वारा किस तरह इसका पालन किया जाय?

जो व्यक्ति सत्य का उपासक होता है वह शान्तिप्रिय अवश्य ही होगा। शांति का मार्ग सत्य के मार्ग पर ही जाकर मिलता है, परन्तु सत्य शांति से ज्यादा महत्वपूर्ण है। जिसे सत्य की खोज करनी है, वह अहिंसा के माध्यम से उसे खोज पायेगा। सत्य और हिंसा का कहीं से भी मेल नहीं बैठ सकता। सत्य की खोज में हिंसा की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि "सत्य प्रिय व्यक्ति अधिक समय तक हिंसक नहीं रह सकता। वह अपने अन्वेषण के दौरान अनुभव करेगा कि उसे हिंसक होने की आवश्यकता नहीं है और उसे यह भी ज्ञात होगा कि जब तक उसके अन्दर थोड़ी भी हिंसा है, वह सत्य की शोध में असफल रहेगा।"[30] इसीलिए कहा जा सकता है – सत्य का मार्ग सिर्फ अहिंसा है। अहिंसक रास्ते के द्वारा ही सत्य तक पहुँचा जा सकता है। इसी बात की पुष्टि में गाँधी जी ने फिर कहा है कि "मैं यह कहने का भी साहस करता हूँ कि सत्य की विजय कभी हिंसा से नहीं हुई।"[31]

सत्य पर यदि विजय प्राप्त करना है तो सिर्फ अहिंसा के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अहिंसा में ही वह गुण है जो सत्य तक हमें पहुँचा सकता है। सत्य तक हमें हिंसा नहीं पहुँचा सकती। हिंसा के द्वारा तो सिर्फ पतन ही होता है। आवश्यकता निश्चय करने की है कि "हम सत्य की आराधना छोड़ने वाले नहीं हैं।"[32] अहिंसा को धर्म और सत्य को आराध्य मानें। अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं होता और सत्य तो ईश्वर ही है। इसीलिए अहिंसा धर्म के माध्यम से सत्य की खोज करेंगे तो निश्चय ही हमें सत्य के दर्शन होंगे और सत्य की खोज में विजय प्राप्त होगी।

संदर्भ

1 सुरजीत कौर जौली(सम्पादिका), गांधी एक अध्ययन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 140.

2 डी.जी. तेण्डुलकर, महात्मा, भाग–5, बम्बई, पृ. 380.

3 सुरेन्द्र वर्मा, मेटाफिजिकल फाउण्डेशन ऑफ महात्मा गांधीज् थाट, नई दिल्ली, 1970, पृ. 14.

4 मंगल प्रभात, गुजराती, 1945, पृ. 1–3.

5 हिन्दी नवजीवन, 3.19.1929.
6 अहिंसा और सत्य, सम्पा. श्रीरामनाथ सुमन, पृ. 615.
7 महादेव भाई की डायरी, भाग–3, प्रथम संस्करण, जुलाई 1951, पृ. 198.
8 आत्मकथा, अंग्रेजी, 1948, पृ. 6–7.
9 आत्मकथा, अंग्रेजी, 1957, पृ. 307; द्र. अहिंसा और सत्य, पृ. 657.
10 बापू की छाया, नवजीवन द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण, पृ. 72.
11 हिन्दी नवजीवन, 30.4.1931.
12 अहिंसा और सत्य, सम्पा. श्रीरामनाथ सुमन, पृ. 638.
13 बापू के पत्र मीरा के नाम, डाक की मुहर का दिनांक 26.5.1932, प्रथम संस्करण, नवजीवन प्रकाशन, पृ. 153.
14 बापू के पत्र बजाज परिवार के नाम, 1.12.1925.
15 अहिंसा और सत्य, सम्पा. श्रीरामनाथ सुमन, पृ. 613.
16 यंग इण्डिया, 7.2.1929.
17 हरिजन सेवक, 22.4.1929.
18 महादेव भाई की डायरी, भाग–2, प्रथम संस्करण, अप्रैल, 1950, पृ. 237.
19 गाँधी जी, प्रार्थना प्रवचन, खण्ड–2, 19.1.1948, पृ. 230.
20 हरिजन सेवक, 5.10.1940.
21 सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, खण्ड–8, पृ. 60.
22 हरिजन सेवक, 9.8.1942.
23 आत्मकथा, अंग्रेजी, संस्करण, 1948, पृ. 6–7.
24 अहिंसा और सत्य, सम्पा. श्रीरामनाथ सुमन, पृ. 656.
25 जिम्मर, फिलासिफिज ऑफ इण्डिया, लन्दन, 1953, पृ. 1.
26 अहिंसा और सत्य, सम्पा. श्रीरामनाथ सुमन, पृ. 671.
27 डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : गाँधी जी की देन, पृ. 90.
28 यंग इण्डिया, 4.6.1925.
29 हिन्दी नवजीवन, 18.11.1926.
30 यंग इण्डिया, 20.5.1926.
31 हिन्दी नवजीवन, 27.10.1927.
32 हिन्दी नवजीवन, 20.9.1928

✦✦✦✦

शोधार्थी,
राजनीति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

‘गो’ सेवा का महात्म्य एक विवेचन
कामधेनु शतकम काव्य के संदर्भ में

- रवीन्द्र कुमार शर्मा

‘गावो विश्वस्य मातर : ‘वैदिक मन्त्र के अनुसार गाय समष्टि पंचमहाभूत एवं समस्त प्रकृति जन्य प्राणियों की माँ है। क्योंकि गाय के शरीर की रचना करने वाले रचयिता ने गो माता के स्थूल शरीर में ऐसे दिव्य व अतिसूक्ष्म यंत्रों को स्थापित किया है कि गाय की भूमण्डल पर उपस्थिति मात्र से अखिल ब्रह्माण्ड का संरक्षण व संतुलन बना रहता है। गो माता के शरीर से जीवनदायी दिव्य ऊर्जा का प्रवाह सतत बहता ही रहता है, जिससे वानस्पतिक धरोहर व जैविक विविध संपदा को पुष्टि की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त मानव स्वास्थ्य एवं मानव मस्तिष्क सुरक्षित एवं सवंर्धित होते हैं। भक्त शिरोमणि एवं संस्कृत वाङ्मय के मूर्धन्य कवि पं. श्रीराम दवे ने भगवान वेदव्यास की तरह समाधिस्थ होकर मुक्तकण्ठ से गो महिमा का गान किया है। यह किसी प्राकृत कवि की रचना नहीं अपितु ह्रदस्थ गोवन्द द्वारा अपनी उपास्या गोमाता का सरस गुणानुवाद है। भारत प्रारंभ से ही गो पालक देश रहा है। यहाँ पर अनेक गोशालाएं हैं जिनमें गायों का संरक्षण एवं संवर्धन हो रहा है। ऐसी ही गो सेवा के लिए समर्पित राजस्थान धरा पर स्थित सांचोर के पास पथमेड़ा में श्रीगोपाल गोवर्धन गोशाला है जिसने अपनी विशालता और विशिष्ट कार्यों के फलस्वरूप देश में अपनी अलग पहचान बना रखी है। इस सन्दर्भ में कवि दवेजी द्वारा रचित निम्न श्लोक दृष्टव्य है :–

त्रयीवेयं श्रोत्र क्रतुविधिविधानोदयकरी
क्रियाभक्ति ज्ञान्‌विधिघृतधाराऽमृतझरी।
सुपूता कृष्णस्यामलचरण–पांसुश्रितियुता
गवां सौभाग्येडा जयति पथमेड़ावनिरियम।। काम.1।।

अर्थात् जिस भूमि पर किसी समय वेदोक्त श्रोत यज्ञ यागादिक हुआ करते थे, जहाँ भक्ति, ज्ञान और कर्म रूपी त्रिवेणी की अमृतधारा बहा करती थी। जिसे भगवान श्रीकृष्ण के पवित्र चरण रज का सौभाग्य प्राप्त था तथा जिस धरती पर गोधन की भरमार थी, ऐसी है यह पथमेड़ा की पुण्यधरा। जिस प्रकार तीर्थों में प्रयागराज है उसी प्रकार देवी–देवताओं में अग्रणी गोमाता को बताया गया है तथा यह सुरभि धरती गाय भी समुद्र मंथन के समय लक्ष्मी जी के साथ प्रकट हुई थी। जैसा कि ब्रहमवैवर्त पुराण में कहा गया है :–

गवामधिष्ठात्री देवी गवामाद्या गवां प्रसू :।
गवां प्रधाना सुरभिर्गोलोके सा समुद्भाव।।

जिस कामधेनु की कृपा से वशिष्ठ मुनि को ब्रह्मशक्ति प्राप्त हुई, वे संसार में तपोनिधि पुराणवेता कहलाये तथा संसार में भगवान रामचन्द्र के हितोपदेष्टा गुरू के रूप में प्रसिद्व हुए–

यस्याः कृपा सादितब्रह्मशक्तिः तपोनिधिर्वेदपुराणवेत्ता।
श्रीरामचन्द्रस्य हितोपदेष्टा ख्यातो जगत्यां हि गुरूर्वसिष्ठः।। काम.16।।

इस भारत भूमि पर अनेक सज्जन राजा, भक्त तथा पुण्यात्मा हुए हैं, जो केवल गोभक्ति से दुर्लभ पद को पाकर यशस्वी बने हैं। मुनि जाबालि के कथनानुसार ऋतुम्भर राजा के द्वारा की गई गो सेवा के परिणाम स्वरूप उन्हें श्रेष्ठ भक्त सत्यवान पुत्र की प्राप्ति हुई। दाना जैसे अन्ध भक्तों ने भी गोमाता के दुग्धपान मात्र से दृष्टि प्राप्त कर ली थी। सौदास राजा को भी इस कामधेनु से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था और वे संसार में गो तत्व के ज्ञाता कहलाये तथा इसी कामधेनु से अभिशप्त राजा दिलीप सन्तान हीन हो गये किन्तु वशिष्ठ ऋषि के कथनानुसार पुनः इसी कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा सुश्रुषा से इन्हें रघु नामक प्रतापी पुत्र की प्राप्ति हुई–

गोतत्ववेत्ता विदितो जगत्याम सौदासभूपोऽपि यदाप्तबोधः।
गवां हि कल्याणकरं स्वरूपम् ज्ञात्वार्चयमास स कामधेनुम्।। काम.18।।
ज्ञातोऽनपत्यो नृपतिर्दिलीपः शापेन पूर्व सुरकामधेनोः।
तदात्मजायाः समुपासनेन सुतं स लेभे रघुनामधेयम्।। काम.20।।

गोमाता से ही मानव जगत को ऋषि एवं कृषि की प्राप्ति हुई है। इस आशय के असंख्य प्रमाण विज्ञान सम्मत वैदिक शोध ग्रन्थों में तथा विश्व के अन्य प्रकृति मूलक एवं सत्य शोधक महामानवों के निजी खोजपूर्ण साहित्य में उपलब्ध है। यह देवों के लिए पंचगव्य तथा अन्न, जल, फल एवं औषध की उत्पत्ति का आधार है। यह गौ ही अपने अमृत रूपी दूध से त्रिलोकी का पालन करती है तथा अपने मूल व पुरीष से धरती को हरा भरा बनाती है तथा मांगलिक कार्यों व पवित्रता में सहयोग देने वाली है, ऐसा महर्षि वेदव्यास जी ने भी कहा है–

यया त्रिलोकी परिपाल्यते निजेः पीयूषतुल्यैरनिषं पयोभिः।
शस्येः प्रशस्येः कुरूते च शाद्वलाम् धरामिमां मूत्रपुरीषदानेः।। काम.21।।
स्वर्गस्य सोपानपदेऽस्तिसंस्थिता हविः प्रदानेः सुरपोषिणीयम्।
मांगल्यमूर्तिः शुचिताविधात्रि व्यासेन यस्याः भणिता प्रशस्तिः।। काम.22।।

गो माता का हमारे जीवन में न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्व है अपितु सांस्कृतिक व वैज्ञानिक महत्व भी है। गोमाता का हमारे उत्तम स्वास्थ्य से गहरा संबंध है। गोमूत्र मनुष्य जाति तथा वनस्पति जगत को प्राप्त होने वाला दुर्लभ वरदान है। यह धर्मानुमोदित, प्राकृतिक, सहज प्राप्य, हानि रहित तथा कल्याणकारी रसायन है। जिससे दुनिया की हर बीमारी का नाश निश्चित ही संभव है, आयुर्वेद एवं अन्यान्य धर्मग्रन्थ इस बात के प्रमाण है। ब्रज संस्कृति में गोपाष्टमी एक पर्व है। गाय माताओं की रक्षा करने के कारण ही भगवान श्रीकृष्ण जी का अतिप्रिय नाम 'गोविन्द पड़ा। शास्त्रों में तो यह भी कहा गया है कि शिवलोक, बैकुण्ठ लोक, ब्रह्मलोक एवं पितृलोक की भाँति एक गोलोक भी है जिसके स्वामी भगवान श्रीकृष्ण है। विवाह आदि संस्कारों में गोधूलि वेला का विशेष महत्व है। गाय माता सदैव कल्याणकारी तथा पुरूषार्थ चतुष्टय की सिद्दि प्रदान करने वाली है। यह आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आधिदैहिक तीनों तापों का नाश करने में सक्षम है। जैसा कि निम्न श्लोक में गोमाता के महत्व को बतलाया है–

धर्मस्य मूलं गणिता हि गावः ता एवं मूलं निजसंस्कृतेश्च।
सर्वेऽपि देवाः वपुषि प्रतिष्ठाः इति श्रुतो नो भणितं हि तस्याः।। काम.27।।
दधिघृतेर्गृहमंगलसाधिनी निजपुरीषकणैः शुचिताकरी।
हरति मूत्रमलेरपि यारूजो वहति सूत्रमियं निखिलश्रियाम्।। काम.33।।

इस प्रकार धर्म एवं कर्मप्रधान इस तपोभूमि भारतदेश में गोमाता का इतना महात्म्य होते हुए भी आज गोमाता के प्रति समाज की जो उपेक्षा ष्दृष्टिगोचर होती है तथा वह जिस दुर्दशा में पड़ी है, उस पर कवि ने नन्दिनी को प्रतीक बनाकर एवं जननेताओं को सम्बोधित कर आज की स्थिति को बताते हुए उसके करूण क्रन्दन का वियोगिनी छन्द में निबन्धन इस प्रकार किया है–

विश्वोपकर्त्री जनपोषयित्री, स्वाहावषट्कारहविर्विधात्री।
मूल च लक्ष्म्याः दुरितापहन्त्री सा नन्दिनी क्रन्दति साम्प्रतं हा।। काम.71।।

अर्थात् संसार का उपकार करने वाली, जयपोषिनी, देवयज्ञों के निमित हवि का निर्माण करने वाली लक्ष्मी का आधार, समस्त पाप प्रणाशिनी धेनु नन्दिनी दुर्भाग्य से आज इस देश में अपने प्राणों की रक्षा के लिए चिल्ला रही है।

पुराणगीता वसुदा धरित्री तीर्थस्वरूपा जनमुक्तिदात्री।
देवाधिवासा जगतो हितैषिणी सीदत्यहो सा भुवि कामधेनुः।।काम.72।।

अर्थात् जिसका भारतीय पुराणों में यशोगान किया गया है। धन सम्पत्ति देने वाली धरा सी पवित्र तीर्थ स्वरूपा मानव को मुक्ति प्रदान करने वाली जिसके शरीर में देवताओं का निवास है। ऐसी जगत्कल्याणकारणी कामधेनु आज इस धरा पर संकटग्रस्त है। अतः ऐसी स्थिति में गोरक्षकों, गो–सेवकों व गो–भक्तों का तो सम्पूर्ण प्राथमिक व सर्वोच्च कर्तव्य बनता है कि अपनी सारी शक्ति गोरक्षा के कार्य में ही लगायें। इसके अतिरिक्त अन्य धर्माचार्यों, धार्मिक संगठन के प्रमुखों, कर्णधारों, अर्थशास्त्रियों, राष्ट के प्रबुद्ध नागरिकों, बुद्विजीवियों तथा गोपालक किसानों का परम कर्तव्य है कि वे इस समय गोरक्षा के लिए रचनात्मक योगदान करके एक सर्वहितकारी आदर्श प्रस्तुत करें। इस संदर्भ में स्वामी दत्तशरणानंद जी का कथन कुछ इस प्रकार है –

"गोरक्षा में ही राष्ट, धर्म, संस्कृति तथा समष्टि की रक्षा निहित है।"

संदर्भ

1. कामधेनु शतकम्, पण्डित श्रीराम दवे विरचित खण्डकाव्य, श्री ललिता आश्रम प्रन्यास, जोधपुर, द्वितीय संस्करण 2013
2. ब्रह्मवेवर्त पुराण
3. गो विशेषांक, गीता प्रेस, गोरखपुर

✦✦✦✦

शोध छात्र
संस्कृत विभाग,
कोटा विश्वविधालय, कोटा
(राजस्थान)

संस्कृत गद्य-साहित्य का स्वरूप एवं परम्परा

- राधाकिशन मीना

संस्कृत भाषा का गद्य-साहित्य कुछ अपनी विशिष्टता लिए हुए है। आर्य- जाति के साहित्य में गद्य का प्रथम अवतार हमारी देववाणी में ही हुआ। देववाणी संस्कृत का समृद्ध साहित्य न केवल प्राचीनतम परम्परा और समृद्धता के लिए, वरन् स्व-विविधता, रोचकता, सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति, समर्थता और विशिष्ट शैली के लिए भी विश्व-साहित्य में महनीय स्थान रखता है।

गद्य का स्वरूप एवं परम्परा

भारतीय साहित्य-शास्त्रियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है-(1) दृश्य काव्य (2) श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य में रूपकों (नाटकों) तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है, क्योंकि इसका अभिनय किया जाता है। श्रव्यकाव्य को तीन भागों में विभक्त किया गया है- गद्य, पद्य, चम्पू।

''गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्।''[1]

''गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।''[2]

दण्डी लिखते हैं- **''अपादः पदसन्तानो गद्यम्''**[3] अर्थात् पद्य-बन्ध रहित वाक्य विन्यास को गद्य कहते हैं।

गद्य शब्द गद् धातु (गद व्यक्तायां वाचि) से यत् प्रत्यय जोडने पर निष्पन्न होता है। यत् प्रत्यय विधि अर्थात् योग्य (चाहिए) अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः व्युत्पत्ति दृष्टि से गद्य शब्द का अर्थ 'कहा जाने योग्य' है। 'कहने' तथा 'कहने योग्य' में मूलभूत अन्तर है। जितना कुछ इस संसार में प्रतिक्षण कहा जाता है, उस सबको 'कहने योग्य' निर्धारित नहीं किया जा सकता। इसी कारण गद्य को भी काव्य में परिगणित किया गया है, पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि गद्य के द्वारा विचार अधिकाधिक रूप में व्यक्त हो जाते हैं। पद्य की अपेक्षा गद्य की अभिव्यक्ति अधिक सहज भी है और यथार्थ के अधिक समीप भी। यह लय प्रधान पद्य से नितान्त भिन्न है। भाषा के जिस स्वरूप में पद्यबन्ध का परित्याग करके भी। भाव एवं रस का समुचित परिपाक पाया जाता है, उसी को गद्यकाव्य कहा जाता है।[4] सुन्दर गद्यकाव्य की रचना कर सकना पद्य की अपेक्षा सदैव कठिनतर रहा- **'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।'** पद्य के रचयिता पर छन्द रचना की विविध व्यवस्थाओं एवं नियमों का नियन्त्रण होता है, किन्तु गद्यकार भावों के अनुकूल भाषा का स्वच्छन्द प्रयोग करने में स्वतन्त्र होता है। इसी स्वतन्त्रता के कारण गद्यकार का कार्य अधिक कठिन बन जाता है।

संस्कृत साहित्य में गद्य-विधा का स्थान

मानव सामाज के इतिहास में पद्य की अपेक्षा गद्य का स्थान निश्चित ही अति प्राचीनतर है। पद्य का सम्बन्ध भावना से माना जाता है और गद्य निश्चयेन विचार सरणि से सम्बद्ध है। गद्य की शैली विचार की वाहिका है और बौद्धिक ज्ञान के क्षेत्र को वाणी का मूर्त्त रूप देने में ही इसका अधिकतर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य के विचार क्रम का सहज रूप गद्यात्मक ही होता है। यही कारण है कि हम वार्तालाप के समय गद्यात्मक शैली में ही व्यवहार करते हैं। साहित्य में जीवन का स्वाभाविक प्रतिबिम्बन होता है, इसी कारण संस्कृत में भी पद्य साहित्य

के समानान्तर ही गद्य साहित्य प्रतिष्ठित है। वैदिक युग से ही गद्य शैली के प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीनतम संहिता-ऋग्वेद में गद्यशैली के दर्शन नहीं होते। इस सम्बन्ध में ओल्डेनबर्ग आदि प्रसिद्ध पाश्चात्त्य विद्वानों की सम्मति में ऋग्वेद के संवाद सूक्त मूलतया गद्य-पद्य सम्मिश्रित थे, किन्तु कालान्तर में शनैः शनैः उनका गद्य भाग लुप्त हो गया। इसका कारण यह है कि पद्य की अपेक्षा गद्य शीघ्रता से विस्मृत हो जाता है। ऋग्वेद में भले ही गद्य प्राप्त न होता हो किन्तु अन्यत्र सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में गद्य का प्राचुर्य है। कृष्ण यजुर्वेद की विभिन्न शाखाओं में वैदिक गद्य का प्राचीनतम रूप उपलब्ध होता है। अथर्ववेद में भी गद्यांश प्रचुर मात्रा में है। संहिताओं का यह गद्य स्वाभाविक, सरल तथा रोचक है। व्यावहारिक संवादों के गद्य की भाँति ही संहिता कालीन गद्य में समास-बहुलता का अभाव हैं।[5] वेदों के व्याख्या- रूप ग्रन्थ-ब्राह्मणों में, विशेषतया ऐतरेय-ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण एवं गोपथ-ब्रह्मण में गद्य का बहुल प्रयोग किया गया है। इन ब्राह्मणग्रन्थों में वैदिक मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या, प्राचीन आख्यान तथा कर्मकाण्ड-विधि का वर्णन होने के कारण गद्य-शैली का प्रयोग ही अधिक समीचीन था। ब्राह्मणकालीन गद्य भी सहज, सुन्दर तथा सरल है। साथ ही अनेक स्थलों पर अलङ्कार भी सहजतया द्रष्टव्य हैं।[6] ब्राह्मण गन्थों के पश्चात् आरण्यकों और उपनिषदों में भी गद्य का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। इस गद्य में बहुत छोटे-छोटे सूत्रात्मक वाक्यों एवं पुनरुक्ति के द्वारा विषय को हृदयङ्गम करा देने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है-

सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्.... मातृदेवो भव।
पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव।......[7]
यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद् विजानाति भूमा.....[8]

स्पष्ट है कि वैदिक संहिताओं में ही हमें गद्य का प्रथम दर्शन मिलता है। गद्य से मिश्रित होने के कारण ही कृष्णयजुर्वेद का कृष्णत्व है। प्राचीनतम गद्य का उदाहरण हमें इस वेद की तैत्तिरीय संहिता में उपलब्ध होता है। इस संहिता में गद्य-भाग पद्य की अपेक्षा मात्रा में कथमपि न्यून नहीं है। इस वेद की अन्य संहिताओं जैसे- काठक संहिता, मैत्रायणी संहिता आदि में भी गद्य की सत्ता उसी मात्रा में है। कालक्रम में कुछ उतरकर अथर्ववेद का गद्य है। अथर्व का छठा भाग गद्यात्मक ही है। समस्त ब्राह्मणों की रचना गद्य रूप में ही है। यज्ञों के वर्णनात्मक होने से इसका प्रयोग उचित ही है। आरण्यकों में भी गद्य की प्रचुरता है। उपनिषद् में प्राचीन उपनिषद् गद्यात्मक ही है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में गद्य का प्रयोग बहुत ही व्यापक, उदार तथा उदात्त रूप में हुआ है। गद्य में विचार तत्त्व ही प्रबलता, स्मरण रखने का श्रम, आलोचकों की उपेक्षा, गद्य-काव्य का ऊँचा मानदण्ड व पद्य में भावना का प्राधान्य होने के कारण कविगण गद्यकाव्य - रचना की ओर अभिमुख नहीं होते थे। इतना होने पर भी संस्कृत में गद्य का प्रचुर साहित्य विद्यमान है तथा इसका जितना भी अंश गद्य में लिखा गया है, उसकी अपनी विशिष्टता है। यही कारण है कि छठी-सातवीं शताब्दी के गद्य काव्यकार दण्डी, सुबन्धु और बाण का स्थान गद्य- साहित्य में सर्वोच्च है।

गद्य में कवि स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी प्रतिभा, वैदुषी, कौशल, विदग्धता प्रदर्शित कर सकता है, गुणालंकार की सफल योजनापूर्वक रसात्मकता वाक्य में रमणीयता का आधान भी कर सकता है। गद्य में हृदयोरित कल्पना भावना स्वेच्छापूर्वक विचरण करती है। इस अवसर पर कवि की वास्तविक परीक्षा होती है। गद्य में कवि किसी प्रकार की बहानेबाजी से अपने को बचा नहीं सकता है। सामान्यतया यह

कहा जाता है कि गद्य-शैली भाव-प्रकाशन की सर्वश्रेष्ठ शैली है। अतः गद्य के बारे में कहा भी गया है- **''गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति''**[9]

अर्थात् गद्य कवियों की विद्वत्ता की कसौटी है। इसलिए कवि शिरोमणि महाकवि कालिदास नाट्य, गीत, काव्य आदि की रचना में कुशल हैं, किन्तु उनकी गद्य-काव्य में प्रवृत्ति दृष्टिगत नहीं होती है। यह कदापि स्वीकरणीय नहीं है कि कालिदास के काल में गद्य का सर्वथा अभाव था क्योंकि कालिदास के समय में रचित रुद्रदामन के गिरिनार अभिलेख, समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति दोनों ही स्तम्भ गद्य के उत्कृष्टतम आदर्श हैं। इन दोनों के कर्त्ता रस, गुण, अलंकारदि से भी परिचित थे। अतः गद्य कवियों की विद्वत्ता की कसौटी है, जिसका संस्कृत-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित है।

संस्कृत गद्य काव्य का उद्भव

गद्य काव्यों की उत्पत्ति के विषय में जो विभिन्न मत प्रस्तुत किए गए हैं, उनमें विशेष उल्लेखनीय मत ये हैं-1. गद्य काव्यों की उत्पत्ति पद्य काव्यों से लोककथाओं के माध्यम से हुई। 2. ग्रीक-गद्य-रचनाओं से भारतीय गद्य-काव्यों की उत्पत्ति हुई। 3.गद्य काव्यों की उत्पत्ति पद्य-काव्यों के समानान्तर स्वाभाविक क्रमिक विकास से हुई ।[10]

प्रथम मत का अभिप्राय है कि संस्कृत के गद्य काव्य मूलतः पद्य-काव्यों से उत्पन्न हुए हैं। पद्य काव्यों के प्रभाव के कारण ही उनमें आलंकारिकता, मानोभावों की अभिव्यक्ति, शारीरिक, नैतिक एवं प्राकृतिक वर्णनों की प्रचुरता का सामञ्जस्य प्राप्त होता है। पद्य-काव्यों के तुल्य गद्य-काव्यों में भी कृत्रिमता, पण्डित्य-प्रदर्शन और रसाभिव्यक्ति पर बल है। जहाँ तक कथानक का सम्बन्ध है, वह बृहत्कथा आदि लोककथा ग्रन्थों से लिया गया है।

दूसरा मत पीटर्सन आदि ने प्रस्तुत किया है कि भारतीय गद्य-काव्य प्रत्यक्षतः यूनानी गद्य-काव्य के अनुकरण पर विकसित हुआ था।[11] कुछ भारतीय विद्वान् भी यूनानी गद्य के अनुकरण पर संस्कृत गद्य-काव्य के रचना-सम्बन्धी पाश्चात्त्य विचारकों के मत से सर्वथा सहमत प्रतीत होते हैं।[12] प्रो. सिल्वॉ लेवी तो यूनानी गद्य की तुलना के योग्य ही संस्कृत-गद्य को नहीं मानते, क्योंकि उनके मत से ये दोनों गद्य-काव्य रचना और भाव की दृष्टि से सर्वथा भिन्न हैं। संस्कृत गद्य-काव्य में कथा या साहसिकता बहुत कम उपलब्ध होती है। उसमें मुख्य ध्यान काव्य शास्त्रीय आलंकारिकता, सूक्ष्म-प्रकृति-वर्णन तथा नैतिक, मानसिक और शारीरिक गुणों के चित्रण पर दिया जाता है। इसके विपरीत ग्रीक और लैटिन गद्य-काव्यों में कथा ही सब कुछ होती है। पाठक एक से दूसरे साहसिकता सम्बन्धी घटना-चक्र में क्रमशः डूबता चला जाता है और वे घटना-क्रम क्रमशः अधिक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण होते चले जाते हैं। इस गद्य में शैली-सौन्दर्य तथा प्राकृतिक दृश्यों आदि की यथासंभव उपेक्षा ही दिखाई पड़ती है।[13] प्रायः सभी विद्वानों ने संस्कृत गद्य-काव्यों पर यूनानी गद्य-रचनाओं के प्रभाव का खण्डन किया है। प्रो. लाकोटे ने तो यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यूनानी गद्य काव्यों पर भारतीय गद्य-काव्यों का प्रभाव पड़ा और यूनानी गद्य-काव्य ही भारतीय गद्य-काव्यों का ऋणी है।[14] भाषा, शैली, कथावस्तु, कथानक, संघटन, अलंकार योजना तथा रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से यूनानी और भारतीय गद्य-काव्य पूर्णतया एक दूसरे से पृथक् है, अतः भारतीय गद्य-काव्यों पर यूनानी प्रभाव की चर्चा सर्वथा असङ्गत है।

प्रथम मत के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि संस्कृत गद्य-काव्यों की कोई धारा नहीं थी और परकाल में पद्य-काव्य की एक नवीन शाखा (नई कलम New Graft) के रूप में गद्य काव्य का विकास हुआ। परन्तु तात्त्विक विवेचन से यह मत भी असंगत एवं निराधार प्रतीत होता है। वास्तविकता यह है कि वैदिक काल से ही जिस प्रकार वैदिक संस्कृत के साथ प्राकृत भाषा समानान्तर अविच्छिन्न रूप से विकसित होती रही और आज भी अपने विभिन्न स्वतन्त्र रूपों में विद्यमान है, उसी प्रकार पद्य-शैली के साथ ही गद्य-शैली समानान्तर चलती रही। पद्य-शैली में जब और जिस रूप में विकास और परिवर्तन हुए तदनुरूप ही गद्य-शैली में भी समानान्तर विकास और परिवर्तन परिलक्षित हुए। विभिन्न संस्कृतियों और भावों का यथा-समय दोनों ही धाराओं पर समान रूप से प्रभाव पड़ा। लेखन सामग्री के अभाव के कारण स्मरण-शक्ति को बोझिल न बनाने के लिए एक ओर धार्मिक कृत्यों के लिए पद्य-शैली अपनाई गई और दूसरी ओर शास्त्रीय, दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयों वाल्मीकि के समय से पद्य शैली के लौकिक-काव्यात्मक के लिए गद्य-शैली अपनाई गई। गद्य शैली में भी सूत्र शैली को प्रमुखता दी गई। लेखन सामग्री की सुविधा के साथ ही दोनों शैलियों में कलात्मक विस्तार और विवरण-प्रधानता आयी। एक ओर वाल्मीकि के समय से पद्य-शैली ने लौकिक-काव्यात्मकता, अलंकार-प्रियता का रूप लिया तो दूसरी ओर गद्य-शैली ने अपनी नीरसता एवं अमनोज्ञता को छोड़कर कथा और आख्यायिकाओं को अपनाकर सरसता, अलंकार-प्रियता और मनोज्ञता का आधान किया। लोकप्रियता के लिए पद्य शैली ने राम और कृष्ण के उदात्त-चरित का आश्रय लिया तो गद्य-शैली ने अपनी लोकप्रियता के लिए उदयन, नरवाहनदत्त, वासवदत्ता, यक्ष एवं विद्याधरों आदि से सम्बद्ध कथानकों का आश्रय लिया। कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष आदि ने ज्यों-ज्यों पद्य धारा को क्रमशः सातिशय अलंकार-बहुल और कृत्रिम बनाया, तदनुरूप ही हरिषेण, दण्डी, सुबन्धु और बाण आदि ने भी गद्य-धारा को समास-प्रधान एवं अलंकार-बहुल और कृत्रिम बनाया। विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, जातियों एवं धर्मों के प्रादुर्भाव के कारण दोनों ही धाराओं में समान रूप से विभिन्न परिष्कार आदि गुणों तथा कृत्रिमता आदि दोषों का समावेश हुआ। इस प्रकार दोनों ही धाराओं का स्वतन्त्र रूप से अविच्छिन्न विकास होता गया है। यदि वैदिक-हिमगिरि से निकलने वाली पद्य-धारा गङ्गा है तो गद्य-धारा यमुना है और सहृदयहृदय-सरस्वती दोनों का सङ्गम स्थल है।

संस्कृत गद्य-काव्य का विकास

समीक्षकों ने गद्य काव्य को दो भागों में विभक्त किया है- (1) वैदिक साहित्य का गद्य और (2) लौकिक साहित्य का गद्य। वैदिक साहित्य के गद्य से तात्पर्य है, वह गद्य, जो वेदों (चारों संहिताओं), ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं छहों वेदाङ्गों में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार लौकिक संस्कृत साहित्य के गद्य का रूप महाभारत, पुराण, कथा, व्याकरण, भाष्यग्रन्थ, अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र, दर्शन, नाटक एवं नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों के साथ-साथ शिलालेखों एवं प्रशस्तियों में भी प्रयुक्त हुआ है। वैदिक गद्य प्रायः सहज, सरल तथा बोलचाल की भाषा का गद्य है। इसमें परिपक्वता नहीं है, जो लौकिक गद्य में मिलती है। यह गद्य पाणिनि के व्याकरण की दृष्टि से नितान्त शुद्ध और परिष्कृत था। यह लौकिक गद्य भी प्रमुखतया तीन प्रकार का माना जा सकता है- (1) पौराणिक गद्य, (2) शास्त्रीय गद्य (3) साहित्यिक गद्य। प्रथम पौराणिक गद्य महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा कतिपय पुराणों में उपलब्ध होता है। पुराणों का अधिकांश भाग पद्यमय है, किन्तु

बीच-बीच में गद्यांश भी प्राप्त होते हैं। विद्वानों ने वस्तुतः पौराणिक गद्य को वैदिक तथा लौकिक गद्य के बीच की कड़ी माना है, क्योंकि इस पौराणिक गद्य में दोनों ही गद्यरूपों की विशेषता प्राप्त होती है। एक ओर वैदिक गद्य के समान इसमें लधु बन्ध, आर्ष प्रयोग तथा भाषा का सहज प्रवाह है तो दूसरी ओर लौकिक गद्य के समान अलंकार-प्रियता एवं प्रौढि भी है। विष्णु पुराण का गद्य तो विशेषतया प्रासादिक एवं प्राञ्जल है- **यथैव व्योम्नि वह्निपिण्डोपमं त्वामहमपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमित्यत्र भवता किञ्चिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्ष्यामीत्युक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्य एकान्ते न्यस्तम्।**[15]

शास्त्रीय गद्य का विकास सूत्रग्रन्थों की परम्परा में हुआ। मीमांसासूत्रों के शबरस्वामी-कृत भाष्य, वेदान्त सूत्रों के आद्य शंकराचार्य-कृत भाष्य आदि में विवेचनात्मक, तर्कसम्मत तथा परिष्कृत शास्त्रीय पद्य देखने को मिलता है, किन्तु परवर्ती दर्शन ग्रन्थों विशेषतया नव्यन्यायशास्त्र के ग्रन्थों का शास्त्रीय गद्य कृत्रिम और दुरूह हो गया। इन दर्शन ग्रन्थों के अतिरिक्त वैद्यक ग्रन्थों के कुछ अंशों, अलंकारशास्त्र और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी शास्त्रीय गद्य का सुन्दर रूप प्राप्त होता है।

साहित्यिक गद्य शैली का लेखन ई.पू. से ही प्रारम्भ हो गया था। वार्तिककार कात्यायन ने आख्यायिकाओं (कथाओं) का बहुवचन में प्रयोग कर उनकी बहुलता की ओर संकेत किया है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने तो ''वासवदत्ता'' ''सुमनोतरा'', ''भैमरथी'' आदि रचनाओं का नामतः उल्लेख किया है। इसी प्रकार दशम शताब्दी के श्रीभोज ने अपनी रचना ''शृङ्गार प्रकाश' में ''मनोवती'' और ''सातकर्णीहरण'' व दण्डी ने 'मनोवती' का उल्लेख किया है। ''गाथासप्तशती'' के लेखक हाल (प्रथम शताब्दी) के दरबारी कवि श्रीपालित ने ''तरङ्गवती'' का, कालिदास के पूर्ववर्ती कवि रामिल्ल व सौमिल्ल ने ''शूद्रक- कथा'' का प्रणयन किया था। महाकवि बाणभट्ट ने ''हर्षचरित'' में ''भट्टारकहरिश्चन्द्र'' के मनोहारी व प्राञ्जल गद्य की प्रशंसा की है, जिससे उनकी किसी ऐसी रचना का होना प्रमाणित होता है। इन सङ्केतों के अतिरिक्त अन्य गद्य काव्य भी रचे गये होंगे। परन्तु आज उनका नाम उपलब्ध नहीं है।

गद्य काव्य के इस उद्भव और विकास को जान लेने पर एक आश्चर्यजनक तथ्य उभर कर सम्मुख आता है कि गद्यकाव्य शैली का इतिहास इतना प्राचीन होने पर भी सातवीं शती ईस्वी के सुबन्धु, बाण, दण्डी आदि की रचनाओं से पूर्व रचे गए गद्यकाव्यों में एक भी प्राप्त नहीं होता। इस विचित्र स्थिति के लिए एक ही अनुमान लगाया जा सकता है कि दण्डी आदि की रचनाओं में संस्कृत के साहित्यिक गद्य का जो अत्यन्त परिष्कृत और प्राञ्जल रूप प्राप्त होता है, उसके पीछे अनेक सदियों की सतत साधना और अभ्यास की पृष्ठभूमि अवश्य थी। किन्तु दण्डी, बाण आदि के गद्य ने जनमानस को इतना चमत्कृत एवं मुग्ध कर दिया कि पूर्ववर्ती गद्य लेखक विस्मृत ही कर दिए गए, और उनके ग्रन्थ पठन-पाठन में न होने के कारण विस्मरण के अभेद्य अन्धकार में लुप्त हो गए।

संस्कृत गद्य काव्य की विशेषताएँ

संस्कृत गद्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। कृष्णयजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, साहित्य एवं उपनिषद् साहित्य में गद्य का स्वरूप मिलता है। यह स्वरूप वैदिक कर्मकाण्ड की व्याख्या में परिलक्षित होता है। यास्क का निरुक्त, पाणिनि की अष्टाध्यायी और भारतीय दर्शन के ग्रन्थों में सूत्रात्मक गद्य के दर्शन होते हैं। इसी व्याख्यात्मक एवं सूत्रात्मक गद्य शैली ने भावी संस्कृत गद्य के विकास की

पीठिका प्रस्तुत की है। इन दोनों प्रवृत्तियों के कारण शैली की दृष्टि से संस्कृत गद्य को अलङ्कृत व अनलङ्कृत दो भागों में बाँटा गया है। लाघवता या लघुता संस्कृत गद्य की सर्वाधिक विशेषता है, जिसमें पूरे वाक्य में व्यक्त किये गये विचार को एक ही पद में रखा जाता है। वस्तुतः ''समास'' संस्कृत-भाषा का प्राण है, जिसके कारण गद्य में भाव-ग्राहिता, गाढबन्धता एवं प्रभान्विति आती है। संस्कृत गद्य 'ओजो' गुण से समन्वित है। पदों का साभिप्राय होना ओजोगुण के अन्तर्गत जाता है। आचार्य दण्डी के अनुसार समास का बाहुल्य ही ओज है और ओज गद्य का जीवन है-

''ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्।''

मानव-हृदय की नाना संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करने में पद्य की अपेक्षा गद्य कहीं अधिक समर्थ रहता है। संस्कृत-गद्य भी विभिन्न भावभूमियों की व्याख्या करने में सक्षम है। इसमें कोमल एवं दुरूह भावों की सकल अभिव्यक्ति होती रही है। संस्कृत गद्य-साहित्य में शास्त्रीय ग्रन्थ, ज्ञान-चर्चा, दर्शनग्रन्थों के भाष्य तथा शृङ्गार, वीर आदि रसों से आप्लावित ललित ग्रन्थों के दर्शन होते हैं। जटिल दार्शनिक समस्याओं के निरूपण में तथा व्याकरण के शास्त्रीय विवेचन में अर्थगम्भीरता विशेषरूप से दृष्टिगोगत होती है। यह एक विशिष्ट प्रकार की शैली के रूप में प्रकट हुई, जिसके द्वारा गूढ़तम भावों की सफल अभिव्यक्ति होती है। जटिल एवं गूढ़ भावों की अभिव्यक्ति होने पर प्रसन्न पदावली तथा अर्थगाम्भीर्य सर्वत्र दृष्टि गोचर होता है।

कादम्बरी में शुकनाशोपदेश का प्रसङ्ग संस्कृत अलंकृत गद्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है। अलंकारों की प्रचुरता संस्कृत गद्य की अन्य विशेषता है। विश्व की अन्य किसी भाषा में अलंकरणप्रियता इतनी अधिक नहीं है जितनी संस्कृत भाषा में। संस्कृत काव्य शास्त्र में अलंकारों के भेदोपभेदों का विस्तृत निरूपण हुआ है। इन अलंकारों के प्रयोग से भाव-गाम्भीर्य, चमत्कार, पदलालित्य और भाषा-सौन्दर्य की वृद्धि होती है। पदलालित्य संस्कृत गद्य की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता है। कहीं इसकी कोमलकान्त पदावली पाठक की हृदयवीणा के तारों को झङ्कृत कर देती है तो कहीं कठोर पद-विन्यास उसे अभिभूत बनाये बिना नहीं रहता है। आचार्य दण्डी का गद्य इस विशेषता से अतीव मनोहारी बना है, अतएव **'दण्डिनः पदलालित्यम्'** उक्ति ही प्रसिद्ध हो गई है।

निष्कर्ष-स्वरूप कहा जा सकता है कि संस्कृत गद्य विविध विशेषताओं से आपूर्ण है। इस विशेषताओं ने ही उसके स्वरूप को गरिमा मण्डित बनाया है। आचार्य-प्रवर श्री बलदेव उपाध्याय के शब्दों में, ''देववाणी का गद्य प्राचीनता तथा प्रौढ़ता, उपादेयता तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से हमारे साहित्य का एक गौरवपूर्ण अङ्ग है।''[16] इसमें गद्य काव्य के पाँच भेद कहे गए हैं- आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा, एवं कथानिका। तदुपरान्त गद्यकाव्य के भेदों का विवेचन भामह के अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थ में प्राप्त होता है। आचार्य हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' में गद्यकाव्य के उपर्युक्त दो प्रसिद्ध भेदों के साथ-साथ दस प्रभेदों के स्वरूप को भी स्पष्ट किया है और उन प्रभेदों के उदाहरण स्वरूप को भी स्पष्ट किया है और उन प्रभेदों के उदाहरण स्वरूप रचना का नाम भी उल्लिखित किया है। आचार्य विश्वनाथ ने भी इन दोनों गद्य-बन्ध-भेदों का विवेचन किया है। कथा और आख्यायिका ये दो भेद ही समस्त शास्त्रीय परम्परा में एक मत से स्वीकृत हुए हैं।

संदर्भ

1. काव्यादर्श, दण्डी, 1-11।
2. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, 6-336।
3. काव्यादर्शः, दण्डी, 1/23
4. अपादः पदसन्तानो, काव्यादर्श, दण्डी, 1/23
5. अर्थववेद, बात्यकाण्ड-व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्।
   स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यति तत्प्राजनयत्
6. ऐतरेय ब्राह्मण 30/1 - हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः। स ह नारदं प्रपच्छ।
7. तैत्तिरीय उपनिषद्, 1/11/1-4
8. छान्दोग्य उपनिषद्, 7/24
9. काव्यालङ्कारसूत्र, 1/3 (21) पर वामन द्वारा रचित काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति से उद्धृत।
10. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी पृष्ठ, 454-455
11. पीटर्सन, कादम्बरी की भूमिका, द्वितीय संस्करण, 1889, पृष्ठ 101-104
12. हेलेनिज्म इन एंशिएण्ट इंडिया, जी. बनर्जी।
13. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, कृष्णमाचारी, पृष्ठ 440
14. एल.एच.ग्रे, कृत वासवदत्ता की भूमिका पृष्ठ 35
15. विष्णुपुराण, 4/13/14
16. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ - 406

✦✦✦✦

व्याख्याता–संस्कृत
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
हिंडौन सिटी (राज.)

गाँधी एवं विवेकानन्द की सर्वधर्मसमभाव युक्त विश्वदृष्टि : एक तुलनात्मक अध्ययन

- डॉ. अलका जैन

गाँधी एवं विवेकानन्द की सर्वधर्मसमभाव युक्त विश्वदृष्टि उनका समस्त जगत के लिए बहुत बड़ा योगदान है। गाँधी एवं विवेकानन्द दोनों ही हिन्दू धर्म के महान उन्नायक माने जाते हैं। हिन्दू धर्म की सहिष्णुता, व्यापकता और संग्राहकता ने गाँधी एवं विवेकानन्द की जीवन–शैली को प्रभावित किया था। हिन्दू धर्म में साधना की अनेक पद्धतियाँ हैं। लक्ष्य एक है। उस तक पहुँचने के मार्ग अलग–अलग हो सकते हैं। विवेकानन्द ने ईश्वर तक पहुँचने के मार्गों के रूप में ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग तथा प्रेमयोग की विशद् व्याख्या की है। यहाँ विवेकानन्द ज्ञान व दर्शन की दृष्टि से अधिक समृद्ध नजर आते हैं, परंतु चिंतन व दर्शन की व्यावहारिकता की दृष्टि से गाँधी अधिक बेहतर प्रतीत होते हैं क्योंकि न केवल उन्होंने अपना जीवन इन सिद्धान्तों को अपनाते हुए जीया बल्कि उनके जीवन काल में ही लाखों व्यक्ति गाँधी–मार्ग के अनुयायी बने। दरअसरल गाँधी की ईश्वर सम्बन्धी अवधरणा सीधी रेखा में चलती है–जटिलताओं, घुमावों से परे जबकि विवेकानन्द कहीं–कहीं अत्यधिक गूढ़ शब्दावली को अपनाते हैं जो साधरणजन के लिए समझ से बाहर हो जाती है। लेकिन इस बात पर गाँधी एवं विवेकानन्द दोनों एकमत हैं कि हिन्दू धर्म सभी धर्मों के सार को स्वंय में समाहित करता है। यह एक जीवित धर्म है। यह अनेक युगों के विकास का फल है। इसमें सैद्धांतिक कट्टरता नहीं है। इसी कारण इसके अनुयायी को आत्माभिव्यक्ति का अधिक अवसर मिलता है। हिंदू धर्म वर्जनशील नहीं है, अतः इसके अनुयायी न सिर्फ दूसरे धर्मों का आदर कर सकते हैं बल्कि वे सभी धर्मों की अच्छी बातों को पसंद कर सकते हैं और अपना सकते हैं।

गाँधी का आंतरिक जीवन परम धर्मिक था, वही उनके सांसारिक कार्यों को शक्ति और सार्थकता देता था। धर्म में ही उन्हें अपना सच्चा रूप दिखाई देता था। उन्होंने भाव को महत्व दिया। यह भाव या भावना उन्हें सर्वोत्तम रूप में नरसी मेहता के उस भजन में दिखाई देती थी जिसमें सच्चा वैष्णव उसे बताया गया है जो दूसरों के दुःख में दुःखी हो सकता है। इन दुःखी जीवों की ही उन्होंने 'दरिद्रनारायण' के रूप में सेवा करनी चाही। उनकी अधिक से अधिक संख्या के साथ, अधिक से अधिक मात्रा में, तादात्म्य स्थापित करते रहने का ही उन्होंने निरंतर, जीवन भर प्रयास किया। यह प्रवृत्ति उनकी राजनैतिक व सामाजिक क्रियाशीलता में पूरी तरह घुल–मिल गई। इस क्षेत्र में भगवद्गीता के कृष्ण उनके पथ–प्रदर्शक थे और कर्मयोग उनका दर्शन था।[1]

विवेकानन्द ने भी निर्धनों को 'दरिद्रनारायण' माना, यह बड़ा रोचक तथ्य है कि इस शब्द के जनक वे स्वंय थे, कालान्तर में गाँधी ने इसे लोकप्रियता प्रदान की और अधिक व्यावहारिक बनाया। विवेकानन्द का मानना है कि जिसकी हम सहायता करते हैं–उसे साक्षात् नारायण मानना चाहिए। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें परोपकार द्वारा ईश्वर की सेवा करने का अवसर मिला है। संसार में दुःख, कष्ट बहुत है, इसलिए लोगों की सहायता करना सर्वश्रेष्ठ कार्य है।

विवेकानन्द व गाँधी दोनों ही 'कर्मयोग' के उपासक थे। दोनों ही महापुरूषों ने न केवल इसकी दार्शनिक व्याख्या की अपितु इसके आदर्शों को साक्षात् जीवन में उतारा।

विवेकानन्द लिखते हैं कि 'भगवद्गीता में हमें इस बात का बारम्बार उपदेश मिलता है कि हमें निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए। कर्म स्वभावतः ही सत् असत् से मिश्रित होता है। हम ऐसा कोई भी कर्म नहीं कर सकते, जिससे कहीं कुछ भला न हो, और ऐसा भी कोई कर्म नहीं है, जिससे कहीं न कहीं कुछ हानि न हो। सत् और असत् दोनों ही आत्मा के लिए बंधनस्वरूप है। इस सम्बन्ध में गीता का कथन है कि यदि हम अपने कर्मों में आसक्त न हों तो हमारी आत्मा पर किसी प्रकार का बंधन नहीं पड़ सकता।[2]

यद्यपि विवेकानन्द स्वयं संन्यासी थे लेकिन उन्होंने गृहस्थ जीवन को कभी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा। उन्होंने माना कि संसार को छोड़कर स्वच्छन्द व शान्त जीवन में रहकर ईश्वरोपासना करने की अपेक्षा संसार में रहते हुए ईश्वर की उपासना करना बहुत कठिन है। गृहस्थ को ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए तथा ब्रह्मज्ञान का लाभ ही उसके जीवन का चरम लक्ष्य होना चाहिए परंतु फिर भी उसे निरंतर अपने सब कर्म करते रहना चाहिए अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहना चाहिए।

गाँधी का भी यही मानना था कि धर्मपालन का यह अर्थ नहीं कि संसार के समस्त कार्यों व कर्त्तव्यों को अपने से दूर हटाकर ईश्वर की आराधना में लग जायें और समस्त धार्मिक नियमों का अक्षरशः पालन किया जाये। धर्म तथा ईश्वर का अवस्थान मानव क्रिया में ही है।

विवेकानन्द के कर्मयोग पर जहाँ 'गीता' एवं वेदान्त का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है वहीं गाँधी ने 'कर्मयोग' की प्रेरणा 'गीता' से अनुप्राणित होकर ग्रहण की, वहीं इस सम्बन्ध में टॉल्सटॉय, थोरो व रस्किन के प्रभावों तथा 'कायिक श्रम' व 'न्यासिता' के सिद्धान्तों को इसमें सम्मिलत कर इसे अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक बनाया।

विवेकानन्द ने जहाँ 'राजनीति' को सर्वथा त्याज्य माना एवं धर्म के माध्यम से समाज–सेवा को अपना ध्येय माना, वहीं 'राजनीति' गाँधी का प्रमुख 'कर्मक्षेत्र' था और इसी संदर्भ में उन्होंने गीता की नवव्याख्या प्रस्तुत की। वे अपने संस्कार, संस्कृति, अनुभव, आन्तरिक ज्ञान तथा सामयिक संदर्भ से भिज्ञ थे एवं उनकी दृष्टि में गीता केवल पराभौतिक उद्घोष न होकर जीवन की मूल चुनौतियों का प्रसंग था। गीता को कोई पंथ विशेष अथवा विचारधारा विशेष न मानकर, गाँधी ने उस संकलन को गम्भीर मानवीय मूल्याधार के स्तर पर स्वीकारा। अद्वैत दर्शन के समर्थक होने के नाते गाँधी ने किसी वैयक्तिक दर्शन को व्यक्त न कर, गीता को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण पाया। राष्ट्रीय चुनौतियों के सम्भाव्य विकल्पों की खोज में गीता की नवव्याख्या, गाँधी के प्रयोजनों की अभिव्यक्ति है।

महात्मा गाँधी पर जिन ग्रंथों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था, उनमें रामायण का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने 'रामचरितमानस' को विचार रत्नों का भंडार कहा है। गाँधी का मानना था कि इससे लाखों मनुष्यों को शांति मिली है। जो लोग ईश्वर विमुख थे, वे ईश्वर के सम्मुख हो गए हैं और आज भी हो रहे हैं। मानस का प्रत्येक पृष्ठ भक्ति से भरपूर है। मानस अनुभवजन्य ज्ञान का भंडार है। जहाँ गाँधी मर्यादापुरूषोत्तम राम से अत्यधिक प्रभावित थे, वहीं विवेकानन्द को जिस चरित्र ने सर्वाधिक प्रभावित किया–वह है–सीता। विवेकानन्द सहिष्णुता का पाठ सीता से

पढ़ने की सलाह देते हैं। सहस्रों वर्षों से सीता का चरित्र भारतीय राष्ट्र का आदर्श रहा है। अत्याचारों के प्रतिशोध का विचार तक उनके हृदय में नहीं आया। पश्चिम कहता है, हम अशुभ पर विजय प्राप्त करके ही उसका नाश करते हैं। भारत कहता है हम अशुभ का नाश करते हैं–सहन करके, यहाँ तक कि वह हमारे लिए आनन्द की वस्तु बन जाता है। भारतीय राष्ट्र और समाज के लिए सीता सहिष्णुता के उच्चतम आदर्श के रूप में है।[3]

गाँधी के अनुसार महाभारत एक गहन धार्मिक ग्रंथ है। इतिहास के साथ उसका संबंध अप्रामाणिक है। उसमें तो शाश्वत युद्ध का वर्णन है जो हमारे भीतर निरंतर होता रहता है। वे उसे रत्नों की खान मानते थे जिसमें गीता एक सर्वाधिक दैदीप्यमान रत्न है। महाभारत में धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार अध्यात्म आदि विषयों का सारगर्भित विवेचन है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरूषार्थों का वर्णन है। धर्म से मोक्ष तो सिद्ध होता ही है, अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं। कामना से, भय से, लोभ से अथवा प्राण बचाने के लिए भी धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म नित्य है एवं सुख–दुःख अनित्य। विवेकानन्द ने महाभारत को भारत का उच्च भावात्मक महाकाव्य कहा है। उन्होंने 1 फरवरी 1900 ई. को कैलिफोर्निया के अन्तर्गत पैसाडेना की 'शेक्सपियर सभा' में महाभारत को आचार–शैली व ज्ञान का ऐसा विश्वकोष बताया जिसमें एक ऐसी उन्नत सभ्यता का चित्र खींचा गया है जो मानवजाति को अब भी प्राप्त करनी है। उन्होंने भी 'गीता' के उद्घोष को महाभारत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना माना है। 'कर्मयोग' के आदि प्रणेता भगवान् कृष्ण की 'गीता' में जहाँ गाँधी ने जीवन के अनमोल सूत्र खोज डाले, वहीं विवेकानन्द ने भी भारत के बाहर गीता के सर्वोदात्त संदेश का प्रचार–प्रसार किया। विवेकानन्द ने अपने भाषण में कहा था– 'एमर्सन के उच्च भाव–स्त्रोत का उद्गम यही गीता है।' कांकार्ड में जिस उदार दार्शनिक तत्व के आंदोलन का प्रारम्भ हुआ, उसकी नींव इसी छोटी सी पुस्तक से पड़ी और अमेरिका में जितने उदार भावों के आंदोलन हैं, वे सभी किसी न किसी प्रकार उस कांकार्ड आंदोलना के ऋणी हैं।[4]

विवेकानन्द का मानना है कि गीता के प्रवर्त्तन से पूर्व भी ज्ञान योग, भक्तियोग इत्यादि के दृढ़ अनुयायियों का अस्तित्व था किन्तु वे आपस में विवाद करते थे। प्रत्येक व्यक्ति स्वंय द्वारा चुने गए मार्गों की उत्कृष्टता का दावा करता था। इन विभिन्न मार्गों में समन्वय स्थापित करने का किसी ने भी प्रयत्न नहीं किया। गीता की मौलिकता व विशिष्टता इसी बात में है कि इसके रचयिता ने उस समय प्रचलित सभी धर्म–संप्रदायों के सर्वोत्तम तत्वों को लिया और गीता में सूत्रबद्ध कर दिया। गाँधी जहाँ इसमें कर्मयोग और अहिंसा के व्यावहारिक सूत्रों की खोज करते हैं वहीं विवेकानन्द ने इसे सर्वधर्मसमभाव के प्रेरक आदर्श के रूप में स्थापित करने का अद्वितीय प्रयास किया है।

'उपनिषद्' का अर्थ है–आध्यात्म विद्या या ब्रह्मविद्या। इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है क्योंकि इनमें वैदिक विचारों का परिपक्व रूप देखने को मिलता है। उपनिषद् भारतीय तत्वज्ञान के मूल स्त्रोत हैं। उपलब्ध उपनिषदों की संख्या 200 है। इनमें से ग्यारह उपनिषद् महत्वपूर्ण हैं। ये हैं–ईश, केन, कठ, प्रश्न, मांडूक्य, मुंडक, ऐतरेय, छांदोग्य, वृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, तैतिरीय। शंकराचार्य ने इन्हीं ग्यारह उपनिषदों पर टीका लिखी है। उपनिषद् मानव–जाति की सबसे आरंभिक शुद्ध दार्शनिक रचनाएँ हैं। भारत में वेदांत के विभिन्न संप्रदायों का विकास उपनिषदों

के आधर पर हुआ। गीता में भी उपनिषदों का सार है। बौद्ध व जैन धर्मों पर भी उपनिषदों की छाप है।

विवेकानन्द वेदान्त के आधिकारिक विद्वान थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने उपनिषदों का गहन अध्ययन व विश्लेषण किया था। विवेकानन्द ने वेदान्त की दार्शनिक व व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से व्याख्या की। गाँधी ने उपनिषदों के व्यावहारिक सूत्रों की व्याख्या करते हुए अपने दैनिक जीवन में स्थान दिया।

विवेकानन्द ने वेदान्त में निहित अद्वैतवाद की नवीन दृष्टिकोण से व्याख्या की है। अद्वैतमत में यही गुण है कि सभी सम्भाव्य धार्मिक परिकल्पनाओं में वह सर्वाधिक बुद्धिसंगत है। अन्य सब परिकल्पनाएँ–ईश्वर की आंशिक और सगुण धरणाएँ युक्तियुक्त नहीं है। विवेकानन्द कहते हैं कि सगुण भक्ति अबौद्धिक होते हुए भी लोगों को बड़ी सान्त्वनादायक प्रतीत होती है। बहुत कम लोग सत्य का निर्मल प्रकाश सहन कर सकते हैं, उसके अनुसार जीवन बिताना तो बहुत दूर की बात है। अतएव इस सान्त्वना देने वाले धर्म की भी आवश्यकता है। क्योंकि समय आने पर यही बहुतों को उच्चतर धर्मलाभ में सहायता करता है। उन लोगों के लिए छोटे–छोटे देवताओं और प्रतीकों की धारणाएँ उत्तम और उपकारी हैं। किंतु हमें निगुर्णवाद को भी समझना होगा, क्योंकि इस निर्गुणवाद के आलोक में ही अन्य सिद्धान्तों को समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ जॉन स्टुअर्ट मिल ईश्वर का निर्गुणवाद समझते हैं और उसमें विश्वास भी करते हैं। वे कहते हैं, सगुण ईश्वर को प्रमाणित नहीं किया जा सकता। संभवतः सर्वधर्मसमभाव के एक महत्वपूर्ण सूत्र को खोजते हुए विवेकानन्द कहते हैं कि निर्गुण सगुण को अथवा निरपेक्ष सापेक्ष को नष्ट करने के बजाय हमारे हृदय और मस्तिष्क को पूर्ण संतोष प्रदान करने वाली उसकी व्याख्या मात्र करता है। सगुण ईश्वर तथा इस विश्व में जो कुछ है, सब हमारे मन के द्वारा उपलब्ध निर्गुण सत् ही है। अपने क्षुद्र व्यक्तित्व से रहित होने पर हम उस सत् के साथ एक हो जाएँगें। 'तत्वमसि' का यही अर्थ है। हमें अपना सच्चा–स्वरूप–ब्रह्म जानना है।[5]

महात्मा गाँधी के अनुसार भी उपनिषदों का मुख्य सिद्धांत मानव–जाति की एकता है। उपनिषदों में कहा गया है कि हर प्राणी में परमात्मा का अंश है। 'तत्वमसि' उपनिषदों का एक महावाक्य है। गाँधी के मतानुसार बंधुत्व से यह मतलब नहीं है कि जो तुम्हारा बंधु बने और तुमसे प्रेम करे, उसके बंधु बनो और उससे प्रेम करो। यह तो सौदा हुआ। बंधुत्व में व्यापार नहीं होता। बंधुत्व केवल मनुष्यमात्र के साथ नहीं बल्कि प्राणिमात्र के साथ होना चाहिए। हम अपने दुश्मन से भी प्रेम करने के लिए तैयार न होंगें, तो हमारा बंधुत्व निरा ढोंग है, जिसने बंधुत्व की भावना को हृदयस्थ कर लिया है, उसका कोई शत्रु नहीं हो सकता। ईश्वर की सेवा का सर्वश्रेष्ठ उपाय उसके बंदों की सेवा करना है। गाँधी ने द. अफ्रीका में मैक्समूलर के उपनिषदों के अनुवाद का अध्ययन किया और उपनिषदों पर आधरित अपनी सर्वात्मवादी दृष्टि को मजबूत आधर प्रदान किया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गाँधी का उपनिषदों सम्बन्धी दर्शन सर्वधर्मसमभाव व विश्व बंधुत्व का हिमायती है, वहीं विवेकानन्द भी कुछ अधिक दार्शनिक पक्षों का समावेश करते हुए कहते हैं कि वेदान्त का सबसे उदात्त तत्व यह है कि हम एक ही लक्ष्य पर भिन्न मार्गों से पहुँच सकते हैं ये मार्ग हैं–कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग, योगमार्ग, ज्ञानमार्ग। ये विभाग एक दूसरे से

सम्बन्धित हैं। ऐसी बात नहीं कि हमें कोई ऐसा व्यक्ति मिले, जिसमें कर्म करने के अतिरिक्त दूसरी कोई शक्ति न हो, अथवा जिसमें केवल भक्ति या केवल ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ न हो। ये विभाग केवल मनुष्य की प्रधान प्रवृत्ति अथवा गुणप्राधान्य के अनुसार किये गये हैं। अन्त में ये सब मार्ग एक ही लक्ष्य में जाकर एक हो जाते हैं। सारे धर्म और पंथ हमें एक ही चरम लक्ष्य की ओर ले जा रहे है।[6]

गाँधी गौतम बुद्ध की शिक्षाओं के प्रशंसक थे, विशेषकर उनकी अहिंसा भावना के। गौतम बुद्ध ने मनुष्यों के प्रति ही नहीं, जीवमात्र के प्रति दया और करूणा का मंत्र दिया है। 'लाइट ऑफ एशिया' पढ़कर वे गौतम की दया भावना से संपृक्त हो गए। गाँधी बुद्ध के प्रतीत्यसमुत्पाद की तरह ही सर्वव्यापक कारणवाद को मानते थे। इसी दृष्टि से नियति और भाग्यवाद के बदले कर्मवाद में उनकी अधिक आस्था थी। इसीलिए उन्होंने प्रज्ञा और तर्क, बुद्धि और अपरोक्षानुभूति, विज्ञान और आत्मज्ञान का समन्वय किया।

गाँधी की तरह ही विवेकानन्द भी बौद्ध धर्म के निष्काम कर्म से अत्यधिक प्रभावित हुए। वे बुद्ध के 'जाति–भेद विरोधी' सिद्धान्त से भी प्रभावित थे। विवेकानन्द के अनुसार गौतम बुद्ध धर्म के नाम पर किये जाने वाले कपटाचरण के घोर विरोधी थे। उन्होंने एक ऐसे धर्म का प्रचार किया जिसमें कामनाओं तथा वासनाओं के लिए स्थान नहीं था। यद्यपि विवेकानन्द पूर्णरूपेण बौद्ध दर्शन से सहमत नहीं थे किंतु विवेकानन्द इस बात से प्रभावित थे कि एक नास्तिक व्यक्ति भी जिसका किसी दर्शन में विश्वास नहीं, जो न किसी सम्प्रदाय को मानता है और न किसी मन्दिर–मस्जिद में ही जाता है, जो घोर जड़वादी है, परमोच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है। गाँधी एवं विवेकानन्द दोनों ही बुद्ध के जीवन के इस संदेश से प्रभावित थे कि केवल निष्काम कर्म ही मनुष्य को पूर्णत्व तक पहुँचा सकता है।

इस्लाम धर्म के सम्बन्ध में गाँधी एवं विवेकानन्द का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है। इस्लाम की शिक्षाओं में ऐसे अनेक तत्व मिलते हैं जो गाँधीजी को मान्य थे। इस्लाम की शिक्षाओं में सामाजिक समानता और मानवीय भ्रातृत्व जैसे शाश्वत आदर्श सम्मिलत हैं। गाँधीजी इस बात से अत्यधिक प्रभावित थे कि मुहम्मद साहब ने युद्ध में पराजितों को अपना दास नहीं बनाया। अपने से छोटों के प्रति वे क्षमाक्षील थे। उन्होंने बल प्रयोग द्वारा धर्मपरिवर्तन की अनुमति नहीं दी। इसीलिए गाँधी ने माना कि इस्लाम का अर्थ ही शान्ति है, इसी आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि धर्म के नाम पर लड़ना बुद्धिहीनता का परिचायक है। गाँधी ने लिखा है, ''मैं इस्लाम को भी ठीक उसी प्रकार शान्ति की शिक्षा प्रदान करने वाला धर्म मानता हूँ, जिस प्रकार कि ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म को।''[7] वांशिगटन अरविंग कृत मुहम्मद का चरित्र और कार्लाइल की मुहम्मद स्तुति के अध्ययन तथा सेठ अब्दुल्ला के साथ हुई धर्म–परिचर्चा ने इस्लाम के प्रति उनके सम्मान में अभिवृद्धि की। गाँधी अपनी नियमित प्रार्थना में कुरान की आयतों तथा 'ईश्वर अल्लाह तेरो नाम' जैसी पंक्तियों को शामिल करते थे। 'राम–रहीम' और 'कृष्ण–रहीम' उनके आराध्य थे। गाँधी कुरान के इस संदेश से प्रभावित थे कि ''बुराई को उसके द्वारा हटाओ जो उससे (बुराई) से अधिक अच्छा है'' ।[8] विवेकानन्द ने सर्वधर्मसमभाव को लेकर सर्वथा नवीन दृष्टि अपनाते हुए यहाँ तक कह दिया कि उन्हें कृष्ण के प्राचीन सन्देश में बुद्ध, ईसा और मुहम्मद तीनों के सन्देशों का समन्वय दिखाई देता है। यह बात उन्होंने 25 मार्च, 1900 को 'सैन

प्रफान्सिको बे' में दिये गए व्याख्यान में कही। वे भी मुहम्मद साहब द्वारा पाप, मूर्तिपूजा, पाखण्ड, अंधविश्वास व नर–बलियों की निंदा से अत्यध्कि प्रभावित थे। इस्लाम का संदेश 'खुदा एक है' विवेकानन्द को वेदान्त के 'अद्वैत' के समान प्रतीत होता था। विवेकानन्द मुहम्मद साहब के इस संदेश से अत्यधिक प्रभावित थे कि अपनी आत्मा के प्रति सच्चा बनना ही सबसे महान् धर्म है। चरित्र–निर्माण एवं इन्द्रियों के वेगों का निग्रह करना ही धर्मपालन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। धर्म मत नहीं है और न ही नियम है। यह एक प्रक्रिया है। इससे हमें आध्यात्मिक बल मिलता है और अन्त में हम बंधन तोड़ देते हैं और मुक्त हो जाते हैं।

गाँधी एवं विवेकानन्द दोनों ने ही ईसा के जीवन और शिक्षाओं का गहन अध्ययन किया था। विवेकानन्द जहाँ दर्शन की दृष्टि से अधिक समृद्ध थे और वैश्विक स्तर पर उन्होंने अपनी दार्शनिक विद्वता के माध्यम से सर्वधर्मसमन्वय एवं सर्वधर्मसमभाव का मार्ग प्रशस्त किया। प्राच्य व पाश्चात्य का मेल किया, वहीं गाँधी ने ईसाई धर्म को जिया था। बाईबल की शिक्षाएँ गाँधी के सत्याग्रही दर्शन का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। गाँधी ईसा को सत्याग्रहियों का सरताज मानते थे। उनके अनुसार ईंसाइयत का सार 'सरमन ऑन द माउन्ट' में है। उनके अनुसार ईसाइयत को किसी ग्रन्थ में दिये गये उपदेश की परिधि में नहीं रखा जा सकता। वह तो वाणी और उपदेश की चीज नहीं, व्याख्या की वस्तु नहीं। वह तो ह्रदय से ह्रदय में पहुँचने वाला प्रेम संदेश है। गाँधी को किसी ऐतिहासिक ईसा में विश्वास नहीं था। उनके अनुसार सतत बलिदान का जीवन जीना ही ईसा के समान जीवन जीना है। उनके अनुसार ईसाई धर्म की सौन्दर्यानुभूति विलक्षण है जो किसी भी धर्म में नहीं मिलती। उन्होंने 'सरमन ऑन द माउन्ट' की गीता से तुलना की। त्याग को धर्म का सर्वोत्कृष्ट रूप जानकर वे अत्यधिक प्रभावित हुए। गाँधी एवं विवेकानन्द दोनों का ही मानना है कि गीता ने प्रेम के नियम को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। चूँकि गीता तथा सरमन के उपदेशों में कोई संघर्ष अथवा विरोधाभास नहीं है, वे दोनों ही एक कोमल एकता से समाहित हो जाते हैं। यह एकता ही प्रत्येक धर्म की अमूल्य निधि है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि गाँधी एवं विवेकानन्द दोनों ही महान् धर्मिक विभूतियाँ थी। दोनों के चिन्तन, दर्शन एवं व्यवहार पर पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक परिदृश्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। स्वयं गाँधी स्वामी विवेकानन्द के ज्ञान और धर्म सम्बन्धी अवधारणाओं के मुरीद थे लेकिन जहाँ विवेकानन्द ने समाज में रहकर एक सन्यासी का जीवन जीते हुए अपने धर्म सम्बन्धी दर्शन को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित किया, शिकागों का विश्व धर्म सम्मेलन विवेकानन्द के समस्त व्यक्तित्व व कृतित्व की कहानी कहता है– वहीं गाँधी ने अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाते हुए अपने दर्शन को राजनीति व समाज दोनों स्तरों पर जीया। धर्मविहीन राजनति को मृत्यु का जाल बताने वाले गाँधी ने न केवल राजनीति का आध्यात्मीकरण किया अपितु–'साधन व साध्य की पवित्रता' को राजनीतिक जीवन का मूल मंत्र बनाया।

विवेकानन्द ने राजनीति को सर्वाधिक त्याज्य वस्तु माना। युवा शक्ति के प्रेरक के रूप में उन्होंने सम्पूर्ण विश्व को सर्वधर्मसमभाव का प्रेरक संदेश दिया और कहा– 'उठो, जागो और तब तक मत रूको, जब तक कि लक्ष्य प्राप्त न हो जाये।'

दोनों ही विचारकों का दर्शन 'कर्मयोग' पर आधरित है। यही कारण है कि जब सर्वधर्मसमभाव की बात की जाती है तो गाँधी एवं विवेकानन्द का दर्शन हमें इस राह पर चलने के लिए प्रेरित करता है, हमारा मार्गदर्शन करता है एवं सार्वभौम धर्म की स्थापना का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

संदर्भ

1. सुमंगल प्रकाश : 'गाँधी का भारत : भिन्नता में एकता', नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2006
2. स्वामी विवेकानन्द : 'कर्मयोग', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1950, पृष्ठ–36
3. स्वामी विवेकानन्द : 'विवेकानन्द साहित्य', खण्ड–7, अद्वैत आश्रम, उत्तराखण्ड, पृष्ठ–144–145
4. उपर्युक्त, पृष्ठ–163
5. स्वामी विवेकानन्द : 'व्यावहारिक जीवन में वेदान्त', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2013, पृष्ठ–54–55
6. स्वामी विवेकानन्द : 'कर्मयोग', उपर्युक्त, पृष्ठ–103
7. यंग इण्डिया, 20.1.1927, 22.9.1940
8. कुरान : 6/38

✦✦✦✦

शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

पर्यावरण संरक्षण में चिपको आन्दोलन की प्रासंगिकता

- मुकेश कुमार बगड़िया

चिपको शब्द "चिपकने" अथवा "लिपटने" से बना है। पेड़ों से चिपककर या लिपटकर उन्हें काटे जाने का विरोध करने की विधि को "चिपको" नाम दिया गया, जिससे यह विधि वृक्ष रक्षा में लोकप्रिय हो सके। इसकी लोकप्रियता एवं प्रभावशीलता के कारण ही चिपको ने एक जन–आंदोलन का रूप लिया तथा यह "चिपको आंदोलन" के नाम से मशहूर आंदोलन बन गया। वृक्षों से चिपककर सर्वप्रथम अपने प्राणों की आहूति देने की घटना सितम्बर 1730 में राजस्थान के जोधपुर जिले के खेजड़ली (अब खेतड़ी) गांव में घटित हुई। संतुलित विकास प्रकृति और मानव की एकता को ध्यान में रखकर चलता है। ऐसी योजनाएं पर्यावरण संबंधी प्रश्नों के व्यापक मूल्यांकन के आधार पर ही बन सकती हैं। कई ऐसे मामले हैं जिनसे पर्यावरण संबंधी पहलुओं पर सही समय पर सही परामर्श से उनका बेहतर प्रारूप तैयार करने में मदद मिलती है। परिणामस्वरूप पर्यावरण पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों को रोका जा सकता है। इसलिए अपनी योजनाओं और विकास के कार्यों में पर्यावरण का पक्ष सम्मिलित करना आवश्यक है। पर्यावरण की महत्ता इस बात से चरितार्थ होती है कि यह पृथ्वी पर जैविक विकास, संवर्धन और रक्षा के लिए ऐसी दशा का निर्माण करता है जिसके बिना जीवन की कल्पना संभव नहीं है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि पर्यावरण वह परिवृत्ति है जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए है तथा उसके जीवन और क्रियाओं पर प्रभाव डालती है। इस परिवृत्ति या परिस्थिति में मनुष्य से बाहर के तथ्य, वस्तुएं, दशाएं सम्मिलित होती हैं जिनकी क्रियाएं मनुष्य के जीवन विकास को प्रभावित करती हैं।

पर्यावरण के प्रति जागरूकता भारतीय समाज में आदिकाल से रही है। पर्यावरण के तत्त्वों के प्रति हमारी संवेदनशीलता मानवोचित गुण के रूप में देखी जाती रही है। भारतीय मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व प्रा.तिक व्यवस्था को आत्मसात करने का मार्ग अपनाया, क्योंकि प्रकृति के साथ छेड़छाड़ पूरे जीवमण्डल के लिए खतरा बन सकती थी। पर्यावरण के तत्त्वों. जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, वनस्पति आदि के प्रति वेदों में असीम श्रद्धा देखी जा सकती है। इसके अलावा पुराण, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत गीता, रामायण, महाभारत आदि में इस तथ्य के ज्वलंत प्रमाण मिलते हैं कि हमने सदैव प्र.ति की पूजा की है।

पर्यावरण पृथ्वी पर जैविक विकास, संवर्धन और रक्षा के लिए ऐसी दशा का निर्माण करता है जिसके बिना जीवन की कल्पना संभव नहीं है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि पर्यावरण वह परिवृत्ति है जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए है तथा उसके जीवन और क्रियाओं पर प्रभाव डालती है। पर्यावरण की अनुकूलता और प्रतिकूलता के साथ उसकी सुरक्षा का मूल्यांकन आज की आवश्यकता है। पृथ्वी पर मनुष्यों की बढ़ती जनसंख्या और उसके साथ तीव्र गति से बढ़ती आवश्यकता ने प्रकृति के सहयोग के स्थान पर संघर्ष के लिए उत्साहित किया है। हाल के दशकों में नगरीकरण और औद्योगिकीकरण

के नाम पर बिना सोचे–समझे अंधाधुंध काटे गए वनों के कारण भूमि अपरदन, भूस्खलन तथा बाढ़ जैसी समस्याओं का प्रकोप बढ़ गया है। चिपको आंदोलन वनों के विनाश को बचाने की दिशा में एक कदम है जिसका अंत्तोगत्वा लक्ष्य पर्यावरण को संरक्षण देना है। अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि आज चिपको आंदोलन पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में अहम भूमिका अदा कर रहा है।

भारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधी "चिपको आंदोलन" का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

खेजड़ली गांव में चिपको आंदोलन

उस समय दिल्ली के मुगल सम्राट औरंगजेब का शासन था तथा राजस्थान में जोधपुर के राजा थे – अजीत सिंह। जोधपुर के राजा अजीत सिंह को आलीशान महल बनाने की इच्छा हुई किंतु जब महल में ईंटों की पकाई हेतु ईंधन की आवश्यकता हुई तो सभी चिंतित हो गए क्योंकि उस मरुभूमि क्षेत्र में वनों का अभाव था। इसी समय किसी ने राजा अजीत सिंह का खेजड़ली गांव के हरे–भरे वनों की ओर ध्यान आकृष्ट कराया। तत्काल खेजड़ली के वनों को काटने के लिए राज्य कर्मचारी अपनी–अपनी कुल्हाड़ियां लेकर रवाना हो गए। वर्षा ऋतु का समय होने से गांव के लगभग सभी पुरुष खेतों में गए हुए थे। जब वे कर्मचारी पेड़ काटने की तैयारी में थे तभी श्रीमती अमृता देवी तथा उनकी तीन पुत्रियों– आसु बाई, रतनी बाई तथा भागु बाई ने पेड़ काटने आए कर्मचारियों से प्रार्थना की कि वे हरे पेड़ न काटे क्योंकि हरे पेड़ काटना धर्म के खिलाफ है। अमृता देवी ने कहा कि–

वाम लिया दाग लगे टुकड़ों देवो न दान
सर साठे रूख रहे तो भी सस्तो जान।

अर्थात् यदि सर कट जाए और पेड़ बच जाए तो यह सस्ता सौदा है। अमृता देवी अपने धर्म की रक्षा के लिए पेड़ से लिपट गई। कुल्हाड़ियों के प्रहार से उसका क्षत–विक्षत शरीर जमीन पर गिर पड़ा। अमृता देवी के पश्चात् उनकी तीन मासूम कन्याएं भी पेड़ से लिपट गई और उनके शीश भी धड़ से अलग कर दिए गए। यह दुःखद समाचार सुनकर ग्रामीण विश्नोई समाज एकत्रित हो गए। उन्होंने हरे वृक्षों के कटाव को रोकने के लिए तथा धर्म की रक्षा के लिए प्राण न्यौछावर करने की शपथ ली। हरे वृक्षों को बचाने के लिए इस स्थान पर कुल 363 व्यक्ति शहीद हुए। मरने वाले सभी विश्नोई जाति के थे। जब यह समाचार जोधपुर राजा ने सुना तो उन्होंने खुद खेजड़ली गांव आकर तत्काल पेड़ों को काटने का आदेश वापस लिया। साथ ही साथ यह भी आदेश दिया कि भविष्य में अब कोई हरा पेड़ नहीं काटा जाना चाहिए।

खेजड़ली के इस महान बलिदान के पीछे राजस्थान में 15वीं सदी में हुए विश्नोई पंथ के प्रवर्तक संत जंभोजी की प्रेरणा काम कर रही थी। जंभोजी ने सदाचार के 29 नियम बनाए जिसमें तीन पर्यावरण और प्रकृति संरक्षण संबंधी बहुत ही महत्वपूर्ण हैं जो निम्न हैं–

1. हरे वृक्ष को न काटे।
2. सभी जीवों के प्रति दया भाव रखें।
3. दुधारू पशुओं की उचित देखभाल करें।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विश्नाई समाज हमारी सांस्कृतिक धरोहर, सामाजिक मूल्यों व परंपराओं का संवाहक है। पर्यावरण के प्रति इस समाज का योगदान एवं चेतना अनुकरणीय है।

रैणी गांव में चिपको आंदोलन

चिपको आंदोलन में तहलका मचाने वाली घटना मार्च 1974 में सीमांत जिला चमोली (उत्तराखण्ड) के रैणी गांव में हुई जिसमें पुरुषों की अनुपस्थिति में श्रीमती गौरा देवी के नेतृत्व में चिपको पद्धति को अपनाकर महिलाओं ने रैणी गांव में वनों को भारी विनाश से बचाया।

मार्च 1974 में रैणी गांव के वनों में बहुत बड़ी संख्या में सरकार ने पेड़ों को काटने के लिए छापा मारा। इस कटान की योजना के विरुद्ध श्री चण्डी प्रसाद भट्ट, श्री गोविन्द सिंह रावत व श्रीमती गौरा देवी के नेतृत्व में क्षेत्र के विभिन्न गांवों के महिला मंगल दलों, छात्रों एवं कार्यकर्ताओं ने एकजुटता से वन विनाशकारी कटाव को रोकने का बीड़ा उठाया।

26 मार्च, 1974 के दिन भूमि के मुआवजे के संदर्भ में रैणी गांव के समस्त पुरुष चमोली गए हुए थे। गांव में केवल महिलाएं और बच्चे थे। उसी दिन वन विभाग के कर्मचारियों ने पेड़ काटने वालों के साथ रैणी गांव पर धावा बोल दिया। ऐसा एक सुनियोजित योजना के तहत किया गया। सन् 1962 में भारत–चीन युद्ध के बाद सरकार ने सैनिक उद्देश्यों के लिए रैणी क्षेत्र की भूमि का अधिग्रहण किया था जिसमें सड़कों के लिए अधिगृहित भूमि भी सम्मिलित थी परंतु इस भूमि का ग्रामीणों को मुआवजा नहीं दिया गया था। रैणी के वनों के पेड़ों के कटान के लिए नीलामी हो जाने के बाद श्री चण्डी प्रसाद भट्ट ने तकाल ही स्पष्ट कर दिया था कि पेड़ काटने वालों को चिपको आंदोलन का सामना करना पड़ेगा।

एक सप्ताह बाद सरकार की ओर से घोषणा की गई कि 1962 की लड़ाई के दौरान अन्य उपयोग के लिए जो भूमि सरकार ने अधिगृहित की है, उसका मुआवजा चमोली में लोगों को दिया जाएगा। इस घोषणा को सुनकर रैणी गांव के पुरुष चमोली के लिए रवाना होने लगे। महिलाओं को पहले ही शक था कि पुरुषों की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर वन विभाग वाले ठेका पाने वाले कंपनी के मजदूरों के साथ पेड़ काटने आ सकते हैं इसलिए वे सतर्क थी कि लोग पेड़ काट सकते हैं।

जैसे ही मजदूर वन विभाग के कर्मचारियों के साथ रैणी गांव की ओर बढ़ रहे थे एक छोटी लड़की ने उन्हें पहचान लिया कि ये पेड़ काटने वाले हैं। वह लड़की भागती हुई गौरा देवी के पास पहुंची और पेड़ काटने वालों की सूचना दी। गौरा देवी ने तुरंत ही 27 महिलाओं के साथ वनों की ओर प्रस्थान किया।

गौरा देवी सहित सभी महिलाओं ने वन विभाग के कर्मचारियों को पेड़ न काटने और वापस जाने की सलाह दी। गौरा देवी ने कहा, "जंगल हमारा मायका है और पेड़ ऋषि हैं। यदि जंगल कटेगा तो हमारे खेत, मकान के साथ मैदान भी नहीं रहेंगे। जंगल बचेगा तो हम बचेंगे। जंगल हमारा रोजगार है।" इतना कहने के बाद भी वन कर्मचारियों पर कोई असर नहीं हुआ। एक वन कर्मचारी बन्दूक तानकर खड़ा हो गया तब गौरा देवी ने कहा

कि जंगल काटने से पहले मुझे गोली मारनी होगी। इस आंदोलन में महिलाओं को काफी संघर्ष करना पड़ा तथा गौरा देवी के नेतृत्व में महिलाएं पेड़ों से चिपक गईं। फलतः ठेकेदार के एजेंट को अपने मजदूरों सहित वापस लौटना पड़ा।

रैणी की चिपको की घटना अपने आप में विशेष तरह की थी, क्योंकि इसमें पुरुषों की अनुपस्थिति में महिलाओं ने बड़ी सूझ–बूझ व हिम्मत से कार्य किया और अपनी जान की परवाह किए बगैर पेड़ों से चिपक गईं। इस तरह से रैणी वन के 2451 पेड़ों को काटने से बचाने में वे सफल हो गई।

अप्पिको आंदोलन

कन्नड़ भाषा में चिपको का अर्थ अप्पिको होता है। इस प्रकार अप्पिको आंदोलन चिपको आंदोलन की तर्ज पर ही कर्नाटक के पाण्डुरंग हेगड़े के नेतृत्व में अगस्त, 1993 में शुरू हुआ। इस आंदोलन में भी लोगों ने पेड़ से चिपक कर पेड़ों की रक्षा की है। अतः अप्पिको आंदोलन का मूल उद्देश्य वनारोपण विकास एवं संरक्षण है।

'चिपको आंदोलन की प्रासंगिकता

सामाजिक आंदोलन की अवधारणा सामाजिक विकास और प्रगति की अवधारणा से भिन्न है। सामाजिक आंदोलन सामूहिक व्यवहार का स्वरूप है। इसका संचालन समाज एवं संस्कृति में नवीन परिवर्तन लाने के लिए होता है। सामाजिक आंदोलनों का उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में आंशिक या अमूल–चूल परिवर्तन लाना हो सकता है। स्वतंत्रता से पहले और पश्चात् अनेक सामाजिक आंदोलनों का जन्म हुआ जिनमें चिपको आंदोलन को भी विशेष स्थान प्राप्त है। इसके पीछे मूल कारण यह है कि इस आंदोलन ने सामाजिक जनचेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

चिपको आंदोलन की मान्यता है कि वनों का संरक्षण और संवर्धन केवल कानून बनाकर या प्रतिबंधात्मक आदेशों के द्वारा नहीं किया जा सकता है। वनों के पतन के लिए वन प्रबंधन संबंधी नीतियां ही दोषपूर्ण हैं। गांव की जनता की आवश्यकताओं की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। एक ओर सरकारी संरक्षण में वन पदार्थों को ऊंची कीमत पर बेचा जाता रहा है तो दूसरी तरफ वनों के बीच में रहने वाले लोगों की जलाऊ लकड़ी, इमारती लकड़ी, चारा पत्ती जैसी आवश्यकताएं जो कानून से प्राप्त है, आज की सरकारी नीतियों द्वारा छीन ली गई हैं।

पर्यावरण संरक्षण से जुड़े आंदोलन में भी महिलाओं ने अपनी महत्ती भूमिका का निर्वहन किया है। इतिहास साक्षी है कि प्राचीन समय में पर्यावरण संरक्षण से संबंधित प्रयास महिलाओं की पहल से ही प्रारंभ हुए हें। 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में जोधपुर नरेश के कर्मचारियों द्वारा खेजड़ली गांव में पेड़ों की कटाई प्रारंभ की गई। श्रीमती अनिता देवी ने अपना बलिदान देकर वृक्षों की रक्षा की, जो अपने आप में प्रेरणास्रोत है।

सन् 1974 में उत्तराखण्ड में रैणी गांव में पुरुषों की अनुपस्थिति में श्रीमती गौरा देवी ने वृक्षों को बचाने के लिए घर–घर जाकर महिलाओं को एकत्रित किया और चिपको तकनीक से वृक्षों को बचाया।

इस प्रकार चिपको आंदोलन ने ग्रामीण महिलाओं में न केवल पर्यावरण संरक्षण की चेतना विकसित की है बल्कि व्यवस्था में भागीदारी के लिए नेतृत्व का विकास भी किया है। अब वन पंचायतों पर महिलाओं का भी कब्जा होने लगा है। आज के वनों के संरक्षण में सबसे अगली कतार में स्वयं स्फूर्त इच्छा से खड़ी हैं। इतना ही नहीं महिलाएं राजनीतिक कार्यों एवं पदों पर भी बराबर नजर रखती हैं। विकास क्षेत्रों में भी वे उच्च राजनीतिक पदों पर विराजमान हैं।

वनों के महत्व को ध्यान में रखते हुए चिपको आंदोलन के मुख्य उद्देश्य रहे हैं–

1. आर्थिक स्वावलम्बन के लिए वनों का व्यापारिक दोहन बंद किया जाए।
2. प्राकृतिक संतुलन के लिए वृक्षारोपण के कार्यों को गति दी जाए।
3. चिपको आंदोलन की स्थापना के पश्चात् चिपको आंदोलनकारियों द्वारा एक नारा दिया गया–

क्या है जंगल के उपचार मिट्टी, पानी और बयार,
मिट्टी, पानी और बयार, जिन्दा रहने के आधार।

चिपको आंदोलन प्रारंभ में त्वरित आर्थिक लाभ का विरोध करने का एक सामान्य आंदोलन था किंतु बाद में इसे पर्यावरण सुरक्षा का तथा स्थाई अर्थव्यवस्था का एक अभिनव आंदोलन बना दिया। चिपको आंदोलन से पूर्व वनों का महत्व मुख्य रूप से वाणिज्यिक था। व्यापारिक दृष्टि से ही वनों का बड़े पैमाने पर दोहन किया जाता था। चिपको आंदोलनकारियों द्वारा वनों के पर्यावरणीय महत्व की जानकारी सामान्य जन तक पहुंचाई जाने लगी। इस आंदोलन की धारणा के अनुसार वनों की पर्यावरणीय उपज है . ईंधन, चारा, खाद, फल और रेशा। इसके अतिरिक्त मिट्टी तथा जल वनों की दो प्रमुख पर्यावरणीय उपज हैं और यही मनुष्य के जिन्दा रहने का आधार हैं।

चिपको आंदोलन की मान्यता है कि वनों के संरक्षण के लिए लोकशिक्षण को आधार बनाया जाए जिससे और अधिक व्यापक स्तर पर जनमानस को जागरूक किया जा सके। योजना की सफलता के लिए यह तथ्य भुलाया नहीं जा सकता है कि लोगों को जोड़े बिना वन संरक्षण की कल्पना ही व्यर्थ है। इस प्रकार, चिपको आंदोलन में पेड़ों की रक्षा के लिए सु.ढ़ आधार, वन संसाधनों का वैज्ञानिक तरीके से उपयोग, समुचित संरक्षण और वृक्षारोपण आदि के लिए कार्य किए गए। यह आंदोलन अब केवल पेड़ों से चिपकने तथा उनको बचाने का आंदोलन ही नहीं रह गया है बल्कि यह एक ऐसा आंदोलन बन गया है जो वनों की स्थिति के प्रति जागृति पैदा करने, संपूर्ण वन प्रबंध को एक स्वरूप प्रदान करने और जंगलों एवं वनवासियों की समृद्धि के साथ ही धरती की समृद्धि वाला आंदोलन बन गया है।

निष्कर्ष

पर्यावरण संरक्षण में चिपको आंदोलन द्वारा किए गए कार्यों का कभी भी विस्मय नहीं किया जा सकता है। पेड़ न काटने देने से एक छोटी–सी सोच से शुरू हुई चिपको की यात्रा वनों की उपयोगिता, युक्तियुक्त उपयोग, वन और जन का अंतर्संबंध, वन व्यवस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी, परिस्थितिकी और पर्यावरण के वृहत्तर संदर्भों के छोर छूने में

सफल रही हैं और पेड़ बचाने का छोटा–सा दिखने वाला उपक्रम पर्यावरण संरक्षण का व्यापक अभियान बन गया है। साथ ही साथ यह भी कहना होगा कि अब यह आंदोलन कम अभियाननुमा कार्यक्रम अधिक हो गया है और लड़ने की नहीं बल्कि करने की सीख देने लगा है।

चिपको आंदोलन यह संदेश देता है कि वनों से हमारा गहरा रिश्ता है। वन हमारे वर्तमान और भविष्य के संरक्षक हैं। यदि वनों का अस्तित्व नहीं होगा तो हमारा अस्तित्व भी समाप्त हो जाएगा। मनुष्य का यह अधिकार है कि वह अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रा.तिक साधनों का भरपूर उपयोग करें लेकिन इस निर्ममता के साथ नहीं कि प्राकृतिक संतुलन ही बिगड़ जाए। चिपको आंदोलन के निरंतर प्रयास के कारण संपूर्ण देश में अब लोग यह समझने और स्वीकार करने लगे हैं कि अगर उन्हें अपनी खोई हुई खुशहाली को फिर से लौटाना है तो उसके लिए उन्हें वनरहित भूमि को पुनः हरी परत से ढकना होगा। अतः यह आंदोलन आज देश के सीमा पार अनेक देशों के लिए जनजागरण का सूत्र बना हुआ है।

सन्दर्भ

1 हरिनारायण कोली, पर्यावरण एवं मानव संसाधन, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 1996

2 बी.एल. शर्मा, पर्यावरण नियोजन एवं पारिस्थितिकीय विकास, साहित्य भवन, आगरा 1990

3 आर.एस. दरड़ा, लोकल गवर्नमेन्ट : कम्परेटिव स्टडी, राजस्थान ग्रन्थघर, जोधपुर 1985

4 एन. गेदिका, पर्यावरण चेतना एवं स ंरक्षण, आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर 2005 5 भट्ट यू.के. शर्मा, न्यू पंचायती राज सिस्टम, प्रिंटवैल, जयपुर 1995

6 वंदना शिवा, एच.सी. शतर चन्द्र जे. बंदोपध्याय, सोशल इकॉनोमिक एण्ड इकोलॉजिकल इम्पैक्ट ऑफ सोशल फारेस्ट्री इन कोलार, भारतीय प्रबन्धन संस्थान, बैंगलोर, 1981

7 सी.एम. चौधरी, ग्रामीण विकास एवं सहकारिता, शिवम बुक हाऊस प्रा.लि., जयपुर 2002

8 चंद. अत्तर नेहरू एण्ड न्यू इकॉनोमिक ऑर्डर, पंचायती राज एण्ड रूरल डवलपमेन्ट, वॉल्यूम–3, एच.के. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली 1990

9 डेब्रॉय बाइबेक एवं कौशिक, पी.डी. इनर्जिसिंग रूरल डवलपमेंट थ्रू पंचायतम् एकेडमिक फांउडेशन, राजीव गाँधी इन्स्टीट्यूट फॉर कन्टेपरेरी स्टडीज, नई दिल्ली, 2005

10 जे. सिंह, वातावरण नियोजन एवं स ंविकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर 1998

11 हरिशचन्द्र व्यास, पर्यावरण शिक्षा, विद्या विहार, नई दिल्ली 1998

12 चन्द्रकान्ता शर्मा, वन सम्पदा एवं वन्य जीवन, ज्योति प्रकाशन, जयपुर 2001

13 एस.एस. पुरोहित, वृक्षारोपण एवं पर्यावरण संरक्षण, एग्रो बोटेनिका बीकानेर, 1999

शोधार्थी,

राजनीति विज्ञान विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

मध्य एशिया को लेकर पश्चिमी राष्ट्रों की नीति

*डॉ. निर्मला सिंह
**संदीप पुनियाँ

सभ्यताओं के आरम्भ से ही मध्य एवं पश्चिमी एशिया विश्व शक्ति एवं प्रभाव का केन्द्र बनकर रहा है। अरबों के उत्थान के समय में शक्ति केन्द्र रहा तो 16वीं 17वीं शताब्दी के पश्चात् ये शक्तियों के केन्द्र में रहा। तेल के वरदान ने इस क्षेत्र को संघर्ष का क्षेत्र बना दिया और पश्चिमी जगत् के लिए ये विकास का द्वार सिद्ध हुआ है। इस क्षेत्र के लिए प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के समय पश्चिमी जगत् की नीति भिन्न दृष्टिकोण के रूप में प्रकट होती थी। 1950 तक पश्चिमी जगत् स्वयं के शक्ति संतुलन में ही उलझा रहा। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटेन और जर्मनी संघर्ष के मुख्य किरदार रहे। यूरोपियन राष्ट्रों को परमाणु शस्त्र के निर्माण ने यह ज्ञान करा दिया कि अब तक जो छुट–पुट युद्ध होते आये हैं अब वो पहले से ज्यादा हिंसक, ज्यादा तबाही लाने वाले बन रहे हैं। प्रथम विश्व युद्ध से ज्यादा द्वितीय विश्व युद्ध ने पूरे विश्व मानव जाति को गंभीरता से विचार करने पर मजबूर कर दिया। पश्चिमी राष्ट्रों में अब तानाशाहों के युग का समाप्त हो चुका था। परमाणु बमों ने राष्ट्रों के मध्य युद्धों को कम तो कर दिया किन्तु अविश्वास की खाई आज भी गहरी है। जब पश्चिमी जगत के राष्ट्रों के मध्य संघर्ष अपने चरम पर नहीं रहा तो कूटनीति के माहिर खिलाड़ियों के लिए संघर्ष को कहीं तो पैदा करना ही था। उनकी नजर अविकसित राष्ट्रों के गढ़ एशिया पर पड़ी। एशिया के राष्ट्रों की जमीन कूटनीति के खिलाड़ियों के लिए बेहद उपजाऊ थी। उनकी तिक्ष्ण बुद्धि ने मध्य और पश्चिम एशिया के राष्ट्रों में फैली कट्टर इस्लामिकता को पहचान लिया। 1950 तक मैदान का चुनाव हो चुका था अब केवल बिसात बिछानी शेष थी। पश्चिमी कूटनीतिज्ञों को अपनी नीति को रचने के लिए साम्यवादी रूस से उर्वरता प्राप्त होने लगी। साम्यवादी भालू का भय मध्य एशिया के तानाशाहों के बीच फैलने लगा। सऊदी अरब, ईरान, टर्की, इसके केन्द्र में स्थापित होने लगे। शान्त पड़े मध्य एशिया में तेजी से परिस्थितियाँ बदलने लगी।

कूटनीतिज्ञों ने एक सार्वभौमिक सत्य यह भी स्वीकार किया है कि कुछ घटनाएँ, क्रियाएँ, प्रतिक्रियाएँ ज्ञात होती हैं कुछ सदैव के लिए अज्ञात ही रह जाती है। परिस्थितियाँ, घटनाओं के स्वरूप ही अपनी प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होती है, कार्य करती है, स्थिरता और अस्थिरता के चारों और समुद्री क्षेत्र में डोल रही नाव की तरह हिचकोले खाते हुए चलती है। एशिया की स्थिति पर हम एक काल्पनिक समुद्री नाव का सिद्धान्त लेकर चलते हैं। नाव में स्थापित लोगों को समुद्री हिचकौले की आदत पड़ जाती है और किनारों पर खड़े लोगों में वह हलचल भय पैदा करती है। दरअसल ये स्थिति मानव स्वभाव को ही दर्शाती है। दूर खड़े लोग उस नाव की सुरक्षा को लेकर सुरक्षा साधन जुटाना आरम्भ कर देते हैं और कई ईश्वर से दुआएँ मांगते हैं कि समुद्र शान्त हो जाये और ये नाव अपने

किनारे तक पहुँच कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करे। समुद्र का तो स्वभाव ही अपनी स्वच्छता और स्वच्छंदता को बरकरार रखना है और स्वच्छता और स्वच्छंदता तो उसकी ऊँची–ऊँची लहरों से ही बरकरार रहती हैं। जो लोग उस नाव के प्रति सुरक्षात्मक साधन जुटाना आरम्भ करते हैं, उनके भी अपने कुछ हित होते हैं। जैसे सबसे पहला हित मानव स्वभावानुसार प्रभाव का है। किनारे पर खड़े लोग नाव की सुरक्षा के लिए साधन जुटाने के बहाने उस नाव पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयास करते हैं यह स्थिति नाव पर उपस्थित लोगों को पसन्द नहीं आती। द्वितीय स्थिति, किनारे पर खड़े लोगों में कुछ व्यापारिक दृष्टिकोण के लोग भी शामिल होते हैं, सहायता के बहाने उस नाव तक पहुँचने का प्रयास करते हैं क्योंकि नाव ही व्यापारिक सौदे को समुद्र के उस पार के किनारे पर ले जाने के लिए एकमात्र साधन है। यह स्थिति भी नाव में उपस्थित लोगों को पसन्द नहीं आती, क्योंकि वो स्वतन्त्रता को अधिक पसन्द करते हैं, बजाय किसी से प्राप्त सहायता के।

तीसरी प्रवृत्ति के वो लोग होते हैं जो उस नाव को लेकर कल्पना करते हैं कि इस नाव की स्थिति बेहतर नहीं है, इसे और बेहतर बनाया जा सकता है, (सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव की इच्छा रखने वाले राष्ट्र) जिससे ये समुद्र में बेखौफ होकर विचरण कर सके। वे लोग अपने औजार, नाव की लड़की, कुछ तकनीकें, व्यवस्था पर प्रचार सामग्री और कुछ लालच की सामग्री लेकर नाव पर पहुँचते हैं और वहाँ उपस्थित लोगों को बताते हैं कि इस नाव की क्या–क्या कमियाँ हैं। इसे कैसे दूर किया जा सकता है। किनारे पर खड़े वे लोग जिन्होंने कभी समुद्री यात्रा नहीं कि वे लोग उन लोगों को समुद्र की बारिकियाँ समझाना आरम्भ करते हैं, अपनी वैचारिक बुद्धि का परिचय देते हैं। उस नाव को देखकर वहाँ उपस्थित लोगों को बताते हैं कि हम इस नाव को कैसे बेहतर बना सकते हैं। कुछ दिनों बाद नाव पर उपस्थित लोगों को समझ में आ जाता है कि इन लोगों को हमारी प्राचीन धरोहर से कोई लगाव नहीं है केवल अपनी इच्छा अनुरूप ही इसे तोड़ मरोड़कर नया रूप देने की ये प्रभावपूर्ण इच्छा रखते हैं। नाव पर उपस्थित लोगों ने विरोध किया, किनारे से आये चतुर लोगों ने कूटनीति का सहारा लेना ही बेहतर समझा और उन्होंने नाव के मुख्य खेवनहार नाविक से सांठगांठ की और कार्य प्रगति के नाम पर आरम्भ हो गया। नाव पर उपस्थित लोगों में कुछ ने विरोध किया, कुछ ने पुरानी व्यवस्था से ऊबकर नयी व्यवस्था का समर्थन किया और कुछ ने अस्तित्व के लिए हिंसक मार्ग पकड़ लिया। अब वो नाव केवल समुद्र से ही अस्थिर नहीं थी (पड़ोसी राष्ट्रों से)। वहाँ उपस्थित लोगों से भी भयभीत और अपने जीवन को लेकर संदेह से ग्रसित हो गयी। किनारे पर खड़े लोगों ने जब देखा कि नाव का पुराना झंडा उतारकर नया रंग–बिरंगा झण्डा वहाँ लगाया गया है, और बाहरी लोगों ने उसे विकास की गाथा गाकर वहाँ प्रचारित करना आरम्भ कर दिया। दरअसल यह उस नाव की प्राचीन सांस्कृतिक, सामाजिक मूल्यों वाली विरासत पर हमला था। किनारे पर खड़े लोग उस विस्फोटक परिस्थिति से अनभिज्ञ ही रहे जो अब उस नाव में पैदा हो रही थी। संघर्ष से बचने और शान्ति की आशा में उन्होंने वास्तविकता जानते हुए भी अनभिज्ञता का सहारा लेना ही बेहतर समझा। झण्डे का बदला जाना नाव

के कुछ नागरिकों को अस्तित्व पर ही संकट नजर आ रहा था और किनारे पर खड़े लोगों ने (पश्चिमी राष्ट्रों ने) उस स्थिति को नाव के लिए सबसे बेहतर स्थिति करार दे दी और वर्तमान संकट जो उन्होंने पैदा किया उसे आधुनिक विकास के नीचे दबाने का प्रयास किया।

कमोबेश यही स्थिति मध्य एवं पश्चिम एशिया में साधन सम्पन्न पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा की गई है। मध्य एशिया की परिस्थिति को समझने के लिए राष्ट्र को नाव के सहारे और समुद्र को पड़ोसी राष्ट्र की संज्ञा देकर समझने का प्रयास किया गया है। किसी भी राष्ट्र को सदैव अपने पड़ोसी राष्ट्र से खतरा ही रहता है। यूरोप और अमेरिका ने एशिया को सदैव अपनी भोग की पूर्ति करने वाला क्षेत्र समझा है। इस क्षेत्र में तेल की खोज ने रूढ़िवादी राष्ट्रों की सोच पर हमला किया। औद्योगिकरण के समय यूरोपिय राष्ट्रों ने तो उसकी महत्ता को समझ लिया किन्तु मध्य एवं पश्चिमी एशिया ने ना तो समझने का प्रयास किया ना ही उसे स्वीकार किया और विकास के प्रति उनकी लालसा भी बनी रही। विकास सदैव पुरानी जड़ हो चुकी रूढ़ीवादी सोच पर प्रहार करता है उस संघर्ष के दौर में सदैव समाज और राष्ट्र अस्थिर ही रखते हैं और ये कार्य साधन सम्पन्न राष्ट्र बेहतर ढंग से करते हैं और संघर्ष का दौर उनके हितों के अनुरूप बदलते हुए जारी रहता है।

साम्यवाद के विरोध में अमेरिका ने लोकतंत्र का झंडा ले लिया और पूरे विश्व के सामने लोकतंत्र की महिमा का गुणगान गाने लगा। किन्तु कूटनीति में सदैव दोहरी नीति का पालन किया जाता है इसे लचीली व्यवस्था भी कहा जा सकता है। अमेरिका ने ईरान के शाह का सदैव पक्ष लिया शाह को मजबूत करने के लिए अपनी नीतियों को भी बदलता रहा। जब 1951 में ईरान में चुने हुए प्रधानमंत्री मुसादिक ने तेल का राष्ट्रीयकरण कर दिया तो पश्चिमी जगत् मुख्य रूप से ब्रिटेन के हितों पर ये गहरा आघात था। लोकतांत्रिक व्यवस्था से चुने हुए प्रधानमंत्री ने अपने राष्ट्र के हितों के लिए राष्ट्र की सम्पदा का राष्ट्रीयकरण कर दिया तो अमेरिका जैसे लोकतांत्रिक पुजारी राष्ट्र को इसका पूर्ण समर्थन करना चाहिए था किन्तु स्थिति इसके विपरीत रही। 1953 में शाह को ईरान में मजबूत करते हुए मुसादिक को त्यागपत्र देने पर मजबूर कर दिया और अन्त में शाह ने पुनः से पश्चिमी राष्ट्रों के लिए अपनी सम्पदा के द्वार खोल दिये। परिणामस्वरूप 1979 में ईरान में क्रान्ति हुई और विदेशी प्रभाव को शाह सहित उखाड़ फैंका गया। एक लम्बे संघर्ष के पश्चात् ईरान इस्लामिक गणतंत्र के रूप में प्रकट हुआ। मार्च 1979 को ही ईरानी जनता ने अपने वोट के अधिकार से इस व्यवस्था का समर्थन किया किन्तु इस लोकतांत्रिक व्यवस्था को अमेरिका जैसे महान् लोकतांत्रिक राष्ट्र ने मान्यता प्रदान नहीं की। यह पूर्ण रूप से अमेरिका के दोहरे मापदण्डों को उजागर कर रहा था। इस क्रान्ति से अमेरिका के हितों पर उसकी एकाधिकार रखने की क्षमता को चुनौती थी। खाड़ी राष्ट्रों में अमेरिका और पश्चिमी राष्ट्र विकास और आधुनिकता के नाम पर हस्तक्षेप कर रहे थे अब उसे वहाँ से चुनौती का सामना करना पड़ रहा था।

पश्चिमी देशों के चतुर कुटनीतिज्ञों ने तेजी से स्थिति को समझ लिया था। उन्हें महसूस हो गया था अब विकास के नाम पर इन राष्ट्रों पर अधिक दिनों तक अपना प्रभाव नहीं रखा जा सकता, तो उन्होंने एक नये प्रकार की परिस्थिति को जन्म देने का प्रयास कर दिया। हालांकि यह स्थिति नयी नहीं थी किन्तु अब उसे नये विशाल आकार और नई आपदा के रूप में स्थापित करना था। 1980 के दशक के पश्चात् विश्व ने एक नये नाम को सबसे अधिक बार सुना वो नाम था 'आतंकवाद'। अफगानिस्तान में नये आतंकी संगठनों का निर्माण होने लगा और पुराने छुट–पुट संगठनों को ताकत प्राप्त होने लगी। यह ताकत उन्हें बाहरी रूप से प्राप्त हो रही थी। अफगानिस्तान में तालिबान का निर्माण अमेरिकी नीति का हिस्सा है। इसी के साथ ही राष्ट्रों की कूटनीति के केन्द्र में आतंकवादी संगठनों को प्रभावशाली ढंग से अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा। अब बड़े युद्धों के स्थान को इन आतंकी गुटों ने ले लिया है। इसका सबसे बेहतर उदाहरण हमें पाकिस्तान की कूटनीति में नजर आता है। उसके पाले हुए आतंकी गुट भारत में सदैव छद्म युद्ध की स्थिति रखते है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि ये आतंकी संगठन राष्ट्रों द्वारा ही पोषित है।

यदि हम गौर करे तो स्पष्ट देख सकते हैं कि ये आतंकी संगठन किसी–ना–किसी राष्ट्र से सहायता प्राप्त कर रहे हैं। फलस्तीन का हमास आतंकी संगइन ईरान और अरब राष्ट्रों से सहायता प्राप्त करता है। आईएसआईएस नामक आतंकी संगठन सऊदी अरब से सहायता प्राप्त करता है। हिजबुल एक शिया आतंकी संगठन है जो सुन्नी आतंकियों के विरोध में पैदा किया गया जिसे ईरान से सहायता प्राप्त होती है और इन राष्ट्रों में उत्पन्न परिस्थितियों को यहाँ की इस्लामिक कट्टरवादी सोच ने पैदा किया तो पश्चिमी राष्ट्रों ने उसे फैला दिया। पश्चिमी राष्ट्र अपने हितों के लिए कूटनीति का सहारा लेते रहे हैं तो पश्चिम एशियाई राष्ट्रों में उत्पन्न आतंकी संगठन प्राचीन रूढ़ीवादी इस्लामिक सोच के सहारे अपने क्षेत्र में एक प्रभावशाली राष्ट्र के रूप में स्थापित होने की नीति का पालन करते हैं। आईएसआईएस नामक आतंकी संगठन ने तो एक नये इस्लामिक राष्ट्र की रूपरेखा ही खेंच दी है। ये रूपरेखा ईराक और सीरिया के प्रदेशों पर कब्जा करके नये ईराक–सीरिया इस्लामिक स्टेट के रूप में स्थापित कर दी है। अभी भी संघर्ष का दौर जारी है। ईरान और सऊदी अरब अपने प्रभाव को लेकर आपस में संघर्षशील है। ईरान शिया मुस्लिमों का नेतृत्व करता है तो सऊदी अरब पूरे विश्व के सुन्नी मुस्लिमों में सबसे आदरणीय राष्ट्र है। इन दोनों राष्ट्रों की बिसात पर ही विश्व की महाशक्तियाँ अपनी कूटनीति को नई दिशा देती रही है। अमेरिका और अमेरिकी समर्थक राष्ट्र सऊदी अरब को समर्थन देते हैं तो रूस और चीन ईरान का समर्थन करते हैं। बड़ी शक्तियाँ दूर से ही खेल खेलती है उसमें उलझना वो चाहती नहीं इसीलिए प्रभाव के खेल में सदैव नीतियों को बदलते हुए राष्ट्रों का चयन करते हुए चलती है। इसका उदाहरण हम यहाँ ईरान के रूप में देख सकते हैं। ईरान 1979 की क्रान्ति से पूर्व अमेरिकी प्रभाव में था तो सोवियत संघ से इतना ही दूर था। क्रान्ति के पश्चात् ईरान अमेरिकी चंगुल से निकलकर अपनी स्वतन्त्र नीति के अनुरूप

सोवियत रूस के निकट चला गया। हम यहाँ निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि एशिया वर्तमान में संघर्ष का क्षेत्र है और पश्चिमी राष्ट्र इस क्षेत्र पर अपने प्रभाव को स्थापित रखने के लिए निरन्तर कूटनीतिक चालों में संलग्न है।

<u>सन्दर्भ</u>

* सत्यकेतु विद्यालंकार, "एशिया का आधुनिक इतिहास", सफदरजंग इन्कलेव, नई दिल्ली, 1997, पृ. 21
* डॉ. गिरिश कुमार सिंह, "एशिया का इतिहास", विश्व भारतीय पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 2006, पृ. 133.
* डॉ. विमल बहुगुणा, "मध्य–पूर्व में तेल राजनीति का इतिहास", पृ. 23, 137, 162, 163, 937.

✦✦✦✦

* शोध निर्देशिका
वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, टोंक
**रिसर्च स्कोलर
वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, टोंक

प्रकृति का मानवीकरण : कालिदास रचित अभिज्ञान शाकुन्तलम के परिप्रेक्ष्य में

- डॉ. प्रीति विजय

भारत की तपोवन–संस्कृति ही आज ही दिग्भ्रमित मानवजाति को पर्यावरण ज्ञान की वह वांछनीय दिशा प्रदान कर सकती है जिसके द्वारा पर्यावरण के सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सार्वजनीन उत्थान हेतु मानव अपनी असीम क्षमताओं का सदुपयोग करने के लिए प्रवृत्त हो सकता है। जैसे– ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी ही कुटुम्ब है, की अवधारणा पर्यावरण की वैश्विक अवधारणा का प्रतीक बनकर उभरता अति प्रचलित व्यवहारसूत्र है।

मानव तथा प्रकृति की अविच्छिन्नता का सिद्धान्त वैदिक युग से ही भारतीय विचारणा में सुस्थापित है। एक ही परम–तत्त्व से समस्त सृष्टि का उद्भव–विलय होता है और एक ही परम तत्त्व सर्वत्र ओत–प्रोत है। प्रकृति के सभी तत्त्वों में आध्यात्मिक, भौतिक तथा आनुवांशिक एकता है। इस प्रकार प्रकृति के अवियोज्य अंग के रूप में मानव को प्रकृति के प्रति संघर्ष नहीं, साहचर्य की प्रेरणा मिलती है। विविधात्मक विश्व की एकात्मता के कारण सभी तत्त्व परस्पर सम्बद्ध है और प्राकृतिक नियम 'ऋत' से आबद्ध हैं। वैदिक–पौराणिक मान्यतानुसार जीवाजीव सभी में ईश्वर का वास है। ''ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।'' वस्तुतः वैज्ञानिक भी अणु–परमाणुसंघातस्वरूपा सृष्टि की तात्त्विक एकता को स्वीकार करता है, किन्तु वेद–पुराणादि इस वैज्ञानिक तथ्य को बहुदेववाद अथवा सर्वेश्वरवाद के सिद्धान्तों द्वारा दिव्यता का संस्पर्श देकर हृदय ग्राह्य बना देते हैं।

सर्वेश्वरवाद की भारतीय मान्यता समस्त जड़–चेतन तत्त्वों–प्राणियों को समान रूप से पूज्य (पवित्र) बना देती है। जिससे प्रकृति के किसी भी रूप को हेय समझने और किसी भी तत्त्व के प्रति क्रूर स्वामित्वभाव उत्पन्न होने की संभावना ही नहीं रहती। इस प्रकार प्रकृति के प्रति समुचित कर्त्तव्य पालन, कृतज्ञता ज्ञापन, समादर, संरक्षण, उपयोगिता या आवश्यकता को धरातल से ऊपर उठकर मानव के नैतिकदायित्व की श्रेणी में आ जाता है। प्रकृति के प्रति वांछित व्यवहार का निर्देश देने के लिए आज जिस नैतिक–संहिता की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है, ''भारतीय धर्म'' आचार–विचार की वही वांछनीय दिशा प्रदान करने वाला शाश्वत प्रेरणास्रोत है। कण–कण में ईश्वरत्व मानकर, प्राकृतिक शक्तियों को देवस्वरूप मानकर, पशु–पक्षियों को देवावतार या देववाहन मानकर, वृक्षपादपादि को संचेतन ही नहीं देवाधिवासित मानकर, पृथ्वीनदी इत्यादि संसाधनों को मातृवत् मानकर, मनुष्य प्रकृति की पवित्रता को विस्मृत करके उसे विकृत करने का विचार भी नहीं कर सकता।

प्रकृति को प्रभावित करने की मानवीय क्षमता को पहचानकर ही कालिदास तपोवन का व्यापक प्रभावशाली आदर्श प्रस्तुत करते हैं जहाँ यज्ञ और आत्मसंयम द्वारा प्रकृति की गुणवत्ता तथा संतुलनक्षमता की रक्षा होती है। वनस्पति, जीव–जन्तु इत्यादि की प्राणार्पण से रक्षा की जाती है। प्राकृतिक व्यवस्था को अव्यवहित बनाए रखने के लिए ही कालिदास

अकाल वसन्तागमन के कामदेव के प्रयास को जघन्य–अपराध के रूप में चित्रित करते हैं। गो–सेवा, वन्यगज की अबध्यता, आश्रम तथा नगर के पालिक जीवों का संरक्षण, संवर्धन और उनके वासस्थान रूप वनपरितंत्रों की सुरक्षा के प्रति सजगता, जैव–वैविध्य बनाए रखने के व्यावहारिक उपाय है।

इस प्रकार संरक्षित प्रकृति से सदाशय मानव सदा लाभान्वित होता है। दिलीन ने गोसेवा करके पुत्र–प्राप्ति का वरदान पाया और अशोकदोहद पूर्ति करने पर मालविका की प्रिय–मिलन की मनोकामना पूर्ण हो सकी। मानव–प्रकृति के अन्योन्याश्रिततत्व को समझकर ही कालिदास पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों, जड़–जगत् से गहरी आत्मीयता व्यक्त करते हैं। कालीदास की नाट्यकला का यह अद्‌भुत निदर्शन है। संसार की कोई अन्य कृति इतनी सुन्दर, इतनी सरल, इतनी वैभवपूर्ण नहीं। यद्यपि इसका कथानक प्राचीन है जिसमें दुष्यन्त एवं शकुन्तला के प्रणय, वियोग और पुनर्मिलन की कथा वर्णित है। आश्रम की सीमा में मृग सर्वत्र निःशंक भाव से विचरण करते रहते हैं। मृग–शावकों का आश्रम में विशेष ध्यान रखा जाता है, क्योंकि कहीं वे तीक्ष्ण कुशांकुरों से आहत न हो जाय। यदि असावधानीवश कोई मृग आहत हो जाता है तो तापस कन्याएं बड़े ममत्व से उसकी सेवा–सुश्रुषा करती हैं। यहाँ मृगियाँ शकुन्तला की प्रिय सखी है और मृग–शिशु उसके पुत्र सदृश हैं।

आश्रम के निकट पर्वतीयउपत्यकाओं में कृष्णमृग समूहबद्ध होकर या मुग्धरूप में बैठे रहते हैं। कण्वाश्रम के समीप मृगयाविहारी राजा दुष्यन्त एक मृग का ही आखेट करने के लिए समुत्सुक होता है। मध्य हिमालय की तलहटी में आज भी अनेक जातियों के मृग पाये जाते हैं। कण्वाश्रम में शिरीष आदि पर्णपाती वृक्ष हैं जिनके शुष्क पत्ते अत्यधिक मात्रा में गिरने से समीप ही विद्यमान नदी का प्रवहमान जल भी कषायित हो जाता है और पीले पत्तों के निरन्तर गिरने से लताओं के आँसू बहाने का साम्य सार्थक हो सकता है। यहाँ बकुल, आम्र, वट वृक्ष जैसे सदाहरित वृक्षों की पर्याप्त विद्यमानता इस वन को मिश्रित प्रकार का सिद्ध करती है। तदनुसार इस वन को उष्ण– कटिवन्धीय उपपर्णपाती वन कहा जा सकता है। उष्णकटिवन्धीय मानसून जलवायु में इसी प्रकार के वन पाये जाते हैं। मध्य हिमालय के दक्षिण में 'भावर' तथा शिवालिक क्षेत्र में इसी प्रकार के वन हैं, जहाँ शुष्क मौसम में पर्णपात होता है।

वनस्पतियों में सर्वाधिक सूझ–बूझ वृक्ष–बांस–दीवार आदि का अवलम्ब लेकर ऊपर चढ़ने वाली बेलों में होती है। प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया गया है कि लता सूखे वृक्ष की ओर नहीं बढ़ती और अन्य अवलम्ब ढूंढ लेती है। यदि किसी कारणवश वही वृक्ष हरा–भरा होने लगे तो तत्काल लता उसी ओर बढ़कर उस पर अधिकार जमा लेती है। इस प्रकार लताओं में अवलम्ब चुनने की विलक्षणता को पहचानकर ही नवमालिका को 'सहकार–स्वयंवर–वधू' कहा गया है जो नितान्त वैज्ञानिक भी है। कण्वाश्रम के समग्र पर्यावरण–चित्रण के अन्तर्गत कालिदास ने तपोवन की पृष्ठभूमि तथा आश्रम परिसर का संश्लिष्ट निरूपण किया है। मानव प्रायः उपलब्ध साधनों द्वारा ही अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता है। यही नहीं, मृगों की प्रचुरता वनस्पति प्रदेशों में ही हो सकती है।

अतः वल्कल एवं मृगों का उल्लेख करके कवि ने मात्र एक वृक्ष की विद्यमानता को अनेकानेक वृक्ष पादप तृणादि संकुलवनप्रान्त में परिवर्तित कर देने का अपूर्व कौशल

प्रकट किया है। कृष्ण सार युग का स्नेह–व्यापार प्राणी जगत में संवेगों की अनुभूति–अभिव्यक्ति का प्रमाण है। वल्कल के रूप में मानव भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का आधार तो प्रकृति ही है, परन्तु कवि उसे मानवीय आदर्शों के लिए भी अनुकरणीय बताना चाहते हैं। तपोवन के पावन वातावरण में पली हुई साक्षात् प्रकृति की कन्या शकुन्तला जिस समय आश्रम–वृक्षों को सींचती हुई हमारे सामने आती है, उस समय आश्रम–वृक्षों के प्रति शकुन्तला का स्नेह ऐसा जान पड़ता है मानों वे उसके सगे कुटुम्बी ही हों।

आश्रम–वृक्षों की इस भांति मनोयोगपूर्वक सेवा करने वाली शकुन्तला प्रत्येक वृक्ष को अनुरागपूर्वक सींचने वाली और तपोवन की किन लताओं में स्तबक कब प्रकट हुए, उनमें कब मंजरियाँ दिखाई पड़ी– इन सभी बातों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने वाी कण्वलालिताशकुन्तला का अद्भुत प्रकृति–प्रेम उस समय लक्षित होता है, जब स्वयं महर्षि कण्व जाती हुए शकुन्तला को निर्दिष्ट करके वृक्षों की ओर देखते हुए अनुज्ञा के लिये कहते हैं। वृक्ष–वीरुधों, पुष्प–पल्लवों, पशु–पक्षियों से शकुन्ता की अनन्य घनिष्ठता, उसे तन–मन से प्राकृतिक–श्री से तदाकार कर देती है। यह प्रकृति मानव–संसर्ग–रहिता निरी वन्य प्रकृति नहीं है, बल्कि यह तो त्याग और तप की साधना में निरत, निःसंग मनीषीगण के संरक्षण में निःशंक रूप से विकसित तथा उनके साहचर्य में स्वाभाविक रूप से संसुस्कृत प्रकृति है।

मानव के भोगवादी संसर्ग के प्रभाववश प्रकृति तपोवन विरोधी विकार से ग्रस्त होकर अपने निःस्वार्थ संरक्षक तपस्वी मानव दुर्वासा का सत्कार नहीं कर पाती। वस्तुतः सहज प्राकृतिक क्रियाओं में मानव का अविवेकपूर्ण हस्तक्षेप प्रकृति की सर्वदान–क्षमता को अवरुद्ध कर देता है। प्रकृति की सहज कर्तव्यशीता के कुण्ठित होने से आहत चित्त संरक्षक का उद्‌गार वस्तुतः प्रकृति के लिए शाप नहीं बल्कि अवश्यंभावी का कथनमात्र है कि भोगवादी मानव प्रकृति को प्रमत्तवत् विस्मृत कर देगा।

तपोवन के संयमित संरक्षण में संवर्धित प्रकृति भोगपरक नागर–सभ्यताकृत शोषण की आशंका तक से अपरिचित है, अतः उसके सम्पर्क जन्य संकट के विरुद्ध स्वाभाविक प्राकृतिक प्रतिरक्षा सामर्थ्य के उपभोग का प्रश्न ही नहीं उठता, वह तो सकल स्नेह और सहज विश्वासपूर्वक बहुमुखी नागर सभ्यता के प्रति मानव को अपनी समग्र सम्भावनाएँ सौंपती है।

महर्षि कण्व ने शकुन्तला के विवाह को स्वीकृति तो प्रदान की परन्तु भावी अनिष्ट को तपोवल से टाला नहीं। प्रकृति तथा मानव की परस्परापेक्षा स्वाभाविक ही नहीं, अभीष्ट भी है। तपोवनस्वरूप अभयारण्य में संयमचित्त मानव, लोकमंगल का निक्षेप मानकर ही प्रकृति का परिरक्षण करता है किन्तु प्रकृति की सहजता में आघात एवं अनावश्यक नियन्त्रण कभी भी नहीं करता और न ही प्रकृति की मानव वंश वृद्धि में संलग्नता की आलोचना करता है।

प्रकृति तथा मानव की परस्परानुरूपता असंदिग्ध है। तपोवन–संस्कृति की मर्यादा की अवहेलना, कल्याणकर नियमों का उल्लंघन किए जाने पर भी निःसंग मानव तपोवनरक्षिता प्रकृति के सम्बन्ध को स्वीकार कर लेता है, क्योंकि अन्ततः यह सम्बन्ध लोक कल्याणार्थ ही है। प्रकृति के उपभोग के लिए मानव ने अपने अन्तःकरण को ही प्रामाणिक मानते हुए प्रकृति के प्रति अपने अधीरतापूर्ण आचरण के औचित्य के तर्क गढ़ लिए थे और अब प्रकृति के प्रति कर्त्तव्य निभाने का अवसर आने पर वह शास्त्रों की तर्कणा के बल पर

मिथ्यादोषारोपण करते हुए प्रकृति को अपमानित करता है। प्रकृति की जिस दशा के लिए वह स्वयं उत्तरदायी है, उसी के आधार पर वह उसे दूषित मानकर त्याज्य घोषित कर देता है।

वस्तुतः मानवोपयोगी बनने पर यह प्रकृति में होने वाला सहज परिवर्तन है जिससे मानव की उन्नति ही होगी किन्तु वह उसे दूषण मानता है, क्योंकि इस स्थिति में प्रकृति उसके लिए उपभोग–क्षम नहीं रह गयी है। ऐसी परिस्थिति में शान्तप्रकृति का रौद्र रूप देखकर उसे अपने द्वारा कोई अकरणीय कृत्य कर बैठने की आशंका तो होती है परन्तु प्रदूषणकारी मानव अपना कृत्य भूलकर प्रकृति की शुद्धता पर ही प्रश्नचिन्ह लगा देता है। विशुद्ध पर्यावरण के संरक्षक शांगरव और शारद्वत् भौतिकवादी मानव के संसर्ग से विरूपित और असहाय प्रकृति को आत्मसात् करने से हिचकिचाते हैं तथा भौतिकवादी मानव प्रकृति से अपने सम्बन्ध का मापदण्ड प्रकृति द्वारा मानवांकुर फल प्रदान करने की क्षमता को ही मानता है। प्रकृति के संरक्षणकारी नियमों की सामर्थ्य जानते हुए भी उनके अवहेलना करके मानवप्रकृति के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, तब भी वह शान्ति प्रधान प्राकृतिक नियमन में निहित गूढ़ दाहात्मकता से अनभिज्ञ नहीं होता।

इसी प्रकार आज का मानव पर्यावरण के जटिल नियमों की जानकारी होते हुए भी प्रकृति का मनमाना शोषण करता है, यद्यपि वह जानता है कि शान्त कल्याणी प्रकृति भी अत्यधिक शोषण–दूषण करने पर अपनी क्षुब्धता प्रकट करेगी और इससे मानव का अहित होगा। आज के भौतिक ज्ञान–विज्ञान सम्पन्न, ऐश्वर्य–मत्त, भोग–लिप्त मानव का प्रकृति के शोषण तथा प्रदूषणविषयक दृष्टिकोण की झलक अभिज्ञानशाकुन्तलनामक दृश्यकाव्य में परिलक्षित होती है। यह ग्रन्थ जगत की पर्यावरणीय समस्याओं का निदान ढूंढने में पूर्णतः सफल ग्रन्थ माना जा सकता है जहाँ मानवीय वेदना, संवेदनाओं के साथ–साथ मानव की पूर्ण चेतना प्रकृति के साथ जुड़ी हुई सी प्रतीत होती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. मालविकाग्निमित्रम् 3/5
2. मालविकाग्निमित्रम् 3/16
3. मल्लिनाथ संजीवनी टीका
4. जगदीप सक्सेना, विश्व प्रसिद्ध मांसाहारी तथा अन्य विचित्र पेड़ पौधे
5. ऋग्वेद 10/10/95
6. विक्रमोर्वशीयम्, 2/6
7. विक्रमोर्वशीयम्, 2/22
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/9
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक
10. भगवतीशरण उपाध्याय, कालिदास का भारत
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, सप्तम अंक

जयपुर, राजस्थान

किसानों का मददगार : राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक

- मंजू चौधरी

ग्रामीण एवं कृषि विकास हेतु ऋण प्रवाह सुनिश्चित करने हेतु क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का योगदान भी महत्वपूर्ण साबित हो रहा है। इन बैंकों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्गों को ऋण उपलब्ध कराकर उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने का प्रयास किया जा रहा है। ये बैंक कृषि श्रमिकों, लघु, कुटीर तथा दस्तकारी उद्यमियों तथा लघु एवं सीमांत किसानों को ऋण प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। किंतु यह भी सच है कि वर्तमान में इन बैंकों को सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के बैंकों से प्रतिस्पर्धा, कमजोर पूंजी आधार का उच्च प्रतिशत, समन्वय का अभाव, प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी आदि चुनौतियों से जूझना पड़ रहा है। निसंदेह रूप से इन चुनौतियों का शीघ्र समाधान करके ही ग्रामीण विकास में इन बैंकों की प्रासंगिकता तथा सार्थकता को बढ़ाया जा सकता है। पिछले कुछ समय से ग्रामीण भारत में लघु ऋण कार्यक्रम के रूप में स्वयंसहायता समूह भी काफी प्रचलित हुए हैं। इन स्वयंसहायता समूहों की खासियत यह है कि इनमें से अधिकतर समूहों को महिलाएं चला रही हैं। इस तरह स्वयंसहायता समूह ग्रामीण व्यवस्था के जरिए गरीबी उन्मूलन के साथ महिला सशक्तिकरण का भी कार्य कर रहे हैं। इन स्वयंसहायता समूहों की अवधारणा गरीब परिवारों के जीवन–स्तर को ऊपर उठाने और उन्हें किसी लघु उद्यम से जोड़ने की है। आज जरुरत इस बात की है कि इन स्वयंसहायता समूहों को पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाए जिससे वे अपनी गतिविधियां व्यवस्थित तरीके से चला सकें और लघु ऋण व्यवस्था सही मायने में उनका स्तर ऊपर उठाने में सार्थक बन सके।

राजस्थान राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक की ओर से चलाई जा रही योजनाएं खासतौर से ग्रामीणों और किसानों को ध्यान में रखकर तैयार की गई हैं। इन योजनाओं से किसी न किसी रूप में हर ग्रामीण लाभान्वित हो रहा है। बैंक ने अलग–अलग क्षेत्र में अलग–अलग योजनाएं लागू करके सभी को किसी न किसी रूप में जोड़ रखा है। राजस्थान के किसान इन योजनाओं के जरिए न सिर्फ अपनी खेतीबाड़ी को समृद्ध कर रहे हैं बल्कि राज्य एवं देश के विकास में भी अपना योगदान दे रहे हैं।

किसानों एवं ग्रामीणों को विभिन्न स्तरों पर ऋण सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए सभी राज्यों में राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक खोला गया है। नाबार्ड सहित विभिन्न वित्तीय संस्थाओं की ओर से बनाए जा रहे कार्यक्रमों को सहकारी भूमि विकास बैंक के जरिए लाभान्वित किया जाता है। राज्य के कृषकों को उनके कृषि विकास के साथ ग्रामीण विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राथमिक बैंकों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के ऋण एवं क्रेडिट निर्धारित ऋण नीति के अन्तर्गत मुहैया कराए जाते हैं। इन बैंकों के जरिए ग्रामीण इलाके में बहुत ही सुलभ तरीके से ऋण सुविधा उपलब्ध हो सकी है। केंद्र एवं राज्य सरकार की ओर से विभिन्न मदों के जरिए इन बैंकों को भरपूर सहयोग दिया जा रहा है और ये बैंक आम जन

की जरूरतों को पूरा कर उन्हें स्वावलंबी बना रहे हैं। साथ ही ग्रामीण विकास को नई दिशा प्रदान कर रहे हैं। इसमें सबसे बड़ी खासियत यह है कि इन बैंकों के पास सभी क्षेत्रों के लिए ऋण सुविधा उपलब्ध है। आवेदक जिस भी क्षेत्र में कारोबार करना चाहे, उसके लिए ये बैंक खुले हाथ से सहयोग करने के लिए तैयार हैं। हालांकि राज्य सहकारी बैंकों की योजनाएं ज्यादातर हर राज्य में चल रही हैं। बस वहां की भौगोलिक स्थिति और आर्थिक जरूरत के हिसाब से उसमें कुछ परिवर्तन किया गया है। यदि हम राजस्थान सहकारी भूमि विकास बैंक की विभिन्न योजनाओं पर गौर करें तो वे हर वर्ग को किसी न किसी रूप में लाभान्वित कर रही हैं।

राजस्थान में स्वतंत्रता से पूर्व प्रथम भूमि बंधक बैंक की स्थापना 1924 में अजमेर में हुई थी। उसके पश्चात 1928 में ब्यावर में भूमि बंधक बैंक की स्थापना हुई। स्वतंत्रता के पश्चात 1954 में ग्रामीण साख सर्व कमेटी द्वारा सिफारिश की गई कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्रतिपादित योजनाबद्ध विकास की अवधारणा के अंतर्गत भूमि बंधक बैंकों को कृषि क्षेत्र में उत्पादन हेतु ऋण उपलब्ध कराने चाहिए। ग्रामीण साख सर्वे कमेटी की सिफारिशों के क्रम में राजस्थान भूमि बंधक अधिनियम 1956 के अंतर्गत राज्य भूमि बंधक बैंकों की स्थापना हुई।1956 में राजस्थान सहकारी संस्था अधिनियम के अंतर्गत 'बंधक' शब्द के स्थान पर 'विकास' शब्द का उपयोग प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार भूमि बंधक बैंकों का नाम बदलकर राज्य भूमि विकास बैंक एवं प्राथमिक भूमि विकास बैंक किया गया। राज्य भूमि विकास बैंक की स्थापना 26 मार्च, 1957 को हुई। जिला स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक कार्यरत हैं। राजस्थान में इन दिनों 36 भूमि विकास बैंक अपनी 131 शाखाओं के माध्यम से दीर्घ कालीन ऋण वितरित कर रहे हैं। राज्य भूमि विकास बैंक के 7 क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो भरतपुर, उदयपुर, जोधपुर, अजमेर, जयपुर, कोटा, श्रीगंगानगर में स्थापित हैं। इन कार्यालयों के जरिए जिला स्तर पर योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है। फिलहाल इस बैंक की ओर से ग्रामीण स्तर पर हर व्यक्ति को लाभान्वित करने के लिए निम्नलिखित योजनाएं चलाई जा रही हैं–

लघु सिंचाई योजनाएं

इस योजना में किसानों को सिंचाई संबंधी सुविधाओं के विकास के लिए ऋण दिया जाता है। वर्तमान में प्रमुख रूप से 10 लघु सिंचाई योजनाएं संचालित की जा रही हैं। इसके अलावा कुछ योजनाएं समय–समय पर संचालित की जाती हैं।

* नलकूपडगवैल / डगकमबोरवैल / केविटिपाइप / बोरवैल योजना
* कृषकों को पर्याप्त भूजल उपलब्धता के आधार पर नलकूप डगवैल, डगकमबोरवैल, केविटी पाइपबोर वैल / नलकूप / कूपगहरा एवं कुओं पर डीजल / विद्युत पम्पसैट के लिए 9 से 15 वर्ष की अवधि एवं अनुग्रह अवधि 23 माह के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है।
* **नलकूप / बोरवैल पम्पसैट योजना** – पर्याप्त भूजल उपलब्धता के आधार पर नलकूप / बोरवैल सबमर्सीबल पम्पसैट के लिए 12 वर्ष के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है, जिसकी अनुग्रह अवधि 23 माह है।
* **कूपगहरा योजना** – जल उपलब्धता के आधार पर कृषकों के कुओं की खुदाई एवं बोरिंग द्वारा कूप गहरा कराने के लिए 5 वर्ष की अवधि के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है।

*	**डीजल/विद्युत पम्पसैट योजना** – इस योजना में जल उपलब्धता के आधार पर कृषकों को सिंचाई कार्य के लिए नलकूपों से जलदोहन के लिए डीजल/विद्युत पम्पसैट खरीदने के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है, जिसकी अदायगी 9 वर्ष में करनी होती है।
*	**बूंद–बूंद सिंचाई योजना** – इस योजना के तहत पानी की महाबचत– सिंचाई क्षेत्र में वृद्धि, उद्यान विभाग द्वारा डिप सैट पर अनुदान दिए जाने का भी प्रावधान किया गया है। इसके लिए आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है, जिसका भुगतान 10 से 15 वर्ष में होता है एवं 11 माह की अनुग्रह अवधि निर्धारित की गई है।
*	**फव्वारा सिंचाई योजना** – पानी की बचत, असमतल भूमि पर भी खेती, सिंचाई क्षेत्रों का विस्तार, फव्वारे द्वारा सिंचाई के साथ ही फसलों पर कीटनाशक दवा का छिड़काव भी संभव, अनुदान योग्य केसेज में अनुदान सुविधा ऋण 10 से 15 वर्ष, 11 माह की अनुग्रह अवधि।
*	**डिग्गी फव्वारा सिंचाई योजना** – नहरी क्षेत्रों में अपर्याप्त एवं असामायिक विद्युत आपूर्ति का प्रामाणिक निराकरण, डिग्गी निर्माण से सिंचाई की सुनिश्चितता, आसान शर्तों पर ऋण 9 वर्ष के लिए उपलब्ध।
*	पाई पलाईन योजना – भू जल को रोकने तथा इसका अधिकतम उपयोग करने हेतु एवं खेतों में पानी पहुंचाने हेतु पक्की नाली एचडीपीई तथा पीवीसी पाइपलाईन ऋण हेतु 9 वर्ष की अवधि–अनुग्रह अवधि 11 माह हेतु ऋण उपलब्ध।
*	**विद्युतीकरण योजना** – डार्क जोन घोषित होने से पूर्व निर्मित नलकूप/ डगकम बोरवैल/कैविटी पाईप बोरवैल/नलकूप पर विद्युत कनेक्शन हेतु विद्युत वितरण निगम में मांग–पत्र के आधार पर राशि जमा करवाने हेतु कृषकों को ऋण की सुविधा 50000 से 1 लाख तक 9 वर्ष की अवधि के लिए देय तथा कुओं पर डीजल पम्पसैट के स्थान पर समान अश्वशक्ति के विद्युतमोटर हेतु भी ऋण की व्यवस्था।
*	**मुख्यमंत्री जनजाति अनुसूचित/सहरिया क्षेत्र जलधारा योजना** – इस योजनान्तर्गत सुरक्षित एवं अर्द्धसंवेदनशील क्षेत्रों के साथ–साथ डार्क जोन में आने वाले जनजाति क्षेत्र के सभी श्रेणी के काश्तकारों को लघु सिंचाई उद्देश्यों के तहत राज्य के 6 जिलों में बांसवाड़ा, उदयपुर, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़, सिरोही एवं बांरा की 25 पंचायत समितियों के काश्तकारों को जलधारा योजनान्तर्गत ऋण सुविधा दी जा रही है। इसकी अवधि 9 से 15 वर्ष निर्धारित की गई है।

विविधिकृत ऋण योजनाएं

चूंकि राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक ने अपनी ऋण योजनाओं को अलग–अलग श्रेणी में बांट रखा है। योजनाओं में किसी तरह की घालमेल न होने पाए और उनका लाभ सही लाभार्थी को मिले, इसके लिए भी श्रेणीबद्ध किया गया है। विविधिकृत ऋण योजना में पशुपालन से जुड़े कारोबार को शामिल किया गया है। इस योजना के तहत छोटी एवं बड़ी 23 योजनाएं चलाई जा रही हैं जो निम्नलिखित हैं–

डेयरी विकास – कृषक के जीवन–स्तर में सुधार के लिए कृषि आय के साथ–साथ उनके फार्म से सहआय प्राप्त करने हेतु डेयरी के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इसकी अवधि 5 से 6 निर्धारित की गई है।

पोल्टी फार्म – कृषक के जीवन–स्तर में सुधार के लिए कृषि आय के साथ–साथ उनके फार्म से सहआय प्राप्त करने के लिए पोल्टीफार्म खुलवाए जाते हैं। इसके लिए 5–7 वर्ष की अवधि के लिए ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं।

मछलीपालन – कृषक को जीवन–स्तर में सुधार के लिए कृषि आय के साथ–साथ उनके फार्म से सहआय प्राप्त करने हेतु मछली पालन उद्देश्य हेतु ऋण सुविधा 7 वर्ष की अवधि हेतु, एक वर्ष अनुग्रह अवधि के लिए उपलब्ध।

भेड़ बकरी पालन – कृषक के जीवन–स्तर में सुधार के लिए कृषि आय के साथ–साथ उनके फार्म से सहआय प्राप्त करने हेतु भेड़–बकरी पालन उद्देश्य हेतु ऋण सुविधा 5 वर्ष की अवधि, एक वर्ष अनुग्रह अवधि के लिए उपलब्ध।

उद्यानिकी योजनाएं – निरन्तर घटती जोत से प्रति इकाई क्षेत्र में अधिकतम आय अर्जित करने हेतु विभिन्न उद्यानिकी योजनाओं के लिए ऋण उपलब्ध, ऋण हेतु कृषकों के पास सिंचाई की सुनिश्चित व्यवस्था आवश्यक। योजनान्तर्गत विभिन्न फलों व फूलों के बाग लगाने हेतु ऋण 3 से 10 वर्ष, 3–7 वर्ष की अनुग्रह अवधि।

भारवाहक पशु एवं पशुचालित गाड़ियां – फसल कटाई के उपरांत आगामी फसल तक के खाली समय में एवं घर के बेरोजगार नवयुवकों को कार्य में लगाते हुए आय प्राप्त करने के लिए भारवाहक पशु एवं पशुचालित गाड़ियों हेतु बैंक द्वारा ऋण सुविधा 5 वर्ष हेतु उपलब्ध कराई जाती है।

कच्चा हौज सिंचाई योजना – विद्युत आपूर्ति में कमी से निजात– जल स्रोत के विवेकपूर्ण एवं सामयिक उपयोग की दृष्टि से पानी का हौज निर्माण करवाने के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। ऋण की अवधि 9 वर्ष, जिसमें एक वर्ष का ग्रेस पीरियड शामिल।

पक्का फार्म पौण्ड निर्माण योजना – विद्युत आपूर्ति में कमी से निजात– जलस्रोत के विवेकपूर्ण एवं सामयिक उपयोग की दृष्टि से पानी का हौज निर्माण करवाने के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। ऋण की अवधि 9 वर्ष, जिसमें एक वर्ष का ग्रेस पीरियड शामिल किया गया है।

भूमि सुधार योजना – कृषक को अपने फार्म को खेती योग्य बनाने के लिए भूमि समतलीकरण, तारबन्दी, पक्की दीवार, क्षारीयता का उपचार, आदि के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। मशीनरी हेतु स्वीकृत राशि का भुगतान लाभार्थी के अधिकार पत्र पर सीधे बैंक द्वारा फर्म को देय होता है। ऋण का भुगतान 9 वर्ष में वार्षिक किश्तों में करना होता है।

वर्मी कम्पोस्ट – कृषि अवशेष/वानस्पतिक कचरे, गोबर मिट्टी एवं किसान मित्र केंचुए का उपयोग करते हुए वर्मी कम्पोस्ट के निर्माण के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। ऋण का भुगतान 5 वर्ष में करना होता है। इसमें अनुग्रह अवधि 1 वर्ष निर्धारित की गई है।

रेशम कीट पालन – रेशम कीट पालन करके रेशम कोकून तैयार करने के लिए ऋण वितरण का प्रावधान किया गया है। ऋण का भुगतान 5 वर्ष में वार्षिक किश्तों में करना होता है।

मधुमक्खी पालन – पुष्पीय/उद्यानिकी फसलों की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन हेतु ऋण उपलब्ध, मधुमक्खी पालन द्वारा शहद/मोम /अतिरिक्त कॉलोनी के साथ फसलोत्पादन में वृद्धि, न्यूनतम 10 मधुमक्खी बक्सों के लिए ऋण का प्रावधान किया गया है। इसमें अधिकतम बीस लाख तक ऋण दिया जाता है। ऋण की अदायगी 5 वर्ष में वार्षिक किश्तों के आधार पर करनी होती है।

हरा चारा उत्पादन – सिंचाई की सुनिश्चितता होने पर रिजका की खेती के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इसमें स्वयं के पशुओं/हरे चारे के बेचान के लिए रिजका की खेती पर 10000 रूपये प्रति एकड़ की दर से ऋण उपलब्ध कराया जाता है। ऋण अदायगी का समय तीन वर्ष निर्धारित है।

कृषि स्नातकों को अपने स्वयं के कृषि क्लिनिक एवं कृषि उद्योग खोलने के लिए ऋण सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। कृषि स्नातकों को गतिविधि विशेष का समुचित अनुभव आवश्यक– ऋण का भुगतान गतिविधि विशेष से होने वाली आय के अनुसार– कृषि स्नातक के स्वयं के नाम से कृषि भूमि/अचल सम्पति नहीं होने पर पिता/माता/नजदीकी रिश्तेदार की कृषि भूमि/अचल सम्पत्ति पर भी ऋण 5 वर्ष के लिए उपलब्ध कराया जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में अनाज/ कृषि उत्पाद को खराब होने से बचाने एवं उसके समुचित रखरखाव व भण्डारण के लिए योजनान्तर्गत बैंक एन्डेड पद्धति से किश्तों में ऋण एवं अनुदान उपलब्ध कराया जाता है। इसके तहत सामान्य श्रेणी के लाभार्थी को 25 फीसदी अंशदान एवं अनुदान 25 फीसदी एवं अनुसूचित जाति–जनजाति के किसान को 20 फीसदी योगदान एवं अनुदान 33 फीसदी देना होता है। गोदाम निर्माण कार्य 15 माह में पूर्ण होना आवश्यक। गोदाम निर्माण नगरपालिका क्षेत्र के बाहर किया जाएगा। अधिकतम 10,000 मीट्रिक टन तक ऋण सुविधा 11 वर्ष के लिए उपलब्ध कराई जाती है।

औषधीय पादप योजना – राज्य की उपलब्ध प्राकृतिक सम्पदा को ध्यान में रखते हुए दीर्घकालीन औषधीय पादपों जैसे सफेद मूसली, गवारपाठा, गूग्गल आदि की खेती हेतु ऋण सुविधा 3 से 5 वर्ष के लिए दी जाती है।

जैटोफा प्लांटेशन योजना – जैटोफा अर्थात रतनजोत एक बहुत ही बहुमूल्य पौधा है। इसके विभिन्न भाग सौन्दर्य प्रसाधन, रंगाई, मोमबत्ती, साबुन व प्लास्टिक निर्माण के काम आते हैं। प्रमुख रूप से इसके बीजों से तेल निकाला जाता है जोकि डीजल के विकल्प के रूप में काम में आता है। इसे बायोडीजल भी कहते हैं। इसके लिए एक हेक्टेयर की इकाई हेतु 10500 रुपये से 16200 रुपये तक का ऋण 7 वर्ष की अवधि के लिए दिया जाता है।

मिट्टी/पानी जांच लैब स्थापना – कृषकों का फसलोत्पादन बढ़ाने हेतु मिट्टी/पानी की जाँच के आधार पर उर्वरकों का उपयोग करने के लिए लैब की स्थापना के लिए ऋण सुविधा का प्रावधान किया गया है। इसमें अधिकतम 5 लाख तक की ऋण सुविधा 8 वर्ष के लिए उपलब्ध कराई जाती है।

वेन्चर कैपिटल फंड योजना – राज्य में डेयरी/पोल्ट्री उद्देश्य की चयनित गतिविधियों हेतु नाबार्ड द्वारा विशेष योजना प्रारम्भ की गई है। इसकी मुख्य विशेषता है कि इसमें निवेश की 50 प्रतिशत राशि पर ब्याज दर शून्य रहता है, जबकि नियमित भुगतान होने पर शेष राशि

पर देय ब्याज की 50 प्रतिशत राशि कृषक को लौटा दी जाएगी। प्रभावी ब्याज दर 3–4 प्रतिशत वार्षिक होगी। ऋण की अवधि 3 से 8 वर्ष होगी।

कृषि विपणन आधारिक संरचना – फसल कटाई के बाद विभिन्न कृषि उत्पादों/विपण्य अधिशेष के प्रबन्धन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए विपणन आधारिक संरचना के विकास के लिए यह योजना तैयार की गई है। यह योजना सुधार से संबंधित है और आधारिक संरचना परियोजनाओं के विकास के लिए सहायता उन राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को दी जाएगी जो प्रत्यक्ष विपणन एवं संविदा कृषि की अनुमति और निजी तथा सहकारी क्षेत्रों में कृषि मण्डियों की स्थापना की अनुमति देते हैं।

केन्द्र प्रायोजित भेड़ एवं बकरी पालन योजना – भेड़ एवं बकरियों का पालन अत्यधिक गरीब ग्रामीणों द्वारा किया जाता है और ये पशु हमारे समाज को मांस और खाद प्रदान करते हैं। ये पशु विभिन्न प्रकार की कृषि जलवायु स्थितियों के अनुकूल होते हैं, तथापि उस क्षेत्र के पिछड़े होने के मुख्यकारणों में अत्यन्त निर्धन लोगों को इस क्षेत्र की भूमिका की कम जानकारी, योजनाकारों/वित्तीय एजेंसियों के द्वारा ध्यान के अभाव और पशुओं की उत्पादकता सुधारने की दिशा में कम ध्यान दिया जाना शामिल है। इस पृष्ठभूमि में, भारत सरकार द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की शेष अवधि के दौरान छोटे रोमन्थक भेड़ एवं बकरी के समन्वित विकास हेतु जोखिम पूंजी निधि के साथ एक योजना शुरू की जाए। इस योजना के दिशा–निर्देशों के पैरा 5–1 में यथा उल्लिखित विभिन्न घटकों के लिए कुल वित्तीय परिव्यय टीएफओ पर आधारित ब्याजमुक्त ऋण आईएफएल प्रदान किया जाएगा।

सहायता योजनाएं

विभिन्न परियोजनाओं के लिए ऋण लेने के बाद यदि किसी कारणवश लाभार्थी असफल होता है तो भी उसे आर्थिक रूप से सहायता का प्रावधान है। इसके तहत सहायता योजनाएं संचालित की जा रही हैं–

असफल नलकूप सहायता योजना – भूमि विकास बैंकों से ऋण प्राप्त कर निर्मित नलकूपों के असफल होने पर एक अप्रैल, 2005 से राज्य बैंक द्वारा असफल नलकूप क्षतिपूर्ति योजना प्रारम्भ की गई है। योजनान्तर्गत निम्नलिखित दो आधारों पर नलकूप को असफल माना जाएगा। पहली श्रेणी में नलकूप के निर्माण के दौरान अथवा निर्माण के पश्चात 30 दिनों की अवधि में नलकूप में गहराई पर पाई गई अपेक्षाकृत कमजोर परत के ढह जाने पर या अन्य किसी प्राकृतिक आपदा के कारण नलकूप के ढह जाने पर जिसका आगे उपयोग सम्भव नहीं हो। दूसरी श्रेणी में नलकूप से प्राप्त भूजल की रासायनिक गुणवत्ता कृषि कार्यों हेतु उपयुक्त नहीं पाए जाने पर।

बैंक के ऋणी कृषक की दुर्घटना से मृत्यु या स्थायी अपंगता हो जाने की स्थिति में बीमा कम्पनी से भुगतान दुर्घटना हेतु मृत्यु हो जाने की स्थिति में 50,000 रु. क्षतिपूर्ति स्वरूप बीमा कम्पनी द्वारा देय होता है। बीमा प्रीमियम हेतु ऋणी से मात्र 7 रुपये प्रतिवर्ष की दर से लिए जाएंगे। दुर्घटना होने के 15 दिवस एवं मृत्यु होने के 30 दिवस में संबंधित सूचना प्राधिकृत कार्यालय को दिया जाना आवश्यक है। भुगतान दावा प्रस्तुत होने के 30 दिवस की अवधि में भुगतान कर दिया जाएगा।

ट्रैक्टर – नकद ऋण वितरण योजना – राज्य के भूमि विकास बैंकों द्वारा नाबार्ड की ट्रैक्टर एवं कृषि मशीनरी ऋण नीति के अनुसार अब तक लाभार्थियों के पक्ष में स्वीकृत ट्रैक्टर एवं कृषि मशीनरी ऋण का उनकी सहमति के आधार पर बैंक द्वारा सीधे ही ट्रैक्टर एवं कृषि मशीनरी उपलब्ध करवाने वाली फर्म/विक्रेता को भुगतान कर दिया जाता था। क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार यह अनुभव किया गया कि नकद राशि से ट्रैक्टर क्रय करने वाले लाभार्थियों को विक्रेताओं द्वारा ट्रैक्टर के अधिकतम बिक्री मूल्यों पर बैंक ऋण से ट्रैक्टर क्रय करने वाले लाभार्थियों की अपेक्षा अधिक नकद छूट दी जाती है। बैंक ऋण से ट्रैक्टर क्रय करने वाले लाभार्थियों को आर्थिक हानि न हो तथा वे अपने मनपसन्द मेक/मॉडल के ट्रैक्टर क्रय कर सके इसके लिए प्रस्तावित नकद क्रय योजना नाबार्ड द्वारा स्वीकृत कर दी गई है। इस योजना का लाभ प्राप्त करने के लिए कृषक के पास कम से कम 6 एकड़ बारहमासी सिंचित भूमि अथवा समकक्ष मूल्य की बारानी कृषि योग्य भूमि होनी चाहिए। ऋण प्रार्थनापत्र के साथ कृषक/कृषकों को केन्द्रीय सहकारी बैंक में खोले गये बचत खाते की पासबुक के पहले पृष्ठ की फोटो प्रति संलग्न की जाती है। यदि प्रार्थी का बचत खाता खुला हुआ नहीं है तो उसे केन्द्रीय सहकारी बैंक में बचत खाता खोलकर बचत खाता संख्या एवं पासबुक की फोटोस्टेट प्रति उपलब्ध करानी होगी।

संयुक्त ऋण के मामले में सभी ऋणियों के नाम से संयुक्त खाता खुलवाना होगा। कृषक की ऋण भुगतान क्षमता का निर्धारण वर्तमान फसलोत्पादन से प्राप्त बढ़ी हुई आय एवं कस्टम हायरिंग से प्राप्त आय के आधार पर ही किया जाएगा। ट्रैक्टर ऋण स्वीकृति से पूर्व प्रार्थी की ऋण चुकौती क्षमता आंकलन के लिए क्षेत्र विशेष में सम्भावित वास्तविक कस्टम हायरिंग से प्राप्त आय अधिकतम 45,000 रु. तक आंकी जाएगी। कम्पनियों के विभिन्न मेक/ मॉडल के बाजार मूल्य का आंकलन प्राथमिक सहकारी भूमि विकास बैंक अपने स्तर से विभिन्न कम्पनियों द्वारा निर्धारित अधिकतम बिक्री मूल्य, डीलर्स द्वारा जारी इनवाईस/ वाउचर, बिल पर होने वाली विशेष छूट आदि की जानकारी तथा बैंक अपने स्तर से किए गए प्रयासों से अधिकतम बिक्री मूल्य में जो कमी करवाई है उसको ध्यान में रखते हुए बाजार मूल्य का आंकलन किया जाएगा। ऋण लेने वाले कृषक द्वारा भी अपने स्तर से उसकी पसन्द के ट्रैक्टर के बाजार मूल्य की जानकारी प्राप्त की जाएगी तथा कृषक द्वारा अपनी जानकारी के आधार पर अपने ऋण आवेदन–पत्र में बाजार मूल्य का अंकन किया जाएगा। निर्धारित मूल्य के 90 प्रतिशत तक ऋण स्वीकृत किया जा सकता है बशर्ते कि ऋण क्षमता एवं ऋण भुगतान क्षमता पर्याप्त बनती हो। बैंक ऋण वितरण करते समय चैक पर लाभार्थी के नाम के साथ–साथ बचत खाता संख्या एवं सम्बन्धित बैंक का नाम भी अंकित करेगा।ट्रैक्टर एवं कृषि यन्त्रों के लिए बैंक द्वारा आंकलित मूल्य का 10 प्रतिशत ऋणी द्वारा स्वयं के वित्तीय साधनों से वहन किया जाएगा। शेष 90 प्रतिशत राशि ऋण के रूप में बैंक द्वारा उपलब्ध करायी जाएगी बशर्ते कि ऋण क्षमता पर्याप्त बनती हो।

निष्कर्षतः भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण होने के कारण देश के विकास में अत्यधिक महत्व है। ग्रामीण विकास के लिए अत्यधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। इसके लिए सरकार ने विभिन्न प्रकार की वित्तीय योजना प्रारंभ की ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में ऋण

सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्थव्यवस्था की ऋण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति संगठित और असंगठित दोनों माध्यम से हो रही है। भारत सरकार द्वारा 2 अक्टूबर 1975 में गांधी जयंती के पावन अवसर पर चार राज्यों में पांच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई। भारत सरकार के माध्यम से इन बैंकों द्वारा ग्रामीणों को अत्यधिक ऋण सुविधाएं प्रदान की जाती हैं जो ग्रामीणों के लिए वरदान साबित हुई हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के ऋण प्रदान करता है। वर्तमान में भारत सरकार अपने विभिन्न आयामों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में कोने–कोने तक ऋण सुविधाओं को बढ़ावा दे रही है जिसका लाभ भारत के लोगों को मिल रहा है। कृषि, व्यापार, पशुपालन, लघु सीमांत कृषकों, ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर व्यक्तियों को विभिन्न ऋण योजनाओं के माध्यम से ऋण मिल रहा है। साथ ही परम्परागत ऋण व्यवस्था से छुटकारा भी मिला है। आवश्यकता इस बात की है कि ऋण व्यवस्था को सरल कर दिया जाए ताकि इसका लाभ भारत के सभी वर्गों को मिल सके तभी एक सफल ग्रामीण भारत की कल्पना की जा सकती है।

संदर्भ

- आर्थिक समीक्षा, 2015–16, आर्थिक एवं साख्यिकी निदेशालय, आयोजना विभाग, राजस्थान, जयपुर, पृ. 149
- नाथूरामका लक्ष्मीनारायण, राजस्थान की अर्थव्यवस्था, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2008, पृ. 188
- कटारिया सुरेन्द्र, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2003
- हनुमन्था राव, सी. एच., एग्रीकल्चर, फूड सेक्यूरिटी, पावर्टी एण्ड इनवायरमेंट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010
- दत्त रूद्र एवं सुन्दरम के.पी.एम., भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द एण्ड कम्पनी प्राइवेट लि., नई दिल्ली, 2012
- कुमारी वीणा एवं सिंह आर.के.पी., 'ग्रामीण विकास की समस्याएं एवं उनका समाधान' कुरुक्षेत्र दिल्ली, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, जनवरी 2006
- हिन्दुस्तान टाइम्स, समाचार पत्र, हिन्दुस्तान टाइम्स मीडिया लिमिटेड, नई दिल्ली
- दी इकॉनॉमिक टाइम्स, बेनेट कोलमेन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली
- दैनिक भास्कर, जयपुर, चंडीगढ
- राजस्थान पत्रिका, जयपुर

शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

शोध-संक्षिप्तिका

पण्डित श्रीरामदवे : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
[वर्ष 2010 तक की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन]

विश्व में संस्कृत वाङ्मय का एक गौरवपूर्ण स्थान है। संस्कृत का भाषागत महत्त्व सुविदित है। संस्कृत साहित्य की विविधरूपता, गुणवत्ता की गरिमा, वैशिष्ट्य एवं काव्यात्मक सौष्ठव सभी कुछ अद्वितीय है। इसे देववाणी, सुरभारती आदि नामों से अभिहित किया गया है-

"संस्कृतं नाम दैवीवागन्वाख्याता महषिभिः"

इस भाषा के समृद्ध वैदिक और लौकिक साहित्य से भारत विश्व में गौरवान्वित हुआ है।

इसोलिए भारतीय संस्कृति की संवाहिका तथा विश्वभर की मानवजाति एवं संस्कृति पर प्रभाव डालने वाली प्रचीनतम भाषा होते हए भी यह आज की सर्वाधिक समृद्ध एवं जीवन्त भाषा है। इसके समृद्ध वैदिक एवं लौकिक साहित्य से भारत विश्व में गौरवान्वित हुआ है। संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि विविध भाषाओं के श्रेष्ठतम ग्रन्थ इस ज्ञानार्णव की अमूल्य निधि है। इसी संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में विद्वत्प्रसू और वीरप्रसू राजस्थान का योगदान इस दृष्टि से अभिनन्दनीय रहा है कि यहीं पर महाकवि माघ ने महाकाव्य परम्परा का बीजारोपण किया था। यहाँ के कृतिकारों ने महाकाव्य, खण्डकाव्य, गद्यकाव्य, नाटक, उपन्यास, कथा, चम्पू, स्त्रोत एवं अन्य विविध विधाओं में

न केवल संख्या की दृष्टि से अपितु गुणवत्ता की दृष्टि से भी हजारों कृतियों का प्रणयन किया है।

राजस्थान प्रान्त में जोधपुर क्षेत्र अपने ऐतिहासिक एवं साहित्यिक वैशिष्ट्य के लिए सदैव विख्यात रहा है। यहाँ के श्रेष्ठ विद्वानों ने राज्याश्रय के बिना भी अपनी मननशीलता एवं सृजनशीलता के द्वारा संस्कृत साहित्य को अमूल्य ग्रन्थों की श्रृंखला प्रदान कर इस जिले को अपने अवदान से गौरवान्वित किया है। इन्होंने स्वाध्याय एवं आत्मचिन्तन द्वारा अनेक साहित्यिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक सोपानों का निर्माण किया है।

भारतभूमि आरम्भ से ही सब संस्कृतियों की जननी रही है और राजस्थान प्रदेश उसका केन्द्र बिन्दु भारतवर्ष की इस महानता में राजस्थान प्रदेश की पावन भूमि और इसके वासियों का महत्वपूर्ण योगदान प्राचीन समय से रहा है। वस्तुतः यही कारण है कि इसमें अखण्ड शौर्य की धधकती परम्परा आज तक विद्यमान है।

शोध एक खोज है, क्रान्तदर्शी कवि के शब्दों एवं अर्थों में निहित यथार्थ सत्य की अनन्त वाड्मय-विस्तार मे निहित सामाजिक भाव-भूमि की, जनमानस के कुण्ठित हृदयों के कोनों में छिपी क्षीण संवेदना की, मन की परतों में विलीन असीम संभावनाओं की तथा यह खोज है जनमंगल के शुभ संकल्प, उज्जवल भविष्य एवं निष्कण्टक पाथेय की। शोध चाहे विज्ञान का तथ्यपरक प्रयोगाधारित हो अथवा साहित्य का भावपरक समीक्षाधारित हो, अन्ततोगत्वा दोनों का लक्ष्य जनमंगल की साधना ही है।

यहाँ मैंने अपने शोधग्रंथ पं. श्री रामदवेः व्यक्तित्व एवं कृतित्व (वर्ष 2010 तक की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन) में भी इसी लक्ष्य को साधने का प्रयास किया है।

मैंने कवि के मन के माध्यम से सामाजिक के मन की थाह तक पहुँचकर उसको व्याख्या देने का प्रयास किया है। साहित्यकार मन की चिकित्सा करता है, मन को स्वस्थ करता है, मन को मजबूत करता है, मन के मन को फेरता है और मन फिर जाता है तो समाज के दिन फिर जाते हैं। वह दृष्टि को बदलकर सृष्टि को बदलने का भागीरथी प्रयत्न साधता है। कवि के उन्हो भावों को पढ़कर समाज तक संप्रेषित करने का एक छोटा सा प्रयास करना मेरा लक्ष्य है।

कविमन एवं साहित्य-समाज के मन के बीच यदि एक कड़ी का किञ्चित् धर्म निभा पाऊँ तो मेरा प्रयास सार्थकता को प्राप्त हो जायेगा।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में अर्वाचीन साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार पं. श्री रामदवे के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विस्तृत विवेचना करने का प्रयास किया गया है। इस शोधकार्य से एक समकालीन साहित्यकार के निहितार्थों से समकालीन समाज को भी परखने का प्रयास किया गया है। कवि की दृष्टि में समाज की दशा एवं दिशा क्या है? परम्परा से अर्जित व संचित जीवन मूल्यों के साथ सांस्कृतिक संक्रमण के दौर में आधुनिकता की ओर अग्रसर समाज का परिवेश कैसा है? उसकी समस्याएं एवं संवेदनाएं क्या है? उन समस्याओं का समाधान क्या है? जीवन क विविध मूल्यों के प्रति सामान्य साहित्य शिल्प की विलक्षणताएं क्या है? काव्यगत वैशिष्ट्य क्या है? समसामयिक दृष्टिकोण से उनके साहित्य की महत्ता अथवा प्रासंगिकता कितनी है? इन सभी जिज्ञासाओं को शोधप्रबन्ध में शान्त करने का प्रयास किया गया है। मुझे नहीं लगता कि मैं कवि के साहित्य में निहित गहराई की थाह ले पाया हूँ परन्तु मैंने गहनता एवं गम्भीरता से

उनके साहित्य के कलापक्ष तथा भाव पक्ष के साथ तादात्म्य स्थापित करने की कोशिश की है और शायद कवि के मन्तव्यों एवं काव्य वैशिष्ट्य को मूल्यांकित कर पाया हूँ। मेरे शोधकार्य का सार-संक्षेप कुछ इस प्रकार है-

उपक्रम (भूमिका)

शोध प्रबन्ध की भूमिका अथवा उपक्रम में संस्कृत साहित्य के महत्व को प्रतिपादित किया है। समाज की एक धारा जो संस्कृत को 'मातृभाषा' घोषित करती है, उानको समझने की आवश्यकता है कि संस्कृत भाषा जीवनदायिनी है। यह हमें हमारी जड़ों से जोड़ती है। यदि भौतिकवाद एवं बाह्याडम्बर के युग में जडे जमाए रखाना है तो संस्कृत साहित्य रूपी विशाल वटवृक्ष का आश्रय एक श्रेष्ठ विकल्प है। इसकी प्राचीनता, तार्किकता, गहनता एवं उर्जस्विता हमें असीम सकारात्मक ऊर्जा एवं संजीवनी शक्ति प्रदान करती है।

ऋग्वेद की प्रथम ऋचा के अविर्भाव से प्रवाहित वैदिक काव्य सरिता एवं वाल्मीकि के शोक से श्लोक रूप में नि:सृत लौकिक काव्य सरिता की अर्वाचीन काल सीमा का निर्धारण करने का प्रयास भी भूमिका अथवा उपक्रम में किया गया है। पं. बलदेव उपाध्याय शास्त्रीय चिन्तन एवं व्याकरण शास्त्रीय व्याख्याओं से युग चिन्तन को प्रभावित करने वाले नागश भट्ट के काशीवास अर्थात् 18 वीं शती से आधुनिक काल की शुरूआत मानते हैं। जबकि इसका पक्ष आधुनिक काल की सीमा को विशेष परिवर्तन रूपी व्यावर्तक गुण के कारण 17वीं शती स्वीकार करता है। दोनों पक्षों के विवेचन से यह सिद्ध होता है कि 17 वीं शती से अर्वाचीन काल सीमा का आरम्भ माना जा सकता है।

भूमिका में ही शोध विषय के उद्देश्य, साहित्य की मौलिकता एवं उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है। समाज एवं साहित्य के शुभलक्ष्यों को प्रतिपादित करने वाला एवं अपने गूढ़ मंथन एवं परिश्रम से निसृत जीवन मूल्य रूपी नवनीत से उज्ज्वल भविष्य का पथ प्रशस्त करने वाला शोधकार्य ही समय, क्षमता एवं श्रम के निवेश को सार्थकता प्रदान करता है।

अतः एक समकालीन साहित्यकार की दृष्टि में समाज के सरोकार क्या है साहित्यकार के नजरिये से उनका कारण क्या है तथा उनका निवारण कर एक सुन्दर एवं स्वस्थ समाज का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है? इसे समाज के समक्ष लाकर सहृदय सामाजिकों का हित साधना ही मेरे शोध विषय उसका उद्देश्य है। आधुनिक काल के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ-साथ साहित्य के सन्दर्भ में कवि एवं कवि की दृष्टि में समाज को प्रतिबिम्बित करना भी मेरे शोध का उद्देश्य है।

भूमिका के अंतिम अंश में शोध कार्य की संक्षिप्त रूप रेखा से शोध विषय की प्रायोजना एवं विवेच्य बिन्दुओं का संकेत दिया गया है। मेरे विवेच्य कवि एवं सारगर्भित ग्रन्थों के रचनाकार मूर्धन्य विद्वान् की ओर आज तक जिज्ञासुओं का ध्यान नहीं गया है, जो खेदजनक है। इस अभाव की पूर्ति करना, पं. दवे जी जैसे विशिष्ट विद्वान् एवं इसके साहित्य के प्रकाशन, अनुशीलन की जिज्ञासा व दृढ़ इच्छा ही प्रस्तुत शोध में परिणत हुई है। मेरा विश्वास है कि इन जैसे विराट व्यक्तित्व एवं कृतित्व को युग के सम्मुख लाने से देवभाषा संस्कृत की निधि और परिपुष्ट होगी।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में मैंने शास्त्री जी के सम्पूर्ण जीवन वृतान्त को उनके वंशजों, सम्बन्धियों, मित्रों से व्यक्तिगत तथा दूरभाष से सम्पर्क कर प्रमाणित रूप में समायोजित किया है। इसी प्रकार उनके सम्पूर्ण कृतित्व (रचनाओं) का वर्गीकरण, विश्लेषण, अनुशीलन, समालोचन कर काव्य शास्त्रीय दृष्टिकोण से उनके योगदान का मूल्यांकन करते हुए प्रस्तुत-शोध प्रबन्ध की उपयोगिता सिद्ध करने की निम्न चेष्टा की है। अत: उक्त दृष्टि से प्रस्तुत शोध-प्रबंध पाँच अध्यायों में विभक्त है-

प्रथम अध्याय: राजस्थान और संस्कृत साहित्य

इस अध्याय में विश्व में भारत का विशेषत: राजस्थान का वैशिष्ट्य, राजस्थान का संस्कृत-साहित्य, संस्कृत भाषा की गौरव गरिमा, 20 वीं व 21 वीं शताब्दी में संस्कृत की विकास यात्रा, राजस्थान के साहित्यकार पं. श्री रामदवे जी के रचनात्मक कार्यों की रूपरेखा को प्रस्तुत किया है।

द्वितीय अध्याय: पं. श्री रामदवे जी का व्यक्तित्व व कृतित्व-

यह अध्याय दो भागों में विभक्त है-

(1) **व्यक्तिव भाग-** इसके अन्तर्गत विवेच्य कवि पं. श्रीरामदवे जी के सम्पूर्ण जीवन वृतान्त यथा वंश परम्परा, जन्म, बाल्यकाल, समय, शिक्षा-दीक्षा, व्यवसाय, गुरू परम्परा, पारिवारिक जीवन, स्थान प्रवजन, पांडित्य, अध्यात्मक, भगवद्भक्ति, देशप्रेम, जन्मभूमि प्रेम इत्यादि का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

(2) **कृतित्व भाग-** इसके अन्तर्गत मैंने कवि की वर्ष 2010 तक की समस्त रचनाओं का संकलन प्रस्तुत किया है। यहीं पर रसनिष्पत्ति के उपरान्त अलंकार योजना पर कवि के साहित्य को परखने का प्रयास किया गया है। काव्यगत सौन्दर्य की कसौटी अलंकार है। अतएव वामन ने 'सौदर्यम् अलंकार:' कहा है। अलंकार वाणी के सामर्थ्य एवं प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करते हुए काव्य को चमत्कृत रूप से सम्प्रेषणीय बनाते हैं।

पं. दवे के महाकाव्यों, खण्डकाव्यों में आलंकारिक वर्णन, सहज, उपस्थिति पाकर उनके कथा-काव्य की शोभा को द्विगुणित करने का कार्य कर रहे हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक, अर्थान्तरन्यास व्यास आदि अलंकारों ने उनकी भाषा का तो समृद्ध किया ही है साथ ही भावों को भी सम्बल प्रदान किया गया है। कवि की उपमाएँ तार्किक, सटीक एवं सार्थक है। उनमें उनका गहन-ज्ञान एवं सूक्ष्मेक्षिका प्रतिबिम्बत होती है। तपती की पीड़ा की अभिव्यक्ति दर्शनीय है- 'पुटपाकप्रतीकाशमन्तश्शोंक सयत्नमुमगह्या तपति दृष्टिकलार्कोदया शेफालीव नयनजल पुष्पाणि पातयति स्म' कालिदास की तरह अनेकत्र उन्होंने उपमाओं की झड़ी लगाते हुए माल्लेपमा का चमत्कार उत्पन्न किया है। शब्द सम्राट पं. श्री रामदवे जी क अनुप्रासों की छटा भी दर्शनीय है। इसी प्रकार रूपक, उत्प्रेक्षा एवं अर्थान्तरन्यास अलंकारों की छवि काव्य के कलापक्ष एवं भावपक्ष को गौरान्वित कर रही है।

अध्याय के अग्रिम सोपान पर विशिष्ट पदसंघटना रूपी रीति तत्व का विशद विवेचन किया गया है। वामन कहते हैं - 'विशिष्टा परदसंघटना रीति:।' अर्थात् पदों की

संघटना के विशिष्ट प्रकार को ही रीति कहा गया है। काव्य के विभिन्न मार्गों के रूप में रीति शब्द की व्याख्या की गई है परन्तु अद्यावधि विशिष्ट पद-संरचना ही रीति की सर्वमान्य परिभाषा रही है। रीति, शब्द आर अर्थ पर आश्रित रचना चमत्कार का नाम है जो माधुर्य, ओज एवं प्रसाद के द्वारा चित्त को द्रवित करते हुए रसावस्था तक पहुँचाने में साधक बनती है। पद-संघटना में कवि बाणवत प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार बाणभट्ट ने चित्रण में प्रभावोत्पादकता के लिए ओजपूर्ण एवं समास बहुल पदों का प्रयोग किया है परन्तु अपेक्षानुसार छोटे-छोटे वाक्यों के प्रयोग से भी काव्य को सशक्त बनाया है। उसी प्रकार पं. श्री रामदवे जी ने संप्रेषणीय विषय के अनुसार शैली का प्रयोग किया है। बलदेव उपाध्याय के शब्दों में, 'कवि शैली का क्रीतदास नहीं होता। वह तो विषय के अनुसार अपनी शैली को परिवर्तित किया करता है।'

पं. श्री रामदवे जी का जन्म आश्विन् कृष्ण प्रतिपक्ष संवत् 1979 (22.09.1922) में गाँव समदड़ी, जिला-बाड़मेर (राज.) में श्रीमाली ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिताजी का नाम पं. श्री शंकरलाल दवे तथा माता का नाम मथुरा देवी था। जब ये 6 वर्ष के थे, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया था। अत: इस गहरे आघात ने परिवार का झकझोर कर रख दिया। किन्तु इनकी माँ ने हिम्मत न हारी और तात्कालिक परिस्थितियों से स्वयं जूझा। तब इन्होंने 5वीं कक्षा अपने गाँव की पाठशाला से ही उत्तोर्ण की। तत्पश्चात् आगे की शिक्षा ग्रहण करने हेतु इन्हें अपनी बड़ो बहिन के पास। 'अमरकोट नगर' जाना पड़ा। किन्तु वहाँ भी बड़ी बहिन का असामयिक निधन हो जाने के कारण अधिक समय तक न रह सके और वहाँ से संस्कृत में प्रथम परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर पुन: अपने गाँव में माँ के पास लौट आये।

परिस्थिति के वशोभूत होकर अब इन्हें शिक्षा ग्रहण करने हेतु अपने मामा के पास हैदराबाद सिन्ध (वर्तमान पाकिस्तान) जाना पड़ा, वहाँ इन्होंने प्रात: स्मरणीय एवं ज्ञानवृद्ध गुरु पं. श्री मणिशंकर आचार्य जो के श्री चरणों में बैठकर गिदुमल संस्कृत पाठशाला में संस्कृत का अध्ययन किया।

अध्ययन काल में उन्हें हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि स्व. नागार्जुन के साथ रहने का भी अवसर मिला। वे संस्कृत के भी प्रकाण्ड पण्डित और कवि थे। उनकी सद्प्रेरणा से ही ये प्रतिदिन संस्कृत में अपनी दैनन्दिनो लिखा करते थे, जिससे इनकी भाषा में सौष्ठव आता गया और साथ ही कविता करने का अभ्यास भी हो गया। ये हैदराबाद से प्रकाशित 'त्रैमासिक कौमुदी' में लेख लिखते थे, उसमें प्रकाशित इनकी कहानियों का उल्लेख स्व. श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने अपनी मराठी में लिखे संस्कृत साहित्य ग्रन्थ में भी किया है।

भारत विभाजन के पश्चात् पं. श्री रामदवे जी को अपने घर लौटना पड़ा। आजीविका के लिए संघर्ष करते हुए 1950 मे इन्हें बैंक में नौकरी करनी पड़ी, जो उनके अध्ययन के अनुकूल नहीं थी। परन्तु इन्होंने बैंक सेवा में रहते हुए भी अपना स्वाध्याय नहीं छोड़ा। अत: ये जहाँ भी जाते संस्कृतज्ञों से सम्पर्क करते रहते तथा साथ ही साथ लेखन कार्य भी अनवरत चलता रहा।

इस प्रकार बैंक में अपनी विशिष्ट सेवायें देने के उपरान्त पं. जी 22.09.1980 को स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर की शाखा "जाधपुर" से प्रबन्धक के पद से सेवानिवृत्त हुए किन्तु सेवानिवृत्ति के पश्चात् इन्होंने पुन: संस्कृत सेवा एवं लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया तथा तोन युगबोधक महाकाव्य लिखे - भृत्याभरणम्, राजलक्ष्मीस्वयंवरम्

एवं साकेतसंगरम्। जिनमें से 'भृत्याभरणम्' महाकाव्य पर इन्हें 19.03.1992 को राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर ने 'माघ' पुरस्कार प्रदान किया। इनके अलावा इन्होंने 13 खण्डकाव्यों की रचना करने के साथ-साथ अनेक कृतियों का संस्कृतानुवाद भी किया। पं. दवे जी के द्वारा रचित अनेक कहानियाँ, लेख एवं कविताएँ समय-समय पर विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

पं. श्री रामदवे जी ने राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर की द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम महासमिति में क्रमशः 1985, 1989, 1992 एवं 1995 में इन वर्षों के दौरान सदस्य चुने जाने पर अपनी महती सेवायें दी हैं। ये जयपुर से प्रकाशित 'भारती' मासिक संस्कृत पत्रिका के सह-सम्पादक के पद को सुशोभित कर चुके हैं। साथ ही साथ 'विश्वसंस्कृतप्रतिष्ठानम्' के प्रदेश संघटन मंत्री भी भी रह चुके हैं। इनके अलावा 'भारती' संस्कृत पत्रिका, जोधपुर के परामर्शदाता भी रहे हैं।

संस्कृत भाषा के उन्नयन हेतु की गई महती सेवाओं के उपलक्ष्य में पं. श्री दवे जी को सर्वप्रथम दिनांक 6.7.1990 में राजस्थान सरकार द्वारा विद्वत् सम्मान दिया गया। तदुपरान्त राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर ने भी दिनांक 23.3.1998 को इनकी सेवाओं से अभिभूत होकर इसी पुरस्कार से सम्मानित किया। इसके बाद दिनांक 28.9.1998 को जोधपुर की विविध संस्थाओं द्वारा इनका बड़ा भव्य नागरिक अभिनन्दन किया गया। तत्पश्चात् इन्हें अगस्त 2008 को मुंशीप्रेमचंद की अमरकृति 'निर्मला' पर कोलकाता में, साहित्य अकादमी, दिल्ली का 'अनुवाद पुरस्कार' प्रदान किया गया।

विवेच्य कवि पं. श्री रामदवे जी की प्रमुख रचनाओं का विवरण इस प्रकार है-

1. **भृत्याभरणम्-** इसमें 37 सर्ग है तथा 1154 पद्य हैं। इस महाकाव्य में भृत्यावृत्ति (नौकरी) का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

2. **राजलक्ष्मीस्वंयवरम-** इसमें 18 सर्ग है तथा 1484 पद्य हैं। प्रस्तुत महाकाव्य में लोकतन्त्र को विष्णुमाया कल्पित युगपरिवर्तन लक्षित किया गया है, जिसमें अर्थ और काम की प्रधानता मानी गयी है।

3. **साकेतसंगरम्-** इसमें 15 सर्ग है तथा 600 पद्य हैं। प्रस्तुत महाकाव्य में देश के स्वतन्त्र होने पर भी देश को अस्मिता की उपेक्षा पर प्रबल आक्रोश की अभिव्यक्ति है। इस महाकाव्य में एकादशी से प्रारम्भ श्रीरामजन्मभूमि मन्दिर की जीर्णोद्धार की कथा है।

खण्ड़काव्य-

1. **भारतीविलास-** इसमें 191 पद्य हैं। इसमें माया मातृकारूपधारिणी भारती की ही लीला विलास का वर्णन किया गया है।

2. **ललितालहरी-** इसमें 63 पद्य हैं। इसमें पं. दवे जी के द्वारा अपनी आराध्य देवी शैलनिवासिनी माँ ललिता के प्रति सर्मिपित भक्तिभाव वर्णित किया गया है, जो भक्त की माँ के प्रति सच्ची भक्ति रूपी भेंट है।

3. **वियोगशतकम्-** इसमें 111 पद्य हैं। जिसमें मेघदूत के अनुरागी एवं अलका नामक आवास के निवासी अपने अभिन्न मित्र आसूलाल संचेती की वियोग वेदना का वर्णन है।

4. **कामधेनुशतकम्-** इसमें 113 पद्य हैं। इसमें गायों की मानवीय जीवन में उपयोगिता एवं महत्व पर प्रकाश डाला गया है। जो राजस्थान के जालौर जिले में स्थित पथमेड़ा नामक स्थान पर स्वामी दत्त शरणानन्द जी द्वारा संचालित गोशाला है।

5. **अपाङ्गलीला-** इसमें दो अध्याय हैं, जिनमें सृष्टिलीला, युगलीला, रासलीला, कपाङ्गलीला का वर्णन किया गया है।

6. **कारुण्यकादम्बिनी-** इसमें 118 पद्य हैं। पं. श्री दवे जी के द्वारा अपनी श्रद्धेया करुणामयी मूर्ति माँ मथुरा के प्रति सच्ची कृतज्ञता ज्ञापित की गई है। जिनकी सदप्रेरणा से ही इन्हें समय की विकट परिस्थितियों में अध्ययन एवं स्वावलम्बी बनने का मार्ग मिला।

7. **परिखायुद्धम्-** इसमें 126 पद्य हैं। इसमें ईराक युद्ध एवं उससे उत्पन्न भयावह दशा का वर्णन किया गया है।

8. **सौन्दर्यलीलामृतम्-** यह 143 पद्यों में निबद्ध एक श्रेष्ठ खण्डकाव्य है। इसमें ईश्वर कृत सृष्टि में प्राणियों की विविध सौन्दर्य लीलाओं का वर्णन किया गया है।

9. **विनोद कौस्तुभम्-** इसमें 121 पद्य हैं। तथा यह आधुनिक सामाजिक, राजनैतिक घटनाओं पर लिखा गया है।

10. **केलिभूकैतवम्-** इसमं विलास केन्द्र आधुनिक क्लब की एक अभिसारिका द्वारा विज्ञापन के माध्यम से विवाह के प्रलोभन में वंचित युवक की घटना का वर्णन किया गया है।

11. **काव्यमंजूषा-** समय-समय पर विविध प्रसंगों पर लिखी गयी 98 कविताओं का संग्रह है।

12. **साईचरित्रम्-** शिरड़ी के सिद्ध संत श्री सांईबाबा के लीला प्रसंगों का विविध छन्दों में निरूपण किया गया है।

13. **मेघोपालम्भनम्-** इसमें कवि ने कहीं सुवृष्टि से, कहीं अनावृष्टि से तो कहीं अल्पवृष्टि से अपनी विविध लीला करने वाले बादलों के विविध लीलाओं का वर्णन किया है, जिसमें विरहजनित स्त्रियों द्वारा मेघों को उपालम्भ दिया गया है।

पं. श्रीराम दवेजी द्वारा अनुवादित कृतियों का विवरण निम्न है-

1. निर्मला
2. ध्रुवस्वामिनी
3. गीताञ्जलि
4. ब्रह्मरसायनम्
5. अकिञ्चन चैत्यम्
6. अत्रिख्याति, ब्रह्मविनय एवं ब्रह्मसमन्वय

इस प्रकार मेरे द्वारा सभी रचनाओं का सामान्य परिचय, कथावस्तु, समय, स्थान, आकार, प्रकाशन एवं विषयवस्तु का काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अनुशीलन व समालोचन प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है। पं. दवे जी के तीन महाकाव्य (भृत्याभरणम्, राजलक्ष्मीस्वंयवरम्, साकेतसङ्गरम्) तथा तेरह खण्डकाव्य (ललितालहरी, अपाङ्गलीला, परिखायुद्धम्, भारतीविलास, कामधनुशतकम, वियोगशतकम्, सौन्दर्यलीलामृतम्,

कारूण्यकादम्बिनी, विनोदकौस्तुभम् (अप्रकाशित), केलिभूकैतवम् (अप्रकाशित), काव्यमंजूषा, सांईचरित्रम् (अप्रकाशित), मेघोपालम्भनम् (अप्रकाशित) तथा आठ अनुवादित काव्य (निर्मला, ध्रुवस्वामिनी, गीताञ्जलि, ब्रह्मरसायनम्, अकिञ्चन चैतयम्, अत्रिख्याति, ब्रह्मविनय, ब्रह्मसमन्वय) है।

<u>तृतीय अध्यायः</u> पं. श्री राम दवे जी की रचनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन-

भृत्याभरणम्, राजलक्ष्मीस्वंयवरम्, साकेतसङ्गरम् महाकाव्य ये तीनों ही विद्वान कवि की सर्वश्रेष्ठ रचनाएं हैं। इन कृतियों के काव्यशास्त्रीय महत्व एवं रचना नैपुण्य ने पं. दवे जी का नाम संस्कृत साहित्य के इतिहास में अमर कर दिया है। इस अध्ययन में हमने भृत्याभरणम् महाकाव्य की कथावस्तु, उपजीव्यता, मौलिकता, काव्यकला आदि काव्य तत्वों का गवेषणा प्रस्तुत की है। राजलक्ष्मीस्वंयवरम् महाकाव्य की कथावस्तु, सर्ग, पात्रानुशीलन, वैशिष्ट्य, वस्तुवर्णन, कथानक उद्श्य, साहित्यिक महत्व इत्यादि बिन्दुओं के आधार पर इसका अध्ययन अनुशीलन, विश्लेषण समालोचन और मूल्यांकन समायोजित करने का विनम्र प्रयास किया है। तथा साकेतसङ्गरम् महाकाव्य कथानक का अनुशीलन कर संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य महाकाव्यकारों व काव्य लक्षणकारों द्वारा प्रतिपादित काव्य लक्षणों को ससन्दर्भ वर्णित किया है। तदोपरान्त उक्त महाकाव्यों के अनुशीलन एवं मूल्यांकन की चेष्टा की है। तथा इसके साथ ही कवि के व्यावहारिक ज्ञान को स्थापित किया गया है। साहित्यकार समाज का संवेदनशील अध्येता होने के नाते मानवीय व्यवहार का सूक्ष्म अवलाकन व निरीक्षण करता है उनके भावों को आत्मसात् करता है, संवेदनाओं से एकाकार होकर जनमंगल का मार्ग प्रशस्त करता है। इसी संदर्भ में पं. दवे जी ने

खण्डकाव्यों, अनुवादित रचनाओं तथा संस्कृत भारती, जयपुर पत्रिका का सह सम्पादक के पद पर भी कार्य किया।

चतुर्थ अध्याय- पण्डित श्री राम दवे जी की सारस्वत साधना का समग्र मूल्यांकन कला पक्ष में गुण, रीति, ध्वनि, पदलालित्य, छन्द व अलंकार तथा भावपक्ष में रस (भक्तिरस, वीररस, श्रृंगाररस, वात्सल्यरस, हास्य, भयानक, अद्‌भुत, जुगुप्सा, क्रोध, करुण एवं शान्त रस) की काव्यशास्त्रीय समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

पंचम अध्याय- इस अध्याय में पण्डित श्री राम दवे जी का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान तथा प्रस्तुत शोध के अनुशीलन का उपसंहार करते हुए शोध से प्राप्त निष्कर्षों को रेखांकित किया गया है एवं विवेच्य कवि के कृतित्व का संस्कृत साहित्य को प्रदत्त योगदान को संस्थापित किया गया है।

उपसंहार- पं. श्री राम दवे जी ने लोक कल्याण की भावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए अपनी साहित्यक रचनाओं के माध्यम से साहित्यिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक दृष्टि से सार्वभौम देन देकर अपने कवित्व जीवन को कृतार्थ किया है। अतः इनकी रचनायें स्वान्तः सुखाय मात्र न होकर परसुखाय अधिक है।

पं. श्री राम दवे जी 21 वीं सदी के भारतीय संस्कृत विद्वानों में उच्चकोटि के विद्वान हैं। हमारे विवेच्य कवि अगाध पाण्डित्य से परिपूर्ण उच्च कोटि के (दार्शनिक) एवं आध्यात्मिक पुरुष हैं। इन्होंने अपने विराट व्यक्तित्व एवं कृतित्व से साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक क्षेत्रों में भारतीय समाज का मार्गदर्शन करके महान योगदान दिया है। आज पं. दवे जी व्यक्त शरीर से हमारे समक्ष नहीं है किन्तु

अपने काव्यरूपी शरीर से युगों युगों तक लोगों के प्रेरणा स्रोत बने रहेंगें। इसके पश्चात् पं. श्री राम देव जी की आध्यात्मिक एवं साहित्यक साधना से जनमानस पर पड़े प्रभाव व लाभ को उद्घाटित किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची के अन्तर्गत वे सभी ग्रन्थ, पत्र-पत्रिकाऐं, समालोचनात्मक इतिहास ग्रन्थ, काश ग्रन्थ आदि अपने अपेक्षित विवरणों सहित निर्दिष्ट है, जिन्हें शोध प्रबन्ध में उद्घृत किया गया है।

अनुसंधित्सु

रवीन्द्र कुमार शर्मा
राजकीय महाविद्यालय, कोटा
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
(राजस्थान)

उपसंहार

समग्र अध्ययन के उपरान्त साररूप में कहा जा सकता है कि राजलक्ष्मी स्वंयवर महाकाव्य, भृत्याभरणम् महाकाव्य एवं साकेतसंगरम् महाकाव्य शास्त्रोक्त प्रतिमानों के सर्वथा अनुकूल एक सरस महाकाव्य है। यह मिथक बुद्धि तथा कल्पना की समन्वित और सुन्दर सृष्टि है। यह काव्य तत्त्वों से परिपूर्ण है। तीनों महाकाव्यों में लगभग सभी अपेक्षित गुणों का समुचित समन्वय है। महाकाव्य की कथावस्तु चरित्र-चित्रण, उद्देश्य आदि शास्त्रानुकूल और सौन्दर्य से परिपूर्ण है। इन सभी महाकाव्यों तथा खण्डकाव्यों का प्रतिपाद्य विषय कल्पित कथानक तथा कलियुग के नवतन्त्र से सम्बन्धित है जिसमें रोचकता, गतिशीलता, घटनाओं की क्रमिकता, प्रसंगों की तार्किकता आदि वैशिष्ट्य का सम्यक् प्रतिपादन किया है। विवेचित महाकाव्यों तथा खण्डकाव्यों में धर्म और भक्ति के साथ अर्थ और काम का अपेक्षानुसार वर्णन है। दिव्य, अदिव्य, दिव्यादिव्य आदि नाना पात्रों की योजना है। विष्णु भगवान् के सर्वशक्तिमत्ता, धर्मरक्षक, सर्वज्ञता, शान्तिप्रियता और उच्च आदर्श वर्णित किये हैं। तदतिरिक्त चरित्रों में भी नैतिकता, सम्पन्नता आदि उत्कर्ष दिखाये गये हैं। कतिपय पात्रों में द्वन्दात्मक प्रवृत्तियों और गुण अवगुण का भी सन्निवेश किया गया है जो पात्रों की स्वाभाविक और वास्तविक स्थिति को लक्षित करता है।

इनके द्वारा रचित महाकाव्य तथा खण्डकाव्यों की रस योजना भी अत्यन्त सफल रही है। भाव सौन्दर्य की व्यापकता के साथ अंगीरस सहित सभी रसों की सृष्टि में रचनाकार ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। इस प्रकार सम्पूर्ण कथानक रसात्मकता से आप्लावित है। महाकाव्य तथा खण्डकाव्य की रचना शैली और भाषा सौष्ठव संस्कत विदग्ध महाकाव्य परम्परा में उसकी श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। इनकी भाषा में सुबोधता, प्रौढ़ता, भावानूकूलता, अलंकारिता, संवादात्मकता आदि का सौन्दर्य स्वाभाविक रूप से परिपूर्ण है। इन्होने आधुनिक व नवीन शब्दों का प्रयोग कर शब्दों की प्रमाणिकता को सिद्ध किया है। छन्द

विधान यद्यपि शास्त्रोक्त नहीं है। एक ही सर्ग में 5-7 छन्दों का प्रयोग करने की नई परिपाटी से भी गति और प्रवाह का सौष्ठव विद्यमान है। महाकाव्य और खण्डकाव्य की शली प्रसाद, ओज तथा माधुर्यात्मक है। महाकाव्य तथा खण्डकाव्यों में बहुविध विषयों के दर्शन होते हैं, जो समकालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिदृश्य के अनुरूप उपनिबद्ध है।

इस प्रकार कथानक, नायक एवं महान आदर्शों से समन्वित इनके महाकाव्यों एवं खण्डकाव्यों का विश्वसाहित्य की महानतम रचना विधा में महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रस्तुत अनुशीलन में-

1. हमने पं. श्री राम दवे जी के प्रकाशित समस्त ग्रन्थों को सम्पूर्ण या उपखण्ड के रूप में जैसे भी उपलब्ध हुए संग्रह करने का प्रयास किया ह।
2. पं. श्री राम दवे जी अपने समय में सुप्रसिद्ध कवि के रूप में विख्यात रहे हैं। विभिन्न ग्रन्थों की रचना में एवं अनुवाद, व्याख्या में अपने कौतुहलपूर्ण बुद्धि कौशल का प्रदर्शन किया है। यहाँ हमने प्रासंगिक रूप से उनके बुद्धि वैभव का अनुशीलन करने का विनम्र प्रयास किया है।
3. हमारे इस अध्ययन से पं. श्रीराम दवे जी के समग्र कृतित्व का एक ही स्थान पर अनुशीलन का प्रयास हुआ है। जिससे कवि का कला पक्ष और भाव पक्ष तथा उसकी मनीषा के व्यापक आयामों का उद्घाटन और विश्लेषण हो सका है।
4. पं. श्रीराम दवे जी ने लोक कल्याण की भावनाओं को दृष्टिगत करते हुए अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से साहित्यिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक दृष्टि से सार्वभौम देन देकर अपने कवित्व जीवन को कृतार्थ किया है। इनकी रचनायें स्वान्तः सुखाय मात्र न होकर परसुखाय अधिक हैं। अतः इनके सम्पूर्ण कृतित्व को प्रकाश में लाने से लोककल्याण में सहायता मिल सकेगी।

5. शोधकार्य द्वारा पं. श्री राम दवे जी की आध्यात्मिक एवं साहित्यिक साधना से जनमानस पर पड़े प्रभाव व लाभ को उद्घाटित किया गया है।

6. यह 20 वीं सदी का व्यक्तित्व है फिर भी व्यक्तित्व शीर्षक में हमने उनके पारिवारिक सम्पर्कों के माध्यम से अनेक अज्ञात प्रसंगों को सामने लाने का प्रयास किया है।

7. इस अध्ययन के माध्यम से राजस्थान और संस्कृत साहित्य परम्परा के परिदृश्य में पं. दवे जी के विशाल कृतित्व का मूल्यांकन किया गया है। इससे संस्कृत महाकाव्य परम्परा की अक्षुण्णता संस्थापित होती है।

8. वर्तमान वातावरण में संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन न होने की स्थिति में अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ लुप्त हो रहे हैं। इस अनुसन्धान से पं. श्रीराम दवे जी के समग्र साहित्य को सुधी विद्वानों के सामने शोधपूर्ण अनुशीलन के साथ रखने का प्रयास हुआ है।

9. निःसन्देह यह अनुशीलन 20 वीं सदी के विस्मृत होते, एक महाकवि के विलुप्त होते समग्र साहित्य के शोधपूर्ण अन्वेषण एवं समीक्षण का एक प्रयास है जिससे संस्कृत काव्य परम्परा पर नितान्त, नवीन प्रकाश पड़ सकेगा।

10. पं. श्रीराम दवे जी 20 वीं सदी के भारतीय संस्कृत विद्वानों में उच्चकोटि के विद्वान हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हमारे विवेच्य कवि अगाध पाण्डित्य से परिपूर्ण उच्च कोटो के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक पुरूष हैं। इन्होंने अपने विराट व्यक्तित्व एवं कृतित्व से साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में भारतीय समाज का मार्गदर्शन करके महान योगदान दिया है। पं श्रीराम दवे ने अनेक महाकाव्यों तथा खण्डकाव्यों की रचना की है। उन्होंने समसामयिक विषयों को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। बेरोजगारी की समस्या, नौकरी पाने के लिए जोड़तोड़, चुनाव में धन-बल व बाहुबल का प्रयोग, ईराक-युद्ध, राममन्दिर-निर्माण की घटना आदि विषयों पर उन्होंने लेखनी चलाई है।

इस अध्ययन से संस्कृत भाषा तथा लेखन की प्रासंगिता सिद्ध हो सकेगी तथा पं. दवे जी के विशाल कृतित्व के परिचय से संस्कृत भाषा को मृत कहने वाले व्यक्तियों को समुचित उत्तर दिया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त एक आदरणीय एवं सहृदय व्यक्तित्व के विषय का योगदान समस्त सुधीजनों के समक्ष आ जायेगा। यहाँ हमें पं. दवे जी की विद्वत्ता के दर्शन के साथ-साथ उनका मातृभूमि के प्रति उत्कट लगाव भाषित होता है। **'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'** - सूक्ति को कविवर पं. दवे जी ने चरितार्थ किया है। किन्तु बड़े खेद की बात है कि आज ऐसे भास्कर तुल्य दैदीप्यमान, देश, संस्कृत एवं संस्कृति के प्रति समर्पित, विद्वानों में अग्रगण्य एवं क्रान्तदृष्टा मनीषी पं. दवे जी 9 जनवरी 2013 (पौष कृष्णाद्वादशी) अपने व्यक्त शरोर को छोड़कर ब्रह्मलीन हो गये परन्तु, वे आज भी अपने काव्यरूपी शरीर से हमारे समक्ष है, और युगों-युगों तक जनमानस के प्रेरणा स्रोत बने रहेंगें। इनकी पुत्री डॉ. जया दवे के अनुसार **'शब्द ब्रह्म के परिवार का विस्तार'** इनके अन्तिम वाक्य थे।

किसी ने सत्य ही कहा है-

भरा नहीं जो भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
हृदय नहीं वह पत्थर है, जिसमें स्वदेश से प्यार नहीं।।

एतदर्थ यह राष्ट्र आपको सदैव नमन करता रहेगा।